हिंदी काव्य-धारा

[हमारे मध्यकालीन कवियोने अपना नाता सिर्फ संस्कृतके कवियोसे जोडे रक्खा जिससे हिंदी साहित्यके ऐतिहासिक विकासकी यह महत्त्वपूर्ण कडी काव्य-परपरामेसे टूटकर अलग जा पडी ·· ·· बीचकी पाँच सदियोके अपभ्रंश-काव्योका थोडा-सा भी अनुशीलन हमे लाभ ही पहुँचायेगा . यह न केवल हिंदीकी ही, बल्कि बगला-गुजराती-मराठी-सिंधी-उडिया-पजाबी-राजस्थानी-मगही-मैथिली-भोजपुरी आदि भाषाओकी समिलित निधि है, सिद्ध-सामत-युगीन जन-साहित्यकी अवहेलना हमारे लिए परम हानिकर होगी ।]

राहुल सांकृत्यायन

किताब महल

इलाहाबाद

प्रकाशक
किताब महल
इलाहाबाद

प्रथम संस्करण, १९४५

मुद्रक
जे० के० शर्मा
इलाहाबाद लॉ जर्नल प्रेस
इलाहाबाद

अवतरणिका

इस सग्रहमे कवियोकी अधिकसे अधिक कविताओके देनेका निश्च[illegible] ा, ऐसी अवस्थामे एक-एक कविकी अलग-अलग आलोचना सभव नही ीलिए हमने एक-एक काव्य-युगके समझनेके लिये उसकी पृष्ठ-भूमि दे देने ही सन्तोष किया है।

सबसे पहले सवाल आता है इस युग—सिद्ध-सामन्त-युग—के कवियोकी पाके बारेमे।

१. कवियोंकी भाषा

हमारे इस युग (७६०-१३०० ई०)की भाषा और आजकी भाषामे काफी तर है, यह हम मानते है, तो भी हम बतलायेगे, कि मूलत वह भाषा और जकी भाषा एक है। इस युगमे भी सरहपा (७६० ई०) और राजशेखर-र (१३०० ई०)के बीचकी पाँच सदियोमे भाषा अचल नही बनी रही। नुत दुनियामे कोई चीज अचल रह ही नही सकती। वहाँ यदि कोई अचल तो यही परिवर्त्तनका नियम। पीढीके बाद पीढी आती गई और भाषा भी के साथ बदलती गई। यदि हम सत्तर बरसकी दादीकी भाषाको ही देखे, उससे पोतीकी भाषामे परिवर्त्तन साफ दीख पडेगा। बोल-चालकी भाषाको छोडिये, लेखबद्ध भाषा—जिसे छप जानेसे हम बाज वक्त अचल समझनेकी ती करते है—मे भी परिवर्त्तन दिखाई पडता है, इसे हम भारतेन्दु और ा लक्ष्मणसिहकी भाषासे १९४४ की भाषाकी तुलना करके आसानीसे देख ते है। यदि आधी शताब्दीमे इतना अन्तर हो सकता है, तो सरहपा और शेखरके बीचकी पाँच शताब्दियोने भाषामे काफी अन्तर डाला है, यह श्चर्यकी बात नही है।

पाँच शताब्दियोमे कितना अन्तर हुआ, इसे हम आसानीसे समझ सकते, कवियोके हाथके लिखे या उनके समकालीन ग्रन्थ हमारे पास होते। मुश्किल है, कि हमारे पास जो हस्तलिखित प्रतियाँ पहुँची है, वह कई-कई शताब्दियो लिखी गई थी। यह भाषा सस्कृतकी तरह व्याकरण द्वारा दृढबद्ध कोई भाषा नही थी। इन हस्तलिखित प्रतियोके लिखनेवाले काव्योके समझने

और रसास्वादनके लिये लिखते-लिखवाते थे, और जव किसी शब्दके पुर
रूपको कुछ अपरिचित-सा हुआ देखते, तो उसे नवीन रूपमे लिख डालते।
तरह हस्तलिखित प्रतियोमे कवि-कालीन भाषासे परिवर्त्तन हो गया। पि
वे प्रतियॉ यदि किसी "नीम-हकीम खतरा-जान" सम्पादकके हाथमे पड
तो क्या गति वनी, इसे मुनि जिनविजय जीके शब्दोमे कहे तो—"जो कोई
जूनी कृति परिमाणमा वधारे लोक-प्रिय वनी होय, तेवी भाषा रचनामा
जुदा जमाननाना अनेक जातना रूपो अने पाठ-भेदो उमेराई ते वधारे अनवस्थि
रूप धारण करे छे। अने साथे कोई भाषा-तत्वानभिज्ञ सशोधक साक्ष
हाथे जो तेना जीर्ण-देहनू कायाकल्प थई जाय, तो तछन नूतन रूप प्राप्त क
ले वे।"

"आवी जूनी कृतिओनू मूल-स्वरूप मेलववा माटे अधिक सख्यामा अने
वने तेम वधारे जूनी लखेली प्रतिओ मेलववी जोइये, अने तेमना सूक्ष्म अ
लोकन अने पृथक्करणना आधारे पाठ-विचारणा थवी जोइये। आ पद्धि
कार्य करवाथीज आवी प्राचीन कृतिओनो आदर्शभूत पाठोद्धार थई शके,
कर्त्तानी शुद्ध-भाषानो परिचय मली सके।"

यह तो हस्त-लिखित प्रतियोके सपादनमे कितनी सावधानीकी जरूरत
यह वात हुई।

इस सग्रहमे इन पुराने कवियोकी कविताओके जो नमूने दिये गये है, उ
एक वार देखते ही पाठक समझनेमे असमर्थ हो कह पडेगे, कि यह तो हि
भाषा है ही नही। इसीलिए यहॉ यह वतलानेकी आवश्यकता है, कि वह उ
भी कही अधिक हिन्दी-भाषा है, जितनी कि आजकी मालवी, मारवाडी, म
(भोजपुरी) और मैथिली। आपको जो दिक्कत हो रही है, वह दादी (पाली
इस प्रतिज्ञा हीके कारण, कि उनके पास कोई शुद्ध सस्कृत—तत्सम—शब्द प
नही सकता।

दादीकी इस प्रतिज्ञाको चाहे बुढभस कह लीजिए, उनके यहॉ ग
गय बोला जायगा, लेकिन गजेन्द्रकी जगह गयद तो अब भी आप सुनते
मृगाक (चद्र)के स्थान पर मयक अव भी प्रयुक्त होता है। इस भाषाके

ेमे जो दिक्कत होती है, वह इसी सस्कृत-रूपके पूरे बायकाट और एकमात्र
द्भव—अपभ्रश—रूपके प्रचार हीके कारण।

आप जैसे ही तद्भव "मयक" को तत्सम (मृगाक) रूप देनेकी कुजी पा
यँगे, वैसे ही यह भाषा आपके लिए उतनी ही आसान हो जायेगी जितनी सूर
र तुलसीकी। आपके लिए यह काम हमने आमने-सामनेके पृष्ठोपर तद्भव
ूल)-भाषा और तत्सम-भाषा (छाया) देकर कर दिया है। आप अपने किसी
त्रको सामनेका पृष्ठ पढनेके लिए कह कर यदि मूलभाषाकी पंक्तियोको
ते जायँ तो खुद समझने लग जायेगे कि यह भाषा सस्कृत-प्राकृत नही,
न्दी है।

आपने सुन रक्खा होगा, कि इस भाषाको अपभ्रश कहते है, शायद इससे
प समझने लगे होगे, कि तब तो यह हिन्दीसे जरूर अलग भाषा होगी। लेकिन
म पर न जाइये, इसका दूसरा नाम "देशी" भाषा भी है। अपभ्रश इसे इसलिए
ते है, कि इसमे सस्कृत शब्दोके रूप भ्रष्ट नही, अपभ्रष्ट—बहुत ही भ्रष्ट—
इसलिए सस्कृत-पडितोको ये जाति-भ्रष्ट शब्द बुरे लगते होगे। लेकिन
दोका रूप बदलते-बदलते नया रूप लेना—अपभ्रष्ट होना—दूषण नही
ण है, इससे शब्दोके उच्चारणमे ही नही अर्थमे भी अधिक कोमलता, अधिक
मिकता आती है। "माता" सस्कृत शब्द है, उसका "मातु", "माई", और
ावो" तक पहुँच जाना अधिक मधुर बननेके लिए था। खेद है यहाँ भी कितने
"नीम-हकीमों" ने शुद्ध सस्कृत "माता" को ही नही लिया, बल्कि उसमे "जी"
ाकर "माताजी" बना उसके ऐतिहासिक माधुर्य्यको ही नष्ट कर डाला।
ु, यह निश्चित है कि अपभ्रश होना दूषण नही भूषण था।

कवियोकी भाषा पर विचार करते हुए हम तत्कालीन साधारण बोलचाल-
भाषापर चले गए, लेकिन हमे फिर सिर्फ साहित्यिक भाषापर विचार करना
पाँच सदियोके जिन कवियोकी कृतियोका हमने यहाँ सग्रह किया है, वह
चार ज़िलेके बराबर किसी छोटेसे प्रदेशके रहनेवाले नही थे। जहाँ सर-
और शबरपा विहार-बगालके निवासी थे, वहा अब्दुर्रहमानका जन्म मुल्तान-
ुआ था। स्वयभू और कनकामर शायद अवधी और बुन्देली, क्षेत्र—युक्त

प्रान्त---के थे, तो हेमचद्र और सोमप्रभ गुजरातके। और रसिक तथा आश्रयदा
होनेके कारण मान्यखेट (मालखेड) (निजाम हैदराबाद)का भी इस साहित्य
सृजनमे हाथ रहा है।

इस प्रकार हिमालयसे गोदावरी और सिधसे ब्रह्मपुत्र तकने इस साहि
के निर्माणमे हाथ बँटाया है। यह भाषा सस्कृतकी तरह ही मृतभाषा नही थ
यह हम कह आये है। साहित्यकी भाषा भी कोई मूल बोलचालवाली भा
होनी चाहिए, और वह भाषा जरूर एक परिमित क्षेत्रकी मातृभाषा हो सक
है। स्वयभूकी भाषाकी क्रियाओ और कितने ही कुजीके शब्दोको देखनेसे व
अवधीके सबसे नजदीक मालूम होती है। यद्यपि ऐसा कहनेसे बहुत दिनो
चली आई इस धारणाके हम खिलाफ जा रहे है, कि अपभ्रश साहित्य सौरसे
और महाराष्ट्री अपभ्रशो हीमे लिखा गया। लेकिन, जो सामग्री हमारे साम
मौजूद है, वह हमे वही कहनेके लिए मजबूर करती है। हाँ, इसका यह मतल
नही कि और भाषाओके विशेष शब्द उसमे नही है। 'चगा' ("अच्छा") श
का बहुत अधिक प्रचार अब पजाबी और मराठीमे ही रह गया है, लेकिन हम
सामने जो भाषा है, उसमे इसका खूब प्रयोग हुआ है। "थाक" (रहना) जिस
मे यहा प्रयुक्त हुआ है, वह अब बगलामे ही मिलता है। 'मेल्ही' (छोड़न
अब राजपूतानामे ही बोली जाती है। 'ढूक' (देखना) अब सिर्फ बुन्दे
और व्रजभाषामे देखनेको मिलता है, और 'एवडा' (इतना) 'तेवडा' गढवा
और मराठीमे। अछे (है) 'छे' के रूपमे बगला, मैथिली, गोरखा, मेवाडी अ
गुजरातीमे सुननेको मिलता है। इसलिए हम स्वयभू जैसे कवियोकी भाष
जब पुरानी अवधी या कोसली कहते है, तो उसका यह मतलब नही, कि दू
प्रान्तीय भाषाओसे उसका कोई सबध नही था। वस्तुत उस वक्त उत्तर-भा
की सारी भाषाये एक दूसरेके बहुत नजदीक थी। प्रान्तीय भाषाये उस व
काफी थीं। "प्राकृत-चद्रिका"मे उनकी एक मोटीसी गणनाकी गई है, जो
प्रकार है---

व्राचडी	कैकेयी
लाटी	गौडी

वैदर्भी
नागरी
वर्वरी
आवन्ती (मालवी)
पाचाली
टक्की
औड्री (उडिया)
सैहली
गुर्जरी
आभीरी
मध्यप्रदेशी, आदि

मार्कण्डेयने "प्राकृत सर्वस्व"मे जिन अपभ्रशोको गिनाया है, उनमेसे कुछ है—

पाचाली (कन्नौज-बरेली)
वैदर्भी (वरारी)
लाटी (दक्षिण-गुजराती)
औड्री
कैकेयी
गौडी
सैहली
आभीरी
मध्यदेशीया
गुर्जरी
पाश्चात्या (पछैयाँ)

"कुवलय-माला"ने भी कितने ही नाम दिये है—

गोल्ली (गौडी)
मध्यदेशीया
मागधी
अन्तर्वेदी
कीरी
टक्की
सिधी
मरुदेशी
गुर्जरी
लाटी
मालवी
कोसली
महाराष्ट्री

इस प्रकार हिमालय-गोदावरी और सिन्ध-ब्रह्मपुत्रके बीच यद्यपि बहुतसी बोल-चालकी भाषाये थी, मगर उनके साथ सवकी एक सम्मिलित भाषा भी थी।

बोलचालकी भाषाओमे लिखित साहित्य था या नही, इसके बारेमे अभी

कुछ कहा नही जा सकता। सम्भव है, इन कविताओको जिस रूपमे हम पेश कर रहे है, उसमे बहुत कुछ शताब्दियोके लेखको, पाठकोका हाथ हो।

मूल-रूप मे कितने ही कवियो—खास कर सिद्धो—ने अपनी कविताये अपनी ही मातृभाषामे की होगी।

ऊपरके कथनसे मालूम होता है, कि हमारे यहाँ सास्कृतिक और साहित्यिक, राजनीतिक और व्यापारिक प्रयोजनके लिए एक भाषाकी आवश्यकताको बहुत पहिलेसे माना जाता रहा है। इसीलिए आज हिन्दीके राष्ट्रभाषाका सवाल कोई नई चीज नही है।

फिर भी सवाल दुहराया जायेगा, कि हमारे इन कवियोकी भाषा हिन्दी नही, बल्कि सस्कृत-प्राकृतकी तरह कोई बिल्कुल ही अलग भाषा है। "अपभ्रश" नाम सुनते-सुनते इस गलत धारणाके शिकार हम जरूर हो चुके है; मगर बात ऐसी नही है। सस्कृत (छन्दस्), पाली और प्राकृत जितनी एक दूसरेके नजदीक है, अपभ्रश उतनी नही है। पुरानी सस्कृत या छन्दस् (वैदिक)-भाषा १५०० ई० पू० से ६०० ई० पू० तक थोडा बदलते हुए बोली जानेवाली जीवित भाषा थी।

५०० ई० पू०मे बुद्धके समय उसने मूल-पालीका रूप धारण कर लिया और आगे हल्केसे परिवर्त्तनके साथ वह पाँच शताब्दियो तक जारी रही। फिर ईसवी सनके साथ प्राकृतका आरभ हुआ और वह छठी सदी तक चलती रही। इन बीस सदियोमे छन्दस्, पाली, प्राकृतके जो तीन छोटे-मोटे भाषा-स्वरूप हमे मिलते है, उनमे परस्पर भेद होते हुए भी बहुत कुछ समानता है। असमानता यही है कि सस्कृतके क्लिष्ट उच्चारणको आसान (बालभाषा) बनाकर पालीने तद्भव शब्दोकी रचना शुरू की। सस्कृतके भारी-भरकम व्याकरण-कलेवरको कम करके उसने द्विवचन और कुछ प्रयोगोके झझटमे बोलनेवालोंको बचाया—बोलनेवालोने खुद अपनेको बचाया, यही कहना अधिक उचित होगा। कितना बचाया यह इसीसे मालूम होगा कि जहाँ शुद्ध सस्कृत बोलनेके लिए छ हजारसे ऊपर सूत्र-वार्त्तिकोको याद रखनेकी जरूरत है, वहाँ पालीमे वह काम आठ-नौ सौ सूत्रोसे ही हो जाता है।

प्राकृतने शायद व्याकरणके नियमोकी सख्याको और कम नही किया, लेकिन तद्भव या उच्चारणके सरलीकरणके कामको उसने और जोर-शोरसे किया। उस युगमे, स्वर ही नही व्यजनोकी भी खैर नही थी, यदि वह शब्दके आरभमे न रहे। तद्भव करनेमे पाली और प्राकृत एक-सी रहीं।

लेकिन, इतना होते हुए भी सुवन्त, तिडना या शब्द-रूप और धातु-रूपकी शैलीमे दोनो हीने सस्कृतका अनुसरण नही छोडा, इसीलिए पाली और प्राकृत-को सस्कृत रूप देनेमे बहुत थोडे श्रमकी जरूरत होती है—तद्भवको तत्सम कर दीजिए, आवश्यकता होनेपर द्विवचन और आत्मनेपद कर दीजिए, बस उसी पुराने ढाँचेमे ही सस्कृत रूप तैयार हो गया।

और अपभ्रश ? यहाँ आकर भाषामे असाधारण परिवर्त्तन हो गया। उसका ढाँचा ही बिल्कुल बदल गया, उसने नये सुबन्तो, तिडन्तोकी सृष्टि की, और ऐसी सृष्टि की है, जिससे वह हिन्दीसे अभिन्न हो गई है, और सस्कृत-पाली-प्राकृतसे अत्यन्त भिन्न।

'कहेउ', 'गयउ', 'गउ', 'कहिज्जइ' ये शब्द बतलाते है कि अपभ्रशका स्थान हिन्दीके पास होना चाहिए या सस्कृत-पाली-प्राकृतके पास। वस्तुत. सस्कृतसे पाली और प्राकृत तक भाषा-विकास क्रमिक या अविच्छिन्न-प्रवाह-युक्त हुआ, मगर आगे वह क्रमिक विकास नही, बल्कि विच्छिन्न-प्रवाह-युक्त विकास—जाति-परिवर्त्तन—हो गया। आज अपभ्रशकी यह अवस्था है कि सस्कृत-प्राकृत-पाली जाननेवाले मद्रास, सिहल, और कर्नाटकके पडित इस जाति-परिवर्त्तनके कारण अपभ्रशसे वात तक नही करना चाहते। यह ठीक भी है, क्योकि उन्हे इसके लिए हिन्दीकी विभक्तियोको सीखना पडेगा। वहाँ सस्कृत-ज्ञानके बल पर काम नही चलेगा। लेकिन दूसरी तरफ हिन्दी-भाषियोका अपभ्रशके प्रति क्या कर्त्तव्य है, इसे आप अपने दिलसे पूछ सकते है। "जिसके लिये किया वही कहे चोर" वाली कहावत है, वेचारी अपभ्रश हमारे लिए मारी गई।

मगर तर्क कर देनेसे काम नही चलेगा, आखिर पढने-समझनेमे आपकी दिक्कतका ख्याल करना ही होगा। लेकिन दिक्कत है सिर्फ तद्भव और तत्समके झगडे की। सस्कृत (छान्दस्)की औरस पुत्री पालीने तत्सम (शुद्ध सस्कृत)

शब्दोंका वायकाट शुरू किया, प्राकृतने दादीकी जगह माँका साथ दिया। वेचारी प्राचीनतम हिन्दी (अपभ्रंश)ने दादी और माँके पल्लेको पकडे रक्खा, लेकिन् आगे चलकर उसके वोलनेवालोने वास्तविक भाषा (क्रिया, विभक्ति)को तो रक्खा, मगर परदादी—सस्कृत—के शब्दोके शुद्ध रूप (तत्सम)को खूब तत्परतासे उधार लेना शुरु किया। लोग जितनी मात्रामे तत्सम शब्दोसे अधिक और अधिक परिचित होते गये, उसी मात्रामे तद्भव रूपोको भूलते गये, जिसका परिणाम है, यह आजकी दिक्कत।

तत्सम या शुद्ध सस्कृत-शब्दोका प्रयोग क्यो फिरसे होने लगा? अवतरणिकां-का कलेवर इसके विवरणके लिए पर्याप्त तो नही हो सकता। अस्तु, हम देखते है, कि चौदहवी सदीसे तत्सम शब्दोका प्रयोग वढने लगता है। व्रजभाषा तव भी इस वारेमे कुछ सयमसे काम लेती है, लेकिन तुलसी-वावाको तो हम अपनी अवधीमे लुटिया ही डुवानेके लिये तैयार दीखते है। शायद, वावाको अपने "मानस"पर विश्वनाथकी मुहर लगवानी थी। अच्छा, तत्समका प्रचार वढा क्यो? तेरहवी सदीके आरम्भमे इस्लाम-धर्मी तुर्कोका झडा उत्तरी भारत-मे गड गया था। कहा जा सकता है, कि उनके एक सदीके प्रभुत्वकी प्रतिक्रिया भाषा-क्षेत्रमे तत्समके रूपमे आई। लेकिन यही पर्याप्त कारण नही मालूम होता। लकामे तो तुर्को या इस्लामकी ध्वजा कभी नही गडी, लेकिन वहाँ भी तत्समकी यह प्रवृत्ति गद्य—भाषामे क्यो हुई? सिंहली-पद्यमे १९३२ तक तत्समका प्रवेश निषिद्ध था। एक और वात भी—इस्लाम शासनकी प्रतिक्रिया-मे ही यदि पडितोने सस्कृत शब्द-रूपोको जोडना शुरू किया, तो, उसका प्रभाव साहित्य और पठित जनता तक ही सीमित होना चाहिए था, लेकिन तत्सम-शब्दो-का प्रचार निरक्षर साधारण जनतामे वहुत दूर तक कैसे घुसा? गाँवका अपठित किसान भी अपने लडकेका नाम 'माहव' नही रखता, वल्कि तत्सम-रूप 'माधव'को ही स्वीकार करता है। 'कृष्ण' आदि नामोको भी वह तद्भवके 'धरम', 'करम' नही सस्कृतके नजदीकसे उच्चारण करना चाहता है, 'धम्म', 'कम्म'की जगह कहता है। इसलिए तत्समकी प्रवृत्ति चन्द शिक्षित दिमागोकी उपज-मात्र नही कही जा सकती। तत्सम या परदादीकी पुन प्राण-प्रतिष्ठा—एक परिमित क्षेत्र

मे—के बहुतसे कारण है, जिनमे एक कारण यह भी है—समाजके विकासके साथ-साथ उसके लिए शब्दोकी आवश्यकता भी बढती है। नये शब्द पुरानी धातुओसे गढे जा सकते है, या विदेशसे उधार लिये जा सकते है। साथ ही कभी-कभी इतिहास-प्रवाहमे छूट गये शब्दोको भी नया अर्थ दिया जा सकता है। ये छूटे शब्द तद्भव-रूपमे भी हो सकते है, और तत्सम-रूपमे भी। जान पडता है, जिस वक्त शव्दोकी मॉग बहुत वढ गई थी, उस वक्त कुछ तत्सम (सस्कृत)-शव्दोको भी चलाया जाने लगा। नये अर्थोमे नये शब्दोका प्रयोग करनेके लिए साधारण लोग भी मजबूर थे और वह जैसे-तैसे सस्कृतके क्लिष्ट उच्चारणपर अधिकार प्राप्त करनेकी कोशिश करने लगे। जब इस तरह अनिवार्य कारणोसे लोग कितने ही तत्सम शब्दोको अपना चुके और उन्होने उसके उच्चारण पर भी कुछ अधिकार प्राप्त किया, तो फिर पण्डितोकी बन आई और उन्होने सस्कृत-तत्सम-शब्दोको खूब ठूँसना शुरू किया। हमने कहा था कि अपभ्रश और आजकी हिन्दी (खडी, अवधी—व्रज लेते)मे अन्तर इतना ही है, कि एकमे शुद्ध सस्कृत—तत्सम—शब्दोका प्रयोग विल्कुल वर्जित है, जब कि आजकी साहित्यिक भाषामे मुश्किलसे किसी तद्भव-शव्दका प्रयोग होता है। अपभ्रशमे 'होई', 'कहेउ', 'गयउ', 'गउ', 'कहिज्जइ', आदि तुलसी-रामायण-वाली भाषाके क्रियापदोका प्रयोग होनेपर भी जब तद्भव-शब्दोके कारण लोगोको उसका समझना मुश्किल हो गया, तो स्वयभू आदि महान् कवियोकी कृतियोका पठन-पाठन छूटने लगा, और धीरे-धीरे वह बिल्कुल विस्मृत हो गयी। सस्कृत-पाली-प्राकृतसे अलग होने तथा हमारी अपनी भाषा होनेपर भी हमने एक तरह इन कवियोको मार डालना चाहा। शायद, पहले-पहल इन कवियोका जैन और बौद्ध होना भी इस उपेक्षाका कारण रहा हो, किन्तु आज शेक्सपियर और उमर खैय्यामकी दिल खोलकर दाद देनेवाले हम लोगोसे तो ऐसी आशा नही की जा सकती।

यहॉ एक बातको हम और साफ कर देना चाहते है। हम जब इन पुराने कवियोकी भाषाको हिन्दी कहते है, तो इसपर मराठी, उडिया, वॅगला, आसामी, गोरखा, पजाबी, गुजराती-भाषा-भाषियोको आपत्ति हो सकती है। लेकिन

हमारा यह अभिप्राय हरगिज नही है, कि यह पुरानी भाषा मराठी आदिकी अपनी साहित्यिक भाषा नही है। उन्हे भी उसे अपना कहनेका उतना ही अधिकार है, जितना हिन्दी-भाषा-भाषियोको। वस्तुत ये सारी आधुनिक भाषाये बारहवी-तेरहवी शताब्दीमे अपभ्रंशसे अलग होती दीख पडती है। जिस समय (आठवी सदीमे) अपभ्रंशका साहित्य पहले-पहल तैयार होने लगा था, उस वक्त बँगला आदि उससे अलग अस्तित्व नही रखती थी। उनके आजके क्षेत्रमे शायद मराठी और उडियाकी भूमिमे आखिरी लडाई खतम हो चुकी थी, और यह दोनो भाषाये अपने यहाँ पहलेसे चली आई किसी द्राविडी भाषाकी चिता शान्त करनेमे लगी थी। गुजरातने तो हमे कई कवि दिये है, उनकी कविताओका आस्वादन आप इस सग्रहमे करेंगे। वस्तुत, यह सिद्ध-सामत-युगीन कवियोकी उपरोक्त सारी भाषाओकी सम्मिलित निधि है।

सम्मिलित निधि है, अर्थात् बारहवी-तेरहवी शताब्दी तक द्राविड-भाषा-भाषी आन्ध्र, तमिल, केरल और कर्णाटकको छोडकर भारतके सभी प्रान्तोकी एक सम्मिलित भाषा भी थी। यहाँ कोई-कोई अखण्ड हिन्दी-वादी या एक भाषा-वादी पाठक कह उठेंगे—तब तो अब भी क्यो न अ-द्राविडीय प्रान्तोकी एक भाषा कर दी जाये। लेकिन, यह करना वैसा ही होगा, जैसे वयस्क स्वतन्त्र पोते-पोतियो-को फिर दादीके गर्भमे पहुँचानेकी कोशिश करना। गुजरात यद्यपि तेरहवी शताब्दी तक आजके हिन्दी-क्षेत्रका अभिन्न अग रहा है, आज भी होली-दिवाली, नाच-गाने और दूसरी सैकडो बातोंमे गुजरात हिन्दी-भाषा-भाषी प्रान्तोसे एकता रखता है, लेकिन आज उसके साहित्य और कितनी ही दूसरी सास्कृतिक बातोंने गुजरातको एक स्वतन्त्र राष्ट्रका रूप दिया है, फिर हम क्या उससे वैसी अखडता-की माँग कर सकते है।

अपभ्रंशके कवियोको विस्मरण करना हमारे लिये हानिकी वस्तु है। यही कवि हिन्दी-काव्य-धाराके प्रथम स्रष्टा थे। वे अश्वघोष, भास, कालिदास और बाणकी सिर्फ जूठी पत्तले नही चाटते रहे, बल्कि उन्होने एक योग्य पुत्र-की तरह हमारे काव्य-क्षेत्रमे नया सृजन किया है, नये चमत्कार, नये भाव पैदा किये, यह स्वयभू आदिकी कविताओसे अच्छी तरहसे मालूम हो जायेगा।

नये-नये छन्दोकी सृष्टि करना तो इनका अद्भुत कृतित्व है। दोहा, सोरठा, चौपाई, छप्पय आदि कई सौ ऐसे नये-नये छन्दोकी उन्होने सृष्टि की, जिन्हे हिन्दी कवियोने बरावर अपनाया है; यद्यपि सबको नही। हमारे विद्यापति, कबीर, सूर, जायसी और तुलसीके ये ही उज्जीवक और प्रथम प्रेरक रहे है। उन्हे छोड देनेसे बीचके कालमे हमारी बहुत हानि हुई और आज भी उसकी सभावना है।

हमारे मध्यकालीन कवियोने अपभ्रशके कवियोको भुला दिया और वह प्रेरणा लेने लगे सिर्फ सस्कृतके कवियोसे। स्वयभू आदि कवि अपनी पॉच शताब्दियोमे सिर्फ घास नही छीलते रहे, उन्होने काव्य-निधिको और समृद्ध, भाषाको और परिपुष्ट करनेका जो महान् काम किया है, हमारे साहित्यकी उनकी जो ऐतिहासिक देन है, उसे भुला कर, कडीको छोडकर सीधे सस्कृतके कवियोसे सम्बन्ध स्थापित करना हमारे साहित्य और हिन्दी-भाषा दोनोके लिए हानिकर सिद्ध हुआ है। हम सस्कृत कवियोसे सम्बन्ध जोडनेके विरोधी नही है, लेकिन हमे इस बीचकी कडी—जो हमारी अपनी ही कडी है—को लेते सस्कृतके प्राचीन कवियोके साथ सम्बन्ध जोडना होगा, तभी हम ऐतिहासिक विकाससे पूरा लाभ उठा सकेगे।

२. आर्थिक और सामाजिक अवस्था

१—सम्पत्ति और उसके भोक्ता

सिद्ध-सामन्त-युगकी कविताओकी सृष्टि आकाशमे नही हुई। वे हमारे देशकी ठोस धरतीकी उपज है। कवियोने जो खास-खास शैली-भावको लेकर कवितायें की, वह देशकी तत्कालीन परिस्थितिके कारण ही। यह बात तब तक साफ नही होगी, जब तक तत्कालीन भारतकी सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक, सास्कृतिक अवस्थाओकी पृष्ठ-भूमिमे हम उसे नही देखते। पहले हम उस काल—अथवा आठवीसे वारहवी सदीकी पॉच सदियो—की आर्थिक अवस्थापर विचार करते है। उस समय भारत बहुत सम्पन्न था। अकेला रोम अपने यहॉसे हर साल ढाई लाख तोला सोना या साढे पॉच लाख सेस्तर्स

(पौने दो करोड रुपये) कपडे और दूसरी चीजोको खरीदनेके लिए भारत भेजा करता था। प्लीनी (२३-७९ ई०)ने बडे क्षोभसे लिखा था—"हमे अपनी विलासिता और अपनी स्त्रियोके लिए कितनी कीमत चुकानी पडती है।" उन्नीसवी सदीके आरम्भके अग्रेज भी प्लीनीकी तरह भारतीय कपडो और मसालोके लिए देशसे धन खिचते देख चिन्तित थे, यद्यपि वह दूसरी ओर भारतको दूह भी रहे थे। भारत उन पाँच शताब्दियोमे शिल्प-व्यवसाय और वाणिज्यमे दुनियाका सबसे समृद्ध देश था। अरब, पश्चिमी-एशिया, उत्तरी अफरीका और यूरोपसे अपार धन-राशि खिच-खिचकर हमारे देशमे चली आ रही थी। शिल्प और व्यापार ही नही, कृषि भी उन पाँच शताब्दियोमे हमारे देशमे बहुत उन्नत-अवस्थामे थी। नदियो और जलाशयो द्वारा सिंचाईके प्रबन्धकी प्रथम जिम्मेदारी राज्यके ऊपर थी, इसे पाश्चात्य लेखकोने भी माना है। इसका यह मतलब नही कि हमारी कृषि साइन्स-युगकी कृषिके समान उन्नत थी। उस वक्त दुनियाको आधुनिक भौतिक साइन्सका पता ही नही था और जो कुछ कृषि-विज्ञान सभ्य-ससारको ज्ञात था, भारत भी उसमे किसीसे पीछे नही था।

उस समयकी भारतीय समृद्धिकी बात सुनकर आप शायद सतयुगका ख्वाब देखने लगेगे, और कह उठेगे—"वह वस्तुत राम-राज्य था।" लेकिन यह कहना बहुत गलत होगा। चीन, जावा, अफ्रिका, यूरोपसे जो माया भारत-मे आ रही थी उसको भोगनेवाली सारी भारतीय जनता नही थी। कौन भोगने-वाले थे, आइये इसे देखे।

(१) **राजा-सामन्त**—इस सम्पत्तिके सबसे अधिक भागको सामन्त-राजा अपनी मौज और आरामके लिए कितना खर्च किया करते थे, इसकी वहाँ कोई सीमा नही थी। आजकी कितनी ही देशी रियासतोकी तरह सारा राजकोष ही उनका वैयक्तिक कोष नही था, बल्कि व्यापारियो और सेठोके खजानोमे भी जो कुछ था, उसे खर्च कर डालनेमे उनका हाथ पकडनेवाला कोई नही था। जिन्होने हालके वाजिदअली शाह तथा दूसरे विलासी शासकोके भोग-विलास-के बारेमे पढा है, वह आसानीसे समझ सकते है कि उस कालके कन्नौज, मान्य-

खेट और पटनाके राजमहलोमे विलासी भोजन, शौकीनीके वस्त्र, सुगंधित द्रव्य-पर कितना खर्च होता रहा होगा। प्रजाकी मेहनतकी कमाईसे उपार्जित यह महार्घ वस्तुएँ चार-पॉच दिनमे ही खतम हो जानेवाली थी। इनके अतिरिक्त भी सामन्तोके भारी खर्च थे।—नये-नये महल, क्रीडा-उपवन, सिहासन, राज-पलग, मोरछल, चमर और लाखोके हीरा-मोती-महार्घ-रत्नोके आभूषण, राज-महलोकी सजावट, चित्र-कला, क्रीडामृग, सोनेके पीजडोमे बन्द शुक-सारिका, लोहेके पीजडोमे बन्द केसरी। दूर-दूर देशोसे लाई कितनी ही दुर्लभ महार्घ-वस्तुओके सचयमे भी देशकी सम्पत्तिका भारी भाग खर्च होता था।

फिर सामन्त या राजा अकेले ही उस सम्पत्तिको स्वाहा नही करते थे। उस समयके राजाओके आदर्श थे—कृष्ण और दशरथ तथा उनकी सोलह-सोलह हजार रानियॉ। ये रानियॉ मोटा-झोटा कपडा पहन, रूखा-सूखा खाकर दिन काटनेके लिए रनिवासमे नही रखी जाती थी। इन हजारो रानियो और उसीके अनुसार उनके पुत्रो-पुत्रियो, बहुओ-दामादोका खर्च भी देशकी उसी सम्पत्तिके मत्थे था। राजवशके अतिरिक्त कितने ही राज-च्युत भगोडे राजवशी भी प्रजाकी गाढी कमाईमे आग लगानेके अधिकारी थे। उस वक्त राजवशोका उच्छेद अक्सर होता रहता था, फिर वे अपने सम्बन्धियोके पास कन्नौजसे सिहल तकका चक्कर काटते रहते थे।

इनके अतिरिक्त राज-दरबारोमे कलाकार, कवि, सगीतज्ञ, चित्रकार, मूर्त्तिकार ही नही, बहुत काफी सख्या विदूषको, चापलूसो, मसखरो आदिकी भी होती थी।

इन अमीरोकी सेवाका काम सिर्फ वेतन-भोगी चाकर-चाकरानियोसे नही चलता था, उनकी सेवाके लिए काफी सख्या दास-दासियोकी होती थी। इसके बाद शिकार या किसी दूसरे मनोविनोदके लिए जिधर भी उनकी सवारी जाती, उधरके किसान, कमकर और कारीगर अपने धन-उत्पादनके कामको छोड बेगारमे पकडे जानेके लिए मजबूर होते।

(२) पुरोहित, महंथ—राजा अपने और अपने लग्गू-भग्गुओपर कितनी सम्पत्ति स्वाहा करते थे, इसका थोडा-सा अन्दाजा ऊपरके वर्णनसे लग गया

होगा। लेकिन समृद्ध भारतकी सम्पत्तिके अपव्ययका लेखा इतने हीसे समाप्त नही होता। पुरोहित और महथ लोगोका भी खर्च राजसी ठाटके साथ होता था। उनके पास भी महल, दास, कमकर थे और उसीके अनुकूल उनका खर्च भी था। उस समय धार्मिक मठो और मन्दिरोमे देशकी सम्पत्तिको खर्च करनेमे बहुत उदारता दिखलाई जाती थी।

सातवी सदीमे नालन्दाके ताराके सोना, रतन, जवाहिरसे भरे जिस मदिर-का जिक्र विदेशी तीर्थ-यात्रियोने किया है, उसमे वारहवी सदीके अत तक वरावर वृद्धि ही होती गई और मुहम्मद विन-वख्तियारको जितना धन वहाँसे मिला उतना किसी राजमहलसे भी नही मिला होगा। राजवशोका हर सौ-दो सौ सालमे उच्छेद भी हो जाया करता था, लेकिन ये मदिर तो चिरकाल तक सुरक्षित निधि वने रहते थे। महमूद राजपूतानेके रेगिस्तानोकी खाक छानते सोमनाथमे पत्थर तोडने नही गया था। यह निश्चित है कि देशकी सम्पत्तिका काफी भाग ब्राह्मण, जैन, वौद्ध मठो-मन्दिरोमे जाता था।

(३) सेठ—इसके वाद देशकी सम्पत्तिके भारी हिस्सेके मालिक थे, वह श्रेष्ठी-सार्थवाह (कारवाँ-अध्यक्ष) जिनकी कोठियोका जाल देशके भीतर ही नही, विदेशो तकमे विछा हुआ था, और जिनके जहाज उस समयकी सभ्य दुनियामे सभी जगह पहुँचते थे। इन महासेठो, नगरसेठोंके पास कितनी सम्पत्ति थी, इसका कुछ अनुमान देलवाडा (आवू)के सगमर्मरके मन्दिर और उसके वहुमूल्य शिल्पकार्यको देखकर आप आसानीसे लगा सकते है।

वस्तुत तत्कालीन भारतकी अपार सम्पत्तिके मुख्य भोगनेवाले थे, यही सामन्त, पुरोहित और सेठ तथा उनके दरवारी-खुशामदी।

(४) युद्धका अपव्यय—अमीर लोग, सगीत साहित्य काम-कलापर ही देशकी सप्पत्तिको स्वाहा नही करते थे, वल्कि उनकी फजूलखर्चीका एक और भी वहुत भारी क्षेत्र था, वह था युद्ध, दिग्विजय। किसी सामन्त (राजा)के लिए बडे शर्मकी वात होती यदि वह छोटा-मोटा दिग्विजय न करता या कमसे कम किसी पडोसी राजाकी कुमारीको न पकड लाता। यह सामन्तयुगके यौवन-का समय था। सामन्तो और उनके योद्धाओके हाथोमे लडनेके लिए खुजली

पैदा होती रहती थी। उस समयका सामन्त मृत्युकी बिल्कुल ही पर्वाह नही करता था। उसकी सारी शिक्षा-दीक्षा उसे यही सिखलाती थी कि मौतसे डरना—कायरता—उसके लिए चिल्लू भर पानीमे डूब मरनेकी चीज है। आज जिस महायुद्धसे हम गुजर रहे है, उसने हमे साफ दिखला दिया है कि युद्धमे कितना अधिक अपव्यय होता है—आदमीकी गाढी कमाईमे कितनी बेदर्दीसे और कितने भारी परिमाणमे आग लगाई जाती है। सत्तर सैकडा किसान, कम्मी, कारीगर जनताके श्रमसे उपार्जित धनका बहुत भारी ध्वस ये सामन्त अपने दिग्विजयो और आये दिनकी आपसी लडाइयोमे किया करते थे।

साधारण जनता—लेकिन सम्पत्ति पैदा कौन करता था? ये तीनो नही, बल्कि वह थे, किसान, कमकर और कारीगर। मिट्टीका सोना बनाना उन्हीके श्रमका चमत्कार था। चाहे सुनहले गेहूँ और सुगधित वासमतीको लीजिए, चाहे कमखाब और दुकूलको, अथवा गोलकुण्डासे निकलनेवाले कोहनूरको, ये सभी चीजे किसानो, कमकरो और कारीगरोके शारीरिक खूनको सुखानेसे पैदा होती थी। जिस तरह आजके राजाओ, नवाबो और करोडपति सेठोके वैभव-को देखकर सारा देश सुखी और समृद्ध नही कहा जा सकता, उसी तरह उस समयके राजा-पुरोहित-सेठ-वर्गके हृदयहीन अपव्ययके कारण सारे भारतको स्वर्ग नही कहा जा सकता। उस समय शायद सारी जनताका दस सैकडेसे अधिक भाग नही रहा होगा, जिसके जीवनको मौज-मस्ती और आरामका जीवन कहा जा सकता।

(१) दास-दासी—फिर वह भारत दासप्रथाका भारत था। यदि दस सैकडा मौजवाले लोगोके लिए व्यक्ति पीछे दो-दो दास-दासी रखे जाते थे, तो भारत-की कुल जन-सख्याका बीस सैकडा या हर पॉच आदमीमे एक आदमी दास था। दास आदमी नही थे, यद्यपि उनकी शकल-सूरत आदमीकी तरह होती थी। वह ढोरोकी तरह अपने मालिककी जगम सम्पत्ति थे, जिन्हे मालिक जब चाहे बेच-खरीद सकते थे। उनका जीवन बिल्कुल अपने मालिककी दयापर निर्भर था। अभी अग्रेजोके राज्य स्थापित हो जानेपर अठारहवी सदीके बाद तक यह दास-प्रथा भारतमे बनी रही थी। अभी भी दरभगा ज़िलेमे दासोकी

विक्रीके कितने ही ताल-पत्र आप देख सकते है । और नैपालके स्वतत्र "हिन्दू-राज्य"मे तो १९२५ ई० तक बाकायदा दास-प्रथा जारी रही। यह ठीक है, दास-प्रथाके लिए हम सिर्फ भारत हीको दोषी नही ठहरा सकते, उस समय दुनियाके सभी मुल्कोमे दास-प्रथा मौजूद थी और बाजारोमे गोरे, भूरे, काले सभी रगोके ये मानव-पशु मिलते थे ।

(२) **किसान, कम्मी, कारीगर**—जनताके बीस सैकडे भारतीय दास तत्कालीन भारतीय समृद्धिके भोगनेके अधिकारी नही थे । बाकी सत्तर सैकडे लोग किसान, कम्मी (अर्द्धदास) और कारीगर थे ।—दस सैकडा कम्मी, पचास सैकडा किसान और दस सैकडा कारीगर मौजकी जिन्दगी नही बिता रहे थे। स्वयभू और पुष्पदन्तके खेत अगोरनेवालियोके मोटे गन्ने और द्राक्षा-लताओको देखकर आप यह समझनेकी गलती न करे, कि वह उन्ही अगोरनेवालियोके उपभोगके लिए थे ।, वहाँ सारा शिल्प, सारा व्यवसाय, सारी कृषि मुट्ठीभर आदमियोके भोगके लिए होती थी । दूसरोको तो मुश्किलसे सिर्फ जीने और ब्याने भरका अधिकार था ।

(क) **जनताका आत्म-सम्मान**—बीस सैकडा दासोपर तो, नर-पशु होनेकी वजहसे विचार करनेकी जरूरत ही नही, लेकिन सत्तर सैकडा किसान-कम्मी-कारीगरकी अवस्था ? आत्म-सम्मान ? ऊपरी वर्गके सामने बिल्कुल शून्य "परम भट्टारक परमेश्वर महाराजाधिराज"के सामने सम्मान-प्रदर्शन करनेके लिए जब दूसरे राजाओ और सामन्तोको अपने मुकुट उनके चरणोपर रखने पडते थे, तो साधारण जनताको किस तरह जुहार करनी पडती होगी, इसे आप खुद समझ सकते है । और दूसरी बेबसियाँ ? सत्तर सैकडा जनताको शरीरसे मजबूत अपने तरुण पुत्रोको सामन्तोके युद्धके लिए भेट करना पडता था—हाँ, यदि उनकी जाति छोटी नही समझी जाती हो, छोटी जातिके तरुणको बडी जातिके साथ एक पक्तिमे लडकर मरनेका भी अधिकार नही था। सत्तर सैकडा जनताको अपनी सुन्दर लडकियोको वैध या अवैध रूपसे रनिवासमे भेजनेके लिए भी तैयार रहना पडता था । कितनी ही जगह तो नव-विवाहिता-की प्रथम रात भी सामन्तके लिए रिजर्व थी, चाहे वह हाथसे छूकर ही छुट्टी

दे दे । उस वक्त साधारण जनताके आत्म-सम्मानकी वात करना ही फजूल है ।

(ख) **अकाल आदिमें यातना**—उस वक्त इस आर्थिक हीनताके साथ कुछ सुभीते जरूर थे। उस समय भारतकी आबादी आजसे चौथाई या (दस करोड)से कम ही रही होगी, जिसका मतलब है—लोगोके पास अधिक खेत, खेत बनानेके लिए अधिक जगल, जगलोमे जरूरतके लिए अधिक शिकार। उस समय जैनोके तीर्थंकरो और देवताओको छोड बाकी सभी देवी-देवता—ब्राह्मण बौद्ध दोनो—घास-खोर नही थे। यह भी अच्छा था कि अमीरोकी शौकीनीकी प्राय सारी चीजे देशके भीतर तैयार होती थीं। सम्भव है कुछ रेशम और बारीक दुशाले या कालीन बाहरसे आते हो। अतएव इनके लिए देशका धन बाहर नही जाता था। लेकिन इतना होने पर भी अकाल, बाढ, युद्ध और महामारीमे साधारण जनताको कीडे-मकोडेकी तरह मरनेसे बचाया नही जा सकता था। फसल अच्छी हुई, शिल्पकी वस्तुओकी मॉग रही, तो सत्तर सैकडा जनताकी साल-की खर्ची ठीकसे चलती रही। उस वक्तके साधारण किसानोसे आशा नही रखी जा सकती थी कि वे पचासो वैध-अवैध करो, राजकर्मचारियो, पुरोहितो और महाजनोकी लूट-खसोटके बाद भी एक सालकी उपजको दो साल तक चला लेगे। जब तक साल दो साल आगे तकके खानेका सामान घरमे नही है, तब तक किसान, कम्मी, कारीगर अकाल आदिके चगुलमे पडकर बुरी मौत मरनेसे कैसे बचाए जा सकते ? जहॉगीरके वक्त (१६३० ई०) सत्तासिया अकालने दक्षिणी भारत और गुजरातमे क्या गजब ढाया, लोगोपर क्या-क्या वीती, यह समय सुन्दर कविके आँख देखे वर्णनसे मालूम होगा। इस अकालमे मनुष्यकी साधारण मानवता ही नही खो गई थी, बल्कि आदमी मॉ, बहिन, बेटी, भाई, बाप सबके सम्बन्धको सबके सम्मानको ताकमे रखकर केवल अपने शरीरको बचानेकी कोशिश करता था। मरते इतने थे कि मुर्दोका हटाना मुश्किल था। १९४२मे बरमासे मणिपुरके रास्ते जो भारतीय भाग कर आए, उनकी अवस्थाको हमारे एक मित्रकी भ्रातृ-वधू बतला रही थी—"चलनेमे असमर्थ या बीमार पड जानेपर लोग अपने भाइयो और पुत्रोको भी वही जगलमे छोड-कर चल देते थे, हॉ उनके पास एक अच्छी दलील थी—यहॉ रहकर खुद भी

मर जानेके सिवा हम अपने बधुकी कोई सहायता नही कर सकते। भूखे-प्यासे अपने शरीरको ले चलनेमे असमर्थ लोग अपने दुध-मुँहे बच्चोको रास्तेके जगली पेडोपर टॉगकर चल देते थे। ऐसे बच्चे एक दो नही, सैकडो हमने अपनी ऑखो देखे।" उस पुरातन कालके युद्धोमे भी जब भगदड़ होती होगी, तो लोगो-की अवस्था इससे बेहतर नही रहती होगी। सत्तर फीसदी जनताकी आर्थिक-अवस्था निश्चय ही इतनी हीन थी, कि किसी अकाल, बाढ या दूसरी आफत आने पर लाखोकी सख्यामे मरनेके सिवा उनके लिए कोई चारा नही था।

हमने उस समयके बहुसख्यक समाजका यहाँ अतिरजित चित्र नही खीचा है, वस्तुत उस समयके जीवनकी जो आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक सामग्री जहाँ-तहाँ बिखरी हुई हमे प्राप्त है, उससे हम यह छोड दूसरे निष्कर्षपर नही पहुँच सकते।

(३) कवि जनताकी यातनापर चुप क्यो ?—हमारे इन कवियोके सामने वे पशु-तुल्य दास-दासी और उनके ऊपर होते पाशविक अत्याचार मौजूद थे। पद-पदपर अपमानित, त्रस्त, पीडित, किसान, कम्मी, कारीगर जनता भी उनके सामने मौजूद थी। अकाल महामारी, युद्ध और बाढकी दारुण-यातना हृदय-द्रावक दृश्य भी उन्होने ऑखोसे देखे होगे, फिर भी इन कवियोंकी कृतियोमे उनके बारेमे इतनी चुप्पी क्यों ? सोचे होगे, अकाल, बाढ, युद्ध, महामारी सब भगवान्‌के भेजे हुए है—लोगोके पूर्विले कर्मका यह फल है, इसलिए क्रौच-मिथुन-मेंसे एकके वधसे तडप उठनेवाली कविकी आत्माको उधर ध्यान देनेकी जरूरत नही। शायद ऐसा सोचकर इन कवियोके बारेमे आप कोई कठोर निर्णय सुनाने लगे, लेकिन यह उचित नही होगा। जिस परिस्थितिके कारण कवियोको यह मौन धारण करना पडा, उस परिस्थितिपर भी आपको ध्यान देना होगा। यदि कमाऊ जनताकी सारी यातनाओके असली कारणको वह चाहे न भी बतलाते और सिर्फ लोगोकी इन यातनाओका नग्न चित्र खीच देते तो उससे रेशम और रतनसे ढँका अमीरोका भोगमय-जीवन नग्न हो उठता, दोनो-की तुलना होने लगती और फिर जनताके कितने ही लोग वैसे समाजसे क्षुब्ध हो उठते, जिसका परिणाम अवश्य अमीरोके लिए अच्छा नही होता। इसलिए

आपको समझना होगा कि क्रौंच-मिथुनमेंसे एकके वधके लिए कविका आँसू बहाना जितना आसान था, उतना उस कालके बहुसख्यक समाजकी विपदाओका वर्णन करना आसान नही था। यदि कोई आदमी तत्कालीन भोगी समाजके विरुद्ध लिखनेके लिए अपनी कवि-प्रतिभाका कुछ भी दुरुपयोग करता, तो वह केवल पुरोहितोके धर्म-दण्डका ही भागी नही होता, बल्कि उसके सरपर पडता क्रूर राज-दण्ड—छिपकर हत्या, भयकर शारीरिक यातना, सीधे शूली, देश और समाजसे निष्कासन और अपमान। इन दण्डोको सामने रखकर जब आप इन कवियोकी चुप्पीको देखेंगे, तो मालूम होगा कि उनके वैसा करनेके लिए प्रबल कारण मौजूद थे। उस वक्त अखबार नही थे और न देश-देशान्तरोके उदार-मना पुरुषोमे सहानुभूति पैदा करनेका वैसा कोई साधन था कि गोर्कीके कठोर दडके लिए सारी दुनियामे तहलका मचने लगता। यही नही, कवियोने अपनी काव्य-प्रतिभाकी जो करामात दिखलाई है, उसका बचा-खुचा अश भी शायद राजा-पुरोहित-सेठकी कोपाग्निसे न बच पाता। कवि अपने स्थूल शरीर और कीर्त्ति-शरीर दोनो हीसे नष्ट होनेका भय सोच यदि मौन रहा, तो उसके विरुद्ध किसी कठोर फैसलेके देनेका हमे अधिकार नही है।

३. राजनीतिक अवस्था

हर देशकी राजनीतिक अवस्था उसकी आर्थिक अवस्थाके अनुसार ही होती है, बल्कि राजनीति कहते ही है आर्थिक ढाँचे—आर्थिक स्वार्थोकी रक्षाके लिए तैयार किये गये फौलादी शिकजे—को। उन पाँच शताब्दियोमे साधारण जनताकी आर्थिक अवस्था कैसी थी, उसके ऊपर कितने अत्याचार और उत्पीडन होते थे, इसे हम बतला आए है। हम देख चुके है कि जनता किस तरहसे मूक और निरीह बनी हुई थी। राजा सर्वशक्तिमान "परमेश्वर" बन गया था और उसकी निरकुशताके रोकनेका कोई उपाय बहुसख्यक जनताके पास नही था। लेकिन भारतीय जनता सदासे ही ऐसी नही थी। बुद्ध के समय (ई० पू० पाँचवी सदी-मे) भारतके कितने ही भू-भागोपर लिच्छिवियोकी तरहके शक्तिशाली प्रजा-तत्र थे। युनानियो और शकोके कालमे भी यौधेयो जैसे प्रजातत्रोने अपने

अस्तित्वको ही नही बनाये रखा, बल्कि विदेशियोंके शासनको नष्टकर देनेमे इन्ही का सबसे पहिला और सबसे अधिक हाथ था। चौथी शताब्दीके अतमे गुप्तोकी विजय तो एक तरहसे खून लगाकर शहीद बननी थी। इन प्रजातत्रोमे जन-स्वतत्रता थी, हाँ उतनी ही जितनी धनी-गरीब वर्गवाले समाजमे सभव हो सकती है। इन गणो (प्रजातत्रो)की जन-स्वतत्रताको देखकर राजाओको भी अपने राज्यमे "सर्वशक्तिमान् परमेश्वर" बननेकी हिम्मत नही होती थी। ४०० ई०के आस-पास चद्रगुप्त विक्रमादित्यने यौधेय-गणके उच्छेदके साथ भारतसे चिरकालके लिए जन-तत्रताका उच्छेद कर दिया। इसमें शक नही कि गणोके विनाशमे उनके भीतरकी आर्थिक विषमता, अल्पशक्ति भी कारण थी। तो भी जनताके इस स्वतत्र शासनके उच्छेद करनेवाले चद्रगुप्त विक्रमादित्यको क्षमा नही किया जा सकता। इस उच्छेदने भारतपर क्या प्रभाव डाला यह इसीसे समझमे आ सकता है, कि वर्त्तमान शताब्दीके आरम्भमे जब इति-हासवेत्ताओ और पुरातत्त्वज्ञोने भारतके पुराने प्रजातत्रोके सबधमे साहित्यिक और मुद्रा-सबधी प्रमाण ढूँढ निकाले, तो उसकी ओर एक बार हमारे शिक्षित भी आँख मलकर आश्चर्यसे देखने लगे। उनको विश्वास नही होता था। कहाँ भारत और फिर वहाँ एथेन्स जैसा प्रजातत्र—यह हो ही नही सकता। यदि बौद्धोके कुछ पुराने ग्रन्थो तक ही प्रमाण सीमित होते, तो शायद उनको क्षेपक और बाहरी प्रभाव कहकर टाल दिया जाता, मगर ईसाके पहिलेकी शताब्दियो-से लेकर ईसवी चौथी सदी तकके ठोस सिक्कोसे कैसे इनकार कर दिया जाये? तो भी यह ध्यान रखनेकी बात है कि इन प्रजातत्रोके प्रति सारे पुराण-कारो, धर्मशास्त्ररचयिताओ और पीछेके कवियोकी चुप्पी खास कारणोसे थी। वह अपने प्रयत्नमे कितने सफल हुए, यह तो प्रजातत्रोंके बारेमे सदाके लिए हमारा अनभिज्ञ बन जाना ही साबित करता है। पिछली शताब्दियोकी बात छोडिये, आज भी जब कि हमारे शिक्षित जनतत्रताका नाम लेकर विदेशी शासनके हटानेकी बात कर रहे है, तब भी किसी लिच्छिवि या यौधेय प्रजातत्रके स्मरण-महोत्सव या कीर्त्ति-स्तभकी बात नही की जाती। यदि क्रियात्मक प्रस्ताव आता है, तो सर्वगण-उच्छेत्ता चद्रगुप्त विक्रमादित्यके लिए कीर्त्ति-स्तभ स्थापित

करनेका। हम समझते हैं, यह प्रयत्न किसी भोलेपनके कारण नहीं है, बल्कि उसके भीतर बहुत गूढ अर्थ छिपा हुआ है।

हमारे कुछ भाई कह उठेंगे, कि भारतकी जनतंत्रता कभी खतम नही हुई। वह तो गाँवोकी पचायतोके रूपमे मौजूद रही और इन पचायतोंको अग्रेज़ी शासनने नष्ट किया। लेकिन विक्रमादित्योने हमारे गावोंकी जनतत्रताको जनताकी आजादीके लिए नही छोडा था। वह जानते थे कि सात लाख गाँव, एक दूसरेसे असबद्ध सर्वथा स्वतत्र प्रजातत्र, किसी निरकुश शक्तिका मुकाबिला नही कर सकते। इसीलिए उन्होने रस्सीके रेशोको बिखेर दिया, धाराको बूँदोमे बाँट दिया और इस प्रकार ये ग्राम-प्रजातत्र निरकुश शासकोके बडे कामकी चीज बन गए। जनताकी इस बिखरी शक्तिकी बेबसीने सदियोके कड़ुवे तजर्बेके बाद तुलसीदाससे कहलवाया "कोउ नृप होइ हमै का हानी। चेरी छाँडि ना होउब रानी।"

अब राजा "परम स्वतत्र न सिर पर कोऊ" बन गए। उनके ऊपर असली अन्नदाताओका कोई अकुश न रहा। उनकी निरकुशतापर यदि कभी कोई दबाव पडता था, तो सामन्तोकी सदा बनी रहती आपसी खटपट का। सरहपा जिस वक्त अपने दोहोंको बना रहा था, उसीके आस-पास बिहारमे वह आखिरी घटना घटी, जिसमे प्रजाने एक गुमनाम-वशके बहादुर व्यक्ति गोपालको अपना शासक चुना। इसके बाद फिर भारतीय इतिहासमे ऐसी कोई घटना देखनेमे नही आती। हाँ, तो सामन्तोके ऊपर एक अकुश आपसी खटपट थी और दूसरा था बाहरी आक्रमण। हमारे इस कालके आरभ हीमे अरब, सिध (७१२ ई०) और मुल्तान (७१३)पर अधिकार जमा लेते हैं और वह भू-भाग हिन्दुस्तानसे बिल्कुल अलग कर लिया जाता है। पीछे ग्यारहवी सदीके आरभके साथ ही महमूद गजनवी (९९७-१०३० ई०)के हमले होने लगते हैं। शायद इन अरब और तुर्क हमलोने भारतीय नरेन्द्रोको सयमका कुछ पाठ ज़रूर पढाया होगा। धर्मको भी राजाओपर भारी अकुश बतलाया जाता है, लेकिन राजाओके टुकडखोर पुरोहित और महथ उनपर कितना अकुश रख सकते है, यह आसानीसे समझा जा सकता है, खासकर जब कि उनके पीछे साधारण जनता जैसी कोई

शक्ति सहायता देनेके लिए मौजूद नही हो। जन-शक्तिको तो वल्कि पूरी तरह कुचलनेमे राजाके वाद पुरोहितो और महथोका ही सबसे अधिक हाथ रहा है। उन्होने भगवान् और ऋषियो-मुनियोके नामपर धर्मकी नयी व्यवस्थाएँ गढकर जन-शक्ति और जन-चेतनाको बिल्कुल खतम कर दिया। अब उनका राजा पृथ्वीपर विष्णुका अश था और सारे विलास तथा उत्पीडन पहले जन्मके कर्मके सुफल थे। धर्माचार्य यदि कुछ अकुश रख सकते थे, तो शायद भक्ष्या-भक्ष्यपर।

वाहरका खतरा दिखलाई देनेपर जरूर देशके हर्त्ता-कर्त्ता लोग कुछ करनेके लिए मजवूर होते थे, लेकिन छठी सदीमे हूणोको परास्तकर भारत कुछ दिनोके लिए निश्चिन्त हो गया था। ७१२ ई०मे अरवोकी सिन्ध-विजयने फिर खतरेकी घटी वजाई। इसके लिए जरूरी था, कि देशका अधिकसे अधिक भाग एक शासन-सूत्रमे आ अपनी सैनिक-शक्तिको खूब मजवूत करे। इसके लिए आठवी सदीसे लेकर अगली सदियोमे जो प्रयत्न हुए, वह हमारे सामने कन्नौज, मान्यखेट और कभी-कभी पालोकी प्रभुता या चक्रवर्तीत्वके रूपमे आये।

(१) **कन्नौज**—कन्नौजने मौखरियो, हर्षवर्धन और उसके सेनापति भंडीके वशके प्रवल और विशाल राज्योका प्राय तीन सौ सालो (५५०-८१५) तक राजधानी रहनेके कारण उसी तरह एक अत्यन्त सम्माननीय स्थान प्राप्त कर लिया था, जिस तरह मुस्लिम-कालमे दिल्लीने जिस वक्त सिंध और पजावपर काले वादल मँडला रहे थे, उस वक्त कन्नौजका भडी-वश निर्वल और निकम्मा हो रहा था। कन्नौजके पीछे एक समृद्ध देशकी माया और प्राचीन वैभव था, वह आस-पासके सामन्तोको आकृष्ट कर रहा था। हर्षवर्धनके साम्राज्यके टुकडे-टुकडे होनेपर जो अलग-अलग राज्य कायम हुए थे, उनमे विहार-वगालके पाल और गुजरात-मालवाके प्रतिहार मुख्य थे। दोनो ही कन्नौजके मालिक वनना चाहते थे। वह कन्नौजके शासक इन्द्रायुध और चक्रायुधमेंसे एकको गुडिया वनाकर अपना प्रभुत्व जमाना चाहते थे। प्रतिहार वत्सराज (७८३) और गौडेश्वर धर्मपाल (७७०-८०६) इसके लिए अपनी सेनाओके साथ कन्नौज तक दौडे। वह आपसमे लडकर किसी स्थायी फैसलेपर पहुँचना ही चाहते थे कि

सुदूर-दक्षिणसे राष्ट्रकूट ध्रुव (७८०-९४) आ धमका और उसीका पलडा भारी रहा। इसीलिए ध्रुवरायकी यात्राका एक सुफल हमारे महान् कवि स्वयभू मालूम होते है। वह जो ध्रुवरायके किसी आमात्य रयडा धनजयके साथ दक्षिण गए और वही उन्होने अपनी अद्भुत अनमोल कृतियॉ रची। पाल, राष्ट्र-कूट और प्रतिहार तीनो कन्नौजपर दॉत लगाये थे। कन्नौजकी शक्ति ही बाहरी शत्रुओसे उत्तरी भारत—अतएव सारे भारत—की रक्षा कर सकती थी। सौभाग्य समझिए कि अरब-तलवार सिधकी धारमे पहुँचकर ठढी पड गई, नही तो आठवी सदीमे उत्तरी भारतकी राजनीतिक अवस्था उसके लिए बडी अनुकूल थी।

कन्नौज नगरी एक ऐसी स्वयवर-कन्या थी, जिसे राष्ट्रकूट, प्रतिहार और पाल तीनो व्याहना चाहते थे, लेकिन स्वयवर-कन्या सौत बनकर नही रहना चाहती थी। अब तीनो उम्मेदवारोको फैसला करना था—कौन अपना देश छोड कान्य-कुब्ज जानेके लिए तैयार है। प्रतिहार नागभट्टने फैसला किया, वह कन्नौजका स्वामी बन गया, बाकी दोनो मुँह ताकते रह गए। तबसे करीब-करीब महमूदके हमले तक कन्नौज उत्तरी भारत और सारे भारतके लिए जबर्दस्त ढाल बना रहा।

(२) राष्ट्रकूट—हर्षवर्धनको दक्षिणी भारतकी दिग्विजयसे खाली हाथ लौटानेके लिए मजबूर करनेवाले पुलकेशीके चालुक्य-वशको खतमकर राष्ट्र-कूटोने अपनी जबर्दस्त सत्ता उसी समय (७५३) स्थापित की, जब कि पूरबमें गोपाल पाल-वशकी नीव रख रहा था। ७५३ ई०से ९७३ ई०की प्राय दो सदियो तक राष्ट्रकूट-वशी वल्लभराज भारतके सबसे बलवान् राजा रहे। नर्मदासे कृष्णा और कभी-कभी काची तक उनका विशाल राज्य फैला हुआ था और सुदूर-दक्षिण रामेश्वर ही नही, कभी-कभी तो सिंहल भी उनकी आज्ञा-को मानता था। कितनी ही बार उनके घोडोकी टाप यमुना और गगाके द्वाबे (अतर्वेद)मे प्रतिध्वनित हुई थी। कितनी ही बार उनके सैनिक युक्त-प्रान्तके दुर्गोमे मालिक बनकर बैठते थे।

(३) पाल—गोपाल और धर्मपालका जिक्र अभी कर चुके है। धर्मपाल बगाल-विहारसे सतुष्ट न रह कन्नौज तक हाथ फैला रहा था, इसे हम बतला

चुके है। धर्मपाल असफल रहा। उसका पुत्र देवपाल (८१५-३४) भी उत्तर-का चक्रवर्ती बनना चाहा, मगर अन्तमे जयमाला नागभट्टके गलेमे पडी, यह बतला चुके है। नवी-दसवी सदीमे यही तीनो भारतकी प्रधान शक्तियाँ थी। देशमे और भी कितने ही राज-वश थे, लेकिन वह इन्ही तीनोमेसे किसी एकके आधीन रहते थे। गौड चक्रवर्त्ती-क्षेत्रने हमे ८४ सिद्धोके रूपमे पुरानी हिन्दी (अपभ्रश) के कवि दिए। पाल-वश बौद्धधर्मानुयायी था, इसलिए लोक-भाषासे उसे थोडा-बहुत अनुराग था और वहाँ सस्कृत देश-भाषाके साहित्यका गला घोटनेकी क्षमता नही रखती थी।

राष्ट्रकूट चक्रवर्त्ती-क्षेत्रने भी प्राकृतके कितने ही कवियो तथा स्वयभू और पुष्पदन्त जैसे हमारी भाषाके सर्व्वोच्च कवियोको यदि पैदा न किया हो, तो कमसे कम उन्हे आश्रय जरूर दिया। जैन होनेसे राष्ट्रकूट-राजा देश-भाषाके प्रति अधिक उदार विचार रखते थे।

कान्य-कुब्ज चक्रवर्त्ती-क्षेत्र यद्यपि वह क्षेत्र था, जिसके ही भीतर अपभ्रश-का अपना मूल-क्षेत्र था किन्तु वहाँ हम सदा (तुलसीबाबा तक) सस्कृतको ही सर्वेसर्वा रहते देखते है। शायद इसमे ब्राह्मणो और ब्राह्मण-धर्मकी प्रधानता कारण थी, वह नही चाहते थे कि सस्कृतसे दस-पाँच हाथ नीचे भी किसी दूसरी भाषाको स्थान मिले। बहुत सभव है, स्वयभू अवधी भाषा-क्षेत्रके थे और पुष्प-दन्त यौधेय (हरियाना, दिल्ली)-क्षेत्रके, इस प्रकार दोनो ही कान्यकुब्ज चक्र-वर्त्ती-क्षेत्रके थे, लेकिन उनकी पूछ अपने दरबारमे नही बल्कि दूर जाकर दक्षिणापथमे हुई। अपने दर्बारमे तो राजशेखर और श्रीहर्ष जैसे सस्कृतके महाकवियोकी ही एकमात्र पूछ थी।

नवी शताब्दीसे प्राय दो शताब्दियोके लिए राष्ट्रकूट और प्रतिहार दो जबर्दस्त शक्तियाँ तैयार हो गई है, जो पश्चिमी खतरेको रोकनेकी काफी क्षमता रखती थी। बल्कि राष्ट्रकूटोको इसमे कुछ अधिक सुभीता था। उनकी तीन तरफ समुद्रकी खाईं थी, डर था तो सिर्फ उत्तर-पश्चिममे गुजरातकी ओर से। अरबोने एकाध मर्त्तबे कोशिश भी की, लेकिन बीकानेरका रेगिस्तान और अरब समुद्र आसान रास्ते नही थे। ऊपरसे राष्ट्रकूटोंका सैनिक-बल बहुत मजबूत था।

प्रतिहारोपर उत्तरी भारतकी रक्षाका सबसे अधिक भार था। जब तक उन्होने इस कर्त्तव्यको पूरा किया, तव तक वह अचल रहे, लेकिन जैसे ही राज्यपाल (१०१८)ने महमूदके सामने सर भुकाया, वैसे ही प्रतिहार-वशका सितारा डूबने लगा, और उसके आधीनके चन्देल (कालिजर) कलचुरी (त्रिपुरी) तथा चौहान (साभर, अजमेर) स्वतत्र होने लगे। प्रतिहार फिर कुछ दिनो तक मुर्दा अगोरते रहे, क्योकि उनके प्रवल सामन्त आपसी झगडेके कारण कन्नौजके वारेमे कोई फैसला नही कर सकते थे। लेकिन, इस डॉवाडोल अवस्थामे कन्नौज सदाके लिए नही रह सकता था।

१०८० मे गहडवार चद्रदेवने कन्नौजपर हाथ साफ किया। यद्यपि गहडवार वशको गगा-यमुनाके बीचका वहुत ही गुजान और उर्वर प्रदेश मिला और इस प्रकार वह औरोकी अपेक्षा अधिक बलवान रहा, तो भी उसे प्रतिहार-वश जैसा वल नही प्राप्त हो सका। चौहान, चदेल, और कलचुरी अपने वलको कन्नौजसे मिलाकर वाहरी शक्तिसे मुकावला करनेके लिए तैयार नही थे। तो भी चद्र देवके पौत्र गोविन्दचद्रके (१०९३-११३४) समय गहडवार-वश उत्तरी भारतका सवसे अधिक वलशाली राज्य था। गोविन्दचद्रके पौत्र जयचद्र (११७०-९३) के वक्त गहडवार शक्ति निर्वल हो चुकी थी। उस वक्त चदेल परमर्दी (११६७-१२०२) काफी शक्तिशाली था। लेकिन कलचुरी, चौहान या चदेलो-की कितनी भी प्रवल शक्ति हो, उनमे किसीके लिए सभव नही था, कि प्रतिहारो-के चक्रवर्त्ती-क्षेत्र को फिरसे जीवित करके वाहरी आक्रमणको रोके।

दसवी सदीका अत होते-होते उत्तरी भारतमे पालो, गहडवारो, चालुक्यो, चदेलो और चौहानोके अतिरिक्त गुजरात और मालवाके दो और स्वतत्र राज्य वन चुके थे। गुर्जर-सोलकी (चालुक्य) तो वहुत कुछ कन्नौजके पतनसे अस्तित्व-मे आये। मालवाके परमार राष्ट्रकूटोके विनाश (९७४)के फल-स्वरूप स्वतत्र हो गये। ग्यारहवी-बारहवी सदीमे अव उत्तरी भारतकी शक्ति अधिक छिन्न-भिन्न हो चुकी थी, वहॉ सात स्वतत्र दर्वार थे। कोई एक वडी शक्तिके आधीन रहकर काम करनेके लिए तैयार नही था।

देशभाषाकी दृष्टिसे देखनेसे पाल अव भी सिद्ध-कवियोका सम्मान करते

थे। गहडवार-दर्वारमे भी अवश्य कुछ लोक-साहित्यका मान था, जैसा कि काशी-श्वर-सबधी कविताओ तथा स्वय जयचन्दके महामत्री विद्याधरकी स्फुट कविताओं-से मालूम होता है। कलचुरी कर्णके दर्वारमे भी बब्बर और दूसरे कितने ही कवियो-का सम्मान होता दिखलाई पडता है। कालिजरका चन्देल-दर्वार शायद इस बारे-मे सबसे पिछडा हुआ था। कनकामर मुनि, सभव है, इन्हीके बुन्देलखण्डके हो, मगर उनकी कविताओको आश्रय देने का श्रेय चन्देल दर्वारको नही मिल सकता।

मुज (९७४-७५) और भोज (१०१०-५६) चचा-भतीजे सस्कृत-प्राकृत-के साथ देशी-भाषाके भी प्रेमी थे और उनकी धाराने अवश्य कितने ही अपभ्रश कवियोका स्वागत किया होगा, यद्यपि हमारे पास तक उनकी कृतियाँ बहुत थोडी पहुँची हैं। चौहान-दर्वारका कवि सिर्फ चन्द बरदाई हमारे सम्मुख है। यद्यपि उसकी रचना "पृथ्वीराज रासो"की जो प्रति आज उपलब्ध है, वह बहुत विकृत तथा मूलसे चार सदियो बाद की है। हमने उसके कुछ नमूने यहाँ सिर्फ इसी ख्यालसे दिये हैं, कि चन्दकी कविताका कुछ अश इसमे मौजूद है। उसकी भाषामे खूब मनमानीकी गई है, इसमे सदेह नही।

गुर्जर-चालुक्य-क्षेत्र (९६१-१२५७) यही नही कि दिल्ली-कन्नौजके काफी पीछे तक स्वतत्र रहा, बल्कि इसने अपभ्रश कवियोको सबसे अधिक पैदा किया। पैदा करनेसे भी ज्यादा उसने जो बडा काम किया, वह है अपभ्रश-कृतियोका रक्षा करना। शायद दर्वारके जैन होने तथा जैन नागरिकोके भाषा-प्रेमके कारण ऐसा हो सका।

हमारे इस साहित्यिक युगकी राजनीतिक पृष्ठभूमिकी ओर व्यापक दृष्टिसे देखनेपर मालूम होगा, कि पहले शतक अर्थात सातवी-आठवी सदीमे बाहरी शत्रु अभी उतने प्रबल न थे। नवी-दसवी सदीमे हमारा राजनीतिक-सगठन इतना विस्तृत और मजबूत था कि कोई उसका मुकाबला करके सफलताकी आशा नही कर सकता था। ग्यारहवी-बारहवी शताब्दीमे शक्ति आधे दर्जन टुकडोमे बँट गई। और यह था विदेशी आक्रमणकारियोको न्यौता देना।

तत्कालीन कविताओमे हमे तीन बातोकी छाप मिलती है—रहस्यवाद या आध्यात्मिक भूल-भुलैया, निराशावाद और युद्धवाद या वीररस। ये तीनो ही

काव्य-भावनाएँ उस वक्तके शासक-समाजकी आवश्यकताके लिए बिल्कुल उपयुक्त थी। उस वक्तके सामन्त बच्चेको तलवारका चरणामृत दिखलावटी नही पिलाया जाता था, बल्कि दरअसल उसे बचपनसे ही मरने-मारनेकी शिक्षा दी जाती थी। मौतसे खेल करनेके लिए वह हर वक्त तैयार रहता था। अठारहवी-उन्नीसवी सदियोके कवियोने भी अपने आश्रय-दाताओकी बडी-बडी वीरताओका वर्णन किया, लेकिन वह अधिकाश थोथी चापलूसी है, यह हमे मालूम है। हमारी इन पॉच सदियोमे सामन्त वस्तुत निर्भय वीर होते थे। उनके देश-विजयोके बारेमे कवि अतिशयोक्ति भले ही कर सकता है, लेकिन शरीरपर तीरो और तलवारोके घावोके चिह्नोके बारेमे अतिरजनकी जरूरत नही थी। ऐसे समाजके लिए वीर-रसकी कविताएँ बिल्कुल स्वाभाविक है।

युद्ध एक पासा है, जो कभी चित्त भी पड सकता है, कभी पट भी। असफल सामन्तके लिए निराशा आवश्यक है, लेकिन निराशा हर वक्त आदमीके दिलको जलाया करती है, इसलिए सब कुछ भूल जानेके लिए आध्यात्मिक भूल-भुलैया या रहस्यवाद भी उतना ही आवश्यक है। प्रभु-वर्गको छोड बाकी अस्सी फीसदी जनताके लिए तो निराशावाद बिल्कुल स्वाभाविक है। आध्यात्मिक भूल-भुलैयासे फायदा उठानेवाले साधारण जनतामे शायद ही कोई थे। हॉ, सिद्धोने सरल जन-भाषामे अपनी कविताये लिखकर उनके भीतर घुसनेकी कोशिश की। सिद्धोके बारेमे यहॉ एक बात स्मरण रखनेकी है—उनकी कवितामे रहस्यवाद है मगर निराशावाद उससे छू नही गया है। वह कायाको मल-मूत्र-पूर्ण गन्दी चीज नही बल्कि तीर्थकी तरह पवित्र मानते है, सब तरहके सासारिक भोगोको छोडने नही ग्रहण करनेकी शिक्षा देते है। शायद इसमे उनका क्षणिकवादी दर्शन कारण रहा हो। ससारकी सभी वस्तुएँ क्षण-क्षण बदलती रहती है, उनमे सयोग-वियोग होता रहता है, लेकिन जगत्की सारभूत यह क्षणिकता बुरी नही है, इसीसे जगत्का वैचित्र्य, जगत्का सौन्दर्य्य कायम है। अतएव क्षणिक होनेसे जगत् उपेक्षणीय नही है।

ग्यारहवी-बारहवी सदीमे महमूद गजनवीके सोमनाथ और बनारस तकके आक्रमणोके बाद भी उत्तरी भारत कई राज्योमे बॅटा ही रहा। सातो दर्बार आपसमे लडते ही रहते, फिर वहॉ आशावाद कहॉ सभव था? अभी सामन्ती

वीरता मौजूद थी, तलवार झनझनाती रहती थी, लेकिन अपनी विखरी ताकत देखकर निराशावाद उन्हे अपनी ओर खीच रहा था।

(४) **इस्लाम भारतका अभिन्न अग**—हम पहिले कह चुके है, कि जिस वक्त हिन्दीके आदि कवि सरहपा अपनी कविताएँ रच रहे थे, उससे आधी शताब्दी पहिले ही (७१२-१३) सिंध और मुल्तान हिन्दुओके हाथसे चले गए। तवसे दसवी सदी तक इस्लामिक राज्य वहुत आगे नही वढ पाया। अभी कावुलपुर भी हिन्दू ही शासन कर रहे थे। लेकिन ग्यारहवीके शुरू हीमे कावुल ही नही लाहौर भी हिन्दुओके हाथसे निकल गया। मुस्लिम-राज्य-स्थापना भारतके इतिहासमे एक वहुत भारी घटना थी। अभी तक जितने भी विदेशी आक्रमणकारी भारतमे आए थे, वह भारतीय संस्कृतिको स्वीकार कर—हाँ उसमे कुछ अपनी ओरसे दे करके भी—हजारो जात-पातोमे विखरे भारतीय जन-समुद्रमें मिलते गये। लेकिन अव जिस सस्कृति और धर्मसे वास्ता पडा, वह काफी सवल था। उसे हजम करनेकी ताकत व्राह्मणोके जीर्ण-शीर्ण ढाँचेमे नही थी। हमारे युगसे आगे हिन्दी-कविताका सूफी-युग (चौदहवी-पन्द्रहवी सदी) इस वातका साफ सवूत है, कि मुसलमान सूफियोने हिन्दी-साहित्य और उसकी जनतापर काफी प्रभाव डाला, लेकिन इस्लामने भारतपर अधिकार करके सिर्फ आध्यात्मिक भूल-भुलैयाके कुछ पाठ ही नही पढाये, वल्कि कुछ सामाजिक गुत्थियोको भी हल किया।

'सदेश-रासक'के रचयिता कवि अब्दुर्रहमान (१०१० ई०)का जुलाहा-वंश दसवी सदीके अतसे पहिले ही मुसलमान हो चुका था। इस्लाम जव भारतके दूसरे प्रदेशोमे फैला, तो वहाँपर भी हम प्रमुख शिल्पी जातियोको वडी खुशीसे इस्लाम स्वीकार करते देखते है। कपडे वनानेवाले कारीगर सिन्धसे ब्रह्मपुत्र तक जो इस्लाममे दाखिल हो गये, उनकी सख्या भारतीय मुसलमानोमे आज यदि दो-तिहाई नही तो आधीसे ज्यादा जरूर है। यह कोई आकस्मिक घटना नही थी। हम जानते है, कपड़ेका व्यवसाय रोमनकालसे अग्रेजी राज्यके स्थापित हो जाने तककी वीस सदियोमे हमारे देशका वहुत ही महत्त्वपूर्ण व्यवसाय रहा, वह देशकी आमदनीका एक वहुत जवर्दस्त जरिया था। फिर कपडे वनाने-

वाले कारीगर हिन्दू-धर्मसे इतने रूठ क्यो गये ? उनकी कारीगरीकी बडी माँग थी, वह दास नही थे, पैसेके लिए बाजारमे बिकनेकी उन्हे जरूरत न थी, अब्दुर्रहमानकी सुदर कवितासे पता लगेगा, कि वह निरे निरक्षर गँवार भी नही थे। जो कारीगर सूक्ष्म मलमल, उसके ऊपर बेल-बूटे, बनारसी किम्खाब और उसपरकी अद्भुत चित्रकारी करनेमे सिद्धहस्त हो, वह शिक्षा-सस्कृतिसे बिल्कुल शून्य हो ही नही सकते। लेकिन हिन्दुओकी जाति-प्रथा जिसे बौद्ध और जैन भी व्यवहार रूपमे स्वीकार कर चुके थे—इन शिल्पी-जातियोको शूद्र बनाकर उनपर सामाजिक अत्याचार करनेके लिए ऊपरी जातियोको अधिकार देती थी। कोई आश्चर्य नही यदि आत्म-सम्मान रखनेवाले पटकार इस्लाम स्वीकार करनेमे अपनी अर्धदासताका अन्त समझने लगे, और वह एक-एक करके नही बल्कि श्रेणी (Guild)-रूपेण इस्लामके झण्डेके नीचे चले गये। अरब तथा बाहरसे आनेवाली दूसरी मुसलमान जातियाँ अभी हिन्दुओकी जाति-प्रथासे प्रभावित नही हुई थी। इसलिए उस समय सहस्राब्दियोसे पीडित इन हिन्दू-जातियोको हिंदुत्व छोड इस्लाममे जाते ही दमघोटू अन्धेरी कोठरीसे खुले प्रकाश, खुली हवामे साँस लेते जैसा मालूम होता था। हिन्दू यह बात नही कर सकते थे। इस्लामने आरभिक शताब्दियोमे इस कामको बडी तत्परतासे किया, लेकिन जैसे-जैसे बडी जातियोके हिन्दू इस्लाममे दाखिल होने लगे, वैसे ही वैसे इस्लामकी वह क्रान्तिकारी भावना नष्ट होती गई और वहाँ भी ऊँच-नीचका बीज बोया जाने लगा।

बारहवी सदीके अतमे दिल्ली और कन्नौज भी इस्लामी झण्डेके नीचे चले गये थे। अब हिन्दू सामन्त एक-एक करके आत्म-समर्पण करनेके लिए कालकी प्रतीक्षा कर रहे थे। महमूद और कितने ही दूसरे मुस्लिम विजेताओने हिन्दुओके मन्दिरोपर भी प्रहार किया, लेकिन जैसा कि हम कह आये है वह इतनी मेहनत सिर्फ पत्थरोके तोडनेके लिए नही किया करते थे। वह जाते थे, महन्तो और पुजारियो द्वारा वहाँ जमा की हुई अपार मायाको लूटने। इससे यह लाभ जरूर हुआ कि मदिरो और देवताओकी हजारो बरससे स्थापित महिमा बहुत घट गई। कोई ताज्जुब नही, यदि दिल्ली-विजयके बाद तीन सदियो तक हिन्दू सन्त भी

मूर्त्तियो और देवताओके पीछे लट्ठ लेकर पड गये और चारो ओर निर्गुणवादकी दुदभी बजने लगी। इस ध्वस लीलाने कुछ फायदेका भी काम किया और पुरोहितो-महन्तोके प्रभावको कुछ हल्का किया, यद्यपि वह उतना नही कर सकी, जितना कि ईरान और अफगानिस्तानमे, शायद यदि सारा हिन्दुस्तान इस्लामके अन्दर चला गया होता, तो यहाँकी सैकडो समस्याये खतम हो गई होती। मुमकिन है उस वक्त हमारे साहित्य-कलाको और भी क्षति हुई होती और एक बार ईरानकी तरह मुसलमान बने भारतके जातीयता-प्रेमियोको भी झुझलाना पडता।

सिद्ध-युगकी अन्तिम—बारहवी-तेरहवी—सदीमे उत्तरी भारतकी राजनीतिक अवस्था अधिक डॉवाडोल थी। यद्यपि मालवा और गुजरात अपनी स्वतत्रताको बचाए हुए थे, मगर वह भी भविष्यके लिए निश्चिन्त नही थे। ऐसे कालमे भी महाकवियोका होना असभव नही है, लेकिन यदि महाकवि अपने पैरोको धरतीपर रखते तब न। आसमानी नायिका बनाते वक्त उनका स्वप्न बीच-बीचमे पृथ्वीकी विकलताके कारण भग्न हो जाता, इसलिए उनका सृजन भी पूर्ण नही भग्न ही हो सकता है। इस कालमे हमे लक्खण तथा दूसरे ऐसे ही छोटे-छोटे कवि मिलते है। मुसलमान शरणागतकी रक्षाके लिए रणथम्भोरके राणा हम्मीरने हिन्दू-मुसलमान धर्मका ख्याल न करके जिस तरह अपने सर्वस्वकी बाजी लगाई, उसने कुछ महाकवियोको जरूर प्रेरणा दी; बाकी कवि बस छोटे-छोटे सामन्तो और सेठोकी प्रशसाके पुल बॉधनेमे ही अपनी सारी शक्ति खर्च करते रहे।

४. धार्मिक अवस्था

पहिलेके वर्णनमे जहाँ-तहाँ धर्मके बारेमे भी हम कुछ कह आये है, लेकिन वहाँ हमने उनका सिर्फ सामान्यरूपेण जिक्र किया। हमारे इस युगके कवियोमे बौद्ध, जैन, हिन्दू और मुसल्मान चारो धर्मके माननेवाले है, इसलिए यहाँ उनके बारेमे कुछ और कहनेकी अवश्यकता है।

मानव-समाजके विकासमे धर्म बहुत पीछे आया है, इसे हम दूसरे स्थानपर

बतला आये है। जिस वक्त मनुष्यमे धनी-गरीबका भेद नही हुआ था, क्योकि अभी उसके पास धन-उत्पादन और लडनेके हथियार बहुत दुर्बल—पत्थर, सीग, लकडीके थे, उस वक्त इन धर्मोकी आवश्यकता नही थी। ब्राह्मणो, बौद्धो तथा जैनोकी देव-माला अपने पुराने रूपमे राजसत्ता नही पितृसत्ताका अनुकरण करती है। वेदोके पुराने देवताओमे किसी एक सर्वशक्तिमान् परमेश्वरका पता नही लगता, लेकिन जैसे ही दुनियाँमे "सर्वशक्तिमान् परमेश्वर" पैदा हुए, वैसे ही सर्वशक्तिमान् ईश्वर भी आ धमका। गुप्तोके निरकुश राजतत्रने सर्वशक्तिमान् ईश्वर—विष्णु—के महत्त्वको बहुत बढाया। यद्यपि बौद्ध और जैन सृष्टिकर्त्ता सर्वशक्तिमान् ईश्वरको नही मानते थे। तो भी वह स्थापित समाज-व्यवस्थाके लिए खतरनाक नही थे। प्रवाहण जैवलिके समाज-पोषक सामन्त-समर्थक पुनर्जन्मके सिद्धान्तको स्वीकारकर उन्होने पहिले ही अपने कार्य-क्षेत्रको सीमित कर लिया था। और अब तो वह ब्राह्मणोके जाति-पाँति, ज्योतिष, सामुद्रिक सबको मानने लगे थे। जिस वक्त ईसाके पहिलेकी दो-तीन सदियोमे यवन, शक, आभीर, गुर्जर आदि जातियाँ बाहरसे हिन्दुस्तानमे घुस रही थी, उस वक्त बौद्धोका ही पलडा भारी था, क्योकि उन्हीने इन जातियोको समाजमे समानताका स्थान देकर स्वागत किया था। ब्राह्मण इस बलाको बूझ नही पाये, वह अभी सबको "म्लेच्छ" "म्लेच्छ" कह तिरस्कार करते थे, लेकिन जब देखा कि ये आगतुक म्लेच्छ धर्ममे श्रद्धालु बनकर मिनान्दर और कनिष्ककी तरह मठो और मन्दिरोको सोनेसे पाट देते है, तो वह भी सोचनेके लिए मजबूर हुए। यद्यपि वह देरसे होशमे आये, मगर उनका हथियार सबसे जबर्दस्त निकला। बौद्ध आगतुक जातियोको सम्मानपूर्ण किन्तु समान स्थान देते थे। ब्राह्मणोने सम्मानपूर्ण ही नही बल्कि बहुत ऊँचा स्थान—सिर्फ अपनेसे एक सीढी नीचे—दिया, पीछे उन्हे आबूके अग्निकुण्डसे निकली क्षत्रिय-जातियाँ कहा गया। आबूके अग्नि-कुण्ड और उससे आदमियोकी बात भले ही बिलकुल झूठी है, मगर ब्राह्मणोने आगन्तुक म्लेच्छ-जातियोको क्षत्रिय बनाया, इसमे कोई सन्देह नही। और इस प्रकार सामन्ती भारतने चिरकालके लिए ब्राह्मणोके प्रभावको स्वीकार किया।

(१) **बौद्ध धर्म**—ईसाकी पहिली तीन-चार शताब्दियोमे जब ये आगतुक

क्षत्रिय बनाए जा रहे थे, उसी वक्त बौद्ध धर्म निहत्था कर दिया गया। बौद्ध अब भारतकी किसी सामाजिक समस्याका अपने पास कोई हल नही रखते थे, अब उन्हे अपनी पुरानी कमाईको बैठकर खाना था। सामन्त पूरी तौरसे ब्राह्मणोके हाथमे प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूपसे चले गये थे। बौद्ध कभी-कभी दिङ्नाग और धर्मकीर्त्तिके प्रौढ-दर्शनको सामने रखकर लोगोकी आँखोमे चकाचौध पैदा करना चाहते थे, कभी योग-समाधि, ततर-मतर डाकिनी-साकिनीके चमत्कारसे लोगोको अपनी ओर खींचना चाहते थे और कभी सिद्धोके विचित्र जीवन और लोक-भाषाकी कविताओको भी इस कामके लिए इस्तेमाल करते थे, मगर यह सब हवामे तीर चलाना था। अब भी बहुसख्यक जनताकी कितनी ही समस्याये सामने थी, लेकिन बौद्धोके मस्तिष्क और हथियार कुठित हो चुके थे। उन्होंने चलते-चलाते हमारी भाषाकी कितनी ही सेवा जरूर की। अफसोस है कि उनकी कविताओका बहुत कम अश हमारे पास बच रहा। उनकी सैकडो छोटी-छोटी धार्मिक पुस्तके ग्यारहवी-बारहवी सदीमे किये तिब्बती भाषाके अनुवादोमे मौजूद है, मगर उससे भी अधिक सख्या उन पुस्तकोकी रही होगी, जो शुद्ध सासारिक दृष्टिसे लिखी गई थी, अतएव वह भारतसे बाहर नही ले जाई गई, और बौद्ध धर्मके साथ वह यही नष्ट हो गई।

बौद्ध धर्म चलाचली पर था, उसकी भीतरी कितनी ही कमजोरियाँ उसके हितचिन्तकोंको मालूम होने लगी थीं, तो भी सबसे बडी कमजोरी—सामाजिक समस्यासे हाथ खीच लेना—की ओर उनका ध्यान नही गया। दूसरे धार्मिक पथोकी तरह बौद्ध धर्ममे भी ब्रह्मचर्य और भिक्षु-जीवनपर बहुत जोर दिया गया था, लेकिन बारह शताब्दियोके तजुर्बेने बतला दिया कि वह ढोगके सिवाय और कुछ नही है। आदमी आहारकी तरह काम-भोगमे भी दूसरे पशुओसे बहुत भिन्नता नही रखता। मठोके अप्राकृतिक-जीवनमे जो बहुत-सी बुराइयाँ बहुत भारी परिमाणमे घुस आयी थी, उन्हे देखकर कुछ विचारकोने सोचा, हमे इस ढोगको हटाना चाहिए और मनुष्यको सहज-स्वाभाविक जीवनपर लाना चाहिए। इन बातोको वह खुलकर नही कह सकते थे, क्योकि खुलकर कहनेपर पन्थ और भक्त ही नही सारे बाहरी समाजका विरोध इतना

जबर्दस्त होता, कि उन्हे अपना अस्तित्व भी कायम रखना मुश्किल हो जाता। उन्होने छिप करके एक सीमित क्षेत्रमे अपने विचारोका प्रचार करना शुरू किया। मुक्त यौन-सबधके पोषक चक्र-सवर आदि देवता, उनके मत्र और पूजा-प्रकार तैयार किये। गुह्य-समाज एकत्रित होने लगे, जहाँ स्त्री-पुरुषोको मद्य-मैथुनकी पूरी स्वतत्रता दी गयी। लेकिन जल्दी ही यह सब काम सहज, स्वाभाविक नही अस्वाभाविक रूपमे होने लगा। सरहपाके वचनोसे जान पडता है, कि वह भोग-स्वातत्र्यको अस्वाभाविकता या अतिमे नही ले जाना चाहता था। वह इस बातका समर्थक था, कि सहज मानवकी जो सहज आवश्यकताएँ है, उन्हे सहज रूपसे पूरा होने देना चाहिए। उसने मतर-ततर, देवी-देवतापर भी ठोकर लगाए है। मगर जान पडता है, भीतरी-बाहरी विरोध बहुत जबर्दस्त था, सहज-मार्गसे पाखड-मार्ग पकडना अधिक आसान था, इसलिए सरहपाका सहज-यान, तन्तर-मन्तर, भूत-प्रेत, देवी-देवता-सबधी हजारो मिथ्या-विश्वासो और ढोगोके पैदा करने-का कारण बना। ये सारे मिथ्या-विश्वास, सारी दिव्य-शक्तियाँ महमूद और मुहम्मदबिन-बख्तियारके सामने थोथी निकली और तारा, कुरुकुल्ला, लोकेश्वर और मजुश्रीके मन्दिरो और मठोमे हजार-हजार बरसकी जमा हुई अपार सपत्ति अपने मालिको और पुजारियोके साथ ध्वस्त हो गयी। बौद्ध भिक्षुओके रहनेके लिए जब न कोई विहार रहा, न उनके सरक्षक और पोषक सेठ-सामन्त पहिली अवस्थामे रहे, न साधारण जनताका विश्वास पूर्ववत् रहा, तो उन्हे भारतमे दिन काटना मुश्किल होने लगा। पश्चिमकी धरती तो उनके हाथसे पहिले ही निकल चुकी थी, लेकिन उत्तर (तिब्बत), पूरब (बर्मा, चीन) और दक्खिन (सिहल)मे अब भी उनके स्वागत करनेवाले मौजूद थे। इस प्रकार बचे-खुचे बौद्ध भिक्षु—बौद्ध गृहस्थोके अगुआ—बाहर चले गये। भिक्षुओके अभावमे गृहस्थ बौद्ध धर्मको भूलने लगे, और जिसकी जिधर सीग समाई, उधर चले गए। इस प्रकार नालन्दा, विक्रमशिलाके ध्वंसके बाद पाँच ही छ पीढियोमे बौद्ध-धर्म नाम-शेष रह गया।

(२) **जैन धर्म**—सामन्तोपर जैन धर्मका पुराने समयमे क्या प्रभाव पडा था, इसके समर्थनके लिए काफी प्रमाण नही मिलते। राष्ट्रकूट (७५३-९७)

और गुर्जर-सोलकी (६६१-१२५७) राजाओका जैन धर्मपर वहुत अनुराग था, लेकिन लडाकू सामन्तोके इस अनुरागमे पहिला ही कदम तो यह था, कि वेचारी अहिसा ताक पर रख दी गई। जैन गृहस्थ ही नही जैन मुनि (हेमचन्द्र) भी तलवारकी महिमा गाने लगे भला दिग्विजयोके जमानेमे अहिसाको कैसे लेकर चला जा सकता था। बौद्ध धर्मकी तरह जैन धर्म भी जाति-पॉति विरोधी था, लेकिन हमारे युगमे वह भी जाति-पॉतिको वैसे ही मानने लगा था, जैसे ब्राह्मण। इतना ही नही हमारे एक जैन कवि मुनिने तो जैन गृहस्थोको उपदेश दिया है, कि वह अपनी लडकीको अजैन घरमे न दे। भीतर भिन्न-भिन्न मतोके रखनेपर भी जो अब तक शादी-व्याह हो सकता था, उसे भी वन्द कर दिया गया, चलो छुट्टी मिली। जैन धर्ममे सृष्टिकर्त्ता ईश्वर नही माना जाता, लेकिन अब तो स्वय महावीरके नामके साथ परमेश्वर लगाया जाने लगा। जैन गृहस्थ और दूसरे लोगोके लिए पारस-मणि परमेश्वर-शब्द मिल गया। परमेश्वरसे मिन्नत भी मानी जाने लगी। परमेश्वर-शब्द काफी था, साधारण लोग उसीमे सृष्टिकर्त्ता-विधाता सब समझ लेते थे, आगे वालकी खाल खीचनेकी उन्हे जरूरत नही थी।

सामन्तोने जैन धर्मको अपनाकर भी कितना निवाहा, यह आपने देख लिया। हॉ, व्यापार करनेवाली जातियॉ ज्यादा कट्टर वनी और आज भी जैनोमे अधिकाश वैश्य ही मिलते है। उन्होने अहिसाको जरूर कुछ ज्यादा गभीरताके साथ स्वीकार किया। पश्चिममे भी वनिया-वर्ग जीव-दयाकी ओर वहुत खिचता है, यद्यपि उसकी दया है—

"जाननहारा जानिया, वनिया तेरी वान।
विनु छाने लोहू पिवै, पानी पीवै छान॥"

इसे जैन धर्मकी सफलता कह लीजिए। मगर इस सफलताने हानि कितनी पहुँचाई? पोरवाल, ओसवाल, अग्रवाल, श्रीमाल, आदि जातियॉ मूलत यौधेय-आर्जुनायन आदि गणोकी वह वीर-क्षत्रिय जातियॉ थी जिन्होने किसी समय यवनो, शको, गुप्तोके दॉत खट्टे किये और भारतमे जनतत्रताके प्रदीपको शताब्दियो तक जलाये रखा। अब सिहोके नख-दॉत तोड दिये गए और वे

बकरी बनकर सूद खाने और तराजू तोलनेमे लग गये; उन्हे तीर-तलवारकी जरूरत नही रह गई। सवाल हो सकता है, क्षत्रियसे वैश्य होने—ब्राह्मणी व्यवस्थाके अनुसार एक सीढी नीचे गिरने—के लिए ये क्षत्रिय तैयार कैसे हो गए ? हम इसके बारेमे इतना ही कह सकते हैं "व्यापारे वसति लक्ष्मी", अथवा कुछ पीढियो[1] तक अपनी स्वतत्रताके लिए तलवार चलाकर देख लिया, कि राज-तत्रके इतने बडे सैनिक-सगठनके सामने उनका तलवार हिलाना फजूल है। अब वह क्षत्रियकी जगह नगर-सेठ बने। व्यापार खूब चमका। करोडो रुपये लगाकर देलवाडा जैसे अनगिनत मदिर बने, परम-त्यागियों—पात्र और वस्त्र तक भी न रखनेवाले यतियो—का जैन धर्म सोने-हीरेकी राशिसे जगमग-जगमग करने लगा। लेकिन, इस नये सभ्य जैन समाजमे बेचारे निर्ग्रन्थो—नग्न साधुओ-की आफत आयी। सम्भ्रान्त परिवारोके पुत्र मुनि बन नगे-मादरजाद रहनेसे हिचकिचाने लगे और गृहस्थ भी अपने मुनियोको इस रूपमे देखनेसे सकोच करने लगे। अब वस्त्रधारी श्वेतावरोका पलडा भारी हो चला, लेकिन वस्त्र ही तक भले घरोके लडके सन्तोष कैसे कर सकते थे ? सवाल उठ खडा हुआ, चैत्य-वासी (बस्तीसे बाहर मठोमे रहनेवाले) और बस्ती-वासीका। लेकिन कुछ ही समय बाद यह भी सवाल व्यर्थ हो गया, और जैन मुनि बस्ती-वास ही नही दरबार-वास तक करने लगे।

इस युगमे तत्र-मत्र और भैरवी-चक्र या गुप्त यौन-स्वातत्र्यका बहुत जोर था। बौद्ध और ब्राह्मण दोनो ही इसमे होड लगाए हुए थे। भूत-प्रेत, जादू-मन्तर और देवी-देवता-वादमे जैन भी किसीके पीछे नही थे, रहा सवाल वाम-मार्गका, शायद उसका उतना जोर नही हुआ, लेकिन वह बिल्कुल नही था, यह भी नही कहा जा सकता। आखिर चक्रेश्वरी देवी वहाँ भी विराजमान हुई, और हमारे मुनि कवि भी निर्वाण-कामिनीके आलिगनका खूब गीत गाने लगे,

---

[1] जोहिवार (भावलपुर)के जोहियो तथा मेवोने मुस्लिम काल तक अपनी तलवार नही छोड़ी।

जिससे उसी दिशाका सूक्ष्म सकेत मिलता है ।

जैनोने अपभ्रश-साहित्यकी रचना और उसकी सुरक्षामे सबसे अधिक काम किया । वह ब्राह्मणोकी तरह सस्कृतके अधभक्त भी नही थे, क्योकि वशिष्ठ, विश्वामित्रकी भाँति उनके मुनियोने सस्कृतमे ही नही प्राकृतमे अपने मूलग्रथ लिखे थे । व्यापारी होंनेसे वही-खाता तथा मातृभाषा लिखने-पढनेका ज्ञान होना उनके लिए बहुत जरूरी था । ब्राह्मंणोकी समाज-व्यवस्थाके साथ वह बँधे हुए थे । ब्राह्मणोंके महाभारत, पुराण और कथा-वार्त्ताका हर तरफसे प्रभाव पडना जरूरी था, क्योकि वह समुद्रमे बूँदकी तरह थे । इस प्रकार जैन धार्मिक नेताओ-के लिए यह जरूरी हो पडा, कि अपने भक्तोको ब्राह्मणोका ग्रास बननेसे बचाने-के लिए अपने स्वतत्र कथा-पुराण तैयार करे । व्यापारीसे यह आशा नही रक्खी जा सकती कि वह धर्म जाननेके लिए कठिन-कठिन भाषाएँ सीखता फिरेगा । अतएव जैनोने देश-भाषामे कथा-साहित्यकी सृष्टि की, जिसके कारण स्वयभू और पुष्पदन्त जैसे अनमोल अद्वितीय कविरत्न हमे मिले । उस साहित्यकी रक्षाके लिए हम और हमारी अगली पीढियाँ उन जैन नर-नारियोकी हमेशा कृतज्ञ रहेगी, जिन्होने इन अमूल्य निधियोको नष्ट होनेसे बचाया । याद रखिये, इन अमूल्य निधियोमे सिर्फ जैनोके ही ग्रन्थ नही बल्कि अब्दुर्रहमानके "सदेश रासक" जैसे ग्रन्थ भी है ।

(३) **ब्राह्मण**—हम कह चुके है कि ईसवी सनके शुरु होनेके बाद ही ब्राह्मणो-का पलडा भारी हो गया । हाँ, उन्होने सिर्फ सामन्त-वर्गकी म्लेच्छ और आर्यकी युद्धाग्निकी भीतरी समस्याको ही अग्नि-कुण्डवाले क्षत्रिय बनाकर हल किया था। लेकिन समाजके हर्त्ता-कर्त्ता तो आखिर सामन्त थे । उन्हे जो कुछ मिलना-जुलना था, वह इन्ही सामन्तोसे । बाकी भेडोको भरमाना उनका काम था, जिसमे कि ब्राह्मणोके सिरजे ईश्वरकी निरकुशताकी तरह राजाओकी निर-कुशताके खिलाफ भेडे कोई तूफान न खडा करे। सामन्त (राजा)-समाज और ब्राह्मणो—मेरा मतलब धार्मिक नेताओ और पुरोहितोसे है—का हमेशा चोली-दामनका साथ रहा है। ब्राह्मणोपर सामन्त जितना विश्वास कर सकता था, उतना वह अपनी जातिके व्यक्तिपर भी नही कर सकता था। किसी

सामत-वशी (क्षत्रिय)को राजके प्रधान-मत्री जैसे वडे पदको देकर कोई राजा अपने सिहासनको खतरेमे डाल कैसे सकता था ? विम्बसार (५०० ई० पू०)के ब्राह्मण प्रधान-मत्री वर्षकारसे लेकर सदा ही हिन्दू-राजाओके प्रधान-मत्री ब्राह्मण होते रहे। पुष्पमित्र और पेशवा जैसे दो-एक ही अपवाद है, जब कि ब्राह्मणोने नमक-हरामी की हो। वह कभी सिहासनपर बैठनेकी कामना नही करते थे, इसलिए प्रधान-मत्रीका पद यदि ब्राह्मणोके लिए सदा सुरक्षित रहता हो, तो इसमे आश्चर्यकी क्या वात है।

और ब्राह्मण घाटेमे भी नही थे। शुकनासका ऐश्वर्य तारापीडसे कम न था। प्रधान-मत्रीके महलकी सजावट और अन्त पुरकी रौनक राजाओके हरमसे कम न थी। ब्राह्मणोने जो भारतीय जनतत्रताके हल्केसे हल्के चिह्नको भी न रहने देनेकी हर तरहसे कोशिश की, उसके लिए उनका स्वार्थ मजबूर करता था। प्रधान-मत्री और मत्री ही नही दूसरे ब्राह्मणोके लिए भी सामन्त हर तरहसे पूरी भोग-साधना जुटाते थे। चन्द्रदेवने १०९३ ई०मे हाथमे कुश लेकर एक ही बार कटेहली (बनारस)के सारे परगने (पत्तला)को ब्राह्मणोको दान दे दिया, ११०० ई०मे फिर उसने वृहदऋहवरथ पत्तलाको दान किया। राष्ट्रकूट, पाल तथा दूसरे राजवश भी ब्राह्मणोके प्रति ऐसी ही उदारता दिखाते रहे। विश्वामित्र-वशिष्ठ-भरद्वाजके समयमे भी ब्राह्मणोका जीवन भोग-शून्य नही था, फिर हमारे इस कालके वारेमे पूँछना ही क्या ? ब्राह्मणोके मदिरोपर किस तरह मुक्त-हस्त हो धन खर्च किया जाता था, इसे देखना हो, तो एलौराके कैलाशको देख लीजिए—एक अद्भुत, विशाल शिवालय पहाड काटकर निकाल लिया गया है।

हम कह चुके है, कि वाम-मार्गमे ब्राह्मण भी वौद्धोके साथ कन्धेसे कन्धा मिलाकर खडे थे। मन्तर-तन्तरकी वात तो खैर आँखमे धूल झोकनेकी नीतिके कारण हो सकती है, लेकिन चक्र-पूजा। यौन-स्वातत्र्यकी उन्हे क्या जरूरत थी ? आखिर ब्राह्मण एकपत्नि-व्रत नही थे, सपत्तिके अनुसार वह चाहे जितने व्याह कर सकते थे। दासियोके रखनेमे भी उनके लिए कोई सीमा न थी। बौद्ध भिक्षु तो वेचारे जवर्दस्तीके ब्रह्मचर्यके फन्देको किसी तरह ढीला करना

चाहते थे, जिसकी कि ब्राह्मणोको जरूरत नही थी। हाँ, हो सकता है, मद्य-पानके विरुद्ध जो कडाइयाँ पीछेके स्मृतिकारोंने कर दी थी, उनसे मुक्त होनेके लिए इन्होने चक्रका आश्रय लिया। मीन-मास उस युगके ब्राह्मणोमे वर्जित था ही नही और मुद्रा—हाथकी अँगुलियोको टेढी-मेढी करना—के लिए चक्रकी शरण लेनेकी जरूरत नही थी। इस प्रकार मुख्य कारण मद्य रहा होगा और स्त्रीके वारेमे उन्होने "अधिकस्याधिक फल" ममझ लिया होगा।

ब्राह्मणोने सीधे सेवा करके ही सामन्तोका उपकार नही किया, वल्कि उन्होने उनके फायदेके वास्ते साधारण जनताकी शक्तिको छिन्न-भिन्न करनेके लिए खूव हन-हन करके हथियार चलाए। खानेकी छुआछूतमे खूव तरक्की की और "आठ कनौजिया नव चूल्हा" करके उसे अपने घरसे शुरू किया। उस वक्त भारतके जो व्यापारी अरव जाते थे, उनके वारेमे एक अरव लेखक (अल्वरूनी)ने लिखा है—वे हमारे (मुसल्मानोके) ही हाथका खाना खानेसे परहेज नही करते, वल्कि आपसमे भी एक दूसरेका छुआ नही खाते।" वहुत-सी नीच कही जानेवाली जातियोके प्रति तो ब्राह्मणोकी व्यवस्था वहुत क्रूर थी। कितनी क्रूर थी इसका अन्दाजा कुछ-कुछ आपको लग सकता है, यदि परम अद्वैतवादी शकराचार्यकी जन्मभूमि मलवारके पचमोकी वीसवी शताव्दीकी अवस्थाका आपको थोडा-सा परिचय हो। उस युगके नगरोकी वहुतसी सडके उनके लिए वर्जित थी, कितनी ही सडकोपर थूकनेके लिए उन्हे अपने साथ पुरवा रखना पडता था। लेकिन ब्राह्मणोकी एक और भी व्यवस्था थी—"स्त्री-रत्न दुष्कुला-दपि", इसलिए श्रोत्रिय ब्राह्मण भी शूद्रा सुदरीसे पार्शव[1] सन्तान पैदा करनेका पूरा अधिकार रखता था।

ब्राह्मणोने मिथ्या-विश्वासोको फैलाने, वयस्क मानवताको बच्चा बनानेके लिए पुराणोकी सख्या और कलेवरको इसी कालमे खूव वढाया। बुद्धि रखनेवालोपर यह हथियार नही चलता, इसलिए इसी युगमे बुद्धिको भूल-

---

[1] शूद्रा स्त्रीमें ब्राह्मणका पुत्र।

भुलैयामे डालनेके लिए शकर (७८८-८३०) श्री हर्ष (११८० ई०) जैसे दार्शनिकोने "मुँहमे राम बगलमे छूरी" वाला अद्वैतवाद पैदा किया।

इस कालमे जातीय विखरावको ब्राह्मणोने चरम-सीमापर पहुँचाया। अभी तक जातियोके लिए भाषा या प्रान्तोका भेद नही था, मगर अब ब्राह्मणोने कनौजिया आदि बिल्कुल अलग-अलग ब्राह्मण जातियाँ तैयार की और एक जातिमे भी गोविन्दचद्र-जयचन्द्र (१११४-९३)के कालमे सरयू-पारियोमे पक्ति (उच्चतम) ब्राह्मण और वल्लालसेन (११५८-७९)के समय बगालमे "कुलीन" ब्राह्मणके नामसे और नये-नये टुकडे किये गये। दडीके कुम्हार-ब्राह्मण जहाँ भारतके किसी भी प्रान्तमे जाकर स्वच्छन्दतापूर्वक रोटी-बेटी कर सकते थे, वहाँ अब रास्ता चारो ओरसे बन्द था। ब्राह्मणोकी व्यवस्थाने देश-रक्षाके कामके लिए क्या-क्या किया ? स्त्रियोके लिए तो युद्धमे कोई स्थान था ही नही। ब्राह्मण-देवता युद्ध-सेवासे मुक्त थे। वैश्यका काम था डेढा-सवाई करना। शूद्रोकी हजार जातियाँ ?—उन्हे हथियार लेकर अपनी पाँतिमे लडनेको कौन क्षत्रिय इजाजत देता। लडनेका काम था सिर्फ क्षत्रिय-पुरुषोका, और उनके सामने भी युद्ध करनेके लिए कोई बडा आदर्श नही था, सिर्फ नमक-हलाली और इसके बाद सामन्तका भय रह गया था। सामन्तके भयसे या "हम मालिकका नमक खाते है" इस ख्यालसे लडनेवाले योद्धा, किस श्रेणीके होगे, इसे आप खुद समझ ले। आप कहेगे, इस युगमे अरबो और तुर्कोसे युद्ध छिडता रहता था, जिसमे योद्धाके दिलमे हिन्दू-धर्मकी रक्षाका भी ख्याल आ सकता था। हम इसे मानते है, लेकिन कुछ ही हद तक। क्योकि मुसलमान सामन्तकी सेनामे सिर्फ मुसलमान ही मुसलमान और हिन्दू सामन्तकी सेनामे सिर्फ हिन्दू ही हिन्दू सैनिक रहे, इसका कोई नियम नही था। अक्सर दोनो हीकी सेनाये मिली-जुली होती थी।

(४) **इस्लाम**—इस्लामकी इस युगमे क्या अवस्था थी, इसका जिक्र हम पहले कर चुके है। अभी सदियोकी मानसिक और शारीरिक दासताओको तोडनेकी उसमे हिम्मत और क्षमता थी। साथ ही अरबी खलीफा (उमैया और अब्बासी) कोई सकीर्ण विचारवाले धर्मान्ध शासक नही थे। इस्लामकी

पहिली सदीमे चाहे कुछ तोड-फोड हुआ हो, मगर वादमे दुनियाकी सभी सस्कृतिओ और उनकी देनोके मुसल्मान शासक जवर्दस्त कदरदान मरक्षक थे। अफलातूँ, अरस्तू और दूसरे यूनानी दार्शनिको—साइस-वेत्ताओका पता भी नही लगता, यदि बगदादके खलीफोके समय अनुवाद और टीकाओ द्वारा उनकी रक्षा न की गई होती। उस समय भारतसे भी कितने ही विद्वान वडे सम्मानपूर्वक बगदाद बुलाये गए थे, जिन्होने भारतीय दर्शन, वैद्यक, गणित और ज्योतिपके वहुतसे ग्रन्थोके अरबी अनुवाद करनेमे सहायता की थी। मुस्लिम अरबोने हिन्दुस्तानी अकोको स्वीकार ही नही किया, वल्कि उन्हीके द्वारा वह सारे युरोपमे फैला।

अब्दुर्रहमानकी कवितामे जो विल्कुल भारतीय आत्मा वोल रही है वह बनावटी वात नही थी। अब्दुर्रहमानने देवताका मगलाचरण करते वक्त अपने ग्रथमे अपनेको मुसल्मान भक्त सावित किया है। ग्यारहवी शताब्दीसे मुस्लिम और हिन्दू सामन्तोमे राजनीतिक शक्तिको हथियानेके लिए जो भीपण सघर्ष शुरू हुए, उसीके प्रोपेगण्डामे हिन्दू और इस्लाम धर्म घसीटे जाने लगे, जैसे कि आज हॉलिफेक्स और चर्चिल जैसे कट्टर साम्राज्यवादी ईसाई-धर्मको घसीट रहे है। यह देशका दुर्भाग्य था कि सामन्तोके इस झूठे प्रोपेगण्डाका शिकार साधारण जनता भी होती थी और उसने कितने ही समय अपनेको अन्धा सिद्ध किया।

जिस वक्त सामन्त अपने स्वार्थके लिए धर्मकी दुहाई देकर कटुताका वीज वो रहे थे, उसी समय सरल-हृदय मानवता-प्रेमी कुछ दूसरे भी पुरुष हुए थे, जो सामन्तोकी चालसे क्षुब्ध थे और अपनी शक्ति भर दोनो सस्कृतियो और धर्मोमे भाई-चारा स्थापित करनेकी कोशिश करते थे। हाँ, वह सख्या और साधन दोनोमे कमजोर थे। सूफी महात्माओकी सख्या कभी अधिक नही रही और वह जिस तसव्वुफ और अद्वैतका प्रचार करते थे, वह साधारण जनताकी पहुँचसे वाहरकी वात थी। साधारण जनताके समझने और लाभकी बातको लेकर यदि वह कुछ करना चाहते, तो उनकी हालत भी वही हुई होती, जो कि

साम्यवादी सैयद मुहम्मद मेहदी जौनपुरी[१]की हुई। सामन्तोका हथियार सीधा सासारिक भोगका प्रलोभन था, जब कि दोनो सस्कृतियोमे समन्वय स्थापित करनेवालोका हथियार था, अधिकतर परलोकवाद और मानवकी सहज सहृदयतासे अपील करना।

तेरहवी और बादकी भी दो-तीन सदियोमे हमे यदि खुसरोको छोडकर कोई मुस्लिम कवि नही दिखलाई पडता, तो इसका यह मतलब नही कि करोडो भारतीय मुसलमान बनते ही कवि-हृदयसे बिल्कुल वचित हो गए। हिन्दुस्तानकी खाकसे पैदा हुए सभी मुसलमानोके लिए अरबी-फारसीका पडित होना सम्भव नही था। अब्दुर्रहमान जैसे कितने ही कवियोने अपनी भाषामे मानव-समाजकी भिन्न-भिन्न अन्तर्वेदनाओको लेकर कविताकी होगी। कुछको उन्होने कागजपर भी लिखा होगा, मगर उनको हम तक पहुँचानेके लिए सहायक नही मिले। सुल्तानी दर्बारमे विदेशी भाषाओकी तूती बोल रही थी। मुस्लिम सामन्तोके पुस्तकालयोमे हिन्दुस्तानी लिपि और हिन्दुस्तानी भाषामे लिखी गई कविताएँ पचास-पचास पीढी तक कैसे सुरक्षित रह सकती थी। उधर हिन्दू सामन्तोके यहाँ जब स्वयभू जैसे प्रथम श्रेणीके कवि भी जैन होनेके कारण भुला दिए जा सकते है, तो मुसलमान कविके बारेमे पूछना ही क्या है। यह वजह है जो अब्दुर्रहमान (१०१०)से कुतवन (१४९३) तककी प्राय पाँच सदियोमे हम किसी मुसलमान कविकी रचनाका पता नही पाते। रचनाएँ काफी रही होगी, लेकिन परिस्थितियाँ उनके जीवित रहनेके अनुकूल नही थी। उन्हे एक ओर "हिन्दी-गन्दी" समझा जाता था और दूसरी ओर म्लेच्छ कविकी कृति।

५. सांस्कृतिक अवस्था

सस्कृति एक बहुत ही व्यापक शब्द है। यहाँ इस युगकी चित्रकला, मूर्त्तिकला, वास्तुकला, सगीतकलाके बारेमे ही दो-चार शब्द हम कहना चाहते है। पाँचवी-छठी

---

[१] देखो "मानव-समाज"

सदी भारतीय कलाके मध्याह्नका युग था। सातवी सदी तक पूर्व-अर्जित मान बना रहा। आठवी-नवी सदीमे कुछ ह्रास जरूर होने लगा, लेकिन पतन पूरी तौरसे दसवी सदीमे दिखलाई पडता है। खास करके यह बात चित्र और मूर्त्ति-कलाके वारेमे वहुत देखी जाती है। दसवी शताब्दी और उसके वादकी मूर्त्तियाँ बिल्कुल ही वदसूरत और भावशून्य है। वैसे तो तीर्थंकरकी मूर्त्तियोको वनानेमे पहिलेसे भी कलाकार वेगार-सी टालते दीख पडते थे। पाँचवी, छठी, सातवी सदीकी कुछ वुद्ध मूर्त्तियाँ वडी सुन्दर है, मगर आठवी सदीके वाद तो वुद्ध और तीर्थंकरोकी मूर्त्तियाँ निरी पापाण-सी रह गई है। हाँ, बोधिसत्त्वों और ताराकी मूर्त्तियाँ नवी-दसवी सदीमे उतनी वुरी नही देख पडती, वल्कि कोई-कोई तो वहुत सुन्दर है, खास करके कुर्किहारकी आठवी-नवी सदीकी कितनी ही पीतलकी मूर्त्तियाँ वहुत सुन्दर है। दसवी, ग्यारहवी सदीके कुछ चित्रपट तिब्वतमे मौजूद है। लदाख और स्पितिके बौद्ध मठोमें कुछ भित्ति-चित्र भी वहुत अच्छे है। लेकिन दसवी-ग्यारहवी सदीके जो चित्र जैन और बौद्ध ताल-पोथियो-पर मिले है, वे जरूर भद्दे है। जान पडता है नवी सदीके वाद अपवाद रूपसे ही कोई-कोई अच्छे चित्रकार और मूर्त्तिकार रह गये। कला जितनी दूर तक अव-नत हो चुकी थी और जिस तरहके भद्दे नमूनोको तैयार किया जा रहा था, उसे देखनेसे महमूदके आक्रमणके वाद—खासकर वारहवी सदीके वाद—से जो चित्र-मूर्त्तिकलाकी ओरसे उदासीनता वर्त्ती जाने लगी, वह अनुचित नही थी। वास्तुशिल्प और खासकर पत्थरोकी नक्काशी वारहवी शताब्दीमे उतनी वुरी न थी। देलवाडाके जैन मदिरोमे सगमर्मरपर खुदे कमल मधुच्छत्र वहुत सुन्दर है, यद्यपि उनमे अलकरणकी मात्रा जरूरतसे ज्यादा दीख पडती है, जिससे गुप्तकालीन सादे सौम्य सौन्दर्यकी उसमे कमी है। तो भी, सगमर्मरको मोम या मक्खनकी तरह अपनी छिन्नियोसे काट-काटकर कलाकारने जो कौशल दिखाया है, वह सराहनीय है। लेकिन उसी पत्थरमे जो मूर्त्तियाँ वनी हुई है, उनसे विश्वास ही नही होता, कि उतने सुन्दर कमल और मधुच्छत्र बनानेवाले हाथ इतनी भद्दी मूर्त्तियाँ भी बना सकते है। वारहवी सदीके वाद तो एक तरह चित्र और मूर्त्तिकलाका दिवाला ही निकल जाता है।

इस युगमे सगीतकी ओर भी ध्यान दिया गया था। आजकलकी कितनी ही राग-रागिनियोका वर्गीकरण और नामकरण अपभ्रश-साहित्यके आरभके साथ होता है। नृत्य और सगीतकी ओर यद्यपि सामन्त-वर्ग वहुत ध्यान देता था और सामन्त-कन्याओकी शिक्षामे वह अनिवार्य विषय था, लेकिन अव राज-कुमारियॉ दडीके समयकी तरह अपने कौशलका प्रदर्शन खुले आम नही कर सकती थी। खुले आम नृत्य-सगीतकी जिम्मेवारी अव केवल वेश्याओपर रह गई थी।

यद्यपि हमारे युगमे कालिजरमे "प्रवोध-चद्रोदय" जैसे कुछ नाटक लिखे गए, मगर जान पडता है, अव नाटकोका समय बीत चुका था। जहॉ नाटकके लिए जबर्दस्त प्रेरणा स्वाभाविक मानव-जीवन था, वहॉ अब वेदान्त और दर्शन अपने ध्यान-ज्ञान और राग-द्वेष आदिके रूपमे नाटकोके लिए पात्र देने लगे, फिर वह नाटक कैसा होगा, यह आप खुद समझ सकते है।

सामन्तोकी विलासिताने कुछ नई कलाओकी भी सृष्टि की। स्वयभूने राष्ट्रकूट ध्रुव और उसके उत्तराधिकारीके जल-क्रीडा-मण्डपमे जो देखा-सुना था, उसीका वर्णन अपने रामायणमे जल-क्रीडाके रूपमे किया। उस समय सामन्तोके स्नान-कुण्ड, स्नान-मण्डप उसके खभे और दीवारोके अलकृत करनेमे जगम और स्थावर रत्नोका व्यय दिल खोल कर किया जाता था। सामन्तोकी कलाका प्रधान उद्देश्य होता ही था कामोद्दीपन। वस्तुत सामन्तोके जीवन-का आदर्श ही था—खाओ, पिओ, मौज करो। धर्म, दर्शन सारे उसके लिए दिखावे और जव तब मन वहलावकी चीज थे।

६. साहित्यिक अवस्था

हमारा यह साहित्य-युग उस वक्त आरभ होता है, जब कि वाण और हर्ष-वर्धनको रगमच छोडे वहुत देर नही हुई थी। कवियोमे अश्वघोष, भास, कालि-दास, दण्डी भवभूति, और वाणकी कृतियॉ बहुत चावसे पढी जाती है। स्वयभू-ने इन पुराने कवियोके प्रति अपनी कृतज्ञता साफ प्रकट की है। सिद्धोमेसे भी सरहपा, तिलोपा, शान्तिपा जैसे कितने ही सस्कृतके वडे-वडे पडित थे, हॉ, जब

वे भाषा-कविता लिखने बैठते, तो अपने सस्कृत-भाषाके ज्ञानको भूल जाते थे। तभी वह इतनी सरल भाषामे लिखनेमे सफल हुए।

कविता और कविको सदा आश्रयकी जरुरत होती है। वह युग सामन्तोका था। जिस काव्य और कविको सामन्त-वर्गका आश्रय प्राप्त था, वह आर्थिक लाभके तौर पर ही सफल नही होता, बल्कि वह चिरस्थायी होनेका अधिकार रखता था। हर युगकी तरह उस समय भी साधारण जनताकी रुचिको पूर्ण करनेके लिए कविताएँ बनती थी। मगर उनके चिरस्थायी होनेके मार्गमे बहुत सी बाधाएँ थी। यद्यपि स्वयभू और पुष्पदन्त जैसे कवि अत्यन्त असाधारण कवि थे, मगर उनके लिए सामन्ती दर्बारोमे वह भी सुभीता नही था, जो कि किसी थर्ड-क्लास सस्कृतके विद्वानका होता था। पुष्पदन्तने तो इसीलिए बल्कि झुँझलाकर कह भी दिया कि जिस वक्त प्रभुवर्गकी यह हालत है, उस वक्त हमारे जैसोके लिए जगलमे गुमनाम मारे-मारे फिरते रहना ही अच्छा है। इसीलिए पुँष्पदन्तने सामन्तोके चमर और अभिषेक जलको सज्जनताको धो-बहानेवाला ठहराया। उत्तर-कुरु वैसे भी एक वर्गहीन सुजल, सुफल, सुखी देशके तौरपर प्रसिद्ध था, मगर पुष्पदन्तके पहिले हीसे कवि लोग उसे भूल गए थे। पुष्पदन्तने "न दास न कोउ राज" "मानव दिव्य", "अगर्व सुभव्य, समानहिं सर्व" कहकर "अहो कुरु-भूमि निशसय स्वर्ग" कहा, इससे भी जान पडता है कि देशभाषाके प्रतिभाशाली कवियोको कितनी प्रतिकूल स्थितिमे रहना पडता था। स्वयभू जैसे महान् कविको भी किसी बडे दर्बारमे स्थान न पा एक गुमनामसे अधिकारी धनजय, रयडाके आश्रयमे रहकर जिन्दगी गुजार देना भी उसी बातको पुष्ट करता है। अभी चक्रवर्त्ती लोग सस्कृत और थोडा-बहुत प्राकृत—जो कि अब मृत-भाषा बन चुकी थी—पर ही ज्यादा निगाह रखते थे। शायद वह समझते थे, कि देशी-भाषामे गुथी उनकी कीर्त्ति-माला चन्द ही दिनोमे कुम्हला जाएगी, अमर कीर्त्ति तो सस्कृत काव्यो द्वारा ही मिल सकती है, इसीलिए उन्हे अपभ्रश कवियोकी ओर ज्यादा ध्यान देनेकी जरूरत नही थी।

सिद्धोके लिए इस बारेमे कोई दिक्कत नही थी। उन्हे किसी दर्बारके

आश्रयकी उतनी जरूरत नही थी, जितनी कि दर्बारको। जल्द सुला देनेवाली उनकी मीठी गोलियोका जनतापर वहुत प्रभाव था—विचित्र जीवनके कारण दिव्य चमत्कारके कारण, अथवा ज्ञान-विज्ञानके कारण कह लीजिए, राजा सिद्धोकी पूजा-अर्चामे सबसे आगे रहना चाहते थे। शान्ति पा या रत्नाकर शान्तिको गौड नरेश उसी तरह आँखोपर रखनेके लिए तैयार थे, जैसे मालव-दर्वार या सिहलेश्वर।

(१) **सिद्धोकी कविता**—शायद कविताके रूढि-वद्ध मकीर्ण लक्षणको लेने-पर कवीरकी तरह सिद्धोकी कविता भी कविता न गिनी जाए या कमसे कम अच्छी कविता न समझी जाए, लेकिन लाखो नर-नारियोको उनमे रस, एक तरह-की आत्म-तृप्ति मिलती थी और आज भी उस तरहकी मनोवृत्ति रखनेवाले कितने ही पाठकोको वह उतनी ही रुचिकर मालूम होती है, इसलिए उन्हे कविता मानना ही पडेगा। यह ठीक है, उनकी भाषा सीधी-सादी है समझनेमें बहुत सुगम है, लेकिन यह कविताका कोई दोष नही। साथ ही यह भी याद रखना चाहिए, कि सिद्धोकी सीधी-सादी भाषाको भी लोगोने खीचातानी करके दृष्टकूट वना उनकी भाषाको "सन्ध्या-भाषा" बना डाला, और फिर तो वह उतनी ही दुर्बोध और क्लिष्ट हो गयी, जितना कि श्रीहर्पका "नैषध" या माघका "शिशुपाल-वध"।

हम वतला चुके है, आदिम सिद्ध किस तरह कृत्रिम बहु-निर्वन्ध-पूर्ण जीवनको सहज-जीवनका रूप देना चाहते थे और इसके लिए समाजके चौधरियोकी कितनी ही रूढियोको वह तोड-फेकना चाहते थे। उनका उद्देश्य कभी नही था कि लोग सहज-जीवन वितानेके लिए अँधेरी कोठरियो और "गुह्य-समाजो"का आश्रय ले। वह इस वातमे सफल नही हुए और उनका सहज-यान भी सामन्त-समाजका एक दूसरा कोढ वनकर रह गया। उनके आशावादको भी आगे वढनेका अवसर नही मिला। हाँ, अलख-निरजनका जो राग उन्होने गाया, वह चिरकालके लिए अपना असर छोड गया। यद्यपि सिद्धोके अलख-निरजनसे राम-रहीम या ईश्वर-परमेश्वरसे कोई सवध नही था। वह तो पडितो और रूढिवादियोके शास्त्र, वेद, पोथी-पत्रेसे न जाने जा सकनेवाले—अ-लख, विशुद्ध सत्य—को वतलाता

था, जो कि वस्तुत बौद्धोके निर्वाणका ही विशेपण है । लेकिन पीछेके चेलो—कवीर नानकसे लेकर राधास्वामी दयाल तक—ने उसका और ही अर्थ लगाकर लोगोको मुक्तिकी ओर नही दिमागी गुलामीकी ओर ढकेला ।

सिद्ध पुरानी रुढियो, पुराने पाखण्डोके वहुत विरोधी थे । आदिम सिद्धोने तो सरहकी तरह अपने वडे सम्मान और सुखी जीवनकी भी पर्वाह नही की । सरह किसी वक्त नालन्दाके एक वडे प्रतिष्ठित पडित थे । मगर जव उन्हे वहाँ-का जीवन दमघोटू लगने लगा, तो उन्होने सव कुछको लात मारा, भिक्षुओंका वाना छोडा, अपनी (ब्राह्मण) नही किसी दूसरी छोटी जातिकी तरुणीको लेकर खुल्लमखुल्ला सहजयानका रास्ता पकडा । सरहने सिर्फ दूसरे ही पन्थोके पाखण्डोका खण्डन नही किया, वल्कि वौद्धोको भी नही छोडा । इस वातका अनुकरण पीछेके सन्तोमे भी पाया जाता है, लेकिन अपने पन्थ और मतको वचा-कर । यद्यपि ये पुराने सिद्ध किसी पाखण्डको फैलाना नही चाहते थे, लेकिन पीछे उन्हीके नामपर कितने ही मत्र-तत्र और पाखण्ड चल पडे । सिद्धोने सुख-दुख और दुनियाकी सभी समस्याओको केवल व्यक्तिके रूपमे देखा । उन्हे ख्यालमे भी नही आया, कि समाजकी वुराइयोको सामाजिक रूपसे ही दूर करने-पर सफलता मिल सकती है । लेकिन जैसा कि हमने पहिले लिखा है, सिद्धोको निराशावाद छू नही गया था । वह निराशावाद, योग-वैराग्यसे लोगोका पिण्ड छुडाना चाहते थे और उन्होने मरनेके पीछे मिलनेवाले निर्वाणके पीछे भागने-वाले लोगोकेलिए इसी ससारमे स्वाभाविक भोगमय जीवन वितानेका आदर्श उपस्थित किया । सिद्धोने आत्मावलवनको यद्यपि पसन्द किया, मगर साथ ही गुरुकी महिमाको उन्होने इतना वढाया, कि पीछे वही अन्धेरगरदीका एक भारी साधन वन गया । सिद्धोकें वाद जैन रहस्यवादी कवि, कवीर, दादू, राधास्वामी सवने गुरुकी अनन्य भक्तिका राग अलापा ।

सिद्धोकी कवितामे अधिकतर सहजयान और रहस्यवाद ही मिलता है । जिनकी सामन्त-समाजको कभी-कभी जरूरत पडती थी, उनको आवश्यकता ऐसे काव्योकी थी, जिनमे शृगार और वीररसका जोर हो ।

(२) **शृंगार और वीररस**—उस समयके सामन्त-जीवनका उद्देश्य था

चाहे जैसे भी हो दुनियाका आनन्द खूब डट करके लेना। ऐसा कहनेसे आचारके नियमोके विरुद्ध जानेकी जरूरत नही है; क्योकि पुरोहित और महन्त अपने मालिकोकी रुचिके अनुसार हर वक्त नये धर्मशास्त्र और नये आचार-नियम बनानेके लिए तैयार थे। हाँ, भोग निष्कटक नही हो सकता था। हर वक्त एक सामन्तको दूसरे सामन्तसे ही खतरा नही था, बल्कि खुद अपने भाई-बहिनोसे भय लगा रहता था। यदि जरा भी चूके, कि भोग और जान दोनोसे हाथ धोना पडा। इसीलिए सामन्तोको भोगके लिए पूरी कीमत अदा करनेको तैयार रहना पडता था। स्वयभू और पुष्पदन्तने सामन्त-जीवनके इन दोनो पहलुओ—भोग भोगना और मृत्युको तृणवत् समझना—का सुन्दर चित्रण किया है, इतना सुन्दर चित्रण पीछेके काव्योमे हमे नही मिलता। सामन्तको मृत्युकी कोई पर्वाह नही थी, न मृत्युके बादकी। विजय हुई तो उसके चरणोमे सारे भोग पडे है। हाँ, यदि कभी पराजयका मुँह देखना पडा, तब या तो सरहपाके पास जाना पडता या किसी अपने कविसे निराशावादकी बात सुन सन्तोष करना पडता। स्वयभू और पुष्पदन्तने पराजित सामन्तोके लिए काफी सन्देश छोडे है।

हेमचन्द्रके सगृहीत एक पदमे "बापकी भूमडी" (पितृ-भूमि)के लिए सर्वस्व-उत्सर्ग करनेकी जो भावना दर्शायी गई है, उसे देखकर हमारे कितने ही पाठक शायद उछल पडे। लेकिन यह बापकी भूमडी साधारण जनताके ख्यालसे नही कही गई। यह सामन्तोकी अपने हाथसे निकल गई बापकी भूमडी—निरकुश राज—को फिरसे लौटानेके लिए आदेश है। अस्सी फीसदी जनता और भविष्यकी सारी पीढियोके सुख और स्वार्थका वहाँ कोई ख्याल नही था।

तब और पीछेके भी कवि सन्देश देते है—काया नरक, ससार तुच्छ, कोई किसीका नही। यह कोई उच्च भावनाका परिचायक नही है। चूँकि उनके जीवनके कुछ महीने या कुछ बरस दुखमे कटे और जिस दुखका कारण भी बहुत कुछ समाजकी विषमनीति है, जिसे कि हटानेसे बहुतसे दुखोके कारण खतम हो सकते है। लेकिन कविने अपने उस थोडे समयके दुखको इतना बडा करके देखा कि उसे आनेवाली हजारो पीढीके सुख-दुखका कुछ भी ख्याल

नही आया। एक जीवनके सुख-दुखसे आनेवाली अगनित पीढियोका सुख-दुख परिमाणमे कही अधिक है, लेकिन जो उसका न ख्यालकर सिर्फ अपने हीको सब कुछ समझ लेता है, क्या यह उसकी अत्यन्त निम्न कोटिकी स्वार्थान्धता नही है? हमारे कवियोने व्यक्तिके सामाजिक कर्त्तव्यकी ओर ध्यान नही दिया। उसका कारण था, वही सामन्त-समाज, जिसके हाथमे सारे समाजकी नकेल थी और जो व्यक्तिगत आनन्दको ही सर्वोपरि चीज समझता था। हमारे आजके भी कवि जब ऐसी गलती कर बैठते है, तो इन पुराने कवियोको दोष देनेकी क्या जरूरत। वस्तुत कवियोने अत्यन्त सदिग्ध परलोकवाद और वैयक्तिक निराशावादपर जितना जोर दिया, उससे ज्यादा उन्हे चाहिए था, अपनी आगेवाली पीढियोके मुँहकी ओर देखना—जो पीढियाँ कि सदिग्ध और काल्पनिक नही बिल्कुल वास्तविक है, यह बात खुद उन्हे अपना अस्तित्व बतला देता। केवल अपने लिए अनन्तजीवनकी मिथ्या आशाकी वेदीपर उन्होने आनेवाली पीढियोके वास्तविक अनन्त-जीवनकी बलि चढा देनेमे जरा भी आनाकानी नही की।

(३) कुछ कवियोका मूल्याकन—(क) स्वयभू—हमारे इसी युगमे नही हिन्दी-कविताके पाँचो युगो (१—सिद्ध-सामन्त-युग, २—सूफी-युग, ३—भक्त-युग, ४—दर्बारी-युग, ५—नवजागरण-युग)के जितने कवियोको हमने यहाँ सग्रहीत किया है, उनमे यह निस्सकोच कहा जा सकता है, कि स्वयभू सबसे बडा कवि था। वस्तुत वह भारतके एक दर्जन अमर कवियोमेसे एक था। आश्चर्य और क्रोध दोनो होता है कि लोगोने कैसे ऐसे महान् कविको भुला देना चाहा। स्वयभूके रामायण और महाभारत (या कृष्ण-चरित्र) दोनो ही विशाल-काव्य है। उनके विशाल आकारको देख-कर सन्देह हो सकता है कि कविने कितनी जगह काव्य-शरीरको जैसे-कैसे भी फुलानेकी कोशिश की होगी, मगर ऐसा प्रयत्न सिर्फ वही देखनेमे आता है, जहाँ अपने सहधर्मियोकी जबर्दस्तीके कारण वह जैन-धर्मकी कितनी ही नीरस रूढियोको बखाननेके लिए मजबूर होता है—ठीक वैसे ही जैसे कुशल चित्रकार और मूर्त्तिकार तीर्थंकरोकी मूर्त्ति बनानेमे बेगार टालने लगते। हम समझते

है कि ऐसे बेगारवाले अश कविके कविता-कलेवरके अभिन्न अग नही हैं। उनके हटा देनेसे न कथानककी शृखला ही टूटती है और न रसधारा ही।

यद्यपि स्वयंभू वाणसे "घनघनऊ" या समास उधार लेनेकी बात कहता है, लेकिन हर्षचरित और कादवरीके विकट समासोका स्वयंभूमे पता नही लगता। स्वयभूकी भाषाका प्रवाह बिल्कुल स्वाभाविक है। उसने खामख्वाह दुरूहता लानेकी कही कोशिश नही की। पद्य-स्वर बडे ही कर्णप्रिय है। शब्द बिल्कुल नपे-तुले है, और रस-परिपाक तो बराबर ऊपर और और ऊपर उठता जाता है। उसका कवि-कौशल कितना श्रेष्ठ है, यह इसीसे मालूम होगा कि मैंने रामायणसे शृगार, वीर, वीभत्स, आदिके उदाहरणोको जब जमा किया, तो ग्रन्थके कलेवरके बढ जानेके भयसे उनमेसे एक ही एकको देना चाहा, मगर फिरसे पढनेपर मालूम हुआ, कि स्वयभूके वर्णनमे हर जगह नवीनता है, इस-लिए एकसे अधिक उद्धरण देनेके लिए मजबूर होना पडा।

स्वयभूने प्रकृतिका बहुत गहरा अध्ययन किया है, यह हमारे दिये हुए उद्धरणोसे मालूम होगा। समुद्र और कितने ही अन्य स्थलो, प्राकृतिक दृश्यो-का वर्णन करनेमे वह अद्वितीय है। और सामन्त समाजके वर्णनमे उसकी किसीसे तुलना नही की जा सकती। किसी एक सुन्दरीके सौन्दर्यको जितना अच्छी तरह उसने चित्रित किया है, वह तो किया ही है, लेकिन सुन्दरियोके सामूहिक सौदर्यका वर्णन करनेमे उसने कमाल कर दिया है। चित्रकारकी भाँति कविके सामने भी कोई साकार नमूना रहना चाहिए। स्वयभूने राष्ट्रकूटोके रनिवास और उनके आमोद-प्रमोदको नजदीकसे देखा था। वहाँ परदा बिल्कुल नही था, इसलिए और सुविधा थी। उसी सौन्दर्यको उसने रावण और अयोध्या-के रनिवासोके सौन्दर्यके रूपमे चित्रित किया है।

विलाप-चित्रणमे भी उसने बडी सफलता प्राप्त की है। रावणके मरने-पर मन्दोदरी और विभीषणके विलाप सिर्फ पाठकके नेत्रोको ही सिक्त नही कर देते, बल्कि उसका मन मन्दोदरी और विभीषण तथा मृत रावणके गम्भीर और उदात्त भावोकी दाद देता है।

सामन्ती युगमे स्त्रियोका अधिकार ही क्या हो सकता है? तो भी सिद्ध-

युग, तथा वादकी शताब्दियोकी अपेक्षा उनकी अवस्था कुछ वेहतर जरूर थी। स्वयभूने सीताका जो रूप रावणको जवाब देते और अग्नि-परीक्षाके समय चित्रित किया है, पीछे उसका कही पता नही लगता।

मालूम होता है, तुलसी वावाने स्वयभू-रामायणको ज़रूर देखा होगा, फिर आश्चर्य है कि उन्होने स्वयभूकी सीताकी एकाध किरण भी अपनी सीतामे क्यो नही डाल दिया। तुलसी वावाने स्वयभू-रामायणको देखा था, मेरी इस वातपर आपत्ति हो सकती है, लेकिन मै समझता हूँ कि तुलसी वावाने "क्वचिदन्यतोपि"से स्वयभू-रामायणकी ओर ही सकेत किया है। आखिर नाना पुराण निगम आगम और रामायणके वाद ब्राह्मणोका कौनसा ग्रन्थ वाकी रह जाता है, जिसमे रामकी कथा आई है। "क्वचिदन्यतोपि"से तुलसी वावाका मतलव है, ब्राह्मणोके साहित्यसे वाहर "कही अन्यत्रसे भी" और अन्यत्र इस जैन ग्रन्थमे रामकथा वडे सुन्दर रूपमे मौजूद है। जिस सोरो या शूकरक्षेत्रमे गोस्वामी जीने रामकी कथा सुनी, उसी सोरोमे जैन-घरोमे स्वयभू रामायण पढा जाता था। राम-भक्त रामानन्दी साधु रामके पीछे जिस प्रकार पडे थे, उससे यह विल्कुल सम्भव है कि उन्हे जैनोके यहाँ इस रामायणका पता लग गया हो। यह यद्यपि गोस्वामी जीसे आठ सौ वरस पहले वना था किन्तु तद्भव शब्दोके प्राचुर्य तथा लेखकों-वाचकोके जव-तवके शब्द-सुधारके कारण अभी आसानीसे समझमे आ सकता था। जो उद्धरण हमने यहाँ दिये है, उनमेसे कितनोका प्रभाव रामचरितमानसके कई स्थलोपर दिखलाई पडेगा। इसका यह हरगिज मतलव नही, कि गोसाईजीने भाव वहाँसे चुराया, या उनकी प्रतिभा सिर्फ नकल करनेकी थी; गोस्वामी जीकी काव्य-प्रतिभा स्वत महान् है। उसे पहलेकी प्रतिभाओका वैसे ही सहारा मिला होगा, जैसे हरेक वालकको अपने पूर्वजोकी कृतियोकी सहायतासे अपने ज्ञानका विस्तार करना पडता है।

(ख) पुष्पदन्त—पुष्पदन्तका नम्वर स्वयभूके वाद आता है, किन्तु इस युगके वाकी कवियोमे उसका स्थान वहुत ऊँचा है। पुष्पदन्तकी उपाधियोमे अभिमान-मेरु विल्कुल यथार्थ मालूम होता है। मत्री भरतको इस फक्कड

कविकी बहुत नाजबरदारी करनी पडी होगी। अमीरोके लिए तो उसने पहले ही कह दिया था "चमरानिलही उडेउ गुणाइँ"। "अभिषेक धोयउ-सुज-नत्तननाय।" कृष्णराजके दर्बारमे पुष्पदन्त कभी अपने मनसे गया होगा, इसमे सन्देह ही मालूम होता है। पुष्पदन्तने विरहका वर्णन बडा सुन्दर किया है और गरीबीका भी। अमीरोके विलासको छोडकर तो वह महाकाव्यको लिख ही नही सकता था, इसलिए वह तो जरूरी ही था, मगर सामन्तोकी सक्षिप्त किन्तु अतिकठोर आलोचना की है कुछ ही शताब्दियो पहले अपनी प्रजातत्रीय स्वतत्रतासे वचित मगर अब भी जब-तब लडती रहनेवाली यौधेयकी भूमिका इतना आकर्षक वर्णन और अन्तमे उत्तर-कुरुकी धनी-गरीब-रहित दास-राजा-शून्य दिव्य-मानववाली भूमिकी भारी तारीफ बतलाती है कि पुष्पदन्तका व्यक्तित्व किसी दूसरी ही तरहका था, जिसके लिए उस कालकी परिस्थिति अनुकूल नही थी।

(ग) **दो कलिकाल-सर्वज्ञ**—हमारे इस युगमे दो "कलिकाल-सर्वज्ञ" भी है। सिद्ध शान्तिपा या रत्नाकरशान्ति (१००० ई०) भारतके शायद सर्व-प्रथम "कलिकाल-सर्वज्ञ" थे। गौड नृपतिके राजगुरु और विक्रमशिलाके प्रधान होनेसे भी मालूम हो सकता है, कि वह अपने समयके असाधारण पण्डित थे। शान्तिपाके कुछ दर्शन और एक छन्द शास्त्र "छन्दो-रत्नाकर" ग्रन्थ अब भी बच रहे है। दूसरे कलिकाल-सर्वज्ञ है आचार्य हेमचन्द्रसूरि (१०८८-११७९)। इनके सस्कृत-प्राकृत ग्रन्थ बहुत प्रसिद्ध है। अपनी मातृभाषामे उन्होने कोई स्वतत्र काव्य रचा था, इसकी कम सम्भावना है। लेकिन अपने व्याकरण 'छन्दोनुशासन' और "देशी-नाममाला" (कोष) द्वारा जो सेवा उन्होने हमारी भाषाकी की है, वह स्मरणीय है। अपने व्याकरण और छन्दोनुशासनमे उदाहरणके तौरपर उन्होने अपभ्रंशके बडे सुन्दर-सुन्दर सैकडो पद्य उद्धृत किये है, जिससे मालूम होता है कि वह इस भाषाको लम्बी नाकवाले पडितोकी तरह उपेक्षणीय नही समझते थे।

(घ) **कवि अब्दुर्रहमान**—अब्दुर्रहमान हिन्दीका प्रथम मुस्लिम कवि है। (उसकी) भाषा और कलासे मालूम होता है कि कविकी वाणी खूब मँजी

हुई है। मधुर शब्दोके चुनाव तथा सरल और प्रवाहयुक्त भाषा लिखनेमे अब्दुर्रहमानने वडी सफलता प्राप्त की है। अफसोस है कि इतने सुन्दर कवि-की इतनी कम कविता हमे प्राप्त है। वह भी लुप्त हो गई होती, अगर किसी जैन-पुस्तक-भडारने रक्षा न की होती। मगलाचरणकी कुछ पक्तियोको छोड-कर इसकी कवितामे धर्म कही छू नही गया। कविके वास्तविक कालके बारे-मे हमे कुछ नही मालूम, लेकिन जान पडता है कविकी जन्म-भूमि मुलतानके महमूदके हाथमे जानेसे पहले अब्दुर्रहमान मौजूद थे।

(४) कवियोकी अमर कीर्त्ति

कवियोने ससार तुच्छ, कोई किसीका नही, काया नरक आदि वातोका प्रचार करके सामन्तोका ही हित किया, साधारण जनता और आगे आनेवाली पीढीका तो इससे घोर अहित हुआ। उन्होने उत्पीडित प्रजाका पक्ष लेना तो दूर, उनके कष्टों तथा कारणोके चित्रण करनेका भी प्रयास नही किया—इत्यादि-इत्यादि कितने ही दोष उनके ऊपर लगाए जा सकते हैं, लेकिन इसकी जिम्मेवारी वहुत कुछ तत्कालीन परिस्थिति और समाजपर है, इस वातका अपने पुराने महान् कवियोके सवधमे कोई फैसला देते वक्त हमे हमेशा ख्याल रखना होगा। सवसे वडी वात यह है, कि दोष भी तभी तक लोग देखेंगे, जव तक हमारी दुनिया नई नही वनती, इसकी सारी गदगियाँ दूर नही हो जाती। एक वार जहाँ हमारे समाजका कलेवर वदला, कि कवियोकी महिमा सिर्फ उनके कवित्वके कारण होगी। रामके हाथो मुक्ति पानेवालोका जव हमारे देशमे नाम भी नही रह जाएगा, तव भी तुलसीकी कद्र होगी। स्वयभूके धर्म (जैन)का अस्तित्व भी न रहनेपर स्वयभू नास्तिक भारतका महान् कवि रहेगा। उसकी वाणीमे हमेशा यह शक्ति वनी रहेगी कि कहीं अपने पाठकोको हर्षोत्फुल्ल कर दे, कही शरीरको रोमाचित वना दे और कही आँखोको भीगनेके लिए मजबूर कर दे। सनातन-तुलामे नापनेपर हमारे कवियोका सम्मान शताब्दियोके वीतनेके साथ अधिक और अधिक वढता जाएगा। जिस वक्त शत-प्रतिशत जनता शिक्षित और सस्कृत होगी, जिस वक्त कलाकी निष्पक्ष परखका मान

और ऊँचा होगा, उस वक्त हमारे कवियोका कीर्त्ति-कलेवर, उनका आसन और ऊँचा होगा।

कालने वडी बेदर्दीसे हमारे पुराने कवियोकी छँटाई की है। जाने कितने उच्च काव्योसे आज हम वंचित हैं। लेकिन इस छँटाईके बाद जो कुछ हमारे पास बचकर चला आया है, उसकी कद्र और रक्षा करना हमारा कर्त्तव्य है। ऐसा करके ही हम अपने पूर्वजोका उत्तराधिकारी होनेका दावा कर सकते हैं।

हम चाहते है कि आदिसे लेकर आज तकके सभी महान् कवियोकी कृतियोको पाठकोके सामने इस तरह रखा जाए, जिसमे वह काव्य-रसका अच्छी तरह आस्वादन कर सके, कवियोके मुखसे तत्कालीन समाजकी आप-बीती जान सके और कवि-परपराने किस तरह आनेवाली पीढियोको प्रेरणा और सहायता दी, इसे भी अच्छी तरह समझ सके। हमारे सग्रहका पाँच युगोवाला वर्त्तमान प्रयास सिर्फ बीचवाला भाग है जो चार खडोमे समाप्त होगा। बीसवी सदीके कवियोका सग्रह पाँचवाँ खण्ड होगा और वेदसे लेकर पीछे तकके सस्कृत-पाली-प्राकृत कवियोका सूक्ति-सग्रह एक अलग खण्ड। उस खण्डमे छायासे काम नही चलेगा और मूल-भाषाका देना भी बेकार होगा, लेकिन हम चाहेगे कि अनुवाद पद्य-बद्ध हो और जहाँ तक हो सके उन्ही छन्दोमे, लेकिन यह काम कवि ही कर सकते हैं। यदि ऐसे कवि उसे अपने हाथमे लेना चाहेगे, तो हम सहर्ष उनकी यथायोग्य सहायता करेगे।

प्रयाग
१४-८-४४

राहुल सांकृत्यायन

विषय-सूची

पृष्ठ

१ : आठवीं सदी

§ १. सरहपा (७६० ई०) — २
१. दोहा — ,,
(१) रहस्यवाद — ,,
(२) पाखड-खडन — ४
(३) मत्र-देवता वेकार — ,,
(४) सहज-मार्ग — ६
(५) भोगमे निर्वाण — ,,
(६) काया तीर्थ — ८
(७) गुरु-महिमा — ,,
(८) सहज सयम — १२
(९) कमल-कुलिश साधना — १४
२. गीत — १६
(१) मसार-निर्वाणका भेद वनावटी — ,,
(२) सहज-मार्ग — १८
§ २. शवरपा (७८० ई०) — २०
रहस्यवाद — ,,
§ ३. स्वयंभू देव (७९० ई०) — २२
१. आत्म-परिचय — ,,
(१) कविका आत्म-निवेदन — ,,
(२) रामायण-रचना — २६
२. ऋतु-और काल-वर्णन — ,,
(१) पावस — ,,
(२) वसत — ३०
(३) सध्या-वर्णन — ३२
३. भौगोलिक वर्णन — ,,
(१) देश-वर्णन — ,,
(२) नगर-वर्णन — ३४
(क) राजगृह — ,,
(ख) महेन्द्रनगर — ,,
(ग) दधिमुखनगर — ३६
(३) समुद्र-वर्णन — ,,
(४) नदी (गोदावरी)-वर्णन — ३८
(५) वन-वर्णन — ४०
(६) मातृभूमि (अयोध्या)-प्रशसा — ,,
(७) यात्रा-वर्णन — ,,
(क) हनूमानकी लकामे अयोध्याकी यात्रा — ,,
(ख) रामकी लकासे अयोध्या-यात्रा — ४६
४. सामन्त-समाज — ,,
(१) भोजन-प्रकार — ,,
(२) नारी-सौन्दर्य — ४८
(क) सीता — ,,
(ख) मन्दोदरी — ५०
(ग) रावण-रनिवास — ५२
(घ) अयोध्याका रनिवास — ५४

	पृष्ठ
(ङ) भिन्न-भिन्न देशोकी नारियाँ	५६
(३) जल-क्रीडा	५८
(४) प्रेम (काम)-अवस्था	६०
(५) विरह (सीता)	६२
(६) मिलन (सीता-राम)	६४
(७) नारी-अधिकार	६६
(क) रावणको सीता-का जवाब	,,
(ख) अग्नि-परीक्षाके समय सीता	६८
५. सामन्त और युद्ध	७०
(१) सामन्त (राम)-वेष	,,
(२) देश-विजय	७२
(देशोके नाम)	,,
(३) योधाओकी उमगे	७४
(४) पत्नीसे बिदाई	७६
(५) रण-यात्रा	७८
(६) सैनिक बाजे	८०
(७) युद्ध-वर्णन	८२
(क) मेघवाहनका युद्ध हथियारोकी शक्तिकी तुलना	,,
(ख) मेघवाहन-हनूमान-युद्ध	८४
(ग) हनूमानका युद्ध	८८
(घ) कुभकर्णका युद्ध	९०
(ङ) सुग्रीव-मेघवाहन-युद्ध	९२
(च) रावणका शरीर	९४
(छ) लक्ष्मण-रावणयुद्ध	९६
(८) रण-क्षेत्र	९८
(९) विजयोत्साह	१००
(१०) लक्ष्मणके हाथ रावण-की मृत्यु	,,
६. विजय	१०२
(१) विजयिनी-रामसेनाका लका-प्रवेश	,,
(२) विभीषण द्वारा रामका स्वागत	,,
(३) भरत द्वारा अयोध्यामे रामका स्वागत	,,
(४) शत्रु-वीरकी प्रशसा (वीर-रावण)	१०४
	,,
७. विलाप	१०६
(१) नारी-विलाप	,,
(क) अयोध्या-अत.पुर-का०	,,
(ख) रावण-परिजन-विलाप	१०८
(ग) मन्दोदरि-विलाप	११०
(२) बधु-विलाप	११२

	पृष्ठ
(क) दशरथ-विलाप	११२
(ख) राम-विलाप	११४
(ग) भरत-विलाप	११६
(घ) रावण-विलाप	११८
(ङ) विभीषण-विलाप	१२०
८. कविका संदेश	१२२
(१) काया-नरक	,,
(२) गर्भवास दु ख	१२४
(३) आवागमन दु ख	,,
(४) ससार तुच्छ	१२६
(५) कोई किसीका नही	१३०
(६) सामाजिक भेद-भाव धर्म-अधर्मसे	,,
§ ४. भुसुकपा(८००ई०)	१३२
रहस्यवाद	,,

२ : नवीं सदी

	पृष्ठ
§ ५. लुईपा (८३० ई०)	१३६
रहस्यवाद	,,
§ ६. विरूपा (८३० ई०)	१३८
रहस्यवाद	,,
§ ७. डोम्बिपा (८४० ई०)	१४०
रहस्यवाद	,,
§ ८. दारिकपा (८४० ई०)	,,
रहस्यवाद	,,
§ ९. गुंडरीपा (८४० ई०)	१४२
§ १०. कुक्कुरीपा (८४० ई०)	१४२
§ ११. कमरिपा (८४० ई०)	१४४
§ १२. कण्हपा (८४०ई०)	१४६
(१) पथ-पडित-निन्दा	,,
(२) सहज-मार्ग	,,
(३) निर्वाण-साधना	१४८
(४) रहस्य-गीत	१५०
(५) वज्र-गीत	१५४
§ १३. गोरक्षपा (८४५ई०)	१५६
१ आत्म-परिचय	,,
(१) मछेन्द्रके शिष्य	,,
(२) चौरासी सिद्धोसे सबध	,,
२. दर्शन	१५७
(१) सहज-यान	,,
(२) मध्य-मार्ग	१५८
(३) अलख-निरजन	,,
(४) शून्यतत्त्व	१५९
(५) रहस्यवाद	,,
३ साधना और उलटवाँसी	१६१
(१) साधना	,,
(२) उलटवाँसी	,,
४. सदेश	१६२
(१) रूढि-खडन	,,
(२) राजा-प्रजा समान	१६३
(३) भोगमे योग	,,

	पृष्ठ
§ १४. टेंटणपा (८५० ई०)	१६४
§ १५. महीपा (८७० ई०)	,,
§ १६. भादेपा (८७० ई०)	१६६
§ १७. धामपा (८७० ई०)	,,

३ : दसवीँ सदी

	पृष्ठ
§ १८. देवसेन (९३३ ई०)	१६८
(१) सदाचार-उपदेश	,,
(२) दान-महिमा	१७०
(३) धर्माचरण-महिमा	,,
(४) धर्माचरण	,,
§ १९. तिलोपा (९५० ई०)	१७२
(१) सहज-मार्ग	,,
(२) निर्वाण-साधना	,,
(३) निरजन-तत्त्व	१७४
(४) तीर्थ-देव-सेवा बेकार	,,
(५) भोग छोडना वुरा	,,
§ २०. पुष्पदन्त (९५९-७२)	१७६
१. आत्म-परिचय	,,
(१) कृष्णके स्कधावारमे कवि	,,
(२) आश्रयदाता मत्रीकी प्रशसा	१७८
(३) भरतके घरमे स्वागत	१८०
२. काल-और ऋतु-वर्णन	१८२
(१) सध्या-वर्णन	,,
(२) पावस-ऋतु	१८२
३ भौगोलिक वर्णन	१८६
(१) हिमालय	,,
(२) देश-विजय	१८८
(३) यौधेय-भूमि	१९०
(४) मगध-भूमि	१९२
(५) मालव-ग्राम	,,
४. सामन्त-समाज	१९४
(१) राजत्वके दुर्गुण	,,
(२) राजदर्बार	१९६
(३) सामन्ती-भोग	,,
(क) वेश्या-वाजार	१९८
(ख) विवाह-वर्णन	,,
(ग) रानियोका जीवन	२००
(घ) नारी-सौन्दर्य-वर्णन	,,
(ङ) नख-शिख-वर्णन	२०४
(च) कुपिता नायिका	२०६
(४) नारी-विलाप	,,
(५) युद्ध	२०८
(६) हस्ति-युद्ध-क्रीडा	२१२
५. धार्मिक आचार	२१४
(१) श्रोत्रिय कौन ?	,,
(२) कापालिकोका धर्म-कर्म	,,

	पृष्ठ
६. कृष्ण लीला	२२०
(१) गोपियोंके साथ	"
(२) पूतना-लीला	२२२
(३) ओखल-बधन	"
(४) देवकीनद घरमे	२२४
(५) गोवर्धन-धारण	२२६
(६) कालिय-दमन	"
(७) कृष्ण-महिमा	२३०
७. कविका सदेश	"
(१) गरीबी	"
(२) नीति-वचन	२३२
(३) सोहै	"
(४) दर्शन-वेदान्त	२३४
(५) काया-नरक	"
(६) ससार तुच्छ	२३६
(७) पूर्व-कर्मवाद	"
(८) साम्यवादी द्वीप	२३८
§ २१. शान्तिपा (१००० ई०)	"
रहस्यवाद	"
§ २२. योगीन्दु (१००० ई०)	२४०
(१) ज्ञान-समाधि	"
(२) अलख-निरजन	२४२
(३) आत्मा	"
(४) परमतत्त्व (परमात्मा)	२४४

	पृष्ठ
(५) निरजन-योग	२४६
(६) पथ-पोथीपत्रा-निन्दा	२४८
(७) शून्य-ध्यान	"
(८) योग-भावना	२५०
(९) सभी देव समान पूजनीय है	२५२
§ २३. रामसिंह (१००० ई०)	"
(१) जग तुच्छ	"
(२) निरजन-साधना	२५४
(३) पाखड-खडन	२५६
(४) गुरु-महिमा	२५८
(५) मत्र-तत्र ध्यान-आदि बेकार	"
§ २४. धनपाल (१०००ई०)	२६०
१. कवि-परिचय	"
२ भौगोलिक वर्णन	२६२
(१) कुरु-जागल-देश	"
(२) गज (हस्तिना) पूर	"
३. वाणिज्य-सार्थ	२६४
(१) बधुदत्तके सार्थकी तैयारी	"
(२) भविष्यदत्तकी माँका विरोध	"
(३) माताका उपदेश	२६८
(४) सार्थ (कारवाँ) की यात्रा	"
(५) समुद्र-यात्रा	२७०
४ सामन्ती वणिक्-समाज	२७२
(१) वसन्त-वर्णन	"

	पृष्ठ
(२) नारी-सौन्दर्य	२७४
(३) आभूषण-सज्जा	२७६
(४) विरह-वर्णन	२७८
५. सामन्त-समाज	२८०
(१) राजद्वार (राजागण)	,,
(२) सामन्ती-युगकी शिक्षा	२८२
(३) युद्ध (भविष्यदत्तका)	,,

४ : ग्यारहवीं सदी

§ २५. अज्ञात कवि (१०१०ई०)	२८६
१. तैलप द्वारा पराजित मुजकी विपदा	,,
(१) मुजका पश्चात्ताप	,,
(२) रुद्रादित्य मन्त्रीकी सीख	२८८
(३) मुजसे भीख मँगवाना	,,
२ सुखी कुटुंब	२९०
३. दासी-प्रेम-निन्दा	,,
४. नीति-वाक्य	,,
५ वैराग्य	,,
§ २६. अब्दुर्रहमान (१०१०ई०)	२९२
१—परिचय	,,
२—प्रोषित-पतिकाका सन्देश	,,
३—ऋतु-वर्णन	३०२
(१) ग्रीष्म	,,
(२) वर्षा	३०४
(३) शरद्	,,

	पृष्ठ
(४) हेमन्त	३०८
(५) शिशिर	,,
(६) वसन्त	३१०
§ २७. बब्बर (१०५० ई०)	३१४
१. जन-जीवन	,,
(१) गरीबीका जीवन	,,
(२) सुखी-जीवन	,,
२. सामन्त-समाज	३१६
(१) कुलक्षणा स्त्री	,,
(२) नारी-सौन्दर्य	,,
(३) ऋतु-वर्णन	३१८
(क) ग्रीष्म	,,
(ख) पावस	,,
(ग) शरद	३२०
(घ) शिशिर	,,
(ङ) वसन्त	,,
(४) वीर-प्रशसा	३२४
(५) कर्णराजाकी प्रशसा	,,
(६) कविका सन्देश (जग तुच्छ)	३२६
	,,
§ २८. कनकामर मुनि (१०६० ई०)	३२८
१. भौगोलिक वर्णन	,,
(१) अगदेश-वर्णन	,,
(२) चम्पानगरी	,,
(३) सिंहलद्वीप-वर्णन	३३०

	पृष्ठ
२. सामन्त-समाज	३३२
(१) राज-दर्शन	,,
(२) राजकुमार-शिक्षा	३३४
(३) पति-विरह-वर्णन	,,
(४) पत्नि-विरह	३३६
(५) दिग्विजय	३३८
(६) युद्ध-वर्णन	३४०
३. कविका सदेश	३४२
(१) मुनिका दर्शन	,,
(२) ससार तुच्छ	३४४
§ २९. जिनदत्त सूरि (११०० ई०)	३४८
१. जिन-वंदना	,,
२. गुरु-महिमा	,,
(जिन-वल्लभ)	,,
(१) दर्शन-व्याकरणादि विद्यानिधान	,,
(२) गुरु-दर्शनका महा-फल	३५०
(३) गुरुकी शिक्षाका फल	३५२
३. वेश्या-निन्दा	३५४
४. कविका सदेश	,,
(१) जात-पाँत मजबूत करो	,,
(२) धर्मोपदेश	,,

	पृष्ठ
(३) दुर्लभ मानुष-जन्म	३५६
(४) गुरु सब कुछ	,,

५ : बारहवीँ सदी

§ ३०. हेमचन्द्र (११२० ई०)	३५८
१. सामन्त-समाज	,,
(१) राज-प्रशसा	,,
(२) वीर-रस	३६०
(३) कुनारी-वर्णन	३६४
(४) शृगार	,,
(५) ऋतु-वर्णन	३७२
(क) पावस	,,
(ख) शरद्	३७४
(ग) हेमन्त	,,
(घ) वसन्त	,,
(६) विरह-वर्णन	३७८
२. नीति-वाक्य	३८२
§ ३१. हरिभद्र सूरि (११५९ ई०)	३८४
१ प्रकृति-वर्णन	,,
(१) प्रात	,,
(२) वसन्त	३८६
२. सामन्त-समाज	३८८
(१) नारी-सौन्दर्य	,,
(२) पुरुष (कृष्ण)-सौन्दर्य	,,
(३) विवाह-महोत्सव	,,
(४) नारी-विलाप	३९०

	पृष्ठ
३. कविका सदेश	३९२
(सब तुच्छ)	,,
§ ३२. अज्ञात कवि (१२६०)	,,
१. जगडू साहुके दानकी प्रशंसा	,,
२ अकालमें दुर्दशा	,,
§ ३३. आमभट्ट (११७० ई०)	३९४
सामन्त-प्रशंसा	,,
(१) सिद्धराज-प्रशसा	,,
(२) कुमारपाल-प्रशसा	,,
§ ३४. विद्याधर (११८० ई०)	३९६
सामन्त-प्रशंसा	,,
(जयचन्द-महिमा)	,,
§ ३५. शालिभद्र सूरि (११८४ ई०)	३९८
सामन्त-समाज	,,
(१) सिंहासनासीन राजा	,,
(२) सेना-यात्रा	४००
§ ३६. सोमप्रभ सूरि (११९५ ई०)	४०८
१. नीति-वाक्य	,,
२. सामन्त-समाज	४१०
(१) मन्त्रि-पुत्र स्थूलभद्र	,,
(२) नारी-सौन्दर्य	४१२
(३) वसत	,,
(४) प्रेम	४१४
(५) विरह	४६१

	पृष्ठ
३. कविका सदेश	४१६
(१) जग तुच्छ	,,
(२) इद्रियोको मारो	४१८
(३) नरकका भय	४२०
§ ३७. जिनपद्म सूरि (१२०० ई०)	४२२
१. ऋतु-वर्णन	,,
पावस	,,
२ सामन्त-समाज	४२४
(१) शृगार-सज्जा	,,
(२) हाव-भाव	४२६
§ ३८. विनयचन्द्र (१२००)	४२८
विरह-वर्णन	,,
(बारहमासा)	,,
§ ३९. चन्द बरदाई (१२०० ई०)	४३४
१ हिमालय-वर्णन	,,
२. सामन्त-समाज	,,
(१) राजा (वीसल)-प्रशसा	,,
(२) शृगार-रस	४३५
(३) युद्ध	४३८
(क) वीर-रस	,,
(ख) रण-यात्रा	,,
(ग) युद्ध-वर्णन	४३९
(घ) युद्धमे छल	४४१

पृष्ठ

३ कविका सदेश ४४१

(भाग्यवाद) ,,

६ : तेरहवीं सदी

§ ४०. लक्खरा (१२५७ ई०) ४४२

१ आत्म-परिचय ,,

(१) काव्य-महिमा ,,

(२) आत्म-परिचय ,,

(३) कविका दीनता-प्रकाश ४४४

२ सामन्त-समाज ,,

(१) राजधानी (रायवड्डिय) ,,

(२) राजा (आहवमल्ल)-प्रशसा ४४६

(३) रानी (ईसरदे)-प्रशसा ४४८

(४) मत्री (कान्हड)-प्रशसा ,,

(५) मत्रिपत्नि-प्रशसा ४५०

§ ४१. जज्जल (१२८० ई०) ४५२

वीर-रस ,,

(राजा हमीर-प्रशसा) ,,

§ ४२. अज्ञात कवि (१२९०) ४५६

१. सामन्त-समाज ,,

(युद्ध-वर्णन) ,,

२. देव-स्तुति ४५८

(१) दश-अवतार ,,

(२) राम-स्तुति ,,

(३) कृष्ण-स्तुति ४६०

(४) शकर-स्तुति ४

३. कविका सदेश

सन्तोष और निराशावाद ४

§ ४३. हरिब्रह्म (१३०० ई०)

मत्री (चडेश्वर)-प्रशसा

§ ४४. अंबदेव सूरि (१३०० ई०) ४

१. सामन्त-समाज

(१) सेठ (समरसिंह)-प्रशसा

(२) बादशाह और मीरकी प्रशसा ४

२. तीर्थयात्री "सेना"

३. रचना-काल ४

§ ४५ अज्ञात कवि (१३०० ई०) ४

कक्का

(वैराग्य और वात्सल्य)

§ ४६. अज्ञात कवि (१३०० ई०) ४

जीते जी कीर्त्ति ,

§ ४७. राजशेखर सूरि (१३००) ,

सामन्त-समाज ,

(१) नारी-सौन्दर्य ,

(२) शृगार-सजाव ४८

[१]

१—सिद्ध-सामन्त-युग

(७६०—१३०० ई०)

हिन्दी काव्य-धारा

१. सिद्ध-सामन्त-युग

१. आठवीं सदी

§ १. सरहपा

काल—७६० ई०, (गोपाल-धर्मपाल ७५०-७०-८०६ ई०)। देश—मगध (नालंदा)। कुल—ब्राह्मण, भिक्षु, सिद्ध (६)। कृतियाँ[1]—कायकोष-अमृत-वज्रगीति, चित्तकोष-अज-वज्रगीति, डाकिनी-गुह्य-वज्रगीति, दोहाकोष-

१—दोहा[2]

(१) रहस्यवाद

अलिओ[1] धम्म-महासुह पइसइ। लवणो जिमि पाणीहि विलिज्जइ ॥२॥
मन्तह मन्ते सन्ति ण होइ। पडिलभित्ति की उट्ठिउ होइ ॥६॥
तरुफल-दरिसण णउ अग्घाइ। वेज्ज देक्खि की रोग पलाइ ॥७॥

जाव ण आप जणिज्जइ, ताव ण सिस्स करेइ।
अन्धाँ अन्ध कढाव तिम, वेण्ण 'वि कूव पडेइ ॥८॥ —दोहाकोष[2]

सङ्क-पास तोडहु गुरु-वअणे[3]। ण सुनइ सो णउ दीसइ णअणे[4] ॥३॥
पवण वहन्ते णउ सो हल्लइ। जलण जलन्ते णउ सो डज्झइ ॥४॥
घण वरिसन्ते णउ सो तिम्मइ। ण उवज्जहि णउ खअहि पइस्सइ ॥५॥

णउ त वाअहि गुरु कहइ, णउ त बुज्झइ सीस।
सहजामिअ-रसु सअल जगु, कासु कहिज्जइ कीस ॥६॥
सअ-सवित्ती तत्तफलु, सरहापाअ भणन्ति।
जो मण-गोअर पाविअइ, सो परमत्थ ण होन्ति ॥१०॥

—सरहपादीय दोहा ७, ८

---

[1] देखो मेरी "पुरातत्त्व-निबंधावलि" पृ० १६६ [2] The Journal of the

हिन्दी काव्य-धारा

१. सिद्ध-सामन्त-युग (७६०-१३०० ई०)

१. आठवीं सदी

§ १. सरहपा

उपदेशगीति, दोहाकोष, तत्त्वोपदेश-शिखर-दोहाकोष, भावनाफल-दृष्टिचर्या-दोहाकोष, वसन्ततिलक-दोहाकोष, चर्यागीति-दोहाकोष, महामुद्रोपदेश-दोहाकोष, सरहपाद-गीतिका।

१—दोहा

(१) रहस्यवाद

अलिओ! धर्ममहासुख प्रविशइ। नोन जिमी पानिही विलिज्जइ ॥२॥
मन्त्रहिं मन्त्रे शान्ति न होइ। प्रतिलब्धी का उत्थित होइ ॥६॥
तरुफल-दर्शन नाहि अघाइ। वैद्यहिं देखि कि रोग पराइ ॥७॥
जबलों आप न जानिये, तबलों सिख न करेइ।
अन्धा काढे अन्ध तिमि, दोउहिं कूप पडेइ ॥८॥ —दोहाकोष
शक-पाश तोडहु गुरु-वचने। न सुनइ सो नहिं दीसइ नयने ॥३॥
पवन वहन्ते ना सो हिल्लइ। ज्वलन जलन्ते ना सो डहियइ ॥४॥
घन वरसन्ते ना सो भीजइ। न उपजै न क्षयहि पईसइ ॥५॥
ना सो वाचहि गुरु कहइ, ना सो बूझइ शिष्य।
सहजामृत-रस सकल जग, कासु कहीजै कस्य ॥९॥
स्वक-सवित्ती तत्त्व-फल, सरहापाद भनन्ति।
जो मन-गोचर पाइअइ, सो परमार्थ न होन्ति ॥१०॥
—दोहा ७,८

Department of Letters, Calcutta University, Vol. XXVIII

(२) पाखंड-खंडन

वम्हणहि म जाणन्त हि भेउ। एँवइ पढिअउ ए चउवेउ ॥१॥
मट्टि पाणि कुस लई पढन्त। घरहीं वइसी अग्गि हुणन्त ॥
कज्जे विरहइ हुअवह होमें। अक्खि डहाविअ कडुएँ धूयें ॥२॥
ऍकदण्डि त्रिदण्डी भअवाँ वेसें। विणुआ होँइअइ हस-उएसें।
मिच्छेहिँ जग वाहिअ भुल्लें। धम्माधम्म ण जाणिअ तुल्लें ॥३॥
अइरिएहिँ उद्दूलिअ छारें। सीस सु वाहिअ ए जडभारें ॥
घरही वइसी दीवा जाली। कोणहिँ वइसी घण्डा चाली ॥४॥
अक्खि णिवेसी आसण वन्धी। कण्णेहिँ खुसखुसाइ जण धन्धी ॥
रण्डी-मुण्डी अण्ण 'वि वेसें। दिक्खिज्जइ दक्खिण-उद्देसें ॥५॥
दीहणक्ख जइ मलिणे वेसें। णग्गल होइ उपाडिअ केसें ॥
खवणेहि जाण-विडविअ वेसें। अप्पण वाहिअ मोक्ख-उवेसे ॥६॥
जइ णग्गाविअ होइ मुत्ति, ता सुणह सिआलह।
लोम उपाडण अत्थि सिद्धि, ता जुवइ-णिअम्वह ॥७॥
पिच्छी गहणे दिट्ठ मोक्ख, ता मोरह चमरह।
उञ्छ-भोअणें होइ जाण, ता करिह तुरङ्गह ॥८॥
सरह भणइ खवणाण मोक्ख, महु किम्पि न भावइ।
तत्त-रहिअ काआ ण ताव, पर केवल साहइ ॥९॥
चेल्लु भिक्खु जे थविर उदेसें। वन्देहिँ आ पव्वज्जिउ-वेसें ॥
कोइ सुतण्त वक्खाण वइट्ठो। कोवि चिण्ते कर सोसइ डिट्ठो ॥१०॥

(३) मंत्र-देवता बेकार

जो जसु जेण होइ सन्तुट्ठो। मोक्ख कि लब्भइ झाण पविट्ठो ॥
किन्तह दीवें किं तह णेवेज्जें। किन्तह किज्जइ मतह सेब्वे ॥१४॥

(२) पाखंड-खंडन

ब्राह्मणहिँ ना जानन्ता भेद । यो ही पढेँउ ये चारो वेद ॥१॥
माटि पानि कुश लिये पढन्त । घरही बइठी अग्नि होँमन्त ॥
कार्य विना ही हुतवह होमें । आँखि डहावै कडुये धूयें ॥२॥
ऍकदण्डि त्रिदण्डी भगवा वेसे । ना होइहि विनु हस्-उपदेशे ॥
मिथ्यहि जग बाहेऊ भूले । धर्म-अधर्म न जानेँउ तुल्ये ॥३॥
आचरियेहिँ लपेटी छारा । सीसहि ढोअत ये जट-भारा ॥
घरहीँ वइसे दीपक बारी । कोनहि वइसे घटा चाली ॥४॥
आँखि निवेशी आसन वाँधा । कर्णे खुसखुसाय जन मन्दा ॥
रडी-मुडी अन्यहुँ भेसें । देखीयत दच्छिना-उदेसे ॥५॥
दीर्घनखा जो मलिने भेसे । नगा होइ उपाडिय केशे ॥
क्षपणक ज्ञान-विडबित भेसे । अपना बाहर मोक्ष गवेषे ॥६॥
यदि नगाये होइ मुक्ति, तो शुनक-शृगालहुँ ।
लोम उपाटे होइ सिद्धि, तो युवति-नितम्वहुँ ॥७॥
पिच्छि गहे देखेँउ जोँ मोक्ष, तो मोरहु चमरहुँ ।
उञ्छ-भोजने होइ ज्ञान, तो करिहु तुरगहुँ ॥८॥
सरह भनै क्षपणकी मोक्ष, मोहि तनिक न भावइ ।
तत्त्व-रहित काया न ताप, पर केवल साधइ ॥९॥
चेला भिक्षु जें स्थविर-उदेसे । वन्दहि आ प्रव्रजिता-वेसें ।
कोँइ स्वतत्र व्याख्यानें वईठो । कोँइ चिन्ता करि शोषइ दीठो ॥१०॥

(३) मंत्र-देवता बेकार

जो जाँसु जेन होइ सन्तुष्टो । मोक्ष कि लभियइ ध्यान-प्रविष्टो ॥
की तेहिँ दीपेहिँ की नैवेद्ये । की हि कीजियइ मन्त्रहँ सेवे ॥१४॥

किन्तह तित्थ तपोवण जाई । मोक्ख कि लब्भइ पाणी न्हाई ॥१५॥
छाडहुरे आलीका वन्धा । सो मुचहु जो अच्छहु धन्धा ॥
तसु परिआणे अण्ण ण कोई । अवरें गणे सव्व'वी सोई ॥१६॥
सोवि पढिज्जइ सोवि गुणिज्जइ । सत्थ-पुराणे वक्खाणिज्जइ ॥
णहि सो दिट्ठि जो ताउ ण लक्खइ । एक्के वर गुरु-पाअे पेक्खइ ॥१७॥
झाण-हीण पव्वज्जे रहिअउ । घरहिं वसन्ते भज्जे सहिअउ ।
जइ भिंडि विसअ रमन्त ण मुच्चइ । सरह भणइ परिआण कि मुच्चइ ॥१६॥
जइ पच्चक्ख कि झाणे कीअअ । जइ परोक्ख अधार म धीअअ ॥
सरहें णित्ते कड्ढिउ राव । सहज सहाव ण भावाभाव ॥२०॥

(४) सहज-मार्ग

जल्लइ मरइ उवज्जइ वज्झइ । तल्लइ परममहासुह सिज्झइ ॥
सरहे गहण गुहिर मग कहिआ । पसू-लोअ निव्वहि जिम रहिआ ॥२१॥
झाण-रहिअ की कीअइ झाणें । जो अवाअ तहि काह वखाणे ॥
भव मुद्दे सअलहि जग वाहिउ । णिअ सहाव णउ केण' वि साहिउ ॥२२॥
मन्त ण तन्त ण धेअ ण ,धारण । सव्व' वि रे वढ ! विब्भम-कारण ॥
असमल चित्त म झाणे खरडह । सुह अच्छन्त म अप्पणु झगडह ॥२३॥

(५) भोगमें निर्वाण

खाअन्त पिअन्ते सुहहिं रमन्ते । णित्त पुण्णु चक्का'वि भरन्ते ॥
अइस धँम्म सिज्झइ परलोअह । णाह पाए दलीउ भअलोअह ॥२४॥

जहि मण पवण ण सचरइ, रवि ससि णाह पवेस ।
तहि वढ ! ! चित्त विसाम करु, सरहें कहिअ उएस ॥२५॥
आइ ण अन्त ण मज्झ णउ, णउ भव णउ णिब्वाण ।
एँहु सो परममहासुह, णउ पर णउ अप्पाण ॥२७॥

सअ-सवित्ति म करहु रें धन्वा । भावाभाव सुगति रे वन्धा ॥
णिअ मण मुणहुरें णिउणे जोई । जिम जल जलहिं मिलन्ते सोई ॥३२॥

की तेहि तीर्थं तपोवन जाई । मोक्ष कि लभियहि पानि नहाई ॥१५॥
छाडहु रे अलीका बन्धा । सो मुचहु जो आछै मन्दा ।
तसु परि-ज्ञाने अन्य न कोई । अपरे गने सर्व ही सोई ॥१६॥
सोइ पढिज्जइ सोइ गुणिज्जइ । शास्त्र-पुराणे वक्खानिज्जइ ।
नहिं सो दीख जों तब ना लक्खई । एकहिँ वर गुरु-पादें पेखई ॥१७॥
ध्यानहीन प्रव्रज्या - रहितउ । घरहि वसन्ते भार्या-सहितउ ॥
यदि दृढ विषय-रती ना मुचइ । सरह भणइ परि-ज्ञान कि मुचइ ॥१९॥
यदि प्रत्यक्ष कि ध्याने कीजिय । यदि परोक्ष अधारमे ध्याइय ।
सरहेहिं नित्ये काढिउ राव । सहज स्वभाव न भावाभाव ॥२०॥

(४) सहज-मार्ग

जरइ मरइ उपजइ बध्यायइ । तहँ लय होइ महासुख सिध्यइ ।
सरहे गहन गह्वर मग कहिया । पशू-लोक निर्बोध जिमि रहिया ॥२१॥
ध्यान-रहित की कीजै ध्याने । जो अवाक् तेहि, काहि बखाने ।
भव-मुद्रहिं जग सकल बहायउ । निज स्वभाव ना काहुहि साधेउ ॥२२॥
मत्र न तत्र न ध्येय न धारण । सर्वहु मूढ रें ! विभ्रम-कारण ।
निर्मल चित्त न ध्याने खीचहु । शुभ अछते न आपन झगडहु ॥२३॥

(५) भोगमें निर्वाण

खाते पीते सुखहिं रमन्ते । नित्य पूर्ण चक्रहू भरन्ते ।
अइस धर्म सिध्यइ परलोका । नाथ पाइ दलिया भयलोका ॥२४॥

जहँ मन पवन न सचरइ, रवि-शशि नाहिं प्रवेश ।
तहँ मुढ ! चित्त विश्राम करु, सरह कहेउ उपदेश ॥२५॥
आदि न अत न मध्य नहिं, नहिं भव नहिं निर्वाण ।
एँहु सो परममहासुख, नहिं पर नहिं अप्पान ॥२७॥

स्वक-सवित्ति न करहु रें मदा । भावाभाव सुगति रे वंधा ।
निज मन ध्यायहु निपुणे योगी । जिमि जल जलहिं मिलंते सोई ॥

पढमें जइ आभास विसुद्धो। चाहतें चाहतें दिट्ठि णिरुद्धो॥
एसें जइ आयास विकालो। णिअ मण दोस ण वुज्झइ वालो॥३४॥
मूल-रहिअ जो चिन्तइ तत्त। गुरु-उवएसे एत्त-विअत्त॥
सरह भणइ वढ! जाणहु चगे। चित्त-रूअ ससारह भगे॥३७॥
णिअ मण सब्वे सोहिअ जव्वें। गुरु-गुण हिअए पडसइ तव्वें॥
एवँ मणे मुणि सरहें गाहिउ। तन्त मन्त णउ एक्क'वि चाहिउ॥३९॥
जव्वे मण अत्थमण जाइ, तणु तुट्टइ वघण।
तव्वे समरस सहजे, वज्जइ सुद्द ण वम्हण॥४६॥

(६) काया तीर्थ

एत्थु सें सुरसरि जमुणा, एत्थ सें गगा साअरु।
एत्थु पआग वणारसि, एत्थु सें चन्द दिवाअरु॥४७॥
खेत्तु-पीठ-उपपीठ, एत्थु मइँ भमइ परिट्ठओं।
देहा-सरिसअ तित्थ, मइँ सुह अण्ण ण दिट्ठओं॥४८॥
सण्ड-पुअणि-दल-कमल-गन्ध केसर वरणालें।
छड्डहु वेणिम ण करहु सोसँण लग्गहु वढ! आलें॥४९॥
काय तित्थ खअ जाइ, पुच्छह कुल ईणओ।
वम्ह-विट्ठु तेलोअ, सअल जाहि णिलीणओ॥५०॥
वुद्धि विणासइ मण मरइ, जहि तुट्टइ अहिमाण।
स माआमअ परम फलु, तहिं कि वज्झइ झाण॥५३॥
भवहि उअज्जइ खअहि णिवज्जइ। भाव-रहिअ पुणु काहि उवज्जइ॥
विण्ण-विवज्जिइ जोऊ वज्जइ। अच्छह सिरि गुरुणाह कहिज्जइ॥५४॥
देक्खहु सुणहु परोसहु खाहु। जिग्घहु कमहु वइठ्-उट्ठाहु॥
आल-माल व्यवहारे पेल्लह। मण छड् एक्काकार म चल्लह॥५५॥

(७) गुरु-महिमा

गुरु-उवएसे अमिअ-रसु, धाव ण पीअउ जेहि।
वहु-सत्थत्थ-मरुत्थलहिँ, तिसिए मरिअउ तेहि॥५६॥

प्रथमे यदि आकाश विशुद्धा । देखत देखत दृष्टि निरुद्धा ॥
ऐसे यदि आयास विकालो । निज मन दोषहिं बूझ न बालो ॥३४॥
मूल-रहित जो चिन्तइ तत्त्व । गुरु-उपदेशे अस्त-व्यस्त ॥
सरह भनै मुढ ! जानहु चगा । चित्त-रूप ससारहु भगा ॥३७॥
निज मन सव्वै शोधिय जव्वै । गुरु-गुण हृदये पइसइ तव्वै ॥
ऐस समुझि मन सरहे गाहेँउ । तत्र-मत्र नहिं एकहु चाहेउ ॥३९॥
जव्वै मन अस्तमन जाइ, तन टूटइ बधन ।
तव्वै समरस सहजे, कहियइ शूद्र न व्राह्मण ॥४६॥

(६) काया तीर्थ

एहिँ सो सुरसरि जमुना, एहिँ सो गगासागर ।
एहिँ प्रयाग वाराणसी, एहिँ सो चद्र-दिवाकर ॥४७॥
क्षेत्र-पीठ-उपपीठ, एहीँ मै भ्रमउँ वाहिरा ।
देहा सदृशा तीर्थ, नही मै अन्यहिं देखा ॥४८॥
वन-पद्मिनि-दल-कमल-गध-केसर-वर-नाले ।
छाडहु द्वैतहि न करहु शोषण, मूढ ! न लागहु आरे ॥४९॥
काय तीर्थ क्षय जाय, पूछहु कुलहीनहँ ।
ब्रह्म-विष्णु त्रैलोक्य, सकलहिं निलीन जहँ ॥५०॥
वुद्धि विनासै मन मरै, जहँ टूटै अभिमान ।
सो मायामय परम-फल, तहँ की वाँधिय ध्यान ॥५३॥
भवहीँ उपजै क्षयहिं विनाशै । भाव-रहित पुनि का उत्पादै ॥
द्वैत-विवर्जित योगहुँ वर्जै । ऐसो श्रीगुरुनाथ कहीजै ॥५४॥
देखहु सुनहू छूवहु खाहु । सूँघहु भ्रमहु वइठु उट्ठाहु ॥
क्रय-विक्रय व्यवहारे पेल्लहु । मन छाडहु ऐंक-कार न चल्लहु ॥५५॥

(७) गुरु-महिमा

गुरु-उपदेशो अमृत-रस, धाइ न पीयेँउ जेहि ।
वहु-शास्त्रार्थ-मरुस्थलहिँ, तृषितै मरेँऊ तेहि ॥५६॥

चित्ताचित्ति'वि परिहरहु, तिम अच्छहु जिम बालु ।
गुरु-वअणे दिढ भत्ति करु, होइ जइ सहज उलालु ॥५७॥

अक्खर वण्ण परमगुण रहिजे । भणइ ण जाणइ एमइ कहिजे ॥
सो परमेसरु कासु कहिज्जइ । सुरअ-कुमारी जीम पडिज्जइ ॥५८॥

भावाभावे जो परिहीणो । तहिं जग सअलासेस विलीणो ॥
जब्बे तहँ मण णिच्चल थक्कइ । तब्बे भव-संसारह मुक्कइ ॥५९॥

जाव ण अप्पहिं पर परिआणसि । ताव कि देहाणुत्तर पावसि ॥
एमइ कहिजे भन्ति ण कव्वा । अप्पहि अप्पा वुज्झसि तव्वा ॥६०॥

घरें अच्छई वाहिरे पुच्छइ । पइ देक्खइ पडिवेसी पुच्छइ ॥
सरह भणइ वढ़ ! जाणउ अप्पा । णउ सो धेअ ण धारण-जप्पा ॥६२॥

विसअ रमन्त ण विसअँ विलिप्पइ । ऊअर हरइ ण पाणी छिप्पइ ॥
एमइ जोई मूल सरन्तो । विसहि ण वाहइ विसअ रमन्तो ॥६४॥

अणिमिस-लोअण चित्त णिरोहें । पवण णिरूहइ सिरि-गुरु-वोहें ॥
पवण वहइ सो णिच्चलु जब्बै । जोई कालु करइ कि रें तब्बै ॥६६॥

पण्डिअ सअल सत्थ वक्खाणइ । देहहिँ वुद्ध वसन्त ण जाणइ ॥
अवणागमण ण तेण विखण्डिअ । तो'वि णिलज्ज भणइ हँउ पण्डिअ ॥६८॥

जीवन्तह जो णउ जरइ, सो अजरामर होइ ।
गुरु-उवएसें विमल-मइ, सो पर धण्णा कोइ ॥६९॥

विसअ-विसुद्धें णउ रमइ, केवल सुण्ण चरेइ ।
उड्डी वोहिअ-काउ जिम, पलुटिअ तह'वि पड़ेइ ॥७०॥

विसआसत्ति म बन्ध करु, अरें वढ ! सरहे वुत्त ।
मीण-पअङ्गम-करि-भभर, पेक्खह हरिणहँ जुत्त ॥७१॥

जत्त'वि चित्तह विप्फुरइ, तत्त'वि णाह सरुअ ।
अण्ण तरग कि अण्ण जलु, भव-सम ख-सम सरुअ ॥७२॥

जत्त'वि पइसइ जलहि जलु, तत्तइ समरस होइ ।
दोस-गुणाअर चित्त तह, बढ़ ! परिवक्खण कोइ ॥७४॥

चित्त अचित्तहिं परिहरहु, तिमि होवहु जिमि बाल।
गुरु-वचने दृढ भक्ति करु, ज्यों होंइ सहज उलास ॥५७॥

अक्षर वर्ण परम गुण रहिए। भनइ न जानइ अइसे कहिये॥
सो परमेश्वर कासों कहिए। सुरत-कुमारी जिमि पतिऐहे ॥५८॥
भावाभावहिं जो परिहीना। तहँ जग सकलाशेष विलीना॥
जव्वै तहँ मन निश्चल थाकै। तव्वै भव-ससारहँ मुचै ॥५९॥
जौ लों ना आपुहिँ परि-जानै। तौ लों कि देह अनुत्तर पावै॥
ऐसेहि कहिये भ्रान्ति न कव्वै। आपुहि आपा बूझसि तव्बै ॥६०॥
घरे आछतै वाहर पूछै। पति देखई पडोसी पूछै॥
सरह भनै मुढ ! जानहु आपा। नहिं सो ध्येय न धारण जापा ॥६२॥
विषय रमन्त न विषय विलिपै। पदुम हरइ ना पानी भीजै॥
ऐसेहि योगी मूल बुझन्तो। विषय वहै ना विषय रमन्तो ॥६४॥
अनिमिष-लोचन चित्त निरोधे। पवन निरोधै श्री-गुरु-बोधे॥
पवन वहै सो निश्चल जव्वै। योगी काल करै कि रें तव्बै ॥६६॥
पडित सकल शास्त्र वक्खानै। देहहिं वुद्ध वसत न जानै॥
अवना-गवन न तेहिँ विखडित। तोपि निलज्ज भनै हौं पडित ॥६८॥

जीवन्तो जो ना जरै, सो अजरामर होइ।
गुरु-उपदेसे विमल मति, सो पर धन्या कोइ ॥६९॥

विषय विसुद्धे ना रमै, केवल शून्य चरेइ।
उडिया वोहित-काक जिमि, पलटिय तँहहि पडेइ ॥७०॥

विषयासक्ति न वन्ध करु, अरें मुढ ! सरहे उक्त।
मीन-पतगम-करि-भ्रमर, पेखहु हरिनहु युक्त ॥७१॥

जहँवाँ चित्ता विस्फुरै, तहँवै नाहि स्वरूप।
अन्य तरग कि अन्य जल, भव-सम ख-सम स्वरूप ॥७२॥

जहवाँ पइसै जलहिं जल, तहँवा समरस होइ।
दोष-गुणाकर चित्त तहँ, मुढ ! परिवीक्ष न कोइ ॥७४॥

सुण्णहिँ सङ्ग म करहि तुहु, जहिँ तहिँ सम चिन्तस्स ।
तिल-तुस-मत्त'वि सल्लता, वेग्रणु करइ ग्रवस्स ॥७५॥
सव्व रूग्र तहिँ ख-सम करिज्जइ । ख-सम-सहावें मण'वि धरिज्जइ ॥
सो'वी मणु तहि ग्रमणु करिज्जइ । सहज-सहावै सो परु रज्जइ ॥७७॥
घरें-घरें कहिग्रइ सोज्भु कहाणा । णउ परि सुणिग्रइ महसुह ठाणा ॥
सरह भणइ जग चित्तें वाहिग्र । सो ग्रचित्त णउ केण'वि गाहिग्र ॥७८॥
एक्कु देव वहु ग्रागम दीसइ । ग्रप्पणु इच्छें फुड पडिहासइ ॥७६॥
ग्रप्पणु णाहो ग्रण्ण' वि रुद्धो । घरें-घरें सोग्र सिधन्त पसिद्धो ॥
एक्कु खाइ ग्रवर ग्रण्ण 'वि पोडइ । वाहिँर गइ भत्तारह लोडइ ॥८०॥
ग्रावँत ण दिस्सइ जन्त णहि, ग्रच्छन्त ण मुणिग्रइ ।
णित्तरग परमेसुरु, णिक्कलङ्क धारिज्जइ ॥८१॥
सोहइ चित्त णिराल दिण्णा । ग्रउण-रुग्र मा देखह भिण्णा ॥
काग्र-वाग्र-मणु जाव ण भिज्जइ । सहज सहावै ताव ण रज्जइ ॥८३॥
घरवइ खज्जइ घरणिग्रहि, जहिँ देसहि ग्रविग्रार ।
माइएँ तहि की ऊवरइ, विसरिग्र जोइणि चार ॥८४॥
घरवइ खज्जइ सहजे रज्जइ, किज्जइ राग्र-विराग्र ॥
णिग्र पास वइट्ठी चित्ते भट्ठी, जोइणि महु पडिहाग्र ॥८५॥

(८) सहज सयम

इग्र दिवस णिसहि ग्रहीणमइ, तिहू जासु णिमाण ।
सो चित्त सिद्धी जोइणि, सहज सवरु जाण ॥८७॥
ग्रक्खर वाढा सग्रल जगु, णाहि णिरक्खर कोइ ।
ताव सें ग्रक्खर घोलिग्रा, जाव णिरक्खर होइ ॥८८॥
जिम वाहिर तिम ग्रब्भन्तरु । चउदह भुवणे ठिग्रउ णिरन्तरु ॥
ग्रसरिर काहें सरीरहि लुक्को । जो तहि जाणइ सो तहि मुक्को ॥८६॥
रुग्रणें सग्रल'वि जोंहि णउ गाहइ । कुन्दुरु खणहि महासुहें साहइ ॥
जिम तिसिग्रो मिग्र-तिसिणे धावइ । मरइ सोंसहिँ णभ-जलु कहिँ पावइ ॥९१॥

शून्यहि सग न करहुँ तैं, जहँ तहँ सम चिन्तेहि ।
तिल-तुष-मात्रउ शल्यता, वेदन करइ अवश्य ॥७५॥
सर्व रूप तहँ ख-सम करीजै । ख-सम स्वभावे मनहुँ धरीजै ॥
सो भी मन तहँ अ-मन करीजै । सहज स्वभावे सो पर कीजै ॥७७॥
घरें घरें कहियत सोझ कहाना । नहिं पर सुनियत महसुख थाना ॥
सरह भनै जग चित्तें बहाई । सो अचित्त ना केंहुहि गहाई ॥७८॥
एक देव वहु आगम दीसै । आपन इच्छे स्फुट परिभासै ॥७९॥
आपन नाथा अन्यहु रुद्धा । घरें घरें सोंइ सिद्धान्त प्रसिद्धा ॥
एक खाइ अरु अन्यहिँ फोडै । बाहर जाइ भतारैं लोडै ॥८०॥
अवत न दीसै जात नहिँ, होवत नहिँ जानीजै ।
निस्तरग परमेश्वर, निष्कलक धारीजै ॥८१॥
सोहै चित्त ललाटे दिन्ना । अपन रूप ना देखहु भिन्ना ॥
काय-वाक्-मन जौ ना भॉगै । सहज-स्वभावे तौ ना राजै ॥८३॥
घरनी खाइस घरपतिहिँ, जहँ देशे अविचार ।
मारिय तह की ऊबरै, विसरिय योगिनि चार ॥८४॥
घरपति खाइअ सहजै राजै, कीजै राग-विराग ।
निज पास बइट्ठी चित्ते भ्रष्टी, योगिनि मधु प्रतिभास ॥८५॥

(८) सहज संयम

इमि दिवस निशहिँ अभिमानै, त्रिभुवन जॉसु निर्माण ।
सो चित सिद्धा योगिनी, सहज सवरा जान ॥८७॥
अक्षर बाढा सकल जग, नाहिं निरक्षर कोइ ।
तौलौ अक्षर घोलिया, जौ लों निरक्षर होइ ॥८८॥
जिमि बाहर तिमि अभ्यन्तर । चौदह भुवने थितउ निरतर ॥
अशरिर कोंई शरीरे लूकेउ । जो तेंहिँ जानेंउ सो तहँ मुचेउ ॥८९॥
रूपणें सकलउ जो ना गहियै । कुदुरु क्षणहिँ महासुख साधै ॥
जिमि तृषितो मृगतृष्णे धावै । मरें सोखहिं, नभ-जल कहँ पावै ॥९१॥

कन्ध-भूअ-आअत्तण इन्दिअ-विसअ-विआर अप हुअ ।
णउ णउ दोहाच्छदेण, कहवि किम्पि गोप्पु ॥९२॥

पण्डिअ लोअहु खमहु महु, एत्थु ण किअइ विअप्पु ।
जो गुरु वअणे मइ सुअउ, तहि किं कहमि सु गोप्पु ॥९३॥

(९) कमल-कुलिश (वाममार्ग) साधना

कमल-कुलिस वे'वि मज्झ ठिउ, जो सो सुरअ-विलास ।
को न रमइ णह तिहुअणहिं, कस्स ण पूरइ आस ॥९४॥

खण-उवाअ सुह अहवा, अहवा वेण्णि'वि सो'वि ।
गुरु-प्पसाएँ पुराण जइ, विरला जाणइ कोवि ॥९५॥

गम्भीरह उआहरणें, णउ पर णउ अप्पाण ।
सहजाणन्द चउट्ठ खण, णिअ-संवेअण जाण ॥९६॥

घोरेंन्धारे चन्दमणि, जिम उज्जोअ करेइ ।
परम-महासुह एक्कु खणें, दुरिआसेस करेइ ॥९७॥

दुक्ख-दिवाअर अत्थगउ, उवइ तरावइ सुक्क ।
ठिअ-णिम्माणें णिम्मिअउ, तेण'वि मण्डल-चक्क ॥९८॥

चित्तहिं चित्त णिहालु वढ ! सअल विमुञ्च कुदिट्ठि ।
परममहासुहें सोज्झ परु, तसु आअत्ता सिद्धि ॥९९॥

मुक्कउ चित्त-गयद करु, एत्थ विअप्प ण पुच्छ ।
गअण-गिरी-णइ-जल पिअउ, तहिँ तड वसउ सइच्छ ॥१००॥

विसअ-गएँन्दे करें गहिअ, जिम मारइ पडिहाइ ।
जोई कवडीआर जिम, तिम तहों णिस्सरि जाइ ॥१०१॥

जो भव सो णिव्वाण खलु, सो उण मण्णहु अण्ण ।
एक्क सहावे विरहिअ, णिम्मल मइँ पडिवण्ण ॥१०२॥

घरहि म थक्कु म जाहि वणें, जहि तहि मण परिआण ।
सअलु णिरन्तर वोहि-ठिअ, कहिँ भव कहिँ णिव्वाण ॥१०३॥

स्कन्ध-भूत-आयतन-इन्द्री-विषय-विचार आप हुव ।
नव-नव दोहा-छन्देहिँ, कहब किछु गोप्य ॥९२॥
पडित लोगो क्षमहु मोहि, एहु न कियहु विकल्प ।
जो गुरु-वचने मै सुनेँउ, तेहि किमि कहब सुगोप्य ॥९३॥

(९) कमल-कुलिश (वाममार्ग) साधना

कमल-कुलिश दोउ मध्य थित, जो सो सुरत-विलास ।
को तेँहिँ रमै न त्रिभुवने, कासु न पूरै आस ॥९४॥
क्षण-उपाय सुख अथवा, अथवा दोऊ सोइ ।
गुरू-प्रसादे पुण्य यदि, विरला जानै कोइ ॥९५॥
गम्भीरेँहि उदाँहरणे, ना पर ना अप्पान ।
सहजानन्द चतुर्थ क्षण, निज-सवेदन जान ॥९६॥
घोर अन्हारे चन्द्रमणि, जिमि उद्योत करेइ ।
परम-महासुख एक क्षण, दुरित-अशेष करेइ ॥९७॥
दु ख-दिवाकर अस्त गउ, उयेँउ तारपति शुक्र ।
स्थित निर्माणे निर्मियउ, तेहिहिँ मण्डल-चक्र ॥९८॥
चित्रहिं चित्र निहार मुढ ! सकल विमुच कुदृष्टि ।
परम-महासुखे सोध पर, तासु हाथ मोँ सिद्धि ॥९९॥
मुक्तउ चित्त गयद कर, एहि विकल्प ना पूछ ।
गगन-गिरी-नदि-जल पियहु, तहँ तट वसै स्व-इच्छ ॥१००॥
विषय-गयन्दे कर गही, जिमि मारै प्रतिभास ।
योगी कैडीकार जिमि, तिमि तहँ निस्सरि जाइ ॥१०१॥
जो भव सो निर्वाणहू, सो पुनि मानहु अन्य ।
एक स्वभावे विरहिता, निर्मल मैँ प्रतिपन्न ॥१०२॥
घरहि न रहु ना जाहु वन, जहँ तहँ मन परि-जान ।
सकल निरतर बोधि थित, कहँ भव कहँ निर्वाण ॥१०३॥

एँहु सो अप्पा एँहु परु, जो परिभावइ को'वि ।
ते विणु वन्धे वेट्ठि किउ, अप्प-विमुक्कउ तो'वि ॥१०५॥

पर-अप्पाण मँ भन्ति करु, सअल णिरन्तर बुद्ध ।
एँहु सो णिम्मल परमपउ, चित्त सहावे सुद्ध ॥१०६॥

अद्दअ-चित्त-तरुअरह, गउ तिहुँवणेँ वित्थार ।
करुणा फुल्ली फल धरइ, णाउ परत्त उआर ॥१०७॥

सुण्णा तरूवर फुल्लिअउ, करुणा विविह विचित्त ।
अण्णा भोअ परत्त फलु, एहु सोँक्ख परु चित्त ॥१०८॥

सुण्ण तरूवर णिक्करुण, जहि पुणु मूल ण साह ।
तहि अलमूला जो करड, तसु पडिभिज्जइ वाह ॥१०९॥

एँक्केँ वी' एँक्के'वि तरु, तेँ कारणेँ फल एँक्क ।
ए अभिण्ण जो मुणइ सो, भव-णिव्वाण-विमुक्क ॥११०॥

जो अत्थी अणठीअउ, सो जइ जाइ णिरास ।
खण्णु सरावे भिक्ख वरु, त्यजहू ए गिहवास ॥१११॥

पर-ऊआर ण कीअऊ, अत्थि ण दीअउ दाण ।
एँहु ससारे कवणु फलु, वरु छड्डहु अप्पाण ॥११२॥

—दोहाकोष पृ० ८-२३

२—गीत

(१) संसार-निर्वाणका भेद बनावटी

(राग गुजरी)

अपणे रचि रचि भव निव्वाणा, मिच्छेँ लोअ बँधावइ अपणा ।
अक्खेँ ण जाणहु अचिन्त जोई, जाम-मरण भव कइसन होई ॥

जइसो जाम मरण 'वी तइसो, जीवँतेँ मइलेँ णाहि विशेशो ।
जा एथु जामा मरणेँ विशका, सोँ करउ रस-रसानेँ रे कखा ॥

जो सचराचर तिअस भमन्ति । जे अजरामर किम्प न होन्ति ।
जामे काम कि कामे जाम । सरह भणइ अचिन्त सो धाम ॥२॥

एँहु सो आपा एहु पर, जो परिभावै कोइ।
सो बिनु बधे बँध गयउ, आपु विमुक्तउ तोपि ॥१०५॥
पर-आपन ना भ्रान्ति करु, सकल निरतर बुद्ध।
एँहु सो निर्मल परम-पद, चित्त स्वभावे शुद्ध ॥१०६॥
अद्वय-चित्त-तरूवरा, गउ त्रिभुवन विस्तार।
करुणा फूली फल धरइ, ना परत्र उपकार ॥१०७॥
शून्य तरूवर फूलेँऊ, करुणा विविध विचित्र।
अन्या भोग परत्र फल, एँहू सौख्य परचित्त ॥१०८॥
शून्य तरूवर निष्करुण, जेँहि पुनि मूल न शाख।
तहँ अलमूला जो करै, तासुइ भाँगै वाह ॥१०९॥
एक्कै एक्के ही तरु, ते कारण फल एक।
एँहु अभिज्ञता करै सो, भव-निर्वाण-विमुक्त ॥११०॥
जो अर्थी अनथीअऊ, सो यदि जाइ निराश।
खड शरावे भिक्षहू, छाडहु एँहु गृहवास ॥१११॥
पर-उपकार न कीयेँऊ, अर्थि न दीजेँउ दान।
एहि ससारे कवन फल, वरु छाँडहु अप्पान ॥११२॥
—दोहाकोष पृ० ८—२३

२—गीत

(१) संसार-निर्वाणका भेद बनावटी

(राग गुजरी)

अपने रचि-रचि भव-निर्वाणा, मिथ्यै लोक बँधावै अपना।
मै ना जानहुँ अचिन्त योगी, जन्म मरण भव कैसन होई ॥
जैसो जन्म-मरणहू तैसो, जीवन मरणे नाहिँ विशेषो।
जो यह जन्म-मरण वीशका, सो कर स्वर्ण-रसायन काछा ॥
सो सचराचर त्रिदश भ्रमन्ति, ते अजरामर किमि ना होति।
जन्महिं कर्म कि कर्महिं जन्म, सरह भनै अचित सो धर्म ॥२॥

(२) सहज-मार्ग

(राग देशाख)

नाद न विन्दु न रवि-शशि-मण्डल , चीआ राअ - सहावे मूकल ।
उजु रे उजु छडि मा लेहु वक , निअडि वोहि मा जाहु रें लक ॥
हाथेर ककण मा लेंहु दप्पण , अपणे आपा बूझतु निअ-मण ।
पार - उआरें सोई मजिई , दुज्जण-सगे अवसरि जाई ॥
वाम - दहिण जो खाल-विखाला , सरह भणइ वप ! उजु वट भइला ॥३२॥

(राग भैरवी)

काअ नावडि खान्टि मण केडुआल । सद् गुरु वअणे धर पतवाल ॥
चीअ थिर करि धरहु रें नाई । अण्ण उपाए पार न जाई ।
नौवहि नौका टानअ गुणे । निर्मलि सहजे जाउ ण आणें ।
बाटत भअ खान्ट 'बी वलआ । भव-उल्लोलें सव्व वि' बलिआ ।
कूल लई खरें सोन्तें उजाअ । सरहा भणइ गंअणें समाअ ।

(राग मालशी)

सुण्णे हो विदारिअ रे निअ मण तोहोंर दोसे ।
गुरु-वअण विहारें रें थाकिव तइँ पुत ! कइसे ।
एकट हु भवई गअणा ।
वगे जाया नीलेसि पारे, भागेंल तोंहोंर विणाणा
अवाभुअ भव-मोह रे दीसइ पर अप्पाणा ।
ए जग जल-विवाकारे सहजें सूण अपाणा ।
अमिअ अच्छन्तें विस गीलेसि रे चिअ पर रस अप्पा ।
घरें परें का वुज्झीले मारि·खइव मइ दुठ कुँडवाँ ॥
सरह भणइ वर सून गोंहाली की मो दूठ वलन्दें ।
एक्केले जग नाशिअ रे विंहरहु छन्दें ॥३४॥
—चर्या पद[1]

[1] Caryapadas. J.D.L. Cal. vol. XXX, pp. 1—156

(२) सहज-मार्ग

(राग देशाख)

नाद न विन्दु न रवि-शशि-मण्डल । चित्ता राग स्वभावे मुचल ।
ऋजु रे ऋजु छाडि ना लेहु वक । नियरें बोधि न जाहु रें लक ॥
हाथेइ ककण ना लेहु दर्पण । अपने आपा बूझहु निज मन ॥
पारे - वारे सोंई मादई , दुर्जन् - सगे अवसर जाई ॥
वाम .दहिन जो खाल-विखाला , सरह भनै बाँप ! ऋजु वाटें भइला ॥३२॥

(राग भैरवी)

काय नावडी नीकी मन केडुवाल[१] । सद्गुरु वचने धरु पतवार ॥
चित्तैं थिर करु धरु रे नाई । अन्य उपाये पार न जाई ॥
नाविक नौकहिं खीच गुनेहि । मेली सहजे जानु न आनहिं ॥
वाटे भय बड़ ही बलवा । भव-उल्लोले सर्वउ कम्पा ॥
कूल लेइ खर स्रोतें बहाय । सरह भनै गगनहीं समाय ॥

(राग मालशी)

शून्य हो ! विदारिउ निज मन तोहरे दोषे ।
गुरु-वचन विहारे रे रहिबे तैं पुत ! कइसे ॥
एकटहु होई गगना ।
वके जाइ लीलेसि पारे, भाँगल तोंहर विज्ञाना ।
अद्भुत भव-मोह रे दीसइ पर अप्पाना ॥
ए जग जल-विवाकार सहजे शून्य अपाना ।
अमृत अछतै विष गिलेसि रे चित्त पर रस आपा ।
घरे परे का बूझीले मारि खाइब मैं दुष्ट कुटुवा ॥
सरह भनै वर शून्य गोंहारी की मोंर दुष्ट वलद्दे ।
एकले जग नाशेंउ रे विहरहु छन्दे ॥३९॥

—चर्यापद[१]

---

[१] पतवार

§ २. शबरपा

काल—८८० ई० (धर्मपाल-७७०-८०६)। देश—विक्रमशिला (भागलपुर)। कुल—क्षत्रिय, सिद्ध (५)। कृतियाँ—चित्तगुह्यगम्भीरार्थ-

(रहस्यवाद)

(गीत—राग वलाड्डि)

ऊचा ऊचा पावत तहिं वसइ सवरी वाली।
मोरँगि पिच्छ परिहिण शबरी गीवत गुजरि-माली॥

उमत शबरो पागल शबरो मा कर गुली-गुहाडा।
तोहोँरि णिअ घरिणी नामे सहज-सुन्दरी॥

नाना तरुवर मोँउलिल रे गअणत लागेँलि डाली।
एकेलि सवरी ए वण हिंडइ कर्ण कुंडल वज्रधारी॥

तिअ-धाउ खाट पडिला सबरो महासुहे सेज छाइली।
सवर भुजग नैरामणि दारी पेक्ख राति पोहाइली॥

चिअ ताँवोला महासुहे कापुर खाई।
सुन-नैरामणि कण्ठे लइआ महासुहे राति पोहाई॥

गुरु-वाक-पुजिआ धनु णिअ-मण वाणे।
एके शर सन्धाने विन्धह विन्धह परम-णिवाणे॥

उमत सवरो गुरुआ रोषे गिरिवर-सिहरे सधी।
पइसन्ते सबरो लोडिव कइसे ॥२८॥

—चर्यापद

§ २. शबरपा

गीति, महामुद्रा-वज्रगीति, शून्यतादृष्टि, षडंगयोग, सहज-संवर-स्वाधिष्ठान, सहजोपदेश-स्वाधिष्ठान ।

(रहस्यवाद)

(गीत—राग वलाड्डि)

ऊँचा ऊँचा पर्वत, तँह वसै शबरी बाली ।
मोर-पिच्छ पहिरले शबरी ग्रीवा गुजा-माली ॥
उन्मत शबरो पागल शबरो ना करु गुली-गुहाडा ।
तोँहार निज घरनी नामे सहज-सुन्दरी ॥
नाना-तरुवर मौरिल रे गगन ते लागल डारी ।
एकली शबरी यहि बन हीँडै कर्ण कुँडल वज्रधारी ॥
त्रिधातु-खाटे पडल शबरो महाँसुखेँ सेज छाइल ।
शवर भुजग निरात्मा दारी पेखत राति विताइल ॥
चित्त तावूला महासुख कपूर खाई ।
शून्य-नैरात्मा कंठे लेई महासुखे राति विताई ॥
गुरु-वाक-पुज धनुष निज-मन वाणे ।
एँक शर सधाने विंधहु परम-निर्वाण ॥
उन्मत शबरा गुरुआ रोषे गिरिवर-शिखरे साँधी ।
पइठत शबरहिँ लौटाइब कैसे ॥२८॥

—चर्यापद

§ ३. स्वयंभूदेव

कविराज। काल—७९० ई० (ध्रुव धारावर्ष ७८०-९४ ई०)। देश—कोसल (? मध्यदेश)। कुल—ब्राह्मण (?) कवि माउरदेव और पद्मिनीके

१—आत्म-परिचय

(१) कविका आत्मनिवेदन

बुह-यण सयभु पइँ विण्णवइ। महु सरिसउ अण्ण णाहि कुकइ॥
वायरणु कयाइ ण जाणियउ[1]। णउ वित्ति-सुत्त वक्खाणियउ॥
णा णिसुणिउ पच महाय कव्वु। णउ भरहु ण लक्खणु छदु सव्वु॥
णउ वुज्झिउ पिंगल-पच्छारु। णउ भामह-दडिय 'लकारु॥
वेंवें साय तो 'वि णउ परिहरमि। वरि रयडा वुत्तु कव्वु करमि॥

---

[1] ९२ संधियाँ या प्रायः १२००० श्लोक स्वयंभूने रचे। आगे ९३—१०८वीं संधितक त्रिभुवन स्वयंभूने रचा। कथा ९२ तकमें ही पूरी हो जाती है।

[2] ८३वीं संधि तक स्वयंभूने रचा। कथा यहीं पूरी हो जाती है, तो भी त्रिभुवन स्वयंभू ने ७ संधियाँ और जोड़ी है। स्वयंभू-रामायणकी सबसे पुरानी प्रति भंडारकर इन्स्टीटच्युट (पूना)में है। यह गोपाचल (ग्वालियर) में १५६४ ई० (संवत् १५२१ ज्येष्ठ सुदी १० बुधवार) को लिखकर समाप्त की गई। दूसरी प्रति जयपुरमें मिली है। इस प्रकार पहिली प्रति गोस्वामी तुलसीदासके देहान्त १६२३ ई० (संवत् १६८०) से ५९ वर्ष पहिले लिखी गई थी। तुलसीकृत रामायणकी भाँति यह रामायण भी चौपाई (पज्झडिया) में है, और आठ-आठ पाँतियों (अर्धालियों)के बाद दोहा या किसी दूसरे छन्दमें घत्ता (विश्राम) मिलता है। स्वयंभूके उक्त दोनो ग्रंथ अप्रकाशित है।

[1] इच्छानुसार ह्रस्वको दीर्घ करके पढ़िये ह्रस्वचिन्ह ˇ है।

§ ३. स्वंयभू*

पुत्र, आदित्यदेवीके पति, त्रिभुवन स्वयंभूके पिता। कृतियाँ—हरिवंशपुराण[1], रामायण (पउमचरिउ[2]), और स्वयंभू-छन्द।

१—आत्म-परिचय

(१) कविका आत्मनिवेदन

बुध-जन स्वयभु तोँहि वीनवई। मोँहि सरिसउ अन्य नाहि कुकवी॥
व्याकरण किछू ना जानियऊ। ना वृत्ति-सूत्र बक्खानियऊ॥
ना सुनेउँ पाँच महान् काव्य। ना भरत न लक्षण छन्द सर्व॥
ना बूझेउँ पिगल-प्रस्तारा। ना भामह - दडि - अलकारा॥
व्यवसाय तऊ ना परिहरऊँ। वरु रयडा कहेँउ काव्य करऊँ॥

---

*वाण (हर्ष ६०६–४८ ई०) और रविषेण (६७६ ई०)के नाम स्वयंभूने अपने ग्रंथमें लिये है; उधर पुष्पदंत (९५९–७२ ई०)ने स्वयंभूका नाम लिया है; इस प्रकार स्वयंभू ६७६ और ९५९के बीचमें हुये। वह रयडा (राजश्रेष्टी ?) धनंजयके आश्रित थे और उनके पुत्र त्रिभुवन स्वयंभू वंदइ (वंदक)के आश्रित। वंदइका ज्येष्ठ पुत्र गोविंद था। हमारे कवि (स्वयंभू)के नाम, श्रीपाल और धवलइय भी परिचित थे। किंतु उनमें कोई नाम प्रसिद्ध नहीं है। रामायणकी २०वीँ संधिमेँ उन्होंने "धुवराय राय व तइय भुअ-प्पणत्तिणत्तीसु याणुपायेण" पदमेँ ध्रुव-राज नामक किसी राजाका नाम दिया है। राष्ट्रकूटोँमें तीन ध्रुव हुये हैं, जिनमें एक महान् विजेता ध्रुव धारावर्ष (७८०-९४ ई०)था, दो उसके पुत्रसे होने वाली गुर्जर-शाखामें हुये, तो भी वह ८६७ ई०से पहिले हुये थे। ध्रुव धारावर्ष सेनाके साथ कन्नोज आया था। जान पडता है, उसीके अमात्य रयडाँके साथ स्वयंभू दक्षिण गये। ध्रुव धारावर्षके पुत्र इंद्रकी गुर्जर (खेडा) शाखामें दो ध्रुव थे—ध्रुव (प्रथम) धारावर्ष ८३०–३५, और ध्रुव (द्वितीय) ८६७ ई०।

सामाण भास छुड मा विहडउ । छुडु आगम-जुत्ति किंपि घडउ ॥
छुडु होंति सुहासिय-वयणाइँ । गामेल्ल - भास परिहरणाइँ ॥
एँहु सज्जण लोयहु किउ विणउ । ज अबुहु पदरिसिउ अप्पणउ ॥
ज एवँवि रूसइ कोवि खलु । तहों हत्युत्थल्लिउ लेउ छलु ॥
घत्ता। पिसुणें किं अब्भत्थिएण, जसु कोवि ण रुच्चइ ।
किं छण-इन्दु मरुग्गहे, ण कपतु विमुच्चइ ॥३॥

—रामायण १।३

इय एत्थ पउमचरिए धणजयासिय सयभु एव कए ॥

—रामायण (अन्त)

आइच्चएवि पडिमोवमाएँ, आइच्च नामा ए ।
वीअम उज्झा-कड सयभु-घरिणीएँ लेहाविय ॥

—रामायण ४२ (अन्त)

रावण-रामहु जुज्झु ज, त निसुणहु रामायण ।
जएँ लोयहु सुयणहु पडियाहु । सद्दत्थ - सत्य - परिचडियाहु ॥
किं चित्तइ गेह्लवि सक्कियाइँ । वासेण वि जाइँ न रजियाइँ ॥
तो कवणु गहणु अम्हारिसेहिँ । वायरण - विहूणहिँ आरिसेहिँ ॥
कइ अत्थि अणेअ-भेअ भरिया । जे सुयण सहासहिँ आयरिया ।
हुँउ किं वि न जाणमि मुक्खु मणे । णिय-बुद्धि पयासिय तो वि जणे ॥
ज सयलें वि तिहुवणें वित्थरिउ । आरभिउ पुणु राहव-चरिउ ॥

—रामायण २३।१

नहिँ अवसरि सरसइ धीरवइ । "करि कव्वु दिण्ण मइँ विमल मइ" ॥
इंदेण समप्पिउ वायरणु । रसु भरहें वासे वित्थरणु ॥
पिंगलेंण छन्द - पय - पत्थारु । भम्महँ-दंडिणिहि अलकारु ॥
वाणेण समप्पिउ घणघणउ । त अक्खर-डवर घण-घणउ ॥
हरिसेणिं पाणिउ णित्तणउ । अवरेहिँ मि कइहिँ कइत्तणउ ॥

—हरिवशपुराण १

सामान्य भाष यदि ना गढऊँ । यदि आगम-युक्ति किछू गढऊँ ॥
यदि होइँ सुभाषित वचनाईं । ग्रामीण - भाष - परिहरणाईं ॥
एँहु सज्जन-लोगहँ का विनऊ । जो अवुधि प्रदर्शोंउँ आपनऊ ॥
जो ऐसेंउ रूसै कोइ खला । तो हाथ-उछाला लेउ छल ॥
घत्ता । पिशुनहिं का अभ्यर्थना, जासु किछू ना रूचई ।
का पूर्णेन्दु मरुद् ग्रहें, हिं कपतो विमुन्चई ॥३॥

—रामायण १।३

एहु इहँ पद्म-चरिते, धनजयाश्रित स्वयभुये हिँ किये ।

—रामायण (अन्त)

आदित्यदेवि देवि-प्रतिमा अादित्यदेवीहिँ ।
द्वितिय अयोंध्याकाडहिँ लिखेंउ स्वयभु-घरनीहिँ ॥

—रामायण ४२ (अन्त)

रावण-रामहु जुद्धे जो । सोंई सुनहु **रामायण** ।
यदि लोग सुजन पडित अहै । शब्दार्थ-शास्त्र परिचित अहै ॥
की चित्तेहिँ ग्रहण न सक्कियाइँ । वासे हूँ होंहि न रजियाइँ ॥
तो कौन ग्रहण हमरे सदृशहिं । व्याकरण - विहून एतादृशहिँ ॥
कवि अहे अनेक-भेद-भरिया । जे सुजन स्वभाषहिँ आचरिया ॥
हौं किछुअ न जानउँ मूर्ख-मने । निज वुद्धि प्रकासेउँ तोउ जने ॥
जो सकलेहिँ त्रिभुवने विस्तरिऊ । आरभेंउ पुनि राघव-चरिऊ ॥

—रामायण २३।१

तेंहि अवसर सरसति धिरजाती । "करु काव्य, दियो मैं विमलमति ।।"
इन्द्रेहि समर्पेउ व्याकरणा । रस भरत सु-वासहि विस्तरणा ॥
पिंगलेंहिँ छन्द - पद - प्रस्तारा । भामह दडिनेहि अलकारा ॥
वाणेहिँ समर्पेउ घनघनऊ । सो अक्षर - डवर घन - घनऊ ॥
हरिसेनने पानिउ आपनऊ । अवरेंहिँ कवियेहिँ कवित्वनऊ ॥

—हरिवशपुराण १

छव्वरिसाइँ तिमासा एयारस वासरा सयभुस्स ।
वाणवइ संधि करणे, वोलिणो इत्तिओ कालो ॥
दियहाहियस्स वारे दसमी-दियहम्मि मूल-णक्खत्ते ।
एयारसम्मि चंदे' उत्तरकंड समाढत्त ॥
—हरिवंशपुराण ६२।३, ४

भद्दमासें विणासिय-भवकलि । हुउ परिपुण्ण चउद्दिसि णिम्मलि ॥
—हरिवंशपुराण (अंत)

धुवराय व तइय लु अप्पठत्ति-णत्ती सु याणु पाढेण
णामेण सामि अव्वा सयभु-घरिणी महासत्ता ॥
—रामायण २० (अन्त)

(२) रामायण-रचना

अक्खर - वास - जलोह - मणोहर । सुयलंकार -छंद-मच्छोहर ॥
दीह-समास-पवाहा-वंकिय । सक्कय-पायय-पुलिणा-लंकिय ॥
देसी-भासा-उभय-तडुज्जल । कवि-दुक्कर-घण-सद्द-सिलायल ॥
अत्थ-वहल-कल्लोला णिट्ठिय । आसा-सय-सम-ऊह-परिट्ठिय ॥
राम-कहा सरि एँह सोहंती ।.. . . ..
—रामायण १

२—ऋतु और काल-वर्णन

(१) पावस

सीय स-लक्खण दासरहि, तरुवर-मूलें परिट्ठिय जावेंहिं ।
पसरइ सुकइहि कव्वु जिह, मेह-जालु गयणगणें तावेंहिं ॥
पसरइ जेम वुद्धि वहु-जाणहों । पसरइ जेम पाउ पाविट्ठहों ॥
पसरइ जेम धम्मु धम्मिट्ठ हों । पसरइ जेम जोण्ह मयवाहहों ॥
पसरइ जेम कित्ति जगणाहहों । पसरइ जेंम चिंता धणहीणहों ॥
पसरइ जेम कित्ति सुकुलीणहों । पसरइ जेम किलेसु णिहीणहु ॥

छै वर्ष तिमास इग्यारह वासरा स्वयभूको ।
बानवे सधि रचने हि, बोलियउ एत्तनो कालो ॥
दिवसाधिप को वार, दशमी दिवस मूल-नक्षत्रे ।
ग्यारहवे चद्र(मासे) उत्तरकाड समाप्त भवो ॥
—हरिवशपुराण

भादौ मास विनाशित भव कलि, हुअ परिपूर्ण चऊदस निर्मले ।
—हरिवशपुराण (अन्त)

ध्रुव राजा . . . .
नामेन स्वामि . . .स्वयभुघरिनी महासत्त्वा ॥
—रामायण २० (अन्त)

(२) रामायण-रचना

अक्षर - वास - जलोघ - मनोहर । सु - अलकार - छद - मत्स्योधर ॥
दीर्घसमास-प्रवाहहिँ वकित । सस्कृत-प्राकृत-पुलिनालकृत ॥
देशी भाषा दोउ-तट उज्ज्वल । कवि-दुष्कर-घन-शब्द-शिलातल ॥
अर्थ-बहुल कल्लोलहिँ सज्जित । आशा-शत-सम-ओघ-समर्पित ॥
राम-कथा सरि एहु सोहती । . . . .
रामायण १

२—ऋतु- और काल-वर्णन

(१) पावस

सीय स-लक्ष्मण दाशरथि, तरुवर-मूले वैठेँउ जबहीँ ।
पसरै सुकविहिँ काव्य जिमि, मेघ-जाल गगनगणे तबहीँ ॥
पसरै जिमि बुद्धी वहु-ज्ञानहँ । पसरै जिमि पापा पापिष्टहँ ।
पसरै जिमि धर्मा धर्मिष्टहँ । पसरै जिमि ज्योत्स्ना मृगवाहहँ ॥
पसरै जिमि कीर्ती जगनाथहँ । पसरै जिमि चिन्ता धनहीनहँ ॥
पसरै जिमि कीर्त्ती सुकुलीनहँ । पसरै जिमि किलेश निहीनहँ ॥

पसरइ जेम सद्द सुर-तूरहों । पसरइ जेम रासि णहें सूरहों ॥
पसरइ जेम दवग्गि वणतरे । पसरिउ मेह-जालु तह अवरे ॥
तड़ि तड-तड़इ पडइ घणु गज्जइ । जाणइ रामहों सरणु पवज्जइ ।
घत्ता । अमर महद्धणु गहिय करें, मेह-गइन्दे चडिवि जस-लुद्धउ ।
उप्परि गिंभ णराहिवहों, पाउस-राउ णाइँ सण्णद्धउ ॥१॥
जे पाउस-णरिन्दु गल-गज्जिउ । धूली रउ गिंभेण विसज्जिउ ॥
गपिणु मेह विंदि आलग्गउ । तडि करवालु पहारें हिँ भग्गउ ॥
ज 'वि वरम्मुहु चलिउ विसालउ । उट्ठिउ हणु-हणतु उण्हालउ ॥
धग-धग-धग-धगतु उद्धाइउ । हस-हस-हस-हसतु सयाइउ ॥
जल-जल-जल-जलतु पयलतउ । जालावलि-फुलिग मेल्लतउ ॥
धूमावलि-धय-दड ब्भेप्पिणु । वर-वाउल्लि-खग्ग कड्ढेप्पिणु ॥
झड़-झड-झड़-झड़तु पहरतउ । तरुअर-रिउ भड-थ ड-भज्जतउ ॥
मेह-महग्गय-घड विहडतउ । ज उण्हालउ दिट्ठु भिड़तउ ॥
पाउस-राउ ताव सपत्तउ । जल-कल्लोल-सति पयडतउ ।
घत्ता । घणु अप्फालिउ पाउसेण, तडि-डकार-फार दरिसतउ ।
चोइवि जलहर-हत्थि-हड, णीर सरासणि मुक्क तुरतउ ॥२॥
जल-वाणासणें घायहिँ धाइउ । गिण्हु णराहिउ रणें विणिवाइउ ।
दद्दुर रडें वि लग्ग ण सज्जण । ण णच्चति मोर खल-दुज्जण ॥
णं पूरेत सरिउ अक्कदें । ण कइ किलकिलन्ति आणन्दें ।
ण परहुय विमुक्कु उग्घोसें । ण वरहिण लवति परिऊसें ।
ण सरवर वहु असु-जलोल्लिय । ण गिरिवर हरिसें गजोल्लिय ।
ण उण्हविय दवग्गि विऊएँ । ण णच्चिय महि विविह-विणोए ।
ण अत्थविउ दिवायर दुक्खे । ण पइसरइ रयणि सइ सोक्खे ।
रत्तपत्त-तरु-पवणाकपिय । केण'वि काहेउ गिंभुऊ जपिय ।
घत्ता ॥ तेहएँ कालें भयाउरये, विण्णि'वि वासुएव वलएव ।
तरुवर-मूलें स-सीय थिय, जोग लयेविणु मुणिवर जें व ॥३०॥

—रामायण २८।१-३

पसरै जिमि शब्दा सुर-तूर्यहूँ । पसरै जिमि राशि नभें सूरहूँ ॥
पसरै जिमि दावाग्नि वनातरें । पसरेंउ मेघ-जाल तिमि अंबरें ॥
तडि तड-तडै पडै घन गरजै । जानकि रामहूँ शरणहिं व्रजै ॥
घत्ता । अमर महाधनु गहि करै, मेघ गयदे चढेंउ यशलुब्धा ।
ग्रीष्म नराधिप कहँ ऊपर, पावस-राज केर दल सज्जा ॥१॥
जनु पावस-नरेन्द्र गल-गर्जेउ । धूली-रज ग्रीष्मेहि विसर्जेउ ॥
जपिय मेघवृन्द आ-लागेउ । तडि करवाल प्रहारेहिं भागेउ ।
जनु हि पराङ्-मुख चलेंउ विशाला । उट्ठेंउ हनहनत ऊष्णाला ।
धग-धग-धगत उद्-धायउ । हस-हस-हस-हसन्त सजायउ ।
ज्वल-ज्वल-ज्वल-ज्वलत प्रचलता । ज्वालावलि फुलिंग मेलता ।
धूमावलि-ध्वज-दड उठायेउ । वर-वादली खड्ग कड्ढायेउ ।
झड-झड-झड-झडत प्रहरता । तरुवर-रिपु भट-ठट भज्जता ।
मेघ महागज-घट विघटता । जनु उष्णाला दीख भिडता ।
पावस-राव तवहिं आयता । जल-कल्लोल शाति प्रकटता ।
घत्ता । धनु फरकायेउ पावसहिं, तडि टकार फार दरसता ।
प्रेरिय जलधर-हस्ति-घट, तीर शरासन मोचु तुरता ॥२॥
जल-वाणासने घातहिं धायेउ । ग्रीष्म नराधिप रणेहिं निपातेउ ।
दादुर रटन लागु जनु सज्जन । जनु नाचई मोर खल-दुर्जन ।
जनु पूरहिं सरिता आक्रदे । जनु कपि किलकिलति आनन्दे ।
जनु परभृत विमोचु उद्घोषे । जनु वहिन लपति परदोषे ।
जनु सरवर वहु-अश्रु-जलोल्लित । जनु गिरिवर हर्षे गजोल्लित ।
जनु ऊपमिय दवाग्नि वियोगें । जनु नाचिय महि विविधि-विनोदे ।
जनु अस्तमेउ दिवाकर दुखे । जनु पइसे रजनी सति सौख्ये ।
रक्तपत्र-तरु-पवना-कपिय । केंहेहि कहेउ ग्रीष्मऊ जल्पिय ।
घत्ता । तेहेंहि कालें भयातुरे, दोउहि वासुदेव वलदेव ।
तरुवर-मूलें स-सीय चित, जोग लइय मुनिवर जेम ॥३॥

—रामायण २८ ।१-३

(२) वसंत

कुव्वर-णयरु पराइय जावेंहि । फागुण-मासु पवोलिउ तावेहि ।
पइठु वसत-राउ आणदें । कोइल-कलयलु मगल-सद्दें ।
अलि-मिहुणेंहिँ वंदिणेंहिँ पढन्तेंहिं । वरहिण वावणेहि णच्चतेहिँ ।
अदोला-सय-तोरणवारेंहिँ । ढुक्कु वसतु अणेय-पयारेंहिँ ।
कत्थइ चूअ-वणइ पल्लवियइँ । णव-किसलय-फल-फुल्लु ’ब्भवियइँ ।
कत्थइ गिरि-सिहरहिँ विच्छायइँ । खल-मुँहु इव मसि-वण्णइँ जायइँ ।
कत्थइ माहव-मासहों मेइणि । पिय-विरहेण ’व सूसइ कामिणि ।
कत्थइ गिज्जइ-वज्जइ मदलु । णर-मिहुणेहिँ पणच्चिउ गोदलु ।
त तहों णयरहों उत्तर-पासेंहिँ । जण-मण-हरु जोयण-उद्देसेहिँ ।
दिट्ठु वसत-तिलउ उज्जाणु । सज्जण-हियउँ जेम अपमाणु ।
—रामायण २६।५

ण दीसर-पइ सारऍं सारऍं । माहव-मासु णाइ हक्कारइ ।
सासय-सिव स पावणें पावणें । दरिसावियउ फग्गुणे फग्गुणें ।
णव-फल-पारिपक्काणणें काणणें । कुसुमिय साहारऍं साहारए ।
रिद्धि गयक्कोक्कणयहि कणयहों । हस ब्भसिये कु-वलऍं कुवलऍं ।
महुयर महु मज्जतऍं जतऍं । कोइल वासतऍं वासतए ।
कीर-वदि उट्ठतए-ठतए । मलयाणिलें आवतऍं वतऍं ।
मधुवरि-पडिसल्लावए लावए । जहि णवि तित्तिरयहों तित्तिरऍं ।
णाउ ण णावइ किंसुइ किंसुइ । जहि वसेण गय-णाहहों णाहहों ।
तहि तणु तप्पइ सीयहें सीयहें ।
घत्ता—अच्छउ सामण्णे केणवि अण्णो, जहि अइमुत्तउ रइ करइ ।
त जण-मण-मज्जावणों, सच्छ-सहावणु को महुमासु ण सभरइ ॥१॥
कत्थइ अगारय-सकासउ । रेहइ तविरु फुल्ल पलासउ ।
ण दावाणलु आउ गवेसउ । “को मइ दड्ढ ण दड्ढु पएसउ” ।

(२) वसंत

कुव्वर नगर पहूँचेउ जब्बहिं । फागुन-मास प्रवोलेउ तव्वहिं ।
पइसु वसत-राव आनन्दे । कोइल-कलकल मगल-शव्दे ।
अलि-मिथुनेँहिं वद्रीहिं पढन्तेँहिं । वर्हिन वामनेंहिं नाचतेहि ।
अन्दोलित-शत-तोरणवारेहिँ । ढुक्कु 'वसत अनेक-प्रकारहिँ ।
कहिं कहिँ चूत-वनहिँ पल्लवितहिँ । नव-किसलय-फल फूलु' द्भवितहिँ ।
कहिँ कहिँ गिरिशिखरा वि-च्छाया । खल-मुख इव मसिवर्णहिँ लाया ।
कहिँ कहिँ माधव-मासहिँ मेदिनि । प्रिय-विरहेँहिँ जनु श्वसही कामिनि ।
कहिँ कहिँ गावै वाजै मॉदर । नर-मिथुनेहिँ प्रनाचेँउ गोँदल ।
सो तेहिँ नगरहँ उत्तर-पासेँ । जन-मनहर योजन-उद्देशेँ ।
दीख वसत-तिलक उद्याना । सज्जन हियहिँ यथा अप्रमाणा ।
—रामायण २६।५

जनु दीवस-पति धीरेइँ धीरे । माधव-मास न्याइँ हकारे ।
शाश्वत-शिव इव पावन-पावन । दरसायऊ फागुने फा-गुन ।
नव-फल-परिपक्वानन कानन । कुसुमेँउ सहकारे-सहकारे ।
ऋद्धि गयेउ कोकनद करकहँ । हसा हँसे कुवलय कु-वलय ।
मधुकर मधु मज्जते याते । कोकिल वासतेँ वासतेँ ।
कीर-वदि उट्ठते ठते । मलयानिल आवते-वते ।
मधुकरि प्रतिसलापै लापै । जहँ नव-तीतरयेँ तीतरये ।
नाम न नावै किंशुकि किं-सुकि । जँह वशेहि गजनाथहँ नाथहँ ।
तहँ तनु तप्पै सीतहँ शीते ।
घत्ता—आछेउ सामान्ये कौनहुँ अन्ये, जहँ अतिमुक्तउ रति करइ ।
जन-मन-मज्जावन, स्वच्छ-सुहावन, को मधु-मास न आदरइ ॥१॥
कहिँ कहिँ अगारक-सकाशा । राजै तामरु फुल्ल पलाशा ।
जनु दावानल आइ गवेषा । "को मैं दाहु न दाहु प्रदेशा" ।

कत्थवि माहविए णिय-मदिरु । यतु णिवारिउ त इंदिदिरु ।
ऊसरु ऊसरुतहु अपवित्तउ । अण्णएँ णव पुप्फवइएँच्छित्तउ ।
कत्थइ मूय-कुसुम-मजरियउ । णाइ वसत वडायउ धरियउ ।
कत्थइ पवण-हयइ पुण्णायइ । ण जगें उत्यल्लिया पुण्णायइ ।
कत्थइ अहिणवाड भमरउलइ । थियइ वसत-सिरिहृ ण कुरुलइ ।
फणसइ अवुह-मुहा इव जड्डइ । सिरि-हलाइ सिरिहल इव वड्डइ ।
—रामायण ७१।१-२

(३) संध्या-वर्णन

उवहसइ सझाराउ सुह-वघुरु । विद्दुमयाहरु मोत्तिय-दतुरु ।
छिवइ'व मत्थउ मेरु-महीहरु । तुज्झुवि मज्झुवि कवणु पईहरु ।
ज चद-कंत-सलिलाहिसित्तु । अहिसेय-पणालु'व फुसिय चित्तु ।
ज विद्दुम-मरगय-कतिआहि । थिउ गयणु'व सुरघणु-पतिआहि ।
ज इदणील-माला-मसीएँ । आलिहइ वदि भित्तीएँ तीए ।
जहि पोमराय-पह तणु विहाइ । थिउ अहिणव-सझाराउ णाइ ।
जहि सूरकंति खेइज्जमाणु । गउ उत्तर-येसहों णाइ भाणु ।
जहि चद-कति मणि-चदियाउ । णव-यद-ब्भासें चदियाउ ।
अच्छरिउ कुमार चवति येव । वहु चदी-हूयउ गयणु केम ।
पिक्खेप्पिणु मुत्ता-हल-णिहाय । गिरि-णिज्झर भणेवि घुवत्ति पाय ।
—रामायण ७२।३

३. भौगोलिक वर्णन

(१) देश-वर्णन

अवहत्थे'वि खल-यणु णिरवसेसु । पहिलउ णिरु वण्णमि मगह-देसु ।
जहिं पक्क-कलम-कमलिणि णिसण्णु । अलहत तरणि थेरव विसण्णु ।

कहिँ कहिँ माधविया निज मदिर । जोउ निवारेउ इदिदिरू ।
ऊसर ऊस ऋतुहुँ अपवित्रा । अन्ये नव पुष्पवतिएँ क्षिप्तउ ।
कहिँ कहिँ मूक कुसुम-मजरिया । न्याइँ वसत बडापउ घरिया ।
कहिँ कहिँ पवनाहत पुन्नागा । जनु जग ऊछल्ले ँउ पु-नागा ।
कहिँ कहिँ अभिनव-भ्रमर-कुलाऊ । रहे ँउ वसत-सिरिहि इव कुरुलउ ।
पनसा अवुध-मुखा इव जड्डा । सिरि-फल सिरिफलाहि इव बड्डा ।
—रामायण

(३) संध्या-वर्णन

उपहसै सध्या-राग सुख-बधुर । विद्रुमक-अधर, मौक्तिक-दतुर ।
छुवइ इव मस्तक मेरु-महीधर । तुम्हरे ँउ हमरे ँउ कवन पतीघर ।
जनु चद्रकान्त सलिलाभिषिक्त । अभिषेक-प्रणालि 'व स्पृशित-चित्त ।
जनु विद्रुम-मरकत-कातियाहि । रहु गगन इव सुरधनु-पक्तियाहि ।
जनु इद्रनील-माला-मसीहि । आलिखइ बन्द भित्तीहि ताहि ।
जहँ पद्मराग-प्रभ-तनु विभाहिं । रहु अभिनव-सध्या-राग न्याइँ ।
जहँ सूर्यकाति क्षीइज्जमान । गउ उत्तर-देसहिं न्याइ भानु ।
जहँ चद्रकातमणि-चद्रियाव । नव-चद्राभासे चद्रिकाव ।
अँचरजे ँउ कुमार च्यवत एव । बहु चद्रीभूतउ गगन केम ।
पेखियवउ मुक्ताफल-निभाय । गिरि-निर्झर भनि धोवत पाय ।
—रामायण ७२।३

३–भौगोलिक वर्णन

(१) देश-वर्णन

अपभ्रशे ँउ खल-जन-अनवशेष । पहिले ँउ मै वर्णउँ मगह-देश ।
जहँ पक्व कलम-कमलिनि निषण्ण । अलभत तरणि थिरवहिँ विषण्ण ।

जहिँ सुय-पतिउ सुपरिट्ठिआउ । ण वणसिरि-मरगय-कठियाउ ।
जहिँ उच्छु-वणइ पवणाहयाइँ । कपति'व पीलणभय-गयाइ ।
जहिँ णंदण-वणइँ मणोहराहँ । णच्चति'व चल-पल्लव-कराइँ ।
जहिँ फाडिम-वयणइँ दाडिमाइँ । णज्जति ताइ ण कइ-मुहाइँ ।
जहिँ महुयर-पतिउ सुदराउ । केअइ-केसर-रय-धूसराउ ।
जहिँ दक्खा-मडव परियलति । पुणु पथिय रस-सलिलइँ पियति ।
—रामायण १।४

(२) नगर-वर्णन

(क) राजगृह

घत्ता । तहिँ पट्टणु णामेँ रायगिहु, धण-कणय-समिद्धउ ।
ण पुहइएँ णव-जोव्वणाइ, सिरि-सेहरु आइद्धउ ॥४॥
चउ गोअरु-त्ति पायार-वन्तु । हँस इव मुत्ताहल-धवल-दन्तु ।
णच्चइ'व मरुद्धुय-धय-करग्गु । वर इव णिवडतउ गयण-मग्गु ।
सूलग्ग-भिण्णु देउल-सिहरु । कण इव पारावय-सद्द-गहिरु ।
घुम्मइ'व गएँहि मयभिभलेहिँ । उडुइ'व तुरगहि चचलेहिँ ।
ण्हाइ'व ससिकत-जलोयरेहिँ । पणवइ'व तार-मेहल-हरेहिँ ।
पक्खलइ' व नेउर-णिय-लएहिँ । विप्फुरइ'व कुडल-युयलएहिँ ।
किलकिलइ 'व सव्व-जणोच्छवेण । गज्जइ इव मुख-भेरी-रवेण ।
गायइ 'व अलाव-णिमुच्छणोहिँ । पुरवइ 'व धम्मु धण-कचणेहिँ ।
—रामायण १।५४-५

(ख) महेन्द्रनगर

घत्ता । गयणगणेँ थिएण, विज्जाहर-पवर णरिन्दहोँ ।
णाइ स-णिच्छरेण, अवलोइउ णयरु महिंदहोँ ॥१॥
चउ-दुवारु चउ-गोअरु चउ-पायारु-पडर । गयण-लग्ग पवणाहय-धयमालाउर पुर ।
गिरि-महिन्द-सिहरे रमाउले । रिद्धि-विद्धि-धण-धण्ण-सकुले ।
तं णिएवि हणुयेण चिंतिय । सुरपुर किंमिदेण घत्तिय ।
—रामायण ४६।१-२

जहँ शुक-पक्तिउ सुपरि-स्थिताव । जनु वन-श्री-मरकत-कठियाव ।
जहँ इक्षु-वना पवनाहता । कपत इव पेलन-भय-भीता ।
जहँ नदन-वने मनोहरा । नाचत इव चल-पल्लव-करा ।
जहँ फाटे वदन दाडिमा । दीखत से वे जनु कपि-मुखा ।
जहँ मधुकर-पक्तिउ सुदराईं । केतकि-केसर-रज-धूसराईं ।
जहँ दाखा-मडप परिचलहीं । पुनि पथिक रस-सलिलहि पियहीं ।
—रामायण १।४

(२) नगर-वर्णन

(क) राजगृह

घत्ता । तहँ पत्तन नामा राजगृह, धन-कनक-समृद्धउ ।
जनु पुहुमिहिँ नवयौवन-श्री-शेखर आदेशितऊ ॥
चौगोपुर चौप्राकार-वन्त । हँस इव मुक्ताफल धवल-दन्त ।
नाचत 'व मरुत-धुत-ध्वज-कराग्र । धारा इव पडतो गगन-मार्ग ।
शूलाग्र विँधेँउ देवल-शिखर । क्वण इव पारावत शब्द-गहिर ।
धूँवत इव मद-विह्वल-गजेहिँ । ऊडत इव तुरगेँहिँ चचलेहिँ ।
न्हावत शशिकात-जलोदरेहिँ । प्रणमति 'व तार-मेखल-धरेहिँ ।
प्रस्खलइ 'व नूपुर-निजलयेहिँ । विस्फुरइ 'व कुडल-जुगलऐहि ।
किलकिलति 'व सर्व-जनोत्सवेन । गर्जति 'व मुरज-भेरी-रवेन ।
गायति 'व अलापा-मूर्छनेहिँ । पूरति 'व धर्म-धन-काचनेहिं ।
—रामायण

(ख) महेन्द्रनगर

घत्ता । गगनागणे स्थितउ, विद्याधर-प्रवर-नरेन्द्रहु ।
न्याइँ स-निश्चरहिँ, अवलोकेउ नगर-महेन्द्रकहु ।
चौद्वार चौगोपुर चौप्राकार पाडुर । गगन लाग पवनाहत-ध्वजमालाकुल पुर ।
गिरि-महेन्द्र-शिखरे रमाकुल । ऋद्धि-वृद्धि-धनधान्य-सकुल ।
ताहि देखि हनुमत चितयेँउ । सुरपुर किमि इन्द्र धरत्तियउँ ।
—रामायण ४६।१-२

(ग) दधिमुख-नगर

मण-गमणेण तेण णहें जते। दहिमुह-णयरु दिट्ठु हणुवते।
दिट्ठु राम-सीमा चउपासेंहि। धरिउ णाइ पुर-रिणिय सहासेंहि।
जहि पफुल्लियाइँ उज्जाणइ। वट्टइ[1] ण तित्थयर-पुराणइ।
जहि ण कयावि तलायइ सुक्कइ। ण सीयलइ सुट्ठु पर-दुक्खइ।
जहि वाविउ वित्थय-सोवाणउ। ण कुगइ'व हेट्ठा-मुह-गमणउ।
जहि पायार ण केणवि लघिय। जिण-उवएस णाइ गुरु-लघिय।
जहि देउलइ धवल-पुडरियइँ। पोत्था वायरणइ बहु-चरियहँ।
जहिं मदिरइँ स-तोरणवारइँ। ण सम-सरणइँ सहपरिवारइँ।
जहि भुव-णेत्त-सुत्त दरिसावण। हरि-हर-वम्हेहि जेहा आवण।
जहि वर-वेसउ तिणयण-भूवउ। पवन-भुयग-सतहि अणुहूअउ।
जहि गयणत्थ-वसह हर हरसइ। राम-तिलोयण जेहा गहवइ।
घत्ता—तहि पट्टणें वहु उवमह भरिअएँ, ण जगें सुकइ-कव्वि वित्थरियएँ।
सहइ स-परियणु दहिमुहि-राणउ, ण सुरवइ सुरपुरहों पहाणउ ॥१॥
रामायण ४७।१

(३) समुद्र-वर्णन

णिद्दलिय भुअग-विसग्गि मुक्कु। मुक्कत ण वर-सायरहु ढुक्कु[2]।
ढुक्कतेंहि वहल फुलिंग घित्त। घण सिप्पि-सख-सपुड-पलित्त।
धग-धग-धगति मुत्ता-हलाइँ। कढ-कढ-कढति सायर - जलाइँ।
हस-हस-हसन्ति पुलिणतराइँ। जल-जल-जलन्ति भुवणतराइँ।
—रामायण २७।५

सचल्लेउ राहव साहणेण। संघट्टिउ वाहणु वाहणेण।
थोवतरे दिट्ठु महासमुद्दु। सुसुयर-मयर-जलयर-रउद्द।
मच्छोहरु-णक्क-गोहु घोरु। कल्लोलावतु तरग-थोरु।

[1] बाटै, बाडै, बाय [2] देख्यो (ब्रज और बुंदेली)

(ग) दधिमुख-नगर

मनकी गतिसों सो नभ जता। दधिमुख नगर देखु हनुमता।
देखु अराम-सीम चौपासेंहिं। धरेंउ जनू पुर-रणित सहासहिं।
जहँ प्रफफुल्लिताउ उद्याना। बाटै[1] जनु तीर्थंकर[2]-पुराणा।
जहँ न कदापि तलावा सूखहिं। जनु शीतलत सुष्ट पर-दुखहिं।
जहँ वापी विस्तृत-सोपाना। जनु कुगती हेठे-मुँह जाना।
जहँ प्राकार न कोऊ लघेंउ। जिन-उपदेश न्याइँ दुर्लंघेंउ।
जहँ देवलहिं धवल-पुडरिका। पोथी बाँचै औ बहु-चरिता।
जहँ मदिरा स-तोरणवारा। जनु शम-शरणा सह-परिवारा।
जहँ भुव-नेत्र-सूत्र-दरसावन। हरि-हर-ब्रह्मा जैसो आवन।
जहँ वर-वेश्या त्रिनयन-भूता। प्रवर-भुजग[3]-शतेंहिं अनुभूता।
जहँ गगनस्थ वृषभ हर हरषति। राम-त्रिलोचन सरिसो गृहपति।
घत्ता। सो पत्तन बहु-उपमा-भरिया, जनु जग सुकवि-काव्य विस्तरिया।
रहै स-परिजन दशमुख राना। जनु सुरपति सुरपुरहिँ प्रधाना॥

—रामायण ४७।१

(३) समुद्र-वर्णन

निर्दलेंउ भुजग विसर्ग मोचु। मोचत जनु वर-सागरहिँ ढूकु[4]।
ढूकत हि बहु स्फुलिग क्षिप्त। घन-सीप-शख-सपुट-प्रलिप्त।
धग-धग-धगत मुक्ताफला। कड-कड-कडत सागर-जला।
हस-हस-हसत पुलिनातरा। ज्वल-ज्वल-ज्वलत भुवनातरा।

—रामायण २७।५

सचल्लेंउ राघव साधन-सँग। सघट्टेंउ वाहन वाहन-सँग।
थोडा'न्तरे देखु महासमुद्र। सूँस अवर मकर-जलचरेंहिँ रौद्र।
मत्स्योधर-नाका-गोह-घोर। कल्लोलावत तरग-जोर।[5]

---

[1] है [2] पथप्रवर्त्तक महावीर [3] वेश्यालम्पट [4] देखु [5] घोर

वेला वड्ढतउ दुहुदुहतु। फेणुज्जल-तोय तुषार दितु।
तहों अवरें पयडउ राम-सेण्णु। ण मेह-जालु णहयलें णिसण्णु।
—रामायण ५६।६

घत्ता। मण-गमणेंहिँ गयणि पयट्टेहि, लक्खिउ लवण-समुद्दु किह।
महि-मडयहों णह-यल-रक्खसेण, फाडेंउ जठर-पयेसु जिह।२

दीसइ रयणायरु रयण-वाहु। विण्णु'व सवारि छदु 'व सगाहु।
अत्थहु सुहि'व हत्थि'व करालु। भडारिउ'व्व वहु-रयण-पालु।
सूहव-पुरिसो'व्व सलोण-सीलु। सुग्गीउ'व पयडिय इद-लीलु।
जिण-सुव चक्कवइ'व कियव सेलु। मज्झाणु'व उप्परि चडिय वेलु।
तवसि'व परिपालिय समय-सारु[1]। दुज्जण पुरिसो'व्व सहाव-खारु।
णिद्धण आलाउ'व अप्पमाणु। जोइसु'व मीण-कक्कडय-थाणु।
महकव्व-णिवधु'व सद्द-गहिरु। चामीयर'व सइय-पीय-मयरु।
तहि जलणिहिउ लघतएहि। वोहित्थइ दिट्ठइ जतएहि।
सीह-वडइ लविय इलाइँ। महरिसि चित्ताइँ'व अविचलाइँ।
—रामायण ६६।२-३

(४) नदी (गोदावरी)-वर्णन

थोवतरे मच्छुत्थल्ल देति। गोला-णइ दिट्ठ समुव्वहति।
सुंसुअ घोरग्घुरु-घुरु-हुरति। करि-मय-रड्डोहिय डुहु-डुहति।
डिंडीर-सड-मडलिउ दिति। दद्दुर यरडिय दुरु-दुरु-दुरति।
कल्लोलुल्लोहिउ उव्वहति। उग्घोस-घोस घव-घव-घवति।
पडिखलण-वलण खल-खल-खलति। खल-खलिय खडक्कि झडक्क देति।
ससि-सख-कुद-धवलो झरेण। कारड्डुाविय डवरेण।

---

[1] आचारव्रत

बेलहिँ बधँतउ दुह-दुहत । फेनु-'ज्ज्वल तोय-तुषार देत ।
　　तेँहि ऊपर पहुँचेँउ राम-सेन । जनु मेघजाल नभ-तलेँ निषण्ण ।
　　　　—रामायण ५६।६

घत्ता । मन-गतिहि गगनेँ चलतउ, लख्खेउ लवण-समुद्र किमि ।
　　महि-मडल नभ-तल राक्षसेँहिँ, फाडेँउ जठर-प्रदेश जिमि ।।

दीसइ रत्नाकर रतन-चारु । विष्णु'व सवारि छदि'व सगाथ ।
　　अर्थहु सुख इव हस्ति'व कराल । भडारी इव वहु-रतन-पाल ।
सु-भव[1] पुरुष इव सलोन-शील । सुग्रीवि'व प्रकटेँउ इन्द्र-नील ।
　　जिनसुत चक्रवर्ति'व कियेँउ शैल । मध्यान्हि'व ऊपर चढेँउ बेल ।
तपसी इव पालेँउ समय-सार । दुर्जन-पुरुष इव स्वभाव-खार ।
　　निर्धन-अलाप इव अ-प्रमाण । जोतिसि 'व मीन-कर्कटक-थान ।
महकव्य-निबँध इव शब्द-गहिर । चामीकरि'व शयित-पीत-मकर ।
　　तहँ जलनिधिहू लघतयेहु । वोहितऊ देखेँउ जातएहु ।
सिह-वटहिँ लबित-फलाउ । महऋषि-चित्ता इव अविचलाउ ।
　　　　—रामायण ६९।२-३

(४) नदी-वर्णन

थोडातरे मच्छ-उछल्ल देत । गोदा-नदि देखु समा-वहत ।
　　सूँसउ घोरा घुर-घुर-घुरत । करि-मद-रडोहित डुहु-डुहुत ।
हिंडीर-खड मडलिउ देत । दादुर-ध्वनियहु दुर-दुर-दुरत ।
　　कल्लोलु-'ल्लोहित उद्वहत । उद्घोष घोष घब्-घब्-घबति ।
प्रतिखलन-वलन खल-खल-खलत । खल-खलिउ खडक्कि झटक्कि देत ।
　　शशि-शख-कुद-धवला झरेण । कारडव 'डायउ डबरेण ।

---

[1] सुजात

घत्ता । फेणावलि वंकिय-वलयालंकिय, णं महि वहुअहे तणिया ।
जल-णिहि भत्तारहों मोंत्तिय हारहों, वाह पसारिय दाहिणिया ॥३॥
—रामायण ३१।३

(५) वन-वर्णन

तहि तेहएँ सुंदरें सुप्पवहे । आरण्ण-महग्गय-जुत्त-रहे ।
धुर लक्खणु रहवरें दासरहि । सुर-लीलएँ पुणु विहरंत महि ।
त कण्ह-वण्ण-णइ मुएँ विगया । वण कहिमि णिहालिय मत्तगया ।
कत्थवि पचाणण गिरि-गुहेहिँ । मुत्तावलि विक्खिरंति णहेहिँ ।
कत्थवि उड्डाविय सउण-सया । ण अडविहें उड्डे विणण-गया ।
कत्थवि कलाव णच्चंति वणे । णावइ णट्टावा जुयइ-जणे ।
कत्थइ हरिणइँ भय-भीयाइ । ससारहों जिह पावइ याइँ ।
कत्थवि णाणा-विह रुक्ख-राइँ । ण महि-कुल-वहुअहि रोमराइँ ।
—रामायण ३६।१

(६) मातृभूमि (अयोध्या)-प्रशंसा

धूवत धवल-धय वड-पउरु । पिय पेक्खु अउज्झाउरि णयरु ।
घत्ता । किर जम्मभूमि जणणीय सम, अण्णु विहूसिय जिणवरेहि ।
पुरि वदिय सिर सयभुव करेंहि, जणय-तणय-हरि-हलहरेहिं[१] ॥२॥
—रामायण ७८।२०

(७) यात्रा-वर्णन

(क) हनूमानकी लंकासे अयोध्याकी यात्रा—

घत्ता । मणगमणेहिँ गयणें पयट्टेंहि, लक्खिउ लवण-समुद्दु किह ।...
अण्णुवि थोवतरु जतएहि, तिहिमि णिहालिउ गिरि-मलउ ।
जो लवली-वलहो चदण सरहो, दाहिण-पवणहों थाम लउ ॥३॥

---

[१] राम-लक्ष्मण

घत्ता । फेणावलि-वंकिम वलयालंकृत, जनु महि-वधुअहि-तनिया ।[1]
जलनिधि भत्तारह मौक्तिकहारहँ, बाँह पसारिय दाहिनिया ॥
—रामायण ३१।३

(५) वन-वर्णन

तँह तेहिंहि सुंदर सु-प्रभो । आरण्य महागज-युक्त रहो ।
धुर लक्ष्मण रथवरें दाशरथी । सुर-लीलहिं पुनि विहरत मही ।
सो कृष्ण-वेण-नदि मृग-सहिता । वन कहउँ निहारिय मत्तगजा ।
कहिँ कहिँ पचानन गिरि-गुहाहिँ । मुक्तावलियहिँ विकिरत नभहिँ ।
कहिँ कहिँ उड्डायें उ शकुन-शता । जनु अटविहि उड्डै वियद्-गता ।
कहिँ कहिँ कलापि नाचत वने । न्याईं नाट्या वा युवति-जने ।
कहिँ कहिँ हरिना भय-भीताइँ । ससारहु जिमि पापहिं जाइ ।
कहिँ कहिँ नानाविध वृक्षसजि । जनु महि-कुलवधुवहि रोमराजि ।
—रामायण ३६।१

(६) मातृभूमि-प्रशंसा

धूवत धवल-ध्वज वट-प्रवरू । प्रिये ! पेखु अयोध्यापुरि नगरू ।
घत्ता । फुरु जन्म-भूमि जननीहिँ सम, आन विभूपित जिनवरेहिँ ।
पुरि वंदि सिर स्वयभू करेहि, जनकतनय-हरि-हलधरेहिँ ।
—रामायण ७८।२०

(७) यात्रा-वर्णन

(क) हनूमान्‌की लंका-अयोध्या

घत्ता । मन वेगेंहिँ गगनें चलतो, लखें उ लवण-समुद्र जिमि ।
अवरो थोड' तरे जातो, तहँहिँ निहारें उ गिरि-मलयो ।
जो लवली वलहो चंदन-सरहो[2], दक्षिण पवन विस्तार लियो ।

---

[1] तनी=वाली [2] बेंत

जहि जुवइ-पउरु पारज्जियाइँ। रत्तुप्पल-कयलिय-वण थियाइँ।
कामिणि-गइ छाया-मसियाइँ। जहि हंस-वलइ आवासियाइँ।
कर-करयल-ऊहामिय मणाइ। जहि मालइ-कक्केल्ली-वणाइँ।
जहि वयण-णयण-पह घल्लियाइ। कमलिंदीवरइ समल्लियाइ।
जहि महुरवाणि-अवहत्थिआइ। कोइल-कुलाइँ कसणइ थियाइँ।
भउहावलि-छाया-वकियाइँ। जहि णिव-दलइ कडुअइ कियाइँ।
जहि चिहुर-भार ऊहामियाइ। वरहिण-कुलाइँ रोवावियाइँ।
त मलउ मुएँवि विहरति जाव। दाहिण-महुरएँ आसण्ण ताव।
घत्ता। किक्किंध-महागिरि लक्खियउ, तुग-सिहरु कोडावणउ।
छुडु रमिअहें पुहइ-विलासणिहें, उर-पयेसु णग सव्वणउ ॥४॥
जहि इदणील-कर-भिज्जमाणु। ससि थाइ जुण्ण-दप्पणु-समाणु।
जहि पउमराय-कर-तेय-पिंडु। रत्तुप्पल-सण्णिहु होइ चदु।
जहि मरगय-खाणिवि विप्फुरति। ससिविंवु भिसिणि पत्तुवकरति।
त मेल्लें विरह-सुच्छल्लिय-गत्त। णिविसद्धें सरि कावेरि पत्त।
जालइय विहजेंवि णरवरेहि। महकव्व-कहा इव कइ-वरेहि।
सामिय-आणा इव किंकरेहि। तित्थकर-वाणि'व गणहरेहि[1]।
सिव-सासयमोत्ति'व हेउयेहि। वरसद्दुप्पत्ति'व वाउएहि।
पुणु दिट्ठु महानद तुंगभद्द। करि-मयर-मच्छ-कच्छय-रउद्द।
घत्ता। असहते वण-दव-पवण-झड, दसह-किरण-दिवायरहों।
ण सज्झें सुट्ठु ति साएण, जीहें पसारिय सायरहों ॥५॥
पुणु दिट्ठ पवाहिणि कण्णवेण्ण। किविणत्थ-पडत्ति'व महि-णिसण्ण।
ण इदणील-कठिय-धरेण। दक्खविय समुद्दहों आयरेण।
पुणु सरिभीम-जलोह फार। जा सेउण देसहों अमिय-धार।
पुणु गोला-णइ मथर-पवाह। सझेण पसारिय णाइ वाह।

---

[1] तीर्थंकर महावीरके प्रथम प्रमुख शिष्य

जहँ युवति-प्रवर पाराजिताइँ। रक्तोत्पल-कदली-वन थिताइँ।
कामिनिगति-छाया-र्मर्षिताइँ। जहँ हस-यूथ आवासिताइँ।
कर-करतल ईहामृग-मनाइँ। जहँ मालति-ककेल्ली-वनाइँ।
जहँ वदन-नयन-प्रभ फेँकियाइँ। कमलि-'दीवरहु समेलियाइँ।
जहँ मधुर-वाणि अपहस्तिताइँ[1]। कोकिल-कुलाइँ कृष्णा थिताइँ।
भौँहावलि-छाया-वकिमाइँ। जहँ निँब-पत्र कटुका कियाइँ।
जहँ चिकुर-भार ईहामृगाइँ। वर्हिण-कुलाइँ रोवाइताइँ।
सो मलय-भूमि विहरत जौ। दक्षिण-**मथुरहिँ** आसन्न तौ।
घत्ता। **किष्किंध-महागिरि** लखियहू, तुग-शिखर क्रीडावनऊ।
यदि रम्यहि पुहुमि-विलासिनिहीँ, उरप्रदेश अनग सर्वनऊ ॥३४॥
जहँ इन्द्रनील-कर-भिद्यमान। शशि रहै जीर्ण-दर्पण-समान।
जहँ पद्मराग-कर-तेज-पिंड। रक्तोत्पल-सदृश होइ चद।
जहँ मरकत-खानिहि विस्फुरति। शशिबिब भिसिहि प्रत्युपकरति।
सो छाडि विरह-सुच्छलिय-गात्र। निमिषार्धे सरि **कावेरि** प्राप्त।
ज्वालयिते विभगेहु नरवरेहिँ। महकाव्य-कथा सोँ कविवरेहि।
स्वामी-आज्ञा सोँ किकरेहिँ। तीर्थंकर-वाणि सोँ गणधरेहिँ।
शिव-शाश्वत मोति सोँ हेतुएहिँ। वर शब्दु-'त्पत्ति सोँ वायुएहिँ।
पुनि देखु महानदि **तुंगभद्र**। करि-मकर-मच्छ-कच्छप-रउद्र।
घत्ता। असहतो वन-दव-पवन झड, दुसह किरण-दिवाकरहू।
जनु सध्यहि सुठि तृषितयहि, जीभ पसारेँउ सागरेहिँ ॥५॥
पुनि देखु प्रवाहिणि **कृष्णवेण्य**। कृपिणार्थ-प्रवृत्ति'व महि-निषण्ण।
जनु इद्रनील कठे धरेहिँ। देखिविय समुद्रहु आकरेहिँ।
पुनि सरि **भीम** जलोघ फार। जो सेतुन देसहु अमृधार।
पुनि **गोदा** नदि मथर-प्रवाह। सभेहिँ पसारेँउ नारि-वाँह।

---

[1] पराजित

पुणु वेण्णि पाइण्हिउ वाहिणीउ । ण कुडिल-सहावउ कामिणीउ ।
पुणु ताधि महाणइ सुप्पवाह । सज्जण-मत्तिव्व अलद्धथाह ।
थोवतरालें पुणु विंझु थाड । सीमतउ पि हिमिहितणउ 'णाइ ।
पुणु रेवा णइ हणुवत एहि । साणिदिय रोसव सगएहि ।
किं विझहों पासिउ उवहि चारु । जो सविसु ,किविणु ,अझव ,खारु ।
त णिसुणेवि सीय-सहोयरेण । विम्मच्छिय णहयल-गोयरेण ।
घत्ता । ज विंझु मुएंवि गय सायरहों, मा रूसहि रेवा-णइहें ।
णिल्लोणु मुयइ सलोणु सरइ, णिय-सहाउ यहु तिय मइहें ॥६॥
साणम्मय दूरवरेण चत्त । पुण उज्जयणें णिविसेण पत्त ।
- जहि जणवउ सघणु महग्घणो'व्व । रामो वरिवच्छलु लक्खणोव्व ।
गुणवतउ घणु कर-सगहो'व्व । अमुणिय-कर-सिर-तणु वम्महो'व्व ।
साविउ महिल'व्व उज्जेणि मुक्क । पुणु पारियत्त मालवु ढुक्कु ।
जो धण्णालकिउ णर-वइ'व्व । उच्छहणु कुसुम-सरु रइवइ'व्व ।
त मेल्लें वि जउणा णइ पवण्ण । जा अलय[1]-जलय-गव-लालि-वण्ण ।
जा कसिण भुयगि'व विसहों भरिय । कज्जल-रेहा-वण घरणिएँ घरिय ।
थोवतरें जल-णिम्मल-तरग । ससि-सख-सम-प्पह दिट्ठ गंग ।
घत्ता । अम्हहँ विहि गरुवउ कवणु जड, जुज्झि वि आय मच्छरेण ।
हिमवतहों ण अवहरिविणिया, घय-वडाइँ रयणायरेण ॥७॥
थोवतरें तिहि मि अउज्झ दिट्ठ । ण सिद्धिपुरिहि सिद्धव पइट्ठ ।
जहि मिहुणइ आरभिय रयाइ । पथिय इव उव्वाइय पयाइ ।
पाहुण इव अवरुडण-मणाइ । गिरिवर-गत्ता इव सव्व णाइ ।
अविचल-रज्जा इव सुकरणाइ । रिसि-उल इव भाण-परायणाइ ।
धणुहर इव गुण-मेल्लिय सराइँ । अहोंरत्ता इव पहराउराइ ।
घत्ता । महि-मदरु-सायरु जावणहू, जाव दिसइ महणइ जलइ ।
तउ होति 'ताव जिणकेराइ, पुण्ण पवित्तइ मगलइ ॥८॥
—रामायण ६९।३-८

---

[1] मूंगा

पुनि दोउ **पयस्विनि** वाहिनीहुँ । जनु कुटिल-स्वभावउ कामिनीहुँ ।
पुनि ताषि महानदि-सुप्रवाह । सज्जन-मैत्री 'व अलब्ध-थाह ।
थोडतराले॑ पुनि **विंध्य** जाइ । सीमतहूँ हिमकेरि न्याइँ ।
पुनि **रेवा** नदि हनुमत आव । सानदिउ रोषउ सगतेहि ।
कीं॑ विंध्यहु पासे उदधि चारु । जो सबहुँ कृपण झाँपेउ खार ।
सो सुनि सीय-सहोदरेन । विमरशेँउ नभतल-गोचरेन ।
घत्ता ।| जो विंध्यभुमिहुँ गउ सागरहु, ना रुसइ **रेवा** नदिहि ।
निर्लवण मुचइ सलवण सरइ, निज स्वभाव स्त्रीमयहि ॥६॥
सा **नर्मद** दूरतरेण त्यक्त । पुनि **उज्जयिनी** निमिषेण प्राप्त ।
जहँ जनपद सघन महार्घ इव । रामोपरि वत्सल लक्ष्मण इव ।
गुणवतउ घन कर-सग्रह इव । अमुनिय-कर-शिर तनु मन्मथ इव ।
शापित। महिलि'व। **उज्जयन** मुचु । पुनि पारियात्र **मालवहिँ** ढूकु ।
जो धान्यालकृत नरपति इव । उत्सहन कुसुम-शर रतिपति इव ।
सो छाडिय **जमुना** नदी पहुँच । जो अलक[१]-जलक गो लाल-वर्ण ।
जो कृष्णभुजगि'व विष-भरिया । कज्जल-रेखा-वन धरनि धरिया ।
थोडतरे जल-निर्मल-तरग । शशि-शख-समप्रभ देखु **गंग** ।
घत्ता । हमरो सम गरुओ कौन, यदि जूझिव बहु-मत्सरहीँ ।
हिमवतहु जनु अपहरण किय, ध्वजपताक रतनाकरहीँ ॥७॥
थोडतरे तहँहि **अयोध्य** दृष्ट । जनु सिद्धिपुरिहि सिद्धप प्रविष्ट ।
जहँ मिथुनइ आरभेँउ रजाइँ । पथिक इव उट्ठाइय पदाइँ ।
पाहुन इव आलिगन-मनाइँ । गिरिवर-गात्रा इ सर्व न्याइँ ।
अविचल राज्या इव सु-करणाइँ । ऋषि-कुल इव भाड-परायणाइँ ।
धनुधर इव गुणे॑ मेले'उ शराइँ । अहोरात्रा इव प्रहरावराइँ ।
घत्ता । महि-मदर-सागर जावनहूँ, जौ लौ दीसइ महनदि जलई ।
ता होति तौ लौ जिनकेरइ, पुण्य-पवित्र मगलइ ॥८॥
—रामायण ६९।३-८

---

[१] मूँगा

(ख) रामकी लंकासे अयोध्या-यात्रा—

गउ लक विहीसणु मिच्चवलु। सोलहउसे दिवसें पयट्ट वलु।
स-विमाणु स-साहणु गयण-वहे। दावतु णिवाणइ पिअय महे।
एहु सुदर दीसइ मयरहरु। एहु मलय-धराहरु सुरहि-तरु।
किक्किंध-महिंदहों इह सयल। इह तुलिय कुमारें कोडिसिल।
हुँउ लक्खणु एण पहेण गय। एत्तहि खर-दूसण-तिसिर हय।
इह सवु कुमारहों खुडिउ मिरु। इह फेडिउ रिसि-उवसग्गु चिरु।
इह सो उद्देसु णिअच्छियउ। जिय मोम जणणु जहि अच्छियउ।
एहु देमु असेसु विचारु चरिउ। अइवीर णराहिउ जहि धरिउ।
घत्ता। त सुदरियउ जियत उरु, जहि वण वाल समावडिय।
लक्खिज्जइ लक्खण पायवहो, अहिणव वेल्लि णाइ चडिय ॥१९॥
रामउरि एह गुण-गारविय। जा पूयण जक्खें कारविय।
एहु अरुणु गामु कविलहों तणउ। जहि गल-थल्लाविउ अप्पणउ।
एहु दीसइ सुदरि! विंझ-इरि। जहि वस किउ वालि-खिल्लु वइरि।
वइदेहि! एउ कुव्वर-णयरु। कल्लाण-माल जहि जाउ णरु।
एहु दसउरु जहि लक्खणु भमिउ। सीहोयर सीह समरि दमिउ ..
दीसइ सव्वु सुवण्णु भउ। णिब्भविउ विहीसणि ण णवउ।
धूवत धवल-धय-वड-पउरु। पिय! पेक्खु अउज्झाउरि णयरु।

—रामायण ७८।१९-२०

४—सामन्त-समाज

(१) भोजन-प्रकार

लहु[1] भोयणु आणहि सुदरउ। ज सरस-सलोणउ जेहें सुरउ।
त णिसुणेंवि वेवि सचल्लिउ। ण सुरसरि-जउणा उत्थल्लिउ।

---

[1] तुरत

(ख) लंका-अयोध्या

गयउ लक विभीषण-मित्र-बल । सोलहवे॑ दिवस प्रवृत्त बल ।
स-विमान स-सेना गगनपथी । दर्शत निवानइ प्रियकाक्षी ।
ऍहु सुदर दीसइ मकरधरु । एहु मलय-धराधर सुरभि-तरु ।
किष्किन्ध महेन्द्रहु एहु सकला । एहिँ ठायउ कुमारे॑ कोटि-शिला ।
हौं लक्ष्मण जेहि पथहिँ गयउँ । ऍहिठँव खर-दूषण त्रिशिर हते॑उँ ।
एहिँ शाब कुमारहु खुटे॑उ शिरू । एहिँ नाशे॑उ ऋषि-उपसर्ग चिरू ।
ऍहिँ सोई देश निरीक्षियऊ । जित मोमजनन जहँ अच्छियऊ[१] ।
एहु देश अशेष विचार चरे॑ऊ । अतिवीर नराधिप जहँ धरे॑ऊ ।
घत्ता । सो सुदरियउ जयतपुरु, जहँ वनपाल आइ पडिया ।
लखहु ऍह लक्ष्मण पादपहु, अभिनव वेइल-जस चढिया ।।१।।
रामपुरि एह गुण-गौरविया । जा पूजन यक्षहिँ कारविया ।
एहु अरुण-ग्रम कपिलहु-तनऊ[२] । जहँ फेक दिये॑उ मै आपनऊ ।
एहु दीसइ सुदरि ! विंध्यगिरी । जहँ वश किउ वालखिल्य वैरी ।
वैदेहि ! एहु कुव्वर-नगरू । कल्याण-माल जहँ जने॑उ नरू ।
एहु दशपुर जहँ लक्ष्मण भ्रमे॑ऊ । सिंहोदर सिंह समरे॑ दमे॑ऊ ।
दीसइ सर्व सुवर्ण भवऊ । निर्मिये॑उ विभीषण जनु नवऊ ।
धूवत धवल-ध्वज-पट-प्रवरू । प्रिये ! अयोध्यापुरि नगरू ।

—रामायण

४—सामन्त-समाज

(१) भोजन-प्रकार

लघु[३] भोजन आनहिँ सुदरऊ । जो सरस-सलोनउ जिमि सुरऊ ।
सो सुनिकर दोऊ सचलियउ । जनु सुरसरि-जमुना उच्छलियउ ।

---

[१] आछे=है [२] केरउ [३] तुरत

सचल्ले विंभ पहाणयेण । लक्खिज्जइ जाणइ राणयेण ।
पप्फुल्लिय धवलकमल-वयणो । इदीवर-दल-दीहर-णयणा ।
तणु मज्झें णियवें वच्छें गरुआ । ज णयण कडक्खिय जणय-सुया ।
उम्मायण मयणहिँ मोयणेहिँ । वाणेंहि सदीवण-सोसणेहिँ ।
आइम्मिय सल्लिउ मुच्छियउ । पुणु दुक्खु दुक्खु उम्मुच्छियउ ।
कर मोडइ अगु वलइ हसइ । अससइ ससइ पुणु णीससइ ।
घत्ता । मयरद्धय-सर-जज्जरिय-तणु, पहु येम पजपिउ कुइयमणु ।
वलिवडएँण वसि वणवसहु, उद्दाले विआणहु यासु महु ॥
—रामायण २७।२

(ख) मंदोदरी—

घत्ता । सहसत्ति दिट्ठु मदोयरिए, दिट्ठिएँ चल-भउहालइ ।
दूरहों जें समाहउ वच्छयले, ण णीलुप्पल-मालइ ॥२॥
दीसइ तेण वि सहसत्ति वाल । ण भसले अहिणव-कुसुममाल ।
दीसत चलण-णेउर रसत । ण महुर-राव वदिण पठत ।
दीसइ णियव-मेहल-समग्ग । ण कामएव-अत्थाण-मग्ग ।
दीसइ रोमावलि छुडु चडति । ण कसण-वाल-सप्पिणि ललति ।
दीसति सिहिणि[1] उवसोह देत । ण उरयलु भिंदिवि हत्थि-दत ।
दीसइ पप्फुल्लिय वयण-कमलु । णीसासामोवासत्त-भसलु ।
दीसइ सुणा (सु) अणुहुव[2] सगधु । ण णयण-जलहों किउ सेयउवधु ।
दीसइ णिट्ठलु[3]-सिरु चिहुर-छण्णु । ससि-विवु व णव-जलहर-णिमण्णु ।
घत्ता । परिभमइ दिट्ठि तहों तहि जि तहिँ, अण्णहि कहिँ मि ण थक्कइ ।
रस-लपडु महुयर-पति जिम, केयइँ भुइवि ण सक्कइ ॥३॥
—रामायण १०।२-३

---

[1] सिहिण—पूनावाली प्रति का पाठभेद [2] य—पूना [3] निडालु—पूना

सचल्लें उ विध्या पथनयेहिँ । लक्खिज्जै जानकि रामएहिँ ।
प्रप्फुल्लित-धवल-कमल-वदनी । इदीवर-दल-दीरघ-नयनी ।
माँझे क्षीण नितव-वक्ष गरुआ । जो नयन कटाक्षिय जनकसुता ।
उन्मादन मदनहि मोदनेहिँ । वाणेंहिँ सँदीपन-शोषणेहिँ ।
आक्रमिया सालिय मूर्छियऊ । पुनि "दुख दुख" उन्मूर्छियऊ ।
कर मोडै अग कँपै हसई । आश्वसै श्वसै पुनि नि श्वसई ।
घत्ता । मकरध्वज-शर-जर्जरित-तनु, प्रभु ईमि प्रजल्प्यें उ कुपित-मना ।
वलवतएँ मवस वन वसहू, उद्दारे जानहु यासु(?) ममा ॥३॥
—रामायण २६।३

(ख) मंदोदरी

घत्ता । सहसा दृष्ट मदोदरिए, दृष्टिहि चल-भौँहा-लई ।
दूरहुँ हि धारें उ वक्षतले, जनु नीलोत्पल-मालई ॥२॥
दीसइ तेहिहिँ सहसा हि वाल । जनु भ्रमरे अभिनव-कुसुममाल ।
दीसत चरण-नूपुर रसत । जनु मधुर-राव वदिन पठत ।
दीसइ नितब-मेखल-समग्र । जनु कामदेव-दर्बार-मार्ग ।
दीसइ रोमावलि छुड[१] चढति । जनु कृष्ण-वाल-सर्पिणि ललति ।
दीसत स्तनहू शोभ देत । जनु उर-तल भिदें उ हस्तिदत ।
दीसइ प्रप्फुल्लित वदन-कमल । निश्वासामोदासक्त-भ्रमर ।
दीसइ सुनास अनुभुत-सुगध । जनु नयन-जलधि कियें उ सेतुबध ।
दीसइ निस्तर शिर चिकुर-छन्न । शशि-विंवि व नव-जलधर-निमग्न ।
घत्ता । परिभ्रमै दृष्टि तहि तहँहि तहीँ, अन्यहि कहहिँ न थक्कई ।[२]
रस-लपट मधुकर-पक्ति जिमि, केतकि भूमि न सक्कई ॥३॥
—रामायण १०।२-३

---

[१] तुरत [२] ठहरती, वगला—थाक

तहि अवसरें आइय मदोयरि । सीहहों पासि'व सीह-किसोयरि ।
वर-गणियारि'व लीला-गामिणि । पिय माहवियँ वि महुरालाविणि ।
सारगि'व विप्फारिय-णयणी । सत्तावी सजोयण-वयणी ।
कलहसि 'व थिर-मथर-गमणी । लच्छि 'व तिय तू वेजू रवणी ।
अहयो भाणि हि अणुहर-भाणी । जिह सा तिह एहवि पउ[1] राणी ।
जिह सा तिह एह वि सुमणोहर । जिह सा तिह एह वि पयसुदर ।
जिह सा तिह एह वि जिण-सासणें । जिह सा तिह एह वि ण कुसासणें ।
घत्ता । किं वहु जपिएण उवमिज्जइ काहें किसोयरि ।
णिय-पडिछदइ णा थिय, सइँ जेंणाइँ मदोयरि ।।४।।

—रामायण ४१।४

(ग) रावण-रनिवास—

। सचल्लिय मदोयरि राणी ।
ताइ समाणु स-डोरु स-णेउरु । सचल्लिउ सयलु 'वि अतेउरु ।
ज पप्फुल्लिय पकय-णयणउ । ज कुवलय-दल-दीहर-णयणउ ।
ज सुरवर-करि-मथर-गमणउ । ज पर-णरवर-मण-जूरणवउ ।
ज सुदरु सोहग्गु 'ग्घवियउ । ज पीणत्थण-भारें णमियउ ।
ज मणहरु तणु-मज्भु सरीरउ । ज उरयट्ठणिय गभीरउ ।
ज णेउर-रव घणु भकारउ । ज रथोलिय मोत्तिय-हारउ ।
ज कची-कलाव-पब्भारउ । ज विब्भम-भूभगु-वियारउ ।
घत्ता । त तेहउ रावणकेरउ, अतेउरु सचल्लियउ ।
ण सभमरु माणस-सरहें रें, कमलिणि-वणु पप्फुल्लियउ ।

—रामायण ४०।११

तहिँ पइसतें हि दिट्ठु स-णेउरु । रावण-केरउ इट्ठ'तेउरु ।
चिहुरेहि सिहडि-उलवु भाइ । कुरुलेहिँ इदिदिर-विंदु णाइ ।

---

[1] पट्ट, प्रधान

तेहि अवसर आइय मदोदरि । सिंह-पासे जनु सिंह-कृशोदरि ।
वर-गयदि जिमि लीलागामिनि । प्रिय-माधवियहिँ मधुरालापिनि ।
सारगी इव फारिय-नयनी । सत्ताईस-सयोजक-वदनी ।
कलहसि'व थिर-मथर-गमनी । लक्ष्मी इव या रूपारमणी ।
अभया भाणी अनुहर-भाणी । जेहिँ सा तेहिहि सो पटरानी ।
जेहिँ सा तेहिँ ऐसहि सुमनोहर । जेहिँ सा तेहिँ ऐसहि पदसुदर ।
जेंहि सा तेंहि ऐसहि जित-शासन । जेहिँ सा तेहि ऐसहिं न कुशासन ।
घत्ता । का वहु जल्पनेहिँ उपमिज्जै, कैस कृशोदरी ।
निज प्रतिविंववउ ना ठिय, स्वय न्याइँ मदोदरी ।।४।।

—रामायण ४१।४

(ग) रावण-रनिवास—

। सचल्लिय मदोदरि रानी ।
ताहि स-मान स-डोर स-नूपुर । सचल्लेँउ सकलहु अन्त पुर ।
जो अप्फुल्लिय पकज-नयनउ । जो कुवलयदल-दीरघ-नयनउ ।
जो सुर-वर-करि-मथर-गमनउ । जो पर-नरवर-मन-झूरनउ ।
जो सुदर-सौभाग्य-अर्च्यवयउ । जो पीनस्तन-भारे नमिअउ ।
जो मन-हर तनु-मध्य शरीरउ । जो उरोज स्तनियउ गभीरउ ।
जो नूपुर-रव-घन-झकारउ । जो सडोलिय मुक्ता-हारउ ।
जो काची-कलाप प्राग्-भारउ । जो विभ्रम-भ्रूभग-विकारउ ।
घत्ता । सो तेँहु रावणकेरउ, अत पुर सचल्लियउ ।
जनु सभ्रमर मानससरहिँ, कमलिनि-वन अप्फुल्लियउ ।

—रामायण ४०।११

तहँ पइसतहि देखु स-नूपुर । रावण-केरउ इष्ट्-अत पुर ।
चिकुरेहिँ शिखडि-कुल मनहुँ भाय । कुटिलेहिँ[1] इदीवर-वृन्द न्याइँ ।

---

[1] कुटिलन-प्रकाशै

भउहेहिँ अणग-धणु-लइ वन'व । णयणिहि णीलुप्पल-काणण 'व ।
मुह-विंवेंहि मय-लछण-वल 'व । कल-वाणिहि कल-कोइल-कुल 'व ।
कोमल-वाहेंहिँ लयाहर 'व । पाणिहि रत्तुप्पल-सरवर 'व ।
णक्खेंहि केअइ-सूई-थल 'व । सिहिणेंहि सुवण्ण-घड-मडल 'व ।
सोहग्गें वम्मह-साहण 'व । रोमावलि णाइणि-परियण 'व ।
तिवलिहि अणगपुरि-खाइय 'व । गुज्झेहि मयण-मज्जण-हर 'व ।
उरुएहि तरुण-केली-वण 'व । चलणग्गेहि पल्लव-काणण 'व ।
घत्ता । हस-उलु 'व गइएहि, कुजर-जूहु 'व वर-लीलहि ।
चाव-वलु 'व गुणेहि, छण-ससिविवु 'व सयल-कलहि ॥५॥
—रामायण ७२।५

(घ) अयोध्याका रनिवास—

किं चलण-तलग्गइ कोमलाइ । ण ण अहिणव-रत्तुप्पलाइ ।
कि ऊरु परोप्परु भिण्ण-तेय । ण ण वर-रभा-खभ येय ।
किं कणय-दोरु धोलइ विसालु । ण ण अहिरयण-णिहाण-पालु ।
किं तिवलिउ जठर पद धाविआउ । ण ण कामउरिहि खाइँआउ ।
किं रोमावलि घण-कसण एह । ण ण मयणाणल-धूम-लेह ।
किं णव-थण, ण ण कणय-कलस । कि कर ण ण पारोह-सरिस ।
किं आयविर-करयल चलति । ण ण असोय-पल्लव ललति ।
किं आणणु, ण ण चद-बिंब । किं अहरउ ण ण पक्क-बिबु ।
किं दसणावलिउ स-मुत्तियाउ । ण ण मल्लिय कलियउइ भाउ ।
कि गड-वास ण दति-दाण । कि लोयण, ण ण कामवाण ।
किं भउह इमाउ परिट्ठियाउ । ण ण वम्मह-धणु-लट्ठियाउ ।
कि कण्णा कुडल-हरण एय । ण ण रवि-ससि-विप्फुरिय-तेय ।
किं भालउ, ण ण ससहरद्धु । कि सिरु, ण ण अलि-उल-णिवद्धु ।
—रामायण ६९।२१

भौँहेँहिँ अनग-धनु लता-वन इव । नयनहिँ नीलोत्पल-कानन इव ।
मुख-बिबेहिँ मृगलाछन-वल इव । कल-वाणिहिँ कल-कोकिल-कुल इव ।
कोमल-वाहेहिँ (काम-)लताघर इव । पाणिहिँ रक्तोत्पल-सरवर इव ।
नखहीँ केतकी-सूचि-थल इव । स्तनहीँ सुवर्णघट-मडल-इव ।
सौभाग्ये मन्मथ-सेना इव । रोमावलि नागिनि-परिजन इव ।
त्रिवलीहिँ अनगपुरी-खाईँ इव । गुह्येहिँ मदन-मज्जन-गृह इव ।
उरुएहिँ तरुण-कदलीवन इव । चरणाग्रेँहिँ पल्लव-कानन इव ।
घत्ता । हसकुल इव गतिएहिँ, कुजर-जूथ इव वर-लीलहिँ ।
चाप-बल इव गुणेहिँ, क्षण-शशिबिब इव सकल-कलेहिँ ।।५।।
—रामायण ७२।५

(घ) अयोध्याका रनिवास—

की चरण-तलाग्रा कोमला । जनु जनु अभिनव-रक्तोत्पला ।
की ऊरु परस्पर-भिन्न-तेज । जनु जनु वर-रभा-खभ एह ।
की कनकडोरि डोलइ विशाल । जनु जनु अहि रतन-निधान-पाल ।
की त्रिवली जठरु'परि धाइया । जनु जनु कामपुरिहि खाइँया ।
की रोमावलि घन-कृष्ण एह । जनु जनु मदनानल-धूम-लेख ।
की नव-थन, जनु जनु कनक-कलश । की कर, जनु जनु प्रारोह-सरिस ।
की आलवित-करतल चलति । जनु जनु अशोक-पल्लव ललति ।
की आनन, जनु जनु चद्रबिब । की अधरउ, जनु जनु पक्व-बिब ।
की दशनावलिउ स-मौक्तिकाउ । जनु जनु मल्लिक-कलियही भाउ ।
की गडपास जनु दन्ति-दान । की लोचन, जनु जनु काम-वाण ।
की भौहा एह परिस्थिताउ । जनु जनु मन्मथ-धनु-यष्टियाउ ।
की कर्ण कुडलाभरण एह । जनु जनु रवि-शशि विस्फुरित-तेज ।
की भालउ, जनु जनु शशधरार्ध । की शिर, जनु जनु अलि-कुल-निबद्ध ।
—रामायण ६६।२१

(ङ) भिन्न-भिन्न देशोंकी नारियाँ—

घत्ता । तहों वणहों मज्झे हणुवतेण, सीय णिहालिय दुम्मणिया ।
ण गयण-मग्गेउ मेल्लिय, चदलेह-वीयहे तणिया ॥७॥
सहिय सहासहि परिअरिय, ण वणदेवय अवयरिय ।
तिण-मेत्तुवि णवलक्खणु जाहे, णिव्वण्णिज्जइ काइँ तहे ॥
वर-पय-तलेहिँ पउणारएहिँ । सिंघलणहेहि दिहि गारएहि ।
उच्चगुलिऍहि वेंडल्लिएहि । वडुल्लिऍ गुप्फेहि गोलए[1]हि ।
वर-पोट्टरिएहि मायंदियेहि । सिरिपव्वय-तणिऍहि मडियेहि ।
ऊरुअ-जुयले णिप्पालएण । कडिमडलेण करहाडएण ।
वरसोणिय कंची-केरियाऍं । तणु-णाहिएण गभीरियाऍं ।
सुललिय-पुट्ठिऍं सीवारियाऍं । पिडत्थणिअऍं एलउलियाऍं ।
वच्छयले मज्झिमएसएण । भुअ-सिहरें पच्छिमएसएण ।
वारमईकेरेहि वाहुलेहि । सिधव मणिवधहि वट्टुलेहि ।
माणग्गीवेहि कच्छाणुणेहिँ । उट्ठउडेहि कोकणियहि-तणेहि ।
दसणावलियए कण्णाडियए । जीहऍं को रोहणवाडियए ।
णासउडें तुग विसयतणेहिँ । गभीरएहि वर-लोयणेहिँ ।
भउहाजुएण उज्जेणएण । भालेण विचित्त उडाणएण ।
कासियहि कवोलेहि पुज्जयेहि । कण्णेहि मि कण्णाउज्जयेहि ।
काविलेहिँ केस-विसेसएण । विणएण विदाहिण-एसएण ।
घत्ता । अह किं वहुणा वित्थरेण, अण्णिवि इणणें सुदरि-मइण ।
एक्केकीवत्थु लएप्पिणु, णावइ घडिय पयावइण ॥८॥
—रामायण ४९।८

दिव्वेहि णाणा-पयारेहि पुप्फेहि । रत्तुप्पल-दीवरभोय-पुप्फेहि ।
अइउत्तया-सोय-पुण्णाय-णाएहि । सयवत्तिय-मालई-पारिजाएहि ।

[1] गोलक देश

(ङ) **भिन्न-भिन्न देशोंकी नारियाँ—**

घत्ता । तहँ वनहि मध्ये हनुमतउ, सीय निहारेँउ दुर्मनिया ।
जनु गगन-मार्गे उन्मीलित, चद्रलेख दुतियह-तनिया ॥७॥
सखिय सहस्रेहि परिवारिय, जनु वनदेवी अवतरिया ।
तृण-मात्रहु नव-लक्षण जाहि, निर्वर्णिये काइँ ताहि ॥
वर-पद-तलेहिँ पद्मार-एहिँ । **सिंहलिनिएँहिँ** दिशि-गौरवेहिँ ।
उच्चागुलीहिं वैपुल्यएहिँ । बाढल्लिए गुल्फेँहिँ गोलएहिँ
वर-पेट्ट-एहिँ माकदिएहिँ । **श्रीपर्वत-केरिहिँ** मडितेहिँ ।
ऊरुअ-जुगलेँ **नेपालयेहि** । कटिमडलेइ **करहाटिकेहि** ।
वरश्रोणिय **कांची-केरियाँ** । सूक्ष्म-नाभिकेहि गभीरियाँ ।
सुललित-पृष्ठिय **शिवारियेहि** । पिंड-स्तनियड **एलकुलियइ** ।
वक्ष-तले **मध्यम-देशिया** । भुज-शिखरे **पुच्छिम-देशिया** ।
द्वारवती-केरइ वाहुयहिँ । **सिंधविय** वर्त्तुल-मणिबधहिँ ।
मान-ग्रीवहिँ **कच्छाणनिया** । ओठउडे[1] **कोँकणि-तनिया** ।
दशनावलिहिँ **कन्नाडिया** । जीभहिँ **रोहण-वाडिया** ।
नासउडे **तुग-विषय-तनिया** । गभीरिया वरलोचनिया ।
भौहा-युगेइ **उज्जेनिया** । भालेहँ विचित्र **ओडियानिया** ।
काशिया कपोलेहिँ पुजकेहिँ । कर्णेहिँ हि **कनउज्जकेहिँ** ।
केश-विशेषकेहिँ **काबिलिया** । विनयेहि हि **दक्षिण-देशिया** ।
घत्ता । अरु का वहु-विस्तारेहिँ, अन्यान्येहिँ सुदरिमयी ।
एक-एक वस्तु लेइके, जनु गढेँउ प्रजापति ।

—रामायण ४९।८

दिव्येहिँ नाना-प्रकारेहि पुष्पेहिँ । रक्तोत्पले-न्दीवर-भोज-पुष्पेहिँ ।
अतिमुक्तका-शोक-पुन्नाग-नागेहिँ । शतपत्रिका-मालति-पारिजातेहिँ ।

---

[1]उड—कोमलालाप में

कणिया (र)-कणवीर-मदार-कुदेहि । विअडल्ल-वर-तिलय-वउलेहि मदेहि ।
सिंधूर-वधूक-कोरट-कुज्जेहि । दमणेण मरुएण पिक्का-तिसज्झेहि ।
एव च मालाहि अण्णण्ण-रूवाहि । कण्णाडियाहि'व्व सरसार-भूयाहि ।
आहीरियाहि 'व्व वायाल-भसलाहि । वलाडियाहि' व्व मुह-वण्ण-कुसलाहि ।
सोरट्ठियाहि'व्व सव्वग-मउआहि । मालविणिआहि 'व्व मज्झारछउआहि ।
मरहट्ठियाहि'व्व उद्दाम-वायाहि । गीयज्झुणीहि'व्व अण्णण्ण-छायाहि ।
—रामायण ७१।६

(३) जल-क्रीडा

घत्ता । तहि सर-णह-यले स-स-कलत्त वेवि हरि-हलहरा ।
रोहिणि[1]-रण्णहि ण परमिय चद-दिवायरा ॥१४॥
तहि तेहएँ सरें सलिले तरतइँ । सचरति चामीयर-जतइँ ।
णाइ विमाणइ सग्गहों पडियइँ । वण्ण-विचित्त-रयण-वेयडियइँ ।
णत्थि रयणु जहि जतु ण घडियउ । णत्थि जतु जहि मिहुणु ण चडिअउ ।
णत्थि मिहुणु जहि णेहु ण वड्ढिय । णत्थि णेहु जहि सुरउ ण वड्ढिउ ।
तहि नर-नारि-जुवइ जल कीडइ । कीडताइ ण्हति सुरलीलइ ।
सलिलु करग्गह आप्फालतइँ । मुरय-वज्ज-धायव दरिसतहँ ।
खलियहि वलियहि अहिणव-गेयहि । वद्धइ सुरयक्खिित्तिय तेयहिँ ।
छदेहिँ तालिहिँ वहुलय-भगेहि । करुणुच्छेत्तिहि णाणा भगेहिँ ।
घत्ता । चोक्खु स-रागउ, सिंगार-हार-दरिसावणु ।
पुप्फ-रज्जु-ज्झुवत, जलकीडणउ सलक्खणु ॥१५॥
जलें जय-जय सद्दें ण्हाय णर । पुणु णिग्गय-हल सारग-धर ।
—रामायण २६।१४-१६

सल्लविसल्ला-सुदरि सीयहिँ । वज्जयण्ण-सीहोयर-धीएँहिँ ।
घत्ता । वुच्चइ भरह णराहिवइ, सर-मज्झे तरत-तरताइँ ।
देवर थोडि वारवरिअच्छहु, जल-कील-करताइँ ॥१०॥

---

[1] नक्षत्र

कर्णकार-कर्णवीर-मदार-कुदेहिँ । बेईल-वरतिलक-वकुलेहिँ मद्रेहिँ ।
सिधूर-वधूक-कोरट-कञ्चेहिँ । दवनेहिँ मरुएहिँ पिक्का-तिसघ्येहिँ ।
ऐसेहि मालाहिँ अन्यान्य-रूपाहिँ । **कन्नाडियहिँ** इव सरसार-भूताहिँ ।
आहीरियाँहि'व वाचाल-भसला[1]हिँ । **वाराडियाहिँ**'व मुखवर्ण-कुशलाहिँ ।
सौराष्ट्रियाहिँ'व सर्वांग-मृदुकाहि । **मालविणियाहिँ**'व कटिमध्यँ सूक्ष्माहि ।
मरहट्ठियाहिँ'व उद्दाम-वाचाहिँ । गीत-ध्वनिहिँ इव अन्यान्य-छायाहिँ ।
—रामायण ७१।९

(३) जलक्रीडा

घत्ता । तहँ सर-नभ-तले स्वस्व-कलत्रेहिँ हरि-हलधरा[2] ।
रोहिणि रानिहिँ जनु प्र-रमेँउ चद्र-दिवाकरा ॥१४॥
तहँ तेहि हि सर सलिल तरता । सचरहीँ चामीकर-यत्रा ।
नारि-विमाना स्वर्गहँ पडिया । वर्ण-विचित्र-रत्न-वीजडिया ।
नाहि रतन जहिँ जतु न गढियउ । नाहि जतु जहिँ मिथुन[3] न चढियउ ।
नाहि मिथुन जँह नेह न बढियउ । नाहि नेह जँह सुरत न बढियउ ।
तहँ नर-नारि-युवति जलक्रीडैँ । क्रीडती नहाइँ सुरलीलैँ ।
सलिल कराग्रहिँ उच्छालन्तैँ । मुरज-वाद्य थापा दरसन्तैँ ।
स्खलितहिँ वलितहिँ अभिनव-गीतेहिँ । बर्द्धेँ सुरत-समन्वित तेजहिँ ।
छन्देहिँ तालहिँ वहुलय-भगहिँ । करुण-ोत्क्षेपी नाना-भगहिँ ।
घत्ता । चक्षु सरागउ शृगार-हार-दरसावन ।
पुष्परज्जु युध्यत, जलक्रीडनउ सलखावन ॥१५॥
जले जय-जय-शब्देहिँ नहाएँ नर । पुनि निकसे हल-सारगधर ।
—रामायण २६।१४-१६

सल्लविसल्ला सुदरि सीतहिँ । वज्रकर्ण-सिंहोदर-धीतहिँ ।
घत्ता । बोलै भरत नराधिप, सर-मध्येँ तरत-तरताई ।
देवर थोडिवार रहउ, जलक्रीड करताई ॥१०॥

---

[1] भ्रमर　　[2] हरि=लक्ष्मण, हलधर=राम　　[3] जोड़ा

त पडिवण्णु पइट्ठुं महासरु । जल-कीड़हें 'वि अचलु परमेसरु' ।
लग्गउ सुंदरीउ चउ-पासेहि । गाढालिंगण-चुंवण-हासेंहि ।
हेला-हाव-भाव-विण्णासेहिँ । किलिकिंचिय विच्छित्ति-विलासेहिँ ।
मोट्टाविय कुट्टमिय वियारेहि । विब्भम वरविव्वोक-पयारेहिँ ।
तो वि ण खुहिउ भरहु सहसुट्ठिउ । अविचलु ण गिरि-मेरु परिट्ठिउ ।
अच्छइ जाव तीरें मुह-दंसणु । ताव महागउ-तिजग-विहीसणु ।
णिय आलाण-खंभु उप्पाडेवि । मंदिर सयइ अणेयइ पाडेवि ।
परिभमंतु गउ त जें महासरु । जलकीलइ जहि भरहु णरेसरु[1] ।

—रामायण ७६।११

(४) प्रेम (काम)-अवस्था

(सीता और रामकी)

सीयहें देह-रिद्धि पावंतिहें । येंक्कु दिवसु दप्पणु जोयंतिहें ।
पडिमाछलेंण महाभयगारउ । आरिस वेस णिहालिय णारउ ।
जणय-तणय सहसत्ति पणट्ठी । सीहागमणें कुरंगि'व दिट्ठी ।
"हा हा माएँ" भणंतिहिँ सहियहिँ । कलयलु कियउ भग्ग गह-गहियहिँ ।
अमरिस कुज्झइय किंकर । उक्खय'व क्खरवाल भयंकर ।
भिलिवि तेहि-कहँ कहमि ण मारिउ । लेवि अद्धचंदेंहिँ णीसारिउ ।
घत्ता । गउ सव राहउ देवरिसि, पडे पडिम लिहेवि सीयहें तणिया ।
दरिसाविय भामंडलहों वि, सजुत्ति णाइ-णर धारणिया ॥८॥
दिट्ठ ज जें पडपडिम कुमारें । पंचहि सरहि विद्धुण मारें ।
सुसिय वयणु घुम्मइय णिडालउ । वलिय अंगु मोडिय भुयडालउ ।
बद्ध केसु परकोडिय वच्छउ । दरिसाविय दस कामावत्थउ ।
चिंत पढम थाणंतरें लग्गइ । वीयएँ पिय-मुह-दसणु मग्गइ ।

---

[1] राजा

सो प्रतिपन्न पइसु महासर । जलक्रीडहिँहि अचल परमेश्वर ।
लागीँ सुदरी उ चौपासेहिँ । गाढालिगन-चुवन-हासेहिँ ।
हेला-हाव-भाव-विन्यासेहिँ । किलकिंचित-विक्षिप्ति-विलासेहिँ ।
मोट्टावन-कुट्टमन-विकारेहिँ । विभ्रम-वरविव्वोक-प्रकारेहिँ ।
तोउ न क्षुभेँउ भरत झट उट्ठेउ । अविचल जनु गिरि मेरु परिट्-ठिउ ।
जौ लोँ रहै तीर शुभ-दर्शन । तौ लोँ महगज-त्रिजग-विभीषण ।
निज वधान-खभ उप्पाडिय । मदिर-शतहिँ अनेकहिँ पातिय ।
परिभ्रमत गउ तेँहिहिँ महासर । जलक्रीडैँ जहँ भरत-नरेश्वर ।
—रामायण ७६।११

(४) प्रेम-अवस्था

(सीता और रामकी)

सीता देह ऋद्धि पावतिह । एक दिवस दर्पण जोयतिह ।
प्रतिमा छलेँइ महाभयकारू । ऐसो वेस निहारेँउ न्यारू ।
जनकतनयाँ सहसाही भागी । सिहागमनेँ कुरँगिँव लागी ।
"हा हा माइ" भनतिहिँ सखियहिँ । कलकल कियेँउ, भागु गहिगहियहिँ ।
आमरखी कोधेऊ । किकर । उत्क्षिप इव करवाल भयकर ।
मिलब तेहि कहँ कहउँ न मारिउ । लेबि अर्धचद्रेँहि निस्सारिउ ।
घत्ता । गउ सव राघव-देव-ऋषि, पटेँ प्रतिम लिखब सीता-तनिया[1] ।
दरसायेँउ भामडलहुँ, युक्ति नारि-नर धारणिया ॥८॥
देखु जोहि प्रति-प्रतिम कुमारा । पचहिँ शरहि वेधु जन मारा ।
सुखेँउ वदन घूमिया ललाटउ । कँपेउ अँग मोडेँउ भुजडालउ ।
बँधेँउ केश मरोडिय वक्षा । दरसायेँउ दश कामावस्था ।
चित्त प्रथम स्थानतरेँ लागै । दुसरे प्रियमुख-दर्शन माँगै ।

---

[1] सीताकेर

तइयएँ ससइ दीह-णीसासें। कणइ चउत्थउ कर-विण्णासें।
पचम डाहें अँगु ण वुच्चइ। छट्ठइ मुहहों ण काइ विरुव्वइ।
सत्तमि थाणे ण गासु लइज्जइ। अट्ठमे गमणू माएहिँ भिज्जइ।
णवमएँ पाण-सँदेहहों ढुक्कइ। दसमएँ मरइ ण केम' वि चुक्कइ।

घत्ता। कहिउ णरिंदहों किंकरिहिँ, पहु दुक्करु जीवइ पुत्तु तउ।
हा तेहिँ वि कण्णह कारणेण, सो दसमी कामावत्थ गउ ॥६॥

—रामायण २१।८-९

लक्खिउ लक्खणु लक्खण-भरियउ। ण पच्चक्खु मयणु अवयरियउ।
भू उणियवि सुर-भवणाणदहों। मणु उल्लोलेंहिँ जाइ णरेंदहों।
मयण-सरसणें धरें वि ण सविकउ। वम्महों दस ठाणेहि पढुक्कउ।
पहिलउ कहुवि समाणु ण वोल्लइ। वीयएँ गुरु णीसासु पमेल्लइ।
तइयए सयलु अगु परितप्पइ। चउथइ ण करवत्तेंहि कप्पइ।
पत्रमें पुणु पुणु पासेइज्जइ। छट्ठएँ वार-वार मुच्छिज्जइ।
सत्तमे जलुवि जलद्द ण भावइ। अट्ठमें मरण-लील दरिसावइ।
णवमएँ पाण पडत ण वेअइँ। दसमएँ सिरु छिज्जतु ण चेयइ।

घत्ता। एम वियभिउ कुमुमाउहु, दसहेंमि थाणेहिँ।
त अच्छरिउ ज मुक्कु, कुमारु ण पाणेहिँ ॥८॥

—रामायण २६।८

(५) विरह (सीता)

राम-विऊएँ दुम्मणिया, असु-जलोल्लिय-लोयणिया।
मोंक्कल केस कवोलु भुआ, दिट्ठ विसठुल जणय-सुया ॥

जाणइ-वयण-कमलु अलहतिउ। मुहु ण देति फुल्लधुय पतिउ।
हणइँ तो वि ण करति णिवारिउँ। करयलेहि लग्गति णिरारिउँ।
एँव सिलीमुह सा निज्जती। अण्णु विऊय-सोय-सतत्ती।
वणें अच्छति दिट्ठ परमेसरि। सेस सरिहि मज्झेण सुरसरि।

तिसरे श्वसै दीर्घ-नि श्वासैं। कँदै चतुर्थे करविन्यासैं।
पचम दाहै अग, न बोलइ। छठये मुखहिँ न काहुहि देखइ।
सतये थान न ग्रास लईजै। अठये गमनोन्मादे भिज्जै।
नवये प्राणसँदेहहु ढूकै। दसये मरब न कथमपि चूकै।
घत्ता। कहेँउ नरेन्द्रहिँ किकरिन्ह, प्रभु! दुष्कर जीवै पुत्र तव।
हा ताहिहिँ कन्यहिँ कारणे, सो दसई कामावस्थ गउ ॥९॥

—रामायण २१।८-९

लखेँऊ लक्ष्मण लक्षण-भरिया। जनु प्रत्यक्ष मदन अवतरिया।
भू आनेउ सुरभवनानदहु। मन उल्लोलेहिँ जाइ नरेद्रहु।
मदन शरासनेँ धरब न शक्येउ। मन्मथ दश थानेहिँ प्रढूकेँउ।
पहिले काहुहि सँग ना बोलै। दूजेँहिँ बड नि श्वास प्रमेलै।
तीजे सकल अग परितप्पै। चौथे जनु तरवारहिँ कँपै।
पचयेँ पुनि पुनि प्रासादिज्जै। छठयेँ वार-वार मूर्छिज्जै।
सतयेँ जलहु जलार्द न भावै। अठयेँ मरण-लीलाँ दरसावै।
नवयेँ प्राण पतत न वेदै। दसयेँ शिर छेदत न चेतै।
घत्ता। इमि विजृभेँउ कुसुमायुध, दसहुहिँ थानहँ।
सो अचरज जो छूट, न प्राण कुमारकहँ ॥८॥

—रामायण २६।८

(५) विरह (सीता)

राम-वियोगे दुर्मनिया, अश्रु जलोल्लित-लोचनिया।
मुक्तहु केश कपोलेँ भुजा, देखु विसस्थुल जनकसुता ॥
जानकि-वदन-कमल अलभतिउ। मुख न देति फुल्लन्धुक-पक्तिउ।
हनैँ तो उ न करति निवारेँउ। करतलेँहीँ लागति निरालेँउ।
ऐस शिलीमुख सासनयता। अन्येँ वियोग-शोक-सतप्ता।
वनेँ वसति दीखु परमेश्वरि। शेष सरिहिँ मध्ये (जनु) सुरसरि।

हरिसिउ अजणेउ इत्थतरे । वण्णउ एक्कु रामु भुवणतरे ।

जो तिय एह आसि माणतउ । रावणु सइ जि मरइ अलहंतउ ।

णिग्लकार जों होती सोहइ । जइ मडिय तो तिहुयणु मोहइ ।

सीयहों तणउ रूउ वण्णेप्पिणु । अप्पहु णहें पच्छण्णु करेप्पिणु ।

घत्ता । जो पेसिउ राहवचदेण, सो घत्तिउ अगुत्थलउ ।

उच्छगि पडिउ वइदेहिहे, णावइ हरिसहों पोट्टलउ ॥९॥..

लक्खिय सीया एवि किह । वियसिय सरिया होइ जिह ।

ण मय-लछण ससि-जोण्हा इव । तित्ति-विरहिय गिम्ह-तण्हा इव ।

णिव्वियार-जिणवर-पडिमा इव । रइविहि विण्णाणिय-घडिया इव ।

अभय-करच्छज्जीव-दया इव । अहिणव-कोमल-वण्ण-लया इव ।

स-पउहर पाउस-सोहा इव । अविचल सव्वसह वसुहा इव ।

कति-समुज्जल-तडिमाला इव । सुट्ठु सलोण उयहि-वेला इव ।

णिम्मल-कित्ति व रामहों केरी । तिहुयणुमिवि परिट्ठिय सेरी ।

—रामायण ४९।९, १२

(६) मिलन (सीता-राम)

"अहों अहों परमेसर दासरहि । पच्छएँ लकाउरि पइँसरहि ।

मिलि ताव भडारा[1] जाणइहे । तरु दुत्तरु विरह-महाणइहे ।

चडु ति-जग-विहूसण-कुभ-यले । मय-परिमल-मेलाविय भसले" ।

घत्ता । त णिसुणेंवि हलहरु-चक्कहरु, सीयहें पासें समुच्चलिया ।

अहिसेय-समएँ सिरिदेवयहो, दिग्गय विण्णि णाइ मिलिया ॥६॥

वइदेहि दिट्ठ हरि-हलहरेहि । ण चद-लेह विहि-जलहरेहि ।

ण सरय-लच्छि पकय-सरेहिँ । ण पुण्णएँ विहि पक्खतरेहिँ ।

ण सुरसरि हिम-गिरि-सागरेहिँ । ण णह-सिरि चद-दिवायरेहिँ ।

परिपुण्ण-मणोरह जाणईहि । तर इव लायण्ण-महाणईहि ।

---

[1] राजा, स्वामी

हरखेँउ आजनेय ऍहि अवसरेँ। धन्यउ एक राम भुवनंतरेँ।
जो तिय एहु अहै मानतिउ। रावण मरै सतिहिँ अलभतउ।
निरलकार होति जो सोहै। यदि मडित तो त्रिभुवन मोहै।
सीयहिँ केर रूप वर्णेविउ। आपुहँ नभेँ प्रच्छन्न करेविउ।
घत्ता। जो प्रेषेँउ राघवचद्रेण, सो डारेँउ अगुट्ठि लिऊ।
उत्सगेँ पडिउ वैदेहिकहँ, मानो हर्षहँ पोट्टलिऊ ॥९॥
लक्खेउ सीत ऐसु किमि। विकसिउ सरिता होइ जिमि।
जनु मृणलाछन शशि ज्योत्स्ना इव। तृप्ति-विरहित ग्रीष्म-तृष्णा इव।
निर्विकार जिनवर-प्रतिमा इव। रतिपतिहिँ जनु निज गढिया इव।
अभयकर् अच्छ जीवदया इव। अभिनव-कोमल-वर्णलता इव।
स-पयधर पावस-शोभा इव। अविचल सर्वसह वसुधा इव।
काति-समुज्ज्वल तडिमाला इव। सुट्ठि सलोन उदधि-वेला इव।
निर्मल कीर्त्ति इव रामहिँ केरी। त्रिभुवनहूँहि परिस्थिय सेरी।

—रामायण ४९।९,१२

(६) मिलन (सीता-राम)

"अहोँ अहोँ परमेश्वर! दाशरथी। पाछे लकापुरी पइसैही।
मिलु तव भट्टारक[1] जानकिहीँ। तरु दुस्तर विरह-महानदिहीँ।
चढु त्रिजग-विभूषण कुभतले। मद-परिमल मेलायेँउ भसले[2]"।
घत्ता। सो सुनियहि हलधर-चक्रधरु, सीतहिँ पास ससुच्-चलिया।
अभिषेक समय श्रीदेवियहूँ, दोँउ दिग्गज न्याईँ आमिलिया॥
वैदेहि दीख हरि-हलधरेहिँ। जनु चद्रलेख विधु-जलधरेहिँ।
जनु शरद-लक्ष्मि पकज-सरेहिँ। जनु पूर्णो विधु पक्षातरेहिँ।
जनु सुरसरि हिमगिरि सागरेहिँ। जनु नभश्री चद्र-दिवाकरेहिँ।
परिपूर्ण-मनोरथ जानकीहिँ। तरेँ इव लावण्य-महानदीहिँ।

---

[1] राजा [2] भ्रमर

णिय-णयण-सरासणि सध इव। पिउ पगुण-गुणेहिँ णिवध इव।
जस-कद्दमें ण जगु लिप इव। हस्सिसु पवाहें सिप्प इव।
विज्जे इव करयल-पल्लवेंहिँ। अच्चे इव णहकुसुमेंहि णवेहिँ।
पइसर इव हियएँ हलाउहहों। कर इव उज्जोउ दिसामुहहों।
घत्ता। मेहलिय[1] मिलतहों रहुवइहें, मुहु उप्पण्णउ जेत्तडउ।
इंदहो इंदत्तणु णत्ताहो, होंज्जण होंज्जवें तेत्तडउ ॥७॥
सकलत्तउ लक्खणु पणय-सिरु। पभणइ जलहर-गभीर-गिरु।
"ज किउ खर-दूसण-तिसर-वहु। ज हंसदीवें जिउ हसरहु।
ज सत्ति पडिच्छिय समर-मुहे। ज लग्गु विसल्ल करवुरुहे।
ज रणें उप्पण्णु चक्करयणु। ज णिहिउ वलुद्धरु दहवयणु।
त देवि ! पमाएँ तउतणेंण। कुलु धवलिउ जाइ सइत्तणेंण"।
अहिवायणु किउ लक्खणेण जिह। सुग्गीव-पमुह-णरवरहिँ तिह।
सयलवि णिय-णिय वाहणेंहिँ थिय। पर-पुर-पवेस-सामग्गि किय।
जय-मगल-तूरइ ताडियाइँ। रिउ-घरिणिहिँ चित्तइ पाडियाइँ।
—रामायण ७८।६-८

(७) नारी-अधिकार

(क) रावणको सीताका जवाब—

रावण—"हले हलें सीएँ सीएँ कि मूढी। अच्छहि दुक्खें महण्णवें छूढी।....
हलें हलें सीएँ! सीएँ! महि भुजहिँ। माणुस-जम्महों अणहुजहिँ।
घत्ता। पिउ इच्छहि पट्टु पडिच्छहिँ, जइ सब्भावें हसिउ पइँ।
तो लइ मह एवि पसाहणु, अब्भत्थिय एत्तउ उ मइ" ॥१३॥
त णिसुणेवि वयदेहि सुया। पभणइ पुलय-विसट्ट भुआ।

---

[1] महिला=मेहरी

निज-नयन-शरासनें सध इव । प्रिय-प्रगुण-गुणेहिँ निवध इव ।
यश-कर्दमें जनु जग लेप इव । हँसियेउ प्रवाहे सीप इव ।
विद्या इव करतल-पल्लवेंहिँ । अर्चें इव नखकुसुमेंहिँ नवेंहिँ ।
प्रतिसर इव हियइ हलायुधहँ । कर इव उज्जोतु निशा-मुखहँ ।
घत्ता । मेहरिहिँ मिलते रघुपतिहिँ, सुख उत्पन्नउ जेत्तनऊ ।
इन्द्रहँ इन्द्रत्व-प्राप्ति समये, हुयउ न होइहि तेत्तनऊ ।।७।।
स-कलत्रउ लक्ष्मण प्रणत-शिरा । प्रभनै जलधर-गभीर-गिरा ।
"जो किउ खर-दूषण-त्रिशिर-वधा । जो हसद्वीपें जितु हसरथा ।
जो शक्ति प्रतीच्छेउ समर-मुखे । जो लाग विशल्य करबुरुहे ।
जो रणें उत्पन्न चक्ररतना । जो निधिउ बलुद्धर दशवदना ।
सो देवि ! प्रसादें तवतनऊ[1] । कुल धवलेंउ जाइ सतित्वनऊ" ।
अभिवादन किउ लक्ष्मणेंहिँ यथा । सुग्रीव प्रमुख-नरवरेहिँ तथा ।
सकलेंहिँ निज-निज वाहनें थितउ । पर-पुर-प्रवेश-सामग्रि[2] कियउ ।
जयमगल-तूर्या ताडिया । रिपु-घरिणिहिँ चित्ता पाडिया ।
—रामायण ७८।६-८

(७) नारी-अधिकार

(क) रावणको सीताका जवाब—

रावण—"हले हले[3] सीते सीते ! का मूढि । रहहि दुःख-महार्णवें छूटि ।
हले हले सीते सीते ! महि भोगहु । मानुष-जन्महँ फल अनु-भोगहु ।
घत्ता । प्रिय इच्छहिँ पट्ट प्रतीच्छहु, यदि सद्भावें हसिउ तैं ।
तो लेहु मम एहु प्रसाधन, अभ्यर्थेउँ एत्तना मैं" ।।१३।।
सो सुनियां वैदेह-सुता । प्रभणइ पुलक-विसृष्टभुजा ।

---

[1] तवकेरहु [2] जमावडा [3] रे रे

सीता—"सच्चउ इच्छमि दहवयणु।.............
इच्छमि जइ महु मुहु ण णिहालइ।............
जइ पुणु णयणानंदणहों, ण समप्पिय रहुणदणहों।
ता हउँ इच्छमि एउ हले, पुरि खिप्पती उयहि-जले।....
इच्छमि णदण-वणु मज्जतउ। इच्छमि पट्टणु पयलहों जतउ।
इच्छमि दहमुह-तरु छिज्जतउ। तिलु तिलु राम-सरेंहि भिज्जतउ।
इच्छमि दस'वि सिरइ णिवडतइँ। सरें हसाहय इव सयवत्तइँ।
इच्छमि अंतेउरु रोवंतउ। केस-विसयुलु धाह मुअतउ।
इच्छमि छिज्जतिय धय-चिंधइँ। इच्छमि णच्चताइँ कवधइँ।
इच्छमि धूमं धारिज्जंतइँ। चउदिसु सुहड चियाइँ वलतइँ।
जं ज इच्छमि तं त सच्चउ। ण तो करमिज्जइ हलें पच्चउ"।
—रामायण ४६।१५

(ख) अग्नि-परीक्षाके समय सीता—

कोसल-णयरें पराइय जावेहिँ। दिणमणि गउ अत्थवणहों तावेहिँ।
जत्थहों पिययमेण णिव्वासिय। तहों उववणहों मज्झें आवासिय।
कहवि विहाणु भाणु णहि उग्गउ। अहिमुहु सज्जण-लोउ समागउ।
कतहितणिय कंति पेंक्खेप्पिणु। पभणइ पोमणाहु विहसेप्पिणु।
"जइ वि कुलग्गयाउ णिरवज्जउ। महिलउ होंति सुट्ठु णिल्लज्जउ।
दरदाविय कडक्ख-विक्खेवउ। कुडिलमइउ वड्ढिय अवलेवउ।
वाहिर धिट्ठउ गुण-परिहीणउ। किह सयखडु ण जंति तिहीणउ।
णउ गणति णिय-कुलु मइलतउ। तिहुयणें अयस-पडहु वज्जतउ।
अंगु समोडें[1]वि धिद्धिक्कारहों। वयणु णिएति केम भत्तारहों"।
सीय ण भीय सइत्तण गव्वें। वलेंवि पबोल्लिय मच्छर गव्वें।
"पुरिस-णिहीण होंति गुणवति'वि। तियहें ण पत्तिज्जति मरति'वि।

---

[1] समेटे

सीता—साँचे इच्छउँ दशवदन् ।.... ।
इच्छउँ यदि मम मुख न निहारै ।
यदि पुनि नयनानदनहिँ, न समर्पेँउ रघुनंदनहिँ ।
तो हौँ इच्छउँ एहु हले, पुरि फेँकती उदधि-जले । . ..
इच्छउँ नन्दन-वन मज्जता । इच्छउँ पट्टन पातल जता ।
इच्छउँ दशमुख-तरु छिद्यता । तिल-तिल राम-शरेँहिँ भिद्यन्ता ।
इच्छउँ दसहु शिरा निपतता । सरेँ हसाहत इव शत्पत्रा ।
इच्छउँ अन्तपुर रोवती । केश-विसस्थुल ढाह भरती ।
इच्छउँ छिद्यता ध्वज-चिन्हा । इच्छउँ नाचता कावधा ।
इच्छउँ धूमा धारिज्जता । चौदिशि सुहडी चिता बलता ।
जो जो इच्छउँ सो सो साँचय । जनु तो करऊँ मैँ फलेँ प्रत्यय ।
—रामायण ४९।१५

(ख) अग्नि-परीक्षाके समय सीता—

कोसलनगरे पहुँचेउ जब्बहिँ । दिनमणि गउ अस्तमनउ तब्बहिँ ।
जहँवा प्रियतमेहिँ निर्वासिय । तँहि उपवनहि माँझ आवासिय ।
कहब विहान भानु ना उग्गउ । अभिमुख सज्जन लोग समागउ ।
कातहि-केरि काति पेखियबी । प्रभणै पद्मनाभ विहसियबी ।
"यदपि कुलग्रताउ निरवद्या । महिलउ होहिँ सुधू[1] निर्लज्जा ।
तनिक दाबेँ कटाक्ष-विक्षेपउ । कुटिलमयिउ वाढिय अवलेपउ ।
बाहर ढीठउ गुण-परिहीना । किमि शतखड न जाति त्रिहीनउ ।
नहि गणही निजकुल मइलता । त्रिभुवनेँ अयश-पटह बाजता ।
अग समोडेँहु धिक्धिक्कारहँ । वदन नियति केम भर्तारहँ" ।
सीय न भीत सतीत्वहि गर्वेँ । वलेँहु प्रवोल्लेँउ मत्सर-गर्वेँ ।
"पुरुषा हीन होहिँ गुणवतउ । तियहिँ न पतियायहीँ मरतिउ ।

---

[1] केवल

घत्ता। खडुलक्-कटु सलिलु वहतें यहों, पउराणियहें कुलग्गयहें।
रयणायरु खारइ देतउ, तो' वि ण थक्कइ ण णेम्मयहें ॥८॥
साणु ण केणवि जणेण गणिज्जइ। गगा णइहें तजें ण्हाइज्जइ।
ससि स-कलंकु तहि जें पह णिम्मल। कालउ मेहु तहि जें तडि' उज्जल।
उवलु अपुज्ज ण केणवि छिप्पइ। ताहि पडिम चदणेंण विलिप्पइ।
धुज्जइ पाउ पकुजइ लग्गइ। कमल-माल पुणु जिणहों वलग्गइ।
दीवउ होइ सहावें कालउ। वट्टि सिहएँ मडिज्जइ आलउ।
णर-णारिहि एवड्डउ अतरु। मरणें वि वेल्लि ण मेल्लइ तरुवर।
एह पइ कवण वोल्ल पारभिय। सइ वडाय मइ अज्जु समुब्भिय।
तुहु पेक्खतु अच्छु वीसत्थउ। डहउ जलणु जइ डहिवि समत्थउ।
घत्ता। किं किज्जइ अण्णइ दिव्वें, जेण विमुज्झहों महु मणहों।
जिह कणय-लोलि डाहुत्तर, अच्छमि मज्झें उ आसणहों" ॥९॥
—रामायण ८३।७-९

५—सामन्त और युद्ध

(१) सामन्त (राम)-वेष—

परवलें दिट्ठएँ राहव-वीरु पयट्टउ। रड रण-रहसेण उरे सण्णाहु विसट्टउ।
सो राहव पहरण-हत्थाएँ। दणुवइ णिद्दलण-समत्थाएँ।
दीहर-मेहल-गुप्पताए। चदण-कद्दमें खुप्पताए।
विच्छोइय मणहर कताए। किय-माया सुग्गीवें ताए।
रण-रहसुद्धूसिय-गत्ताए। अप्फालिय वज्जावत्ताए।
आवीलिय तोणा-जुयलाए। किंकिणि ललत वल-मुहलाए।
ककण-णिवद्ध करकमलाए। वित्थिण्णुण्णय वच्छयलाए।
कुडल-मडिय-गडयलाए। चूडामणि-चुंविय-भालाए।
भासुल-गुलिआरुल-वयणाए। रत्तुप्पल-सण्णिह-णयणाए।
ज सेंन - सण्णद्धएँ दिट्ठाए। त लक्खणे वि आलुद्धाए।
—रामायण ६०।१

' तडित्, बिजली

घत्ता । खडखड सलिल वहतियहु, पटरानियह कुलग्रयहु ।
रतनाकर खारइ देतउ, तोपि न थाकै जनु निर्मथे ।।८।।
सोउ न कोइहँ जनेहिँ गणीजै । गगानदिहिँ सोउ नहईजै ।
शशि सकलक ताह प्रभाँ निर्मल । कालउ मेघ ताह तडि उज्वल ।
उपल अपूज्य न कोउँ छूवई । तेहि प्रतिमा चदन लेपइ ।
धोइयें पाव पक यदि लागै । कमल-माल पुनि जिनहु समर्पे ।
दीपउ होहि स्वभावे कालउ । वाति शिखहिँ मडिज्जै आलउ ।
नर-नारिहीं एवडउ[1] अतर । मरतेंउ वेलि न मेलै[2] तरुवर ।
एहु तैं कवन वोलि प्रारभिउ । सति वडाइ मैं आज समुज्झिउ ।
तुह देखत होहु विश्वस्ता । दहउ ज्वलन यदि दहन-समर्था ।
घत्ता । का कीजै दूसर दिव्येहिँ[3], जातें विशुद्धइ मम मना ।
जिमि कणक-लोलें दाहुत्तर, रहहुँ माँझेहू आसना ।।६।।
—रामायण ८३।१-६

५—सामन्त और युद्ध

(१) सामन्त (राम)-वेष—

पर बले दीख राघववीर । रवि रण लसेहिँ उर सन्नाह निवद्धउ ।
सो राघव प्रहरण-हस्ताऊ । दनुपति-निर्दलन-समर्थाऊ ।
दीरघ-मेखल गोप्यताऊ । चदन-कर्दमें लेप्यताऊ ।
वीछोहिउ मनहर-कान्ताहीं । कृत-माया सुग्रीवें ताहीं ।
रण-रभसेंहि धूसित गात्राए । आस्फालिय वैयावर्त्याए ।
आ-धारेंउ तूणी-जुगलाए । किंकिणि-ललत वल-मुखराए ।
कंकण-निवद्ध-करकमलाए । विस्तीर्णु-'न्नत-वक्षतलाए ।
कुडल - मडित - गडतलाए । चूडामणि - चुवित - भालाए ।
भासुर - पुलकाकुल - वदनाए । रक्तोत्पल - सन्निभ - नयनाए ।
जो सेन-सनद्धा-दीग्वाए । मो लक्ष्मणेंहू आलुव्वाए ।
—रामायण ६०।१

---

[1] एतना　[2] छाडे　[3] आगके गोले आदिसे सतीत्व परीक्षा

(२) देश-विजय

(देशोंके नाम)

पइजारूढु णराहिउ जावेंहिँ। साहणु[1] मिलिउ असेसु'वि तावेंहिँ।
लेहु लिहेप्पिणु जग-विक्खायहों। तुरिउ विसज्जिउ महिहर-रायहो।
अग्गएँ घित्तु वद्धल पिक्खुव। हरिणक्खरहिँ लीण ण डिक्खुव।
सुदरु पत्तु वतु वरसाहु'व। णाव वहुल सरि गगपवाहु'व।
दिट्ठु राय तहिँ आय अणतवि। सल्ल-विसल्ल-सीह-विक्कतवि।
दुज्जय-अजय-विजय-जय-जय मुहुँ। णर-सद्दूल-विउल गय-गय मुहुँ।
रुद्दवच्छ-महिवच्छ-महद्धय। चदण-चदोयर-गरु(ड)द्धय।
केसर-मारि-चड-जमहटा। कोकण-मलएँ-पंडिया-'णट्टा।
गुज्जर-गंग-वंग-भंगाला। पइविय-पारियत्त-पंचाला।
सिधव-कामरुव-गंभीरा। तज्जिय-पारसीय-परतीरा।
मरु-कण्णाड-लाड-जालंधर। टक्क-हीर-कीर-खस-वव्वर।
अवरवि जे ऍक्केक्क-पहाणा। ....

—रामायण ३०।२

घत्ता। जे अल मलवल पवल-वले, हरि-वल-वलेहि साहिया।
ते णरवड लवणकुसेहिँ, सवसि करेप्पिणु साहिय ॥५॥

खस-सव्वर-वव्वर-ढक्क-कीर। कउवेर-कुरव-सोडीर-वीर।
तुगं-'ग-वंग-कन्होज्ज-भोट्ट। जालंधर-जवणा-जाण-जट्ट।
कंमीरो-'सीणर-कामरुव। ताइय-पारस-काहार-सूव।
णेपाल-धट्ट-हिडीव-'तिसर। केरल-काहल-कइलास-वसिर।
गंधार-मगह-मद्दा-हिवावि। सक-सूरसेण-मरु-पत्थिवावि।
एयवि अवरवि किय वस-विहेय। पल्लट्ट पडीवासेहि लेय।

—रामायण ८२।६

---

[1] साधन=सेना

(२) देश-विजय

(देशोके नाम)

परि-आरूढ नराधिप जब्बहिँ। साधन[१] मिले'उ अशेषउ तब्बहिँ।
लेख लिएवउ जग-विख्यातहु। तुरत विसजउ महिधर-रायहु।
आगे लियउ वद्धल पेखु'व। हरिणाक्षरहिँ लीन जनु डिक्खु'व।
सुदर पात्रवत वर साधु'व। नाव-बहुल सरि गग-प्रवाहु'व।
दीख राय तहँ आय अनतउ। सल्ल-विसल्ल-सिंह-विक्रातउ।
दुर्जय-अजय-विजय-जय-जय मुख। नर-शार्दूल-विपुलगज-गजमुख।
रुद्रवत्स-महिवत्स-महाध्वज। चदन-चदोदर-गरुडध्वज।
केसर-मारि-चड-यमघटा। कोकण-मलय-पंडिया-'नट्टा।
गुर्जर-गंग-वंग-भंगाला। पइविय-पारियात्र-पंचाला।
सिंधव-कामरूप-गभीरा। ताजिक-पारसीक-परतीरा।
मरु-कर्नाट-लाट-जालंधर। टक्क-अहीर-कीर-खस-बर्वर।
अवरहु जे ऍक-एक प्रधाना। ....।

—रामायण ३०।२

घत्ता। जे अलमत बल प्रवलबलें, हरिवल बलेहिँ साधिया।
ते नरपति (हूँ) लव-कुशेहिँ, स्ववश करीय प्रसाधिया ॥५॥
खस-सर्वर-वर्वर-ढक्क-कीर। कौबेर-कुरव-शौडीर-वीर।
तुंग-'डग-वग-कवोज-भोट्ट। जालंधर-यवना-जान-जट्ट।
कश्मीर-उशीनर-कामरूप। ताजिक-पारस-काहार-सूव।
नेपाल-धट्ट-हिंदिव तिसरा। केरल-कोहल-कैलाश-वशिर।
गंधार-मगह-मद्र-आहिवाउ। शक-शूरसेन-मरु-पार्थिवाउ।
एतउ अवरउ किउ वश-विधेय। पलटे'उ प्रतीवासेहिँ लेय।

—रामायण ८२।६

---

[१] रण-साधन, सेना

(३) योधाओंकी उमंगें

अण्णेक्क सुहड सण्णद्ध केवि । णिय कतहु आलिगणु करेवि ।
अण्णेकहु धण तवोलु देइ । अण्णेक्क समप्पिउ पिउ ण लेइ ।

मइ कन्तें समाणें चउदलेंहिं । हयपण्णेंहि रहवर-पोप्फलेंहिं ।
णर-वर सचूरिय-चुणणएण । रिउ-जयसिरि-वहुअएँ दिण्णएण ।

अण्णेकहों जाइँ सुकत देइ । ऊहुल्लइँ फुल्लइँ नतरु लेइ[1] ।
ण समिच्छमि हँउ तुहु लेहि भज्जें । एत्तिउ सिरु णिवडइ सामि-कज्जें ।

अण्णेक्कहों धण-भूसणइँ देइ । अण्णेक्कु तपि तिण-समु गणेइ ।
किं गधें किं चदण-रसेण । मइ अगु पसाहेव्वउ जसेण ।

घत्ता । अण्णेक्कहों धण अप्पाहइ, हिम-ससिकत-समुज्जलइँ ।
करिकुभइ णाह दलेप्पिणु, आणेज्जहि मोत्ताहलइँ ॥३॥

—रामायण ५६।२-३

केवि जस-लुद्ध । सण्णद्ध-कोह । केवि सुमित्त-पुत्त । सुकलत्त-चत्त-मोह ।
केवि णीसरति वीर[2] । भूधर'व्व तुगधीर ।

सायर'व्व अप्पमाण । कुजर'व्व दिण्णदाण ।
केसरि'व्व उद्धकेस । चत्त-सव्व-जीवियास ।

केवि सामि-भत्ति-वत । मच्छिरग्गि-पज्जलत ।
केवि आहवे अभग । कुकुम पसाहि-अंग ।

केवि सूर साहिमाणि । सत्ति-सूल-चक्कपाणि ।
केवि गीढ वारुणत्थ । तोण-वाण-चाव-हत्थ ।

कुद्ध लुद्ध-जुद्ध केवि । णिग्गयासु सण्णहेवि ।

—रामायण ५६।२

---

[1] नरु नलेइ—पूना [2] हेलाद्दुवई-छंद

(३) योधाओंकी उमंगें

अन्नेक[1] सुभट सन्नद्ध कोइ। निज कतहँ आलिगन करेइ।
अन्नेकहु धनि तावूल देहिँ। अन्नेक समर्पेंउ पिय न लेहिँ।
मैं कत समाने चउदलेहिँ। हय पर्णेहिँ रथवर-श्रीफलेहिँ।
नरवर सचूरित-चूर्णकेहिँ। रिपु-जयश्री-वधुअइ दिन्नकेहिँ।
अन्नेकहु जाइँ सुकत देइ। ऊहुल्लैं फुल्लैं नर न लेइँ।
नहि इच्छउँ हउँ तुहु लेइ भाज्यें। ईहउ शिर निपतै स्वामिकार्यें।
अन्नेकहँ धन-भूषणैं देइ। अन्नेक सोउ तृणसम गनेइ।
का गधहिँ का चदन-रसहीं। मैं अग प्रसाधेबउँ यशेहिँ।
घत्ता। अन्नेकहु धन आपानही, हिम-शशिकात-समुज्वलईं
करिकुभइँ नाथ! दलेविय, आनीजै मुक्ताफलईं ॥३॥

—रामायण ५६।२-३

कोइ यशलुब्ध। सन्नद्ध-क्रोध। कोइ सुमित्र-पुत्र। सुकलत्र त्यक्तमोह।
कोइ निसरति वीर। भूधर इव तुगधीर।
सागर इव अप्रमाण। कुजर इव दिन्न-दान।
केसरि इव ऊर्ध्व-केश। त्यक्त-सर्व-जिविताश।
कोइ स्वामि-भक्तिमत। मत्सराग्नि-प्रज्वलत।
कोइ आहवे अभग। कुकुमे प्रसाधित-आग।
कोइ शूर साभिमानि। शक्ति-शूल-चक्र-पाणि।
कोइ गीढ-वारुणास्त्र। तूण-वाण-चाप-हस्त।
क्रुद्ध लुब्ध-युद्ध कोइ। निर्गत-असु सन्नहेइ।

—रामायण ५६।२

---

[1] अनेक

(४) पत्नीसे विदाई (रावण-सैनिककी)

घत्ता[1]। कोइ पधाइउ हणु हणु सद्दें, परिहइ कोइ कवउ आणदें।
रण-रसियहों रोमचुब्भिण्णहों, उरें सण्णाहु ण माइउ अण्णहों ॥२॥
पभणइ कावि "कंत ! करि-कुभें जेत्तडाइँ। मुत्ताहलाइँ लेवि महु आणेज्जहि तेत्तडाइँ"।
कावि कंत-चिंधइ अप्पाहइँ। कावि कंत णिय-कंतु पसाहइँ।
कावि कंत-मुह यति करावइँ। कावि कंत दप्पणु दरिसावइँ।
कावि कंत पिय-णयणइ अजइँ। कावि कंत रण-तिलउ पउंजइ।
कावि कंत स-वियारउ जपइ। कावि कंत तवोलु समप्पइ।
कावि कंत-विवाहर लग्गइ। कावि कंत आलिगणु मग्गइ।
कावि कंत ण गणेइ णिवारिउ। सुरयारंभु करेइ णिरारिउ।
कावि कंत-सिरें वधइ फुल्लइँ। वत्थइ परिहावइँ अमुल्लइ।
कावि कंत आहरणइ ढोयइँ। कावि कंत परमुहइ पजोयइँ।
घत्ता। कहवि अगे रोसहु ण माइय, पिय रण-वहुअएँ सहुँई सगइया[2]।
जइ तुहु तहें अणुराइउ वट्टइ, तो महुँ ण हवय देवि पयट्टइ ॥३॥
पभणइ कोवि "वीरु जइ चवहि एव भज्जे। तो वरें तहें जें देमि जा जुत्त सामिकज्जे।"
कोवि भणइ "गयगडवलग्गइ। आणवि मुत्ताहलइँ धयग्गइँ।"
कोवि भणइ "णउ लेमि पसाहणु। जाव ण भजमि राहव-साहणु।"
कोवि भणइ "मुहवित्ति ण इच्छमि। जाव ण सुहड छडक्क पडिच्छमि।
कोवि भणइ "ण णिहालमि दप्पणु। जाव ण रणि विणिवाइउ लक्खणु।"
कोवि भणइ "णउ अक्खिउ अजमि। जाव ण सुरवहु-जण-मण-रजमि।". . .
कोवि भणइ "णउ सुरउ समाणमि। जाव ण भडहु कुलक्खउ आणमि।"
कोवि भणइ "धणि फुल्ल ण वधवि। जाव ण रणें सर धोरणि सधवि"।
घत्ता। कोवि भणइ "धणें णउ आलिगमि, जाव ण दंति-दंत आलिगमि"।
कोवि करवि ण वित्ति आहारहों, जाव ण दिण्ण सीय दहवयणहों ॥४॥

---

[1] तोमर-छंद [2] सट्टइ-चाहिये

(४) पत्नीसे विदाई (रावण-सैनिककी)

घत्ता । कोइ प्रधायउ हन-हन शब्दें परिहरि कोउ कवहुँ आनद्धे ।
रणरसिया रोमाचु-छिन्नहँ । उरे सन्नाह न आयउ अन्यहँ ॥२॥
प्रभणै कोइ "कत ! करिकुंभे जेत्तनाइँ । मुक्ताफलाइँ लेबि आनीजै तेत्तनाइँ ।"
कोइ कत चिन्हाईं पूजै । कोइ कत निज-कत प्रसाधै ।
कोइ कत-मुख धोंवन करावै । कोइ कत दर्पण दरसावै ।
कोइ कत-प्रिय-नयनहिँ अजै । कोइ कत रणतिलक प्रयोगै ।
कोइ कत सविकारउ जल्पै । कोइ कत तांवूल समर्पै ।
कोइ कत-विंबाधर लागै । कोइ कत आलिंगन माँगै ।
कोइ कत न गनेइ निवारिउ । सुरतारभ करेइ निरारिउ[1] ।
कोइ कत शिरें वाँधै फूलहिँ । वस्त्रहिँ पहिरावै अनमोलहिँ ।
कोइ कत आभरणहिँ योजै । कोइ कत परमुखहिँ प्रयोगै ।
घत्ता । "कहवि अगें रोसहु न भाइय, प्रिय रण-वधु-सग ईर्ष्याइय ।
यदि तुहुँ तहँ अनुरागिय वट्टै[2], तो मम न हवै[3] देवि प्र-वट्टै ॥३॥
प्रभनै कोइ "वीर ! यदि वोलु एव भार्ये । तो वरु तेहिहि देउँ जो युक्त स्वामि-कार्ये ।"
कोइ भनै "गजगड विलग्नहिँ । आनबि मुक्ताफलहिँ ध्वजाग्रहिँ ।"
कोइ भनै "ना लेहुँ प्रसाधन । जौ लों न भजउँ राघव-साधन ।"
कोइ भनै "मुखवृत्ति न इच्छउँ । जौ लौ न सुभट-छडक्क प्रतीच्छउँ ।
कोइ भनै "न निहारौं दर्पण । जौ लौं न रण विनिपातौं लक्ष्मण ।"
कोइ भनै "ना आँखिहुँ अजौं । जौ लौ न सुर-वधुजन-मन रजौं ।
कोइ भनै "न सुरति सम्मानौं । जौ लों न भटहँ कुल-क्षय आनौं ।
कोइ भनै "धनि ! फूल न वाँधव । जौ लों न रणे सर पाँती साँधव ।"
घत्ता । कोइ भनै "धनि ! ना आलिंगौं, जौ लों न दति-दत आलिंगौं ।"
कोइ "करवि न वृत्ति आहारहु, जौ लों न दीन सीय दशवदनहुँ ॥४॥

---

[1] अत्यंत [2] बाटै (काशी)=है [3] हौवे (काशी)=है

गरुअ पउ-हरीए अच्वंत णेहिणीए। रणें पइसतु कोवि सिक्खविउ गेंहिणीए।
णाह णाह! समरगणें काले। तूर भेरि-दडि-संख-रव-भाले।
उत्थरत वर वीर समुद्दे। सीह-णाय णर-णाय-रउद्दे।
मत्त-हत्थि गल-गज्जिय सद्दे। अभिडिज्ज पर राहवचदे।
कावि णारि परिहासइ एम। तेम जुज्झु णवि लज्जमि जेव।
कावि णारि पडिवोहइ णाह। भग्गमाणें पइँ जीवमि णाह।
कावि णारि पडिचुवणु देइ। कोवि वीरु अवहेरि[1] करेइ।
कतें कतें मइ मदु लएवी। कित्ति-वहुय रणें परिचुवेवी
कावि णाहि णवकारु करेइ। कोवि वीरु रणें-दिक्ख लएइ।

—रामायण ५९।३-१

थोवंतरु जाव परिभमइ। सहुँ कतएँ कोवि वीरु चवइ।
सुदरि! मृगणयणे! मरालगइ! त पहु पसाउ कि वीसरइ
त पेसणु तऊ लग्गियउँ। तजीविउ दाणु अमग्गियउँ।
त उच्चासणु मणें वेयडिउ। त मत्तगइदें-खवें चडिउ।
त मेहलु त कठाहरणु। त चेलिउँ त जें समालहणु।
त फुल्लु सहत्थें त तवोलु। त असणु स-परियलु कच्चोलु।
त चीरु भारु चामीयरहो। अवरवि पसाय लकेसरहो।
एयहुँ जसु एक्कइ णावडइ। सो सत्तमि णरयण्णवें पडइ।

—रामायण ६२।५

(५) रण-यात्रा

पेक्खु पेक्खु आवतउ साहणु। गलगज्जत महग्गय-वाहणु।
पेक्खु पेक्खु हिसत तुरगम। णहयलें विउलें भवति विहगम।
पेक्खु पेक्खु चिघइ धूयतइँ। रह-चक्कइँ महियलें खुप्पतइँ।
पेक्खु पेक्खु कड्ढिय असिवत्तइँ। धाणुक्किय फारक्किय पत्तइँ।

---

[1] तिरस्कार

गरुअ पदधरिथि अत्यन्त स्नेहनियहिँ। रणें पइसत कोइ सिखायउ गेहिनियहिँ।
"नाथ नाथ! समरगण काले। तूर्य-भेरि-दँडि-शँख-रव-माले।
उत्तरत वरवीर समुद्रे। सिंहनाद नरनाद रउद्रे।
मत्त-हस्ति-गलर्गजित शब्दे। अभिडिया पर राघवचंदे।"
कोइ नारि परिहासैं एव। "तिमि जूझौ नहि लज्जउँ येव।"
कोइ नारि प्रतिबोधैं नाथहँ। "भागते तोहि जीवउँ ना हउँ।
कोइ नारि प्रतिचुवन देई। कोई भी अवधीर[1] करेई।
"कत कत! मैं मृदू लपेबी। कीर्त्ति-बधुअ रणें परिचुवेबी।"
कोइ नाहिँ नमकार करेई। कोइ वीर रण-दीक्ष लएई।

—रामायण ५९।३-५

थोडतर यावत् परिभ्रमई। कातासों कोइ वीरा कहई।
"सुदरि! मृगनयने! मरालगति। सो प्रभु-प्रसाद का बीसरइ।
मो प्रेषण[2] तऊ लागेऊँ। सो जीवित-दान अमाँगेऊँ।
सो उच्चासन मन बीजडऊ। तेहि मत्तगयद-स्कन्धें चढिऊँ।
मो मेहरि सो कठाभरणू। सो चोलिउ सोंउ सम-लभनू।
सो फूल स्वहत्थें सो तमूल। सो अशन स-परिदल[3] कट्टोर।
सो चीर भार चामीकरहू। अवरौ प्रसाद लकेश्वरहू।
एतहुँ यश एकइ ना वडई। सो सतवें नरकार्णव पडई।

—रामायण ६२।५

(५) रण-यात्रा

पेखु पेखु आवतउ साधन[4]। गलगर्जत महागज-वाहन।
पेखु पेखु हिनहिनत तुरगम। नभतलें विपुल भवति विहगम।
पेखु पेखु चिन्हा कपता। रथचक्का महितलहिँ खनता।
पेखु पेखु काढिय असिपत्रा। धानुष्केंहिँ फरकायो पत्रा।

---

[1] तिरस्कार [2] आज्ञा [3] थाली [4] सेना

पेक्खु पेक्खु वज्जंतइ तूरइँ। णाणा-विह निनाय-गभीरइँ।
गलगज्जत घणुहु-टकारउँ। सुहड विमोक्क पोक्कहक्कारउँ।
पेक्खु पेक्खु सय-सख रसता। णाइ स दुक्खउ सयणँ रुअंता।
पेक्खु पेक्खु पच्चलतउ णरवइ। गह चक्कहहोँ मज्झेँ सणि णोवइ।
दसउर-[1]णाहु णिहालइँ जावेँहिँ। सयलु वि सेण्णु पराइउ तावेँहिँ।
—रामायण २५।४

घटा-टंकार-मणोहराइँ। उड्डुत मत्त-महुयर-सराइँ।
ससि-सूर-कत-कर-णिब्भराइँ। बहु-इद-णील-किय-सेहराइँ।
पवलय-माला रछोलिराइ। मरगय-रिछोलिएँ सोहिराइँ।
मणि-पोमराय-वण्णुज्जलाइँ। वेडुज्ज-वज्ज-पह-णिम्मलाइँ।
मुत्ता-हल-माला धवलियाइँ। किंकिण-घग्घर-सर-मुहलियाइँ।
धूवंत धवल-धुय-धय-वडाइँ। वज्जत सख-सय-सघडाइँ।
सुग्गीवेँ रयणुज्जोइयाइँ। विहि विण्णि विमाणइ ढोइयाइँ।
—रामायण ५६।४

(६) सैनिक बाजे

पडु-पडह-सख-भेरी-रवेण। कसाल-ताल-दडिरउ रवेण।
कोलाहल काहल-णीसणेण। वड्ढीअ मुउदा मीसणेण।
धमुक्क करउ-टिविला-रवेण। झल्लरि-रुजा-डमरुअ-करेण।
पडिढक्क-हुडुक्का-वज्जिरेण। घुम्मत-मत्त-गय-गज्जिरेण।
तडविय-कण्ण-विहुणिय-सिरेण। गुमु-गुमु-गुमत इदीवरेण।
पक्खरिय तुरय पवणुज्झडेण। धूवत-धवल-धय-धूवडेण।
मण-गमणा मेल्लिय सदणेण। जम-वरुण-कुवेर-विमद्दणेण।
वदिण जयकारु घोसिरेण। सुर-वहुअ-सत्थ-परितोसणेण।
घत्ता। सहु सेण्णेँ सहइ दसाणणु णीसरिउ।
छण-चदु व तारा णियरेँ परियरिउ॥१॥
—रामायण ६३।१

[1] मालवा का दशपुर

पेखु पेखु वाजता तूरइँ । नानाविध निनाद-गभीरइँ ।
गलगर्जंत धनुप-टकारा । सुभट विमोचु पुष्पक हकारा ।
पेखु पेखु शतशख रसता । न्याइँ स्वदु खउ स्वजन रुदता ।
पेखु पेखु प्रचलतउ नरपति । ग्रह-चक्रहु माँझे स निशापति ।
दशपुर-नाथ निहारेँउ जव्वैँ । सकलहु सैन्य पराइउ तव्वैँ ।

—रामायण २५।४

घटा-टकार मनोहराइँ । उड्डुत मत्त-मधुकर-स्वराइँ ।
शशि-सूर-कात-कर-निर्भराइँ । बहु-इन्द्रनील-कृत-शेखराइँ ।
प्रवलय-माला रखोलिराइ[१] । मरकत-पक्तीहीँ सोहराइँ ।
मणि-पद्मराग-वर्णोज्ज्वलाइँ । वैदूर्य-वज्र-प्रभ-निर्मलाइँ ।
मुक्ता-फल-माला-धवलिताइँ । किंकिणि घर्घर स्वर मुखरिताइँ ।
कपल धवल-धुत-ध्वज-वडाइँ । वाजत शख-शत-सघटाइँ ।
सुग्रीवेँ रतनोद्योनिताइँ । विधि दोउ विमानइँ ढोइयाइँ ।

—रामायण ५६।४

(६) सैनिक वाजे

पटु पटह-शख-भेरी-रवेहिँ । कसाल-ताल-दडिरव-रवेहिँ ।
कोलाहल काहल-नि स्वनेहिँ । वड्ढीय मृदगा मिश्रणेहिँ ।
धमुक्क-करड-टिविला-रवेहिँ । झल्लरि-रुजा-डमरु-करेहिँ ।
प्रतिढक्क-हुडुक्का वाजिरेहिँ । घूमंत मत्तगज-गर्जिरेहिँ ।
ताडविय कर्ण-विधुनित-शिरेहिँ । गुम-गुम-गुमत इदीवरेहिँ ।
पाखरिय तुरग-पवनोज्झटेहिँ । धुन्वत-धवल-ध्वज-भ्रूवटेहिँ ।
मनगमना छोडी स्यदनेहिँ । यम-वरुण-कुवेर-विमर्दनेहिँ ।
वदिन जयकारु-द्घोषणेहिँ । सुर-वधुग्र-सार्थ-परितोषणेहिँ ।
घत्ता । सवसेनहिँ सह दशानन नीसरिऊ ।
क्षण-चदिँव तारा-निकरे परिचरिऊ ॥१॥

—रामायण ६३।१

---

[१] साकल

(७) युद्ध-वर्णन

(क) मेघवाहन[1] का युद्ध—

पच्छइ मेहवाहणो गहिय-पहरणं णिग्गउ तुरतो ।
णं जुग-खय-सणिच्छरो भरिय-मच्छरो अहर-विप्फुरतो ।
सो'वि पधाइउ रहवरें चडियउ । ण केसरि-किसोरु णिव्वडियउ ।
सचल्लडए तोयदवाहणें । तूरइ हयइ असेस'वि साहणे ।
मणज्झति केवि रयणीयर । वर-तोणीर-वाण-धणु-वर-कर ।
केंवि तिक्खर-खग्गु-'क्खय-हत्था । केवि गुरुहु ऊणमिया-मत्था ।
केवि चडिय हिंसत-तुरगेंहिं । केवि रसत-मत्त-मायगेंहिं ।
केवि रहेंहि केंवि सिविया-जाणेहिं । केवि परिट्ठिय-पवर-विमाणेंहिं ।
पुच्छिउ णियय-सारही, "अहो महारही ।
दिढइँ जाइँ जाइँ, कहि कित्तियहँ ।
अत्थइ रणहों समत्थइ, रहिहें चडावियइँ ।"

(हथियारोंकी शक्तिकी तुलना—)

तो एत्यतरि पभणइ सारहिँ । "अत्थइँ अत्थि देव ! जइ पहरहिँ ।
चक्कइ पच मत्त वर-वायइँ । दस असिवरइँ अणिट्ठिय गावइँ ।
वारह झस पण्णारह मोग्गर । सोलह लउडि दड रणें दुद्धर ।
वीस फरसु चउवीस तिसूलइँ । कोतइ तीस सत्तु-पडिकूलइँ ।
घण पणतीस चाउ वसुणेदा । चाल पचास तीस अद्धदा ।
सेल्लइ सट्ठि खुरुप्पइँ सत्तरि । अण्णइँ कणय-चडिय चउहत्तरि ।
असीति सत्तिउ णवइ भुसढउ । जाउ दिवे दिवें रण-रसि-यट्ठिउ ।
सउ णारायहुँ ज परिमाणमि । अण्णहि पुणु परिमाणु ण जाणमि ।
घत्ता । वारह णियलइँ सोलह, विज्जउ रह चडिअउ ।
जेहि धरिज्जइ समरगणि, इदु' वि भिडिअउ ॥५॥

—रामायण ५३।४-५

---

[1] मेघनाद

(७) युद्ध-वर्णन

(क) मेघवाहनका युद्ध—

पाछेइँ मेघवाहन गहिय-प्रहरणा निर्गतउ तुरता ।
जनु युग-क्षय शनिश्चर, भरिय-मत्सर अधर-विस्फुरता ।
सोउ प्रधायउ रथवर चढियउ । जनु केसरि-किशोर नीवडियउ ।
सचलतेई तोयदवाहनें । तूर्यंहिँ हयहिँ अशेषहु साधनें ।
सन्नाहति कोँइ रजनीचर । वरतूणीर-वाण-धनु-वर-कर ।
कोँइ तीखर-खड्गु-'द्यत-हत्था । कोइ गुरुहिँ अवनामिय-मत्था ।
कोइ चढिय हिनहिनत तुरगेहिँ । कोइ रसत मत्त-मातगेहिँ ।
कोइ रथेहिँ कोँइ शिविका-यानेहिँ । कोड बैठे प्रवर-विमानेहिँ ।
पूछेँउ निजय-सारथी, "अहो महारथी !
दृढै जाइँ जाइँ, कहु केत्तियइँ ।
अर्थइ रणहु समर्थैं, रथिहिँ चढावियई" ।

हथियारोकी शक्तिकी तुलना

तो एहीँ बिच प्रभणें सारथी । "अर्थैं अहै देव ! यदि प्रहरहिँ ।
चक्रैं पाँच सात वर-वायहिँ[1] । दश असि-वरहिँ अनिष्टित गावैं ।
वारह झष पन्नारह मुद्गर । सोलह लउरि-दड रणें दुर्धर ।
वीस परशु चौबीस त्रिशूलहिँ । कुतहिँ तीस शत्रु-प्रतिकूलहिँ ।
घन पैंतीस चाप वसुनेद्रा । चाल पचास तीस अर्धदा ।
सेलहि साठ क्षुरप्रहिँ सत्तर । अन्यहिँ कनक-चढिय चौहत्तरि ।
अस्सी शक्तिहि नबे भुसुडिउ । जाउ दिने दिन रण-रसिकस्थिउ ।
सौ नाराचौ जो परिमाणौं" । अन्येहिँ पुनि परिमाण न जानऊँ ।
घत्ता । वारह निगडहिँ सोरह विद्या रथ चढियउ ।
जेँहि धरिये समरगणे, इन्द्रहुँ भिडियउ ॥५॥

—रामायण ५३।४-५

---

[1] हथियार

(ख) मेघवाहन और हनूमान्‌का युद्ध—

एक्कल्लउ सुहडु अणत-बलु । पप्फुल्लु तोवि तहों मुह-कमलु ।
परि-सक्कइ थक्कइ उल्ललइ । हक्कारइ पहरइ दणु दलइ ।
आरोक्कइ ढुक्कइ उत्थरइ । परिउभइ¹ रुभइ वित्थरइ ।
णवि छिज्जइ भिज्जइ पहरणेहिँ । जिह जिणु मसारहों कारणेहिँ ।
हणुयहों पासेंहि परिभमइ बलु । ण मदल-कोडिहि उयहि-जलु ।
घत्ता । धरेंवि ण सक्कइ बलु सयलु 'वि उक्खय-पहरणु ।
मारुहें पासेंहि परिभमइ मदरहों णाइ तारायणु ॥६॥
धाइउ पवणणदणो दणु-विमद्दणो बलहों पुलइ-अगो ।
हउ-रहु रह-वरेण गउ गय-वेरण, तुरएण वर-तुरगो ॥
सुहडें सुहडु कवय कवयें । छत्तें छत्तु चिंधुहउ चिंधें ।
बाणें बाणु चाउ वर-चावें । खग्गें खग्गु अणिट्ठिय-गव्वें ।
चक्कइँ चक्कु तिसूल तिसूलें । मोग्गर मोग्गरेण हुलिहूलें ।
कणएँण कणउ मुसलु वर-मुसलें । कोते कोतु रणगणें कुसलें ।
सेल्लें सेल्लु खुरुप्पु खुरुप्पें । फलिहि फलिहु गयावि गय-रुप्पें ।
जतें जतु एतु पडिखलियउ । बलु उज्जाणु जेण दरमलियउ ।
णासइ सयलु'ण्णाविय मत्थउ । णिग्गइ दुण्णि तुरगु णिरुत्थउ ।
विवरामूहुउ हल्लिय-वयणउ । भग्गमडप्फरु मउलिय-णयणउ ।
घत्ता । वियलिय-पहरणु णासतु णिए' वि णिय-साहणु ।
रह-वरु वाहेंवि थिउ अग्गएँ, तोयदवाहणु ॥७॥
रावण-राम-किकरा रणे भयकरा, भिडिय विप्फुरता ।
विउ सुग्गीव-राहवा विजय-लाह-वाणाइँ हणु भणता ॥
वेवि पयड वेवि विज्जा-हर । वेंण्णि'वि अक्खय-तोण-धणुह-कर ।
वेंण्णि'वि वियउ-वच्छ पुलइय-भुअ । वेण्णि'वि अजण-मदोयरि-सुअ ।

¹ परिभ्रंभइ

(ख) मेघवाहन और हनूमान्‌का युद्ध—

एकल्लउ सुभट अनतबलू । प्रप्फुल्ल तोउ तसु मुख-कमलू ।
परि-शक्कै थाकै उल्ललई । हक्कारै प्रहरै दनु-दलई ।
आ-रोकै ढूकै उल्ललई । परि-रुधै रुधै विस्तरई ।
नहि छिद्यै भिद्यै प्रहरणेहिँ । जिमि जिन ससारह कारणेहिँ ।
हनुमत्-पासेँहिँ परिभ्रमै बलू । जनु मदर-कोटिहिँ उदधि-जलू ।
घत्ता । धरेँव न सक्कै बल सकलहु उक्खाड-प्रहरण ।
मारुति-पासेँहिँ परिभमै मदर-कोटि'व तारागण ॥६॥
धायेँउ पवननदनो दनु-विमर्दनो । वलवत् पुलकित-अगो ।
हय-रथ रथवरेहिँ गयेँउ गजवरेहिँ तुरगेहिँ वरतुरगा ।
सुभटेहिँ सुभट कवध कवधेहिँ । छत्रेँ छत्र चिन्हहऊँ चिन्हा[१] ।
वाणेँ वाण चाप वर-चापेँ । खड्गेँ खड्ग अनिष्ठित[२]-गर्वेँ ।
चक्रहिँ चक्र त्रिशूल त्रिशूलेँ । मुद्गर मुद्गरेहिँ हुलिहूलेँ ।
कनकेहिँ कनक मुसल वर-मुसलेँ । कुतेँ कुत रणगण कुसलेँ ।
सेलेँ सेल क्षुरप्र क्षुरप्रेँ । फरिहिँ फरिहु गजाहु गज-रूपेँ ।
यत्रेँ यत्र आवत प्रतिस्खलियेँउ । बल उद्यान येन दरमलियेँउ ।
नाशै सकल नवाइया मत्थउ । निर्गत दोउ तुरग-निरर्थउ ।
विवर-मुखोहू हालिय-वदनहु । भग्न-'भिमान मुकुलिया-नयनहु ।
घत्ता । विचलिउ प्रहरण नाशत निजहु निज-साधन ।
रथवर वाहहु रहु आगे, तोयदवाहन ॥७॥
रावण-राम-किकरा रण-भयकरा, भिडेँउ विस्फुरता ।
सुग्रीव-राघव-विजल लाभवाणा हन भनता ॥
दोउ प्रचड दोउ विद्याधर । दोऊ अक्षय-तूण-धनुष-कर ।
दोऊ विकट-वक्ष पुलकित-भुज । दोऊ अजन-मदोदरि-सुत ।

---

[१] ध्वज [२] अनत, असमाप्त

वेण्णि'वि पवण-दसाणण-णदण । वेण्णि'वि दुद्दम-दाणव-मद्दण ।
वेण्णि'वि पहरण-परवल-चट्टिय । वेण्णि'वि जय-सिरि-वहुअवरुडिय ।
वेण्णि'वि राहव-रावण पक्खिय । वेण्णि'वि सुर-वहु-णयण-कडक्खिय ।
वेण्णि'वि समर-सऍहिँ जसवता । वेण्णि'वि पहु-सम्माण-सरत्ता ।
वेण्णि'वि वीर-धीर भय-चत्ता । वेण्णि'वि परम-जिणिदहोँ भत्ता ।
वेण्णि'वि अतुल-मल्ल रण-दुद्धर । वेण्णि'वि रत्त-णेत्त-फुरिया-हर ।

घत्ता । विहिमि महाहउ जो असुर-सुरेदहि दीसइ ।
राहव-रावणहोँ से तेहउ दुक्खरु होसइ ॥८॥

—रामायण ५३।६-८

भिडिअइ वे'वि सेण्णइँ आउ जुज्झु घोरु ।
कुडल-कडय-मउडणिवडत कणय-डोरु ।
हण-हण-हणंकारु महारउद्दु । छण-छण-छणतु गुण-पिछ-सद्दु ।
कर-कर-करतु कोयड-पवरु । थर-थर-थरतु णाराय-णियरु ।
खण-खण-खणतु तिक्खग्ग खग्गु । हिलि-हिलि-हिलतु हय-चचलग्गु ।
गुलु-गुलु-गुलत गयवर विसालु । "हणु-हणु" भणतु णर-वर-विसालु ।
पोप्फस-वसणे गत्तत्त-मालु । धावत कलेवर सव-करालु ।
झल-झल-झलतु सोणिय-पवाहु । छिज्जत चलण तुट्टत वाहु ।
णिवडत सीसु णच्चत रुड । ऊणल्ल तुरय-धय-छत्त-दड ।
तँहि तेहऍ रणेँ रण-भर-समत्थु । राहव-किंकरु वर-वारणत्थु ।

घत्ता । सीहद्धउ चवल सीह-सदणे चडियउ ।
सतावणु सुहुमारिव्वेँ अब्भिडिउ ॥३॥

वेण्णि'वि सीह-सदणा वेण्णि'वि सीह-चिधा ।
वेण्णि'वि चाव-करमला वे'वि जगेँ पसिद्धा ।

---

१ [illegible]

दोऊ पवन-दशानन-नदन । दोऊ दुर्दम-दानव-मर्दन ।
दोऊ प्रहरण परबल-चढिया । दोऊ जयश्री-वधु आँलिगिया ।
दोऊ राघव-रावण-पक्षिय । दोऊ सुरबधु-नयन-कटाक्षिय ।
दोऊ समर-शतेहिँ यशवता । दोऊ प्रभु-सम्मान स्मरता ।
दोऊ वीर-धीर भय-त्यक्ता । दोऊ परम-जिनेद्रह भक्ता ।
दोऊ अतुल-मल्ल रण-दुर्धर । दोऊ रक्तनेत्र स्फुरिताधर ।
घत्ता । दोँउहि महाहव जो असुर-सुरेद्रहिँ दीसै ।
राघव-रावणँह सो, वैसे दुष्कर होषै[1] ॥८॥

—रामायण ५।३।६-८

भिडिया दोऊ सेन आव युद्ध घोर ।
कुडल-कटक मुकुट निपतत कणक-डोर ॥
हन-हन-हनकार महा-रउद्र । छन-छन-छनत गुण-पिच्छ-शब्द ।
कर-कर-करत कोदड-प्रवर । थर-थर-थरत नाराच-निकर ।
खन-खन-खनत तीक्ष्णाग्र खड्ग । हिलि-हिलि-हिलत हय-चचलाग्र ।
गुलु-गुलु-गुलत गजवर-विशाल । "हन हन" भनत नरवर-विशाल ।
फुप्फुस वसने गात्रात्त-माल । धावत कलेवर शव-कराल ।
झल-झल-झलत शोणित-प्रवाह । छिद्यत चरण तुट्यत बाँह ।
निपतत शीश नाचत रुड । फिक्कत तुरग-ध्वज-छत्र-दड ।
तँह तेहि रणे रणधर-समर्थ । राघव-किंकर वर-वारणास्त्र ।
घत्ता । सिहध्वज चपल सिंह-स्यदन चढियउ ।
सतापन सुखमारी इव भिडियउ ।
दोऊ सिंहस्यदना दोऊ सिंहचिन्हा ।
दोऊ चाप-करतला दोऊ जग-प्रसिद्धा ।

---

[1] होखै (काशी)

वेण्णि'वि[१] जस-लुद्ध विरुद्ध कुद्ध । वेण्णि'वि वसुज्जल कुल-विसुद्ध ।
वेण्णि'वि सुर-बहु-आणद-जणण । वेण्णि'वि सत्तुत्तम सत्तु-हणण ।
वेण्णि'वि रण-धुर-धोरिय महत । वेण्णि'वि जिण-सासण-भत्तिवत ।
वेण्णि'वि दुज्जय जय-सिरि-णिवास । वेण्णि'वि पणई-यण-पूरियास ।
वेण्णि'वि निसियर-णर-वर-वरिट्ठ । वेण्णि'वि रावण-राहवहँ इट्ठ ।
वेण्णि'वि जुज्झत सिलीमुहेहि । ण गिरि अवरोप्परु सरि मुहेहिँ ।
मारिच्चहों भय भीसावणेण । धणु जीउच्छिणु सतावणेण ।
तेण'वि तहों चिर-पेमिय-सरेहिँ । ससारु'व परम-जिणेसरेहि ।
—रामायण ६३।३-४

(ग) हनूमान्का युद्ध

हणुवंत-रणे परिवेढिज्जइ णिसियरेहिँ ।
ण गयण-यले वाल-दिवायरु जलहरेहिँ ।
पर-वलु अणतु हणुवलु एक्कु । गय-जूहहों णाइ इदु थक्कु ।
आरोक्कइ कोक्कइ समुहुँ धाइ । जहि जहि जें थट्ट तहि तहि जें थाइ ।
गय-घड भड-थड भजतु जाइ । वसत्थलें लग्गु दवग्गि णाइ ।
एक्कू रहु महाँहवे रस-विसट्टु । परिभमइ णाइँ वलें भइय वट्ट ।
सो णवि, भडु जासु ण मलिउ माणु । सो ण धयउ जासु ण लग्गु वाणु ।....
सो णवि तुरंगु जस गोंडु ण तुट्टु । सो विण रहु जासु ण रहगु फुट्ट ।
सो णवि भडु जासु ण छिण्णु गत्तु । त णवि विमाणु जहि सरु ण पत्तु ।
घत्ता । जगडतु वलु मारुइ हिंडइ जहिँ जें जहिँ ।
सगाम-महिहें रुड णिरतर तहि जें तहिँ ॥१॥
जं जिणेवि ण सक्किउ वर-भडेहि । वेढाविउ मारुइ गय-घडेहि ।
गिरि-सिहिर-गहिर कुभत्थलेंहिँ । अणवरय-गलिय- गडत्थलेहिँ ।
छप्पए-झकार-मणोहरेहिँ । घटा-टकार-भयकरेहिँ ।
तंडविय कण्ण उद्ध करेहिँ । मुक्क'कुसेहि मय-णिब्भरेहिँ ।...

---

[१] वे—दो (गुजराती)

दोऊ यशलुब्ध विरुद्ध क्रुद्ध । दोऊ वशोज्वल कुल-विशुद्ध ।
दोऊ सुरबधु-आनद-जनन । दोऊ सत्त्वोत्तम शत्रु-हनन ।
दोऊ रण-धुर-धौरेंय महत । दोऊ जिन-शासन-भक्तिवत ।
दोऊ दुर्जय जयश्री निवास । दोऊ प्रणयीजन-पूरिताश ।
दोऊ निशिचर-नरवर-वीरष्ट । दोऊ रावण-राघवहँ इष्ट ।
दोऊ युध्यत शिलीमुखेहिँ । जनु गिरि अपरोपर सरि-मुखेहिँ ।
मारीचहु भय-भीषावणेहिँ । धनुज्या उछिन्दु सतापनेहिँ ।
सोऊ तेहि चिर-प्रेषित-शरेहिँ । ससारि'व परम जिनेवरेहिँ ।
—रामायण ६३।३-४

(ग) हनूमान्‌का युद्ध

हनुमत-रणे परिवेठिज्जै निशिचरेहिँ ।
जनु गगनतले वालदिवाकर जलधरेहिँ ।
पर-बल अनत हनुमत एक । गज-यूथहिँ न्याईँ इदु थाक[1]
आरोकइ कोकइ समुँहेँ धाइ । जहँ जहीँ ठट्ट तहँ तहीँ थाय[2] ।
गज-घट भट-ठट भजत जाइ । वश-स्थलेँ लागि दवाग्नि न्याइँ ।
एको रथ महाहवे रस-विसट्ट । परिभ्रमै न्याइँ वलेँ भयावर्त्त ।
सो नहिँ भट जासु न मलेँउ मान । सो नहिँ ध्वज जासु न लागु वाण । . .
सो नहिँ तुरग जसु गोँड न टूट । सो नहिँ रथ जसु न रथग फूट ।
सो नहिँ भट जासु न छिन्नु गत्त । सो नहिँ विमान जेहि गर न प्राप्त ।
घत्ता । झगडत वल मारुति हिंडइ जहँहि जहँ ।
सग्राम-महिहिँ रुड निरतर तहँहि तहँ ॥१॥
जो जितव न सक्केउ वर-भटेहिँ । वेष्ठाविउ मारुति गजघटेहिँ ।
गिरि-शिखर-गहिर-कुभस्थलेहिँ । अनवरत-गलित-गडस्थलेहिँ ।
षट्पद-झकार-मनोहरेहिँ । घटाटकार-भयकरेहिँ ।
ताडविय कर्ण ऊर्ध्व-करेहिँ । मुक्त-आकुशेहिँ मद-निर्भरेहिँ ।

---

[1] ठहरै (वगला) [2] रहै (गुजराती)

रण-रसिएँहि वेहाविद्धएहि । पेल्लिउ पडिवक्खु कइद्धएहि ।
णासइ विहडप्फड गलिय-खग्गु । चूरतु परप्फरु चलण-मग्गु ।

(घ) कुंभकर्णका युद्ध

भज्जतउ पेक्खेंवि णियय-सेण्णु । रावणु जयकारेवि कुंभयण्णु ।
धाइउ भय-भीसणु भीम-काउ । ण राम-बलहों खय-कालु आउ ।
परिसक्कइ रण-भूमिहि ण माइ । गिरि-मंदरु-थाणहों चलिउ णाइ ।
जउ जउ जि समच्छरु देइ दिट्ठि । तउ तउ जें पडइ ण पलय-विट्ठि ।
कों वि वाएँ कोवि भिउडिएँ पणट्ठु । कों वि ठिउ अवठंभेवि धरणि विट्ठु ।
कों वि कहवि कडच्छए णरु णिलुक्कु । कों वि दूरहोज्जें पाणेहि मुक्कु ।

घत्ता । सुग्गीव वले गरुअउ हुअउ हल्लोहलउ ।
ण अगरे[1] हत्थि पइट्ठव राउलउ ॥३॥ ..

इत्थतरे किक्किंधाहिवेण । पडिवोहणत्थु आमुक्क तेण ।
उम्मोहिउ उट्ठिउ वलु तुरंतु । कहि कुंभयण्णु वलु वलु भणतु ।

घत्ता । सयडम्मुहु पुणुवि पडीवउ धावियउ ।
ण उयहि-जलु महि रेल्लतु पराइयउ ॥५॥

पर-बलु णियेवि समुत्थरतु । लंकाहिवेण थरहर-थरतु ।
करि कड्ढिउ णिम्मल चंदहासु । उग्गामिउ णइ दिणयर-सहासु ।
रिउ-साहणें भिडइ ण भिडइ जावँ । सोडीर-वीर-णर तिण्णि तावँ ।
इंदइ घणवाहण वज्जणक्क । सिर णमिय कियंजलि-हत्थ थक्क ।
"अम्हेंहि जीवतेंहि किंकरेहिँ । तुहु अप्पणु पहरहि कि करेहिँ" ।
सामिउ सम्माणेवि वद्ध-कोह । तिण्णें वि समरंगणें भिडिउ जोह ।
चंदोयर-तणयहु वज्जणक्कु । घणवाहणु भामंडलहों थक्कु ।
इंदइ सुग्गीवहों संमुहु चलिउ । ण मेरु महोयहि पहहुँ चलिउ ।

घत्ता । णरु णरवरहों तुरयहों तुरय समावडिउ ।
रहु रहवरहों गयहों महग्गउ आविडिउ ॥६॥

---

[1] अग्गहरे

रणरसिकेँहि वेधा-विद्धएहि । पेल्लेँउ प्रतिपक्ष कपिध्वजेहि ।
नाशइ बिहडप्फल गलित-खड्ग । चूरत परस्पर-चरण-मार्ग ।

(घ) कुभकर्णका युद्ध

भज्जतउ पेखिय निजय-सैन्य । रावण जयकारहु कुभकर्ण ।
धायउ भयभीषण भीमकाय । जनु रामवलह क्षयकाल आय ।
परि-सकै न रण-भूमिहि अमाइ । गिरि-मदर-थानहु चलेउ न्याइँ ।
जेँहि जेहि समक्षहु देइ दृष्टि । सोइ सोइ पडै जनु प्रलय-वृष्टि ।
कोइ वाचेँ कोइ भृकुटिहिँ प्रणष्ट । कोइ ठिउ अवथभेहि धराविष्ट ।
कोँइ कोइ कटाक्षहिँ नरउ लूकु । कोइ दूरहीँहि प्राणेहिँ मोचु ।
घत्ता । सुग्रीवहु गरुओ हुयो हल्लाहलउ ।
जनु अग्रहारे पइठउ हस्ति राजुलउ ॥३॥..
एहि अन्तर किष्किधाधिपेहिँ । प्रतिबोधनार्थ आमोचु तेहिँ ।
उन्मोहेँउ उठेँऊ वल तुरत । कहँ कुम्भकर्ण-वलवल भनत ।
घत्ता । शकट-मुँह पुनि हि प्रतीपउ धावियउ ।
जनु उदधि-जल मही रेल्लत[1] परायउ ॥५॥
परवल निजेँहु समुत्थरत । लकाधिपेहिँ थर-थर-थरत ।
करेँ काढेँउ निर्मल चद्रहास । उग्गियउ जनू दिनकर-सहस्र ।
रिपु-सेना भिडइ न भिडइ याव । शौडीर-वीर-नर तीन ताव ।
इद्रजि-घनवाहन-वज्रनाक । शिर नमिय कृताजलि-हस्त थाक ।
"हम सव जीवतेहिँ किंकरेहिँ । तुहु अपने प्रहरै किं करेहि ।"
स्वामिय सम्मानेहु वद्ध-क्रोध । तीनौ समरगणेँ भिडेँउ योध ।
चद्रोदर-तनयहु वज्रनाक । घनवाहन भामडलहुँ थाक ।
इन्द्रजि सुगीवहि समुह चलिउ । जनु मेरु महोदधि-मथन, चलिउ ।
घत्ता । नर नरवरहुँ तुरयहु तुरय समापडिऊ ।
रथ रथवरहुँ गजहुँ महागज आभिडिऊ ॥६॥

---

[1] रेल-पेल

(ङ) सुग्रीव और मेघवाहनका युद्ध—

किक्किंध-णराहिउ धरिउ जाव। घण-वाहण भामंडलहँ ताव।
अब्भिट्ट परोप्परु जुज्झ घोर। सरि सोत्त स-उत्तरें पहर थोरु।
छिज्जत महग्गय गरुअ-गत्तु। णिवडत समुद्‌धुय-धवल-छत्तु।
लोट्टत महारह-हय-रहगु। घुम्मत-पडत महातुरगु।
तुट्टत कवड तुट्टत खग्गु। णच्चत कवधउ असि-कर-ग्गु।
आयामें वि रणें रोसिय-मणेण। अग्गेउ मुक्कु घणवाहणेण।
आमेल्लिउ आयउ धगधगतु। अगार वरिसु णहें दक्खवतु।
वारुणु विमुक्कु भामडलेण। ण गिरिहि वज्जु आखडलेण।
उल्हाविउ जलणु जलेण ज जें। सरु णागवासु पम्मुक्क त जें।
घत्ता। पुप्फवइ-सुउ दीहर-पवर-महासरेंहिँ।
परिवेंढियउ मलयिदु'व विसहरेहि ॥६॥

—रामायण ६५।१-६

तार मारिच्च साहण सुसेणाहिवा। मुअपचडालि समुच्छ दहिमुह-णिवा।
घत्ता। अण्णेकहु मि भवणेक्केक्क पहाणहु।
किं सक्कियउ णाउँ गणेप्पिणु दाणहु ॥८॥
केणवि कोवि दोच्छिउ "मरु सवडम्मुहु थाहि थाहि।
केणवि कोवि वुत्तु "समरगणें रहवरु वाहि वाहि ॥"
केणवि कोवि महासर-जालें। छाइउ जिह सुक्कालु दुकालें।
केणवि कोवि भिण्णु वच्छत्थलें। पडिउ घुलतु णवरि महि-मडलें।
केणवि कहों वि सरासणु ताडिउ। ण हेट्ठामुहु हिअव उपाडिउ।
केणवि कहों वि कवउ णिव्वाट्टिउ। वलि जिह दस-दिसेहि आवट्टिउ।
केणवि कहों वि महद्धउ पाडिउ। ण मउ माणु मडप्फरु साडिउ।
केणवि दति-दतु उप्पाडिउ। णावइ जसु अप्पणउ भमाडिउ।
केणवि झप दिण्णु रिउ-रहवरें। गरुडें जिह भुयग-भुअणतरें।
केणवि कहिं'वि सीसु अच्छोडिउ। ण अवराह-रुक्खु-फल तोडिउ।

(ङ) **सुग्रीव और मेघवाहनका युद्ध—**

केष्किध-नराधिप धरेँउ याव। घनवाहण भामडलहँ ताव।
आभिडेँउ परस्पर युद्ध-घोर। शरस्रोत स्व-उत्तरेँ प्रहर थोर।
छिद्यत महागज गरुअ-गात्र। निपतत समुद्धत-धवल-छत्र।
लोटत महारथ-हय-रथाग। घूमत पडत महातुरग।
टूटत कवच टूटत खड्ग। नाचत कवधउ असि-कराग्र।
आयामेहु रणेँ रोषितमनेहिँ। आग्नेय मोचु घनवाहनेहिँ।
आमेलेँउ आतप धगधगत। अगार वरिसु नभेँ दग्धवत।
वारुण विमोचु भामडलेहिँ। जनु गिरिहिँ वज्र आखडलेहिँ।
बूझायउ ज्वलन जलेहिँ जो हि। शर नागफास प्रम्मोचु सो हि।

घत्ता। पुष्पवती-सुत दीरघ-प्रवर-महाशरेहिँ।
परिवेठेँउ मलयद्रुम'व विषधरेहिँ॥९॥

—रामायण ६५।१-९

तार मारीच साधन सुसेनाधिपा। सुत प्रचडालि समूर्छ दधिमुखनृपा।

घत्ता। अन्नेकहुहि भवने एक एक प्रधानहँ।
का सक्किय नाम गनाइव राजहँ।

केहु सँग कोउ दर्शिउ "मर शकटमुँह स्थाहि स्थाहि।
केहु सँग कोउ कह "समरगणे रथवर वाहि वाहि।"
केहु कहँ कोउ महाशर जालेँ। छापेउ जिमि सुक्काल दुकालेँ।
केहु कहँ कोउ भिन्दु वक्षस्थले। पडेँउ घुरत केँवल महिमडले।
केहु कहँ कोउ शरासन ताडेँउ। जनु हेठामुँह हृदय उपाडेँउ।
केहु कहँ कोउ कवच निर्वट्टिउ। वलि जिमि दशदिशेहिँ आवट्टिउ।
केहु कहँ कोउ महाध्वज पातेँउ। जनु मृदु मान'हँकारा साटेँउ।
कोऊ दति-दत उप्पाडेउ। मानोँ यश आपनो भ्रमाडेँउ।
कोउ झप दियेँउ रिपु-रथवरेँ। गरुडेँ जिमि भुजग भुवनतरे।
कोऊ काहुहि शीश आछोडिउ। जनु अपराध वृक्ष फल तोडिउ।

घत्ता। केणवि समरे दिण्णु विवक्खहो हिअउ थिरु।
जीविउ जमहीं गुरु पहरहों सामियहँ सरु ॥६॥

—रामायण ६६।६

(च) रावणका शरीर

दसहिँ कठेहि दसजें कठाइँ दस भालहिँ तिलय दस।
दस सिरेहिँ दस मउड पज्जलिय।
दहहिमि कुंडल-ज्जुएहिँ कण्ण-जुयल-सुकउल मुहलिय।
फुरिउ रयण-सघाउ दमाणण रोमुव। अह थिउ स-तारायणु वहल पऊसु व।
पढम वयणु सय-सूर समप्पहु। मिदुराख्णु सुरहमि दूसहु।
वीयउ वयणु धवल-धवलच्छउ। पुण्णिम-यद-विंव-सारिच्छउ।
तइयउ वयणु भुयण-भय-गारउ। अगारारुणु मुक्कगारउ।
वयणु चउत्थउ वुह-मुह भासुरु। पचमएण सइजें ण सुर-गुरु।
छट्ठउ सुक्क सुवक-सकासउ। दाणव-वखिउ सुर-मतासउ।
सत्तमु कसणु सणिच्छरु भीसणु। दतुरु वियडु दाढु दुद्दरिसणु।
अट्ठमु राहु-वयणु विकरालउ। णवमउ धूमकेउ धूमालउ।
दसमउ वयणु दसाणणकेरउ। सव्व-जणहों भय-दुक्ख-जणेरउ।
घत्ता। वहु-रूवउ वहु-सिरु वहु-वयणु, वहु-विह-कवोलु वहु-विह-णयणु।
वहु-कठउ वहु-करु वि वहु-पउ, ण णट्ट-पुरिसु रसभाव गउ ॥८॥
ते णिएप्पिणु णिसियरिंदस्स सीसइ णयणइ मुहइँ पहरणाइँ रयणीयर भीसणु।
आहरणइ वच्छयलु राहवेण पुच्छिउ विहीसणु।
"किं तिकूउ सेलोवरि दीसइ णव-घणु। देव देव ! एँहु रहें थिउ रावण।
किं गिरि-सिहरइँ, णहि दीसराइँ। ण ण आयइँ दससिर-सिराइँ।
किं पलय-दिवायर-मडलाइँ। ण ण आयइँ मणि-कुडलाइँ।
किं कुवलयाइँ माणस-सरहों। णं ण णयणइँ लकेसरहों।
किं गिरि-कदरइँ भयाणणाइ। ण ण दह-वयणें दसाणणाइँ।
किं सुर-चावइ चाउत्तिमाइ। ण ण कठाहरणइँ इमाइँ।
किं तारा-यणइँ तणुज्जलाइँ। ण ण धवलइँ मुत्ताहलाइँ।

घत्ता। काहुहिँ समरे दीन विपक्षहँ हृदय थिर।
जीवित जमहु पुर प्रहरहु स्वामियहँ शिर ॥६॥

—रामायण ७

(च) रावणका शरीर

दसहिँ कठे दसहु कठा दस भालहिँ तिलक दस।
दस सिरेहिँ दस मुकुट प्रज्वलिय।
दसहिं'पि कुडल-युगेहिँ कर्ण-युगल-शुक-कुल-मुखरिय।
स्फुरे'उ रतनसघात दशानन रोषि'व।
अथ थिउ स-तारागण वहल प्रदोषि'व।
प्रथम वदन क्षय-शूर समर्पहु। सिदुर-अरुण सुरथउ दुस्सहु।
दूसर वदन धवल-धवलाक्षउ। पूर्णिम-चद्रविंब-सारिक्ख
तीसर वदन भुवन-भयकारउ। अगारारुण मोचु अँगारउ।
वदन चतुर्थउ वुध-मुख-भासुर। पचम स्वय एव जनु सुर
छट्ठउ शुक्ल शुक्र-सकाशक। दानव-पक्षिक सुर-सत्रासक।
सत्तम कृष्ण शनिश्चर भीषण। दतुर विकट-दाढ दुर्द
अष्टम राहु-वदन विकरालउ। नवमउ धूमकेतु धूमालउ।
दसमउ वदन दसाननकेरउ। सर्वजनन्ह भय-दु ख-जने
घत्ता। वहु-रूपउ वहु-शिर वहु-वदन, वहु-विध कपोल वहु-विध नयन।
वहु-कठउ वहु-करहु वहु-पद, जनु नट्ट-पुरुष रसभाव गयउ।
सो निजेही निश्चरेन्द्र कर सीसैँ नयनैँ मुखैँ प्रहरणेँ रजनीचर भी
आभरणैँ वक्षतल राघवेहिँ पूछेँउ विभीष
"का त्रिकूट शैलोपरि दीसैं नवघन?" "देव देव! एहु रथेँ हौ रावण।"
"का गिरि-शिखरा नहि दीसराइँ?" "ना ना अहँ दससिर-सिर
"का प्रलय-दिवाकर-मडलाइँ।?" "नाना अहैँ मणि-कुडलाइँ।"
"का कुवलयाइँ मानससरहू?" "ना ना दशवदने दस आनन
"का सुर-चापा चापोत्तमहू?" "नाना कठाभरणा एहू।"
"का तारा-गणइँ तनुज्वलाइँ?" "ना ना धवलइँ मुक्ता-फल

किं कसणु विहीसण गयण-यलु। ण ण लकाहिव वच्छ-यलु।
किं दिसवे यड-सोड-पयरो। ण ण दहकधर-कर-णियरो।

घत्ता। त वयणु सुणेप्पिणु लक्खणेण, लोयणइँ विरिल्लेँवि तक्खणेण।
अवलोइउ रावणु मच्छरेण, ण रासि-गयेण सणिच्छरेण ॥९॥

(छ) लक्ष्मण-रावण युद्ध—

करेँ केरप्पिणु मायरावत्तु थिउ लक्खणु।
गरुड-रहे गारुडत्थु गारुड-मद्धउ।
वलु वज्जावत्तु वरु सीह चिंधु वर-मीह-म्दणु।
गयवि हत्थु गय-रह-वरु पमय महद्धउ।
विप्फुरतु किक्किधा-हिउ सण्णद्धउ।........................

घत्ता। सण्णहेवि पासु ढुक्कड वलहोँ, अक्खोहणि वीससयइँ वलहोँ।
विरएवि वूहु मचल्लियइँ, ण उयहि-मुहइ उत्थाल्लियइ ॥१०॥

घुट्टु कलयलु दिण्ण रणभेरि चिंधाइ समुब्भियइँ,
लइय कवय-किय-हेइ-सगहे।
गय-घडउ पचोइयउ मुक्क-तुरय-वाहिय-महारहा,
राम-सेण्णु रण-रहसियउ।
कहिमि ण माइउ जगु गिलेवि,
ण परवलु गिलइ पधाइयउ।
अब्भिट्टु जुज्झु रोसिय-मणाहुँ। रयणीयर-वाणर-लछणाहुँ।
उसरिय सख-सय-सघडाहुँ। रण-वहु फेडाविय मुह-वडाहु।
उद्धकुस-धाइय गय-घडाहुँ। खर-पवण'दोलिय धय-वडाहुँ।
कपाविय सयल-वसुधराहुँ। रोसाविय आसीविसहराहुँ।
मेल्लाविय णयणहु वासणाहुँ। सजलिय दिसामुहु इधणाहुँ।
जय-लच्छि-वहुअ-गेण्हण-मणाहु। जूराविय सुर-कामिणि-जणाहु।
उग्गामिय भामिय असि-वराहु। णिव्वट्टिय लोट्टिय हय-वराहु।
णिद्दलिय कुभ कुभत्थलाहु। उच्छलिय धवल-मुत्ताहलाहु।

"का कृष्ण विभीषण गगन-तला ?" "ना ना लकाधिप वक्षतला।"
"का दीसइ चड शौड प्रकरो ?" "ना ना दसकधर कर-निकरो।"
घत्ता। सो वचन सुनीयउ लक्ष्मणेहिँ, लोचनहिँ विरक्तेँउ तत्क्षणेहिँ।
अवलोकेँउ रावण मत्सरेहिँ, जनु राशिगतेहिँ शनिश्चरेहिँ ॥९॥

(छ) लक्ष्मण-रावण युद्ध—

करे करवाल सागरावर्त्त ठाढो लक्ष्मणु।
गरुड-रथै गरुडास्त्र गारुडा-मूर्धउ।
वल वज्रावर्त्त धरु सिहचिन्ह वरसिह-स्यदनु।
गजहि हस्त गज-रथ-वर प्रमद महाध्वज।
विस्फुरत किष्किधाधिप सन्नद्धउ।
घत्ता। सन्नाहि'व पार्श्व ढूकै वलहु, अक्षोहिणि वीस-सौ वलहु।
विरचि व्यूह सचल्लिय, जनु उदधिमुखइ उच्छल्लिय ॥१०॥

घुष्टु कलकल दीनु रणभेरि चिन्हैँ उठियाइँ,
लेइ कवच किय-हेति-सग्रहा।
गज-घटउ प्रप्ररियउ मोचु तुरग वाहेँउ महारथा,
रामसैन्य रण-रहसियऊ।
कहिँहु न अमायउ जगेँ निगलि,
जनु परवल निगले धाइयऊ ॥
आरब्धु युद्ध रोषितमनाहेँ। रजनीचर-वानर-लाछनाहेँ।
अपसरिय शख-शत-सघटाहेँ। रण-वधु फेँराविय मुख-पटाह।
ऊर्ध्वकुश धाइय गजघटाह। खर-पवनादोलिय ध्वजपटाह।
कपाविय सकल वसुधराह। रोषाविय आशीविषधराह।
मेलाविय नयनहुँ वासनाह। सज्वलिय दिशामुख इधनाह।
जय लक्ष्मि-वधुग्र-ग्रहणन-मनाह। भूराविय सुरकामिनि-जनाह।
उड्डाविय आमिय असिवराह। नीवत्तिय लोट्टिय हयवराह।
निर्दलिय कुभ कुभस्थलाह। उच्छलिय धवल-मुक्ताफलाह।

घत्ता । भड-थड गय-घडेहिँ भिडतएहिँ, रह-तुरयहिँ तुरिउ भिडतएहिँ ।
रयणियरु समुट्ठिउ भत्तिकिह, णिय- कुलु मइलतु कुपुत्तु जिह ॥११॥
—रामायण ७४।८-११

(८) रण-क्षेत्र

जाउ सुट्ठु समरगणु दूसचारउँ । तहिँ मि केवि पहरति स-साहुक्कारउँ ।
केहिमि करि-कुभइ परमद्दइ । ण सगम-सिरिहेँ थण वट्टइँ ।
केहिमि लइयइ पर-वल-छत्तइँ । ण जयसिरि-लीला-सयवत्तइँ ।
केहिमि चक्खु पसरु अलहतेहिँ । पहरिउ वाला लुचिकरतेहिँ ।
केण' वि खग्ग-लट्ठि-परियट्टिय । रण-रक्खसहोँ जीँह ण कड्ढिय ।
केण'वि करि-कुभत्थलु पाडिउ । ण रण-भवण-वारु उग्घाडिउ ।
कत्थइ सुसुमूरिय असि-धारेहिँ । मोत्तिय-दतुरु हसियउ अहरेहिँ ।
कत्थइ रुहिर-पवाहिणि धावइ । जाउ महाहउ-पाउसु णावइ ।
घत्ता । सोणिय-जल-पहरणग्गिरेहिँव, सुहतराल णह-यल-गएहिँ ।
पज्जलइ वलइ धूमाइ रयणु, ण जुग-खय-काले कालवयणु ॥१२॥
—रामायण ७४।१२

हे णरणाह ! णेह अच्छरियउ । पर-वलु पेक्खु केम जज्जरियउ ।
रुड-णिरतरु सोणिय चच्चिउ । णाणा विह-विहग-परिअचिउ ।
कोवि पयट-वीरु वलवतउ । भमइ कियतु वरिउ जगडतउ ।
गय-घड भड-थड सुहड वहतउ । करि-सिर कमल-सडु तोडतउ ।
रोक्कइ कोक्कड ढुक्कइ थक्कइ । ण खय-कालु समरेँ परिसक्कइ ।
—रामायण २५।१८

घत्ता । तेहएँ समरेँ सूरहँमि भज्जति मइ ।
गय-गिरिवरेँहि ताव समुट्ठिय रुहिर-णइ ॥२॥
गय-वर-गडसेल-सिहर'ग्ग-विणिग्गय णइ तुरतिया ।
उद्धुव धवल छत्त-डिडीरु समुव्वहतिया ।
पवरोज्झर-सोणिय-जल-पवाह । करि-मयर-तुरगम-णक्क-गाहु ।
चक्कोहर सदण संसुमार । करवाल मच्छ परिहच्छ चार ।

घत्ता । भटठट-गजघटेहिँ भिडतएहि, रथ-तुरगहिँ तुरिय भिडतएहिँ ।
रजनिचर समुट्ठेउ झट्ट किमि, निजकुल मैलत दु-पुत्र जिमि ॥११॥
—रामायण ७४।८-११

(८) रण-क्षेत्र

जाव सुप्टु समरगण दु सचारा । तहँहि कोइ प्रहरति स-साधुक्कारा ।
कोऊहि करिकुभैं परिमींजै । जनु सग्राम-श्री स्तन-वट्टै ।
कोऊ लेइय पार-बल छत्रहिँ । जनु जयश्री-लीला शतपत्रहिँ ।
कोऊ चक्षु-प्रसर अलभता । प्रहरेउ वाला-लुचि करता ।
कोऊ खड्ग यष्टि परि-काढिय । रण-राक्षसहँ जीभ जनु काढिय ।
कोऊ करिकुम्मस्थल पाटेँउ । जनु रण-भवन-द्वार उग्घाटेउ ।
कहिं कहिं सुठि काटिय असिधारेहिँ । मौक्तिक-दतुरु हसियउ अधरेहिँ ।
कहिँ कहिँ रुधिर प्रवाहिणि धावै । याव महाहव-पावस आवै ।
घत्ता । शोणित जल-प्रहरणाग्रेहि इव, सुखतराल नभतल गतेहिँ ।
प्रज्वलै वलै धूमै रतन, जनु युगक्षयकाले कालवदन ॥१२॥
—रामायण

हे नरनाथ ! नेह आश्चर्यउ । पर-बल पेखु केम् जर्जरियउ ।
रुड निरतर शोणित-र्चचित । नानाविध विहग परि-अचित ।
कोइ प्रचड वीर-वलवता । भ्रमैं कृतात-वरेँउ झगडता ।
गज-घट भट-ठट सुभट वहता । करि-शिर-कमलषड-तोडता ।
रोकै कोकै ढूकै थाकै । जनु क्षयकाल समरेँ परिमक्कै ।
—रामायण २५।१८

घत्ता । तेही समरे सूरहुँहि भज्जत ।
गज-गिरिवरेहिँ तव अमुट्ठिय रुधिरनदी ॥२॥
गजवर-गड शैल शिखराग्र-विनिर्गत नदी तुरतिया ।
उद्धुत-धवल-छत्र-डिडीर-समुद्-वहतिया ।
प्रवरोज्झर-शोणित-जलप्रवाह । करि, मकर, तुरगम नाक-ग्राह ।
चक्कोधर स्यदन शिशुमार । करवाल, मच्छ-परिहस्त चार ।

मत्तंभ-कुंभ-भीसण-सिलोह। सिय-चमर-वलाया-पंति सोह।
तण्णडंतरेवि केंवि वावरंति। वुड्डंति केवि केंवि उव्वरंति।
केंवि रय-धूसर केवि रुहिर-लित्त। केंवि-हत्थ हडएं-विहुणे विघित्त।
केंवि लग्ग पडीवादंत-मुसलें। ण घत्तु विलासिणि-सिहिण-जुअलें।
केंवि णियय विमाणहों झंप देंति। णहे णिवडेंवि वइरिहि सिरइ लेंति।
तहिँ तेहए रणें सोणिय-जलेण। रउ सोसिउ सज्जणु जिह खलेण।

—रामायण ६६।३

(९) विजयोत्साह

ज राम-सेण्णु णिम्मल-जलेण। सजीवेंउ सजीवणि-वलेण।
त वीरेहि वीर-रसाहिएहि। वग्गतेंहि पुलय-पसाहिएहि।
वज्जतेंहि पडहेंहि मद्दलेहि। गिज्जतेंहि धवलेंहि मगलेहि।
णच्चतेहि खुज्जय-वावणेहि। जज्जरिय पढते वभणेहि।
गायतेंहि अहिणव-गायणेहि। वायतेंहि वीणा-वायणेहि।

—रामायण ६६।२०

तो खर-णहर-पहर-धुव-केसर केसरि-जुत्त-सदणो।
धवल-महद्धउ समुद्धायउ दसरह-जेट्ठ-णदणो॥
जस-धवल-धूरि-धूसरिय-अगु। धवलवरु धवला वर-तुरगु।
धवलाणणु धवल-पलव-वाहु। धवलामल-कोमल-कमल-णाहु।
धवलउ जें सहावें धवल-वसु। धवलच्छि-मरालिहें राय-हसु।
धवलाहँ लवलु धवलायवत्तु। रहु-णदणु दणु-पहरतु पत्तु।

—रामायण ७५।७

(१०) लक्ष्मणके हाथों रावणकी मृत्यु

तो गहिय चद-हासाउहेण। हक्कारिउ लक्खणु दह-मुहेण।
लइ पहरु पहरु कि करहि खेउ। तुहु एक्कें चक्कें सावलेउ।

---

[१] वं नइ

मत्तेभ-कुभ-भीषण-शिलोघ । सितचमर वलाकापक्ति· सोह ।

सो नदी तरन कोउ व्यापरति । बूडति कोइ कोँइ ऊवरति ।

कोँइ रजधूसर कोँइ रुधिर-लिप्त । कोँउ हाथहरे विहुणेउ-घित्त ।

कोँइ लाग प्रतीपा दँत-मुसले । जनु धूर्त्त विलासिनि-स्तन-युगले ।

कोँइ निजह विमानहँ झप देति । नभेँ निपतिय वैरिहि गिरहिँ लेति ।

तहँ तेहि रणे शोणित-जलेहिँ । रज सोखेँउ सज्जन जिमि खलेहिँ ।

—रामायण ६६।३

(९) विजयोत्साह

जो राम-सैन्य निर्मल-जलेहिँ । सजीवेँउ सजीवनि-बलेहिँ ।

सो वीरेहिँ वीररसाधिकेहि । वल्गतेँहि पुलक प्रसाधितेहिँ ।

वाजते पटहेँहिँ माँदलेहिँ । गीयतेँहि धवलेँहिँ मगलेहिँ ।

नाचते कुब्जक-वामनेहिँ । चर्चरी पढतेहिँ ब्राह्मणेहिँ ।

गायते अभिनव-गायनेहिँ । वाजतेहिँ वीणावादनेहिँ ।

—रामायण ६९।२०

तो खर-नखर-प्रहर धुत केसर केसरियुक्त-स्यदनेहिँ ।

धवल-महाध्वज फहरायेउ दशरथ-ज्येष्ठ-नदनेहिँ ।

यश-धवल-धूरि-धूसरित अग । धवलावर धवला वरतुरग ।

धवलानन धवल-प्रलब-वाहु । धवलामल-कोमल-कमल-नाभ ।

धवलहुहि स्वभावे धवल-वश । धवलाक्ष-मरालिहेँ राजहस ।

धवला लवण्य धवलातपत्र । रघुनदन दनु-प्रहरत प्रप्त ।

—रामायण ७५।७

(१०) लक्ष्मणके हाथो रावणकी मृत्यु

तो गहिय चद्रहासायुधेहिँ । हक्कारेउ[1] लक्ष्मण दशमुखेहिँ ।

ले प्रहरु प्रहरु का करहि क्षेप । तुह एको चक्को सावलेप ।

---

[1] पुकारेउ (मैथिली, भोजपुरी, मगही)

महु पइ पुणु आय कवणु गण्णु । कि सीह(हि) होइ सहाउ अण्णु ।
त णिसुणेँवि विप्फुरियाहरेण । मेल्लिउ रहगु लच्छीहरेण ।
घत्ता । उअयइरिहेँ ण अत्थइरि गउ, सूर-बिंबु कर-मडियउ ।
सइँ मुएँहि हणतहोँ दहमुहहोँ, मड-उरत्थलु खडिअउ ॥२२॥

—रामायण ७५।२२

६. विजय

(१) विजयिनी (राम-)सेनाका लंकामे प्रवेश

पइसन्तेँ वल-णारायणेण । वच्चालिय णायरिया-णणेण ।
एँहु सुदरि ! मोक्खुप्पायणहो । अहिरामु रामु रामायणहो ।
एँहु लक्खणु लक्खण-लक्ख-धरु । जो रावण-रावण-पलयकरु ।
एँहु भामडलु भाभूसभुउ । वइदेहि-सहोयरु जणय-सुउ ।
एँहु किक्किधाहिउ दुद्दरिसू । तारा-वइ तारावइ-सरिसू ।
एँहु अगउ जेण मणोहरिहे । केसग्गहु किउ मदोयरिहे ।
एँहु सुर-वर-करि-कर-पवर-भुउ । णदण-वण-मद्दण पवण-सुउ ।

—रामायण ७८।६

(२) विभीषणद्वारा लकामे रामका स्वागत—

दहि-दोव-जल-क्खय-गहिअ-करा । गय तहिँ जहि हलहर-चक्कहरा ।
आसीसेँहि सेसहि पणवणेहिँ । जय णद वद्ध वद्धावणेहिँ ।
उच्छाहेँहिँ धवलेँहिँ मगलेहिँ । पडु-पडहहिँ सखेँहिँ मदलेहिँ ।
कइ-कहएँहिँ णउ-णट्टावएहिँ । गायण-वायण-फफावएहिँ ।
णर-णायर-वभण-घोसणेहि । अवरेँहिँमि चित्त-परिऊसणेहिँ ।

—रामायण ७८।१२

(३) भरत द्वारा अयोध्यामे रामका स्वागत—

रामागमणेँ भरहु णीसरियउ । हय-गय-रह-णरिद-परियरिउ ।
अण्णे तहि सत्तुहणु स-वाहणु । स-रह सु-सालकारु सु-साहणु ।

मम तैँ पुनि आहि कवन गण्य। का सिंहह होइ स्वभाव अन्य।
सो सुनिया विस्फुरिताधरेहिँ। मेलेँउ रथाग लक्ष्मीधरेहिँ।
घत्ता। उदयगिरिहिँ जनु अस्तगिरि गउ, सूरबिंब-कर-मंडियऊ।
स्वयं मृतहि हनतहु दशमुखहु, मंडउरस्थल खंडियऊ ॥२२॥

—रामायण ७५।२२

६. विजय

(१) विजयिनी (राम) सेनाका लंकामे प्रवेश

पइसते बल-नारायणेहि। व्यवचालिय नागरिका-ननेहि।
एँहु सुंदरि! सौख्य-उपायनहू। अभिराम राम रामायणहू।
एँहु लक्ष्मण लक्षण-लक्ष-धरु। जो रावण रावण प्रलय-करू।
एँहु भामंडल भाभूषभुतू। वैदेहि-सहोदर जनकसुतू।
एँहु किष्किंधाधिप दुर्दर्शू। तारा-पति तारापति-सरिसू।
एँहु अंगद जानेँ मनोहरिहा। केश-ग्रह किउ मंदोदरिहा।
एँहु सुरवर-करि-कर-प्रवर-भुजू। नंदन-वन-मर्दन पवनसुतू।

—रामायण ७८।६

(२) विभीषण द्वारा लंकामे रामका स्वागत—

दहि-दूबि-जल-आक्षत गहिय-करा। गा तहँ जहँ हलधर-चक्रधरा।
आशीषेहिँ शेषहिँ प्रनमनहीँ। "जय नंद वर्ध" बद्धावनहीँ।
ऊछाहेहिँ धवलेहिँ मंगलेहिँ। पटु पटहेँहिँ शंखेँहिँ माँदलेहिँ।
कवि-कथनेहिँ नट-नट्टावनहीँ। गायन-वादन-फप्फावयहीँ।
नर-नागर-ब्राह्मण घोषणहीँ। औरेँहिउ चित्त-परितोषणहीँ।

—रामायण ७८।१२

(३) भरत द्वारा अयोध्यामे रामका स्वागत—

रामागमनेँ भरत नीसरेँऊ। हय-गज-रथ-नरेन्द्र परिचरेँऊ।
अन्यहु तँह शत्रुहन सवाहना। स-रथ स-स्वालंकार सु-साधना।

छत्त-विमाण-महासइ वरियइँ। अवरें रवि-किरणइ अतरियइँ।
तूरइ हयइँ कोडि-परिमाणेंहिँ। दुदुहि दिण्ण गयणें गिव्वाणेंहिँ।
जणवउ णिरवसेमु सखुब्भइ। रह-गय-तुरयहिँ मग्गु ण लब्भइ।
णिवडिय एक्कमेक्क भिडमाणेहिँ। पेल्ला-वेल्लि जाय जपाणहि।
घत्ता। केक्कय-सुएण णमंतएण, सिरुरुहु चलणतरें कियउ।
दीसइ विहि रत्तुप्पलहँ, णीलुप्पल-मज्झे णाइ थिअउ ॥१॥
जिह रामहों तिह णमिउ कुमारहों। अतेउरहों पहोत्तिर हारहो ँ।
वलें ण वलुद्धरेण हक्कारेंवि। भरहस णिय-भुय-दड पसारेंवि।
अवरुडिउ मायरु वहु-वारउ। मत्थएँ चुंविउ पुणु सयवारउ।
सय-वारउ उच्छगें चडाविउ। सय-वारउ भिच्चहु दरिसाविउ।
सय-वारउ दिण्णउ आसीसउ। वरिस सग्गि हरिमसु विमीसउ ॥
—रामायण ७९।१-२

जयजयकारु करतेंहि लोएँहिँ। मगल-धवलु-'च्छाह पऊएँहिँ।
अडहव सेसासीस सहासेहिँ। तारय-णिवह-छडा-विण्णासेहिँ।
दहि-दोवा-दप्पण-जल-कलसेंहिँ। मोत्तिय-रगावलि णव-कणिसेंहिँ।
वभण-वयणु'ग्घोसिय वेएँहिँ। कडिअ जज्जरिव्व' सम-भेएहिँ।
णड-कड-कहय छत्त-फफावेंहि। लक्खिय तारारोंहणु विहावेंहि।
भट्टेंहिँ वयणु'च्छाह पढतेंहि। वायाली स-विसर सुमरतेंहि।
मल्ल-प्फोडण-सरेंहि विचित्तेंहि। इदयाल-उप्पाइय चित्तेंहिँ।
मद फद वदेहिँ कुदेंतेंहि। डोम्वेंहि वसारोंहण करतेंहि।
घत्ता। पुरें पइसतहों राहवहों, णट्ट-कला-विण्णाणइ केवलइँ।
दुदुहि ताडिय सुरेंहि णहों, अच्छरेहिं'मि गीयइ मगलइँ ॥४॥
—रामायण ७९।४

(४) शत्रु-वीरकी प्रशसा

वीर रावण—

सयल सुरासुर दिण्ण पससहों। अज्ज अमगलु रक्खस-वसहों।
खल-खुद्दहुँ पिसुणहुँ दुवियड्ढहु। अज्ज मणोरह सुरवर सड्ढहु।

छत्र-विमान-सहस्रै धरिया । अवरें रविकिरणहँ अन्तरिया ।
तूर्य हनैं (हिँ) कोटि परिमाणा । दुदुभि दियेँउ गगनेँ गीर्वाणा ।
जनपद निर्विशेष सक्षुब्धा । रथ-गज-तुरगहिँ मार्ग न लब्धा ।
निपतेँउ एकमेक भिडमाना । पेलापेलि जायें झम्पाणा ।
घत्ता । केकयि-सुतहिँ नमतएहिँ, शिररुह चरणतरें कियउ ।
दीसै विधि-रक्तोत्पलहँ, न्याइँ नीलोत्पल माँझे ठियउ ॥१॥
जिमि रामहँ तिमि नमेँउ कुमारहु । अत पुरहु प्रभोलिर हारहु ।
वलेँहि वलुद्धरेहिँ हक्कारिय । स-रभस निज-भुजदड पसारिय ।
अवलिगिउ माता वहु वारा । माथे चुवेँउ पुनि शतवारा ।
शतवारउ उत्सगें चढाइउ । शतवारउ भृत्यहँ दरसाइउ ।
शतवारउ दीनेँउ आशीषा । वरिस-मरिस हरि स मुविभीषा ।

—रामायण ७६।१-२

जयजयकार करतेहिँ लोगेँहिँ । मगल-धवल-उछाह प्रयोगेँहिँ ।
अतिभव शेषाशीष-सहस्रेँहिँ । तारक-निवह-छटा-विन्यासेँहिँ ।
दधि-दूर्वा-दर्पण-जलकलशेँहिँ । मौक्तिक रगावलि नवमँजरिहिँ ।
ब्राह्मण-वदन-उद्घोषिय वेदहिँ । कडिक चर्चरि इव समभेदहिँ ।
नट-कवि कथैं छत्र फहरावैं । लखियत तारारुहण विभावेँहिँ ।
भाँटेँहिँ वचन-उछाह पढतेँहिँ । वैतालिक विसार सुमरतेँहिँ ।
मल्ल-स्फोटन-शरेहिँ विचित्रेँहिँ । इद्रजाल-उत्पादित चित्तेँहिँ ।
मद फद वदेँहि कूदतेँहि । डोमेँहिँ वशारोह करतेँहि ।
घत्ता । पुरि पइसतहँ राघवहँ, नाट्यकला विज्ञानइँ केँवलइँ ।
दुदुभि ताडित सुरेँहिँ नभहु, अप्सरेहि उ गाइय मगलाइँ ।

—रामायण ७६।४

(४) शत्रु-वीरकी प्रशंसा

वीर रावण—

सकल-सुरासुर दीन् प्रशहि । आज अमगल राक्षस-वशहिँ ।
खल-क्षुद्रहु पिशुनहु दुविदग्धहु । आज मनोरथ सुरवर सिद्धहु ।

दुंदुही वज्जहु गज्जइ सायरु । अज्ज तवउ सच्छदु दिवायरु ।
अज्जु मियकु होउ पहवतउ । वाउ वाउ जगि अज्जु सइत्तउ ।
अज्जु धणउ वणरिद्धि णियच्छउ । अज्जु जलतु जलणु जगें अच्छउ ।
अज्जु जमहों णिव्वहउ जमत्तणु । अज्जु करेउ इंदु इदत्तणु ।
अज्जु धणहु पूरतु मणोरह । अज्जु णिरग्गलु होतु महागह ।
अज्जु पफुल्लउ फलउ वणासइ । अज्जु गाउ मोक्कलउ सरासइ ।

—रामायण ७६।८

जो भुवणा-हिंदोलणा, वइरि-समुद्द-विरोलणा ।
सुर-मिवुर-कर-वधुरा, परिअट्ठिय रणभरधुरा ॥
जे थिर थोर पलव-पईहर । मुहि मभीस वीस-पहरण-धर ।
जे वालत्तणें वालवकीलइ । पण्णय-मुहेंहि छुहतउ लीलइ ।
जे गधव्व-वावि-आडभण । सुर-सुदरि-वुह-कणय-णिरुमण ।
जे वइ सवण-रिद्धि-विब्भाडण । तिजग-विहूसण गय-मय-साडण ।
जे जम-दड-चड-उद्दालण । स-वसुवर कइलासु'च्चालण ।
जे सहास-यर मडफर-भजण । णलकुव्वर¹-गेहिणि-मण-रजण ।
जे अमरिंद-दप्प-ऊहट्टण । वरुण-णराहिव-वल-दल-वट्टण ।

—रामायण ७७।१०

७. विलाप

(१) नारी-विलाप

(क) अयोध्याके अन्तःपुरका लक्ष्मणके लिये

रोवतेंहें दसरह-णदणेण । धाहाविउ सव्वे परियणेण ।
दुक्खाउरु रोवइ सयलु लोउ । ण चप्पिवि चप्पेंवि भरिउ सोउ ।

---

¹ कुवेर (वैश्रवण)-पुत्र

दुदुभि वाजै गरजै सागर। आज तपउ स्वच्छद दिवाकर।
आज मृगाक होउ प्रभवता। वायु वाहु जग आज स्वतत्रा।
आज धनप धन-ऋद्धि नियच्छउ[1]। आज ज्वलतु ज्वलन जग अच्छउ।
आज यमहु निर्वहउ यमत्त्वा। आज करेउ इद्र इद्रत्वा।
आज धनहु पूरतु मनोरथ। आज निर्गल होतु महाग्रह।
आज प्रफुल्लउ फलउ वनस्पति। आज गाउ परिमुक्त सरस्वति।
—रामायण ७६।४

जो भुवना हिंदोलना, वैरिसमुद्र-विरोलना।
सुरसिंधुर करवधुर, परिआ-ठिउ रणभरधुरा॥
जो थिर थोर प्रलवपती-हर। सुखि भीडत बीस-प्रहरणधर।
जो वालत्वेंहि वालक्रीडइ। पन्नग-मुखेहिँ छवता लीलइ।
जो गधर्व-वापिया-गाहन। सुर-सुदरि बुधकनक निरूपण।
जो वैश्रवण-ऋद्धि-विभ्राटन। त्रिजग-विभूषण गज-मद-शाटन।
जो यमदड-चड-उद्दारण। स-वसुधर कैलाश-उच्चारन।
जो सहस्रकर-गर्व-विभजन। नलकूवर-गेहिनि-मनरजन।
जो अमरेद्र-दर्प-अवघट्टन। वरुण-नराधिप-वल-दल-वटन।
—रामायण ७७।१०

७. विलाप

(१) नारी-विलाप

(क) अयोध्याके अन्तःपुरका लक्ष्मणके लिए

रोवते दशरथ-नदनहीँ। धाहावेउ[1] सर्वं परिजनहीँ।
दुखाकुल रोवैं सकल लोक। जनु चप्पे चप्पे भरेँउ शोक।

---

[1] देउ

रोवइ भिच्च-यणु समुद्द-हत्थु । ण कमल-सडु हिम-पवण-घत्थु ।
रोवइ अंतेउरु सोयवुण्णु । ण(स)ज्जमाणु सख-उलु चुण्णु ।
रोवइ अवरा इव रामजणणि । केक्कय दाइय तरु-मूल-खणणि ।
रोवइ सुप्पह विच्छाय जाय । रोवइ सुमित्त सोमित्ति-माय ।
हा पुत्त पुत्त ! केत्तहि गउसि । किह सत्तिएँ वच्छत्थले हउसि ।
हा पुत्त ! भरतु म जो हउसि । दइवेण केण विच्छो इउसि ।
घत्ता । रोवतिएँ लक्खण-मायरिएँ, सयल लोउ रोवावियउ ।
कारुण्णइ कव्व कहाएँ जिह, कोव ण अंसु मुआवियउ ॥१३॥

—रामायण ६६।१३

(ख) रावण-परिजन-विलाप

घत्ता । ताव दसाणणु आहयणे पडिउ सुणेवि सदोरु' सणेउरु ।
धाइउ मदोयरि-पमुह, धाहावतु सयलु अंतेउरु ॥४॥
दुम्मणु दुक्ख-महण्णवे घित्तउ । पिउ-विऊय जालोलिय-लित्तउ ।
मोक्कल-केस विसंठुल-गत्तउ । विहडप्फडु णिवडतु'द्धतउ ।
उद्ध-हत्थु उद्धाहावतउ । असु-जलेण वसुह सिंचतउ ।
णेउर-हार-डोर गुप्पतउ । चदण-छड-कद्दमे खुप्पतउ ।
पीण-पऊहर-भारक्कतउ । कज्जल-जल-मल मइलिज्जतउ ।
ण कोइल-कुलु कहिमि पयट्टउ । ण गणियारि-जूहु विच्छुट्टउ ।
ण कमिलिणि वणु थाणहो चुक्कउ । ण हसि-उलु महासर मुक्कउ ।
कलुण-सरेण रमत पधाइउ । णिविसें रण-धरित्ति सपाइउ ।
घत्ता । हय-गय-भड-रुहिरारुणिय, समर-वसुधर सोह ण पावइ ।
रत्तउ परिहवेवि पगुरेवि, थिय रावणु अणुमरणे णावइ ॥५॥
तहि दहवयणु दिट्ठु वहुवाहउ । कप्पतरु'व्व पलोट्टिय साहउ ।
रज्ज-गाय-आलण-खभु' च्छिण्णउ ।

---

[१] कटि-आभूषण सुवर्ण डोरी

रोवै भृत्यगण उठाइ हाथ। जनु कमल-षड हिमपवन-प्राप्त।
रोवै अन्त पुर शोकपूर्ण। जनु सज्जमान शख-कुल-चूर्ण।
रोवै औरहिँ इव रामजननि। केकयि दापित तरुमूल-खननि।
रोवै सुप्रभ विच्छाय जाय। रोवै सुमित्राँ सौमित्र-माय।
हा पुत्र पुत्र ! कहँवा गओसि। किमि शक्तिहिँ वक्षस्थलेँ हतोसि।
हा पुत्र ! मरत न जोयोसी। दैवेहिँ किमि विच्छोहेओसी।
घत्ता। रोवती लक्ष्मण-महतारी, सकल लोक रोवावियऊ।
कारुण्यइ काव्यकथाइ जिमि, को ना अश्रु मुचावियऊ ॥१३॥
—रामायण ६६।१३

(ख) रावण-परिजन-विलाप

घत्ता। तव्व दशानन आहवेँ पडेँउ, सुनिय स-डोर स-नूपुर।
धाइउ मदोदरिप्रमुखा, धाहावत सकल-अत पुर ॥४॥
दुर्मन दु ख महार्णव क्षिप्तउ। प्रिय-वियोग-ज्वालोलिय-लिप्तउ।
मुक्तहु केश विसस्थुल[1]-गात्रउ। हडवडत निपतत उद्भ्रातउ।
ऊर्ध्वहस्त उद्-धाहावतउ[2]। अश्रुजलेँहिँ वसुधा सिचतउ।
नूपुर-हार डोर गोप्यतउ। चदन-छट-कर्दम मेटतउ।
पीन-पयोधर-भाराक्रान्तउ। कज्जल-जल-मल मइलिज्जतउ।
जनु कोकिल-कुल कथा-प्रवृत्तउ। जनु गजियार-यूथ-विच्छुट्टउ।
जनु कमलिनि-वन थानहँ चूकउ। जनु हसीकुल महसर मुचउ।
करुण-स्वरेहिँ रसत प्रधायेँउ। निमिषेँ रणधरित्रि सप्रापेँउ।
घत्ता। हय-गज-भट-रुधिरारुणित, समर-वसुधर सोइ न पावै।
रक्तउ परिभवेहु अकुरेँउ, ठिउ रावण अनुमरणेँ न आवै॥५॥
तहँ दशवदन दीस वहुवाँहा। कल्पतरू इव लोटिय शाखा।
राज्यगज-आलान-खभ[3]च्छिन्नउ।

---

[1] अस्तव्यस्त [2] धाड मारतीँ [3] हाथी बांधने का खंभा

घत्ता । दह दियहाइ स-रत्तियइँ, ज जुज्झतु ण णिद्दएँ मुत्तउ ।
तेण चक्कु सेज्जहि चडेंवि, रण-वहुअएँ समाणु ण सुत्तउ ॥६॥

घत्ता । णिएँवि अवत्थ दसाणणहों, हा हा सामि भणतु सवेयणु ।
अतेउरु मुच्छाविहलु, णिवडिउ महिहि झत्ति णिच्चेयणु ॥७॥

(ग) मंदोदरि-विलाप—

नारा-चक्कु'व थाणहों चुक्कउ । 'दुक्खु दुक्खु' मुच्छएँ आमुक्कउ ।
लग्ग रुएँव्वएँ तहि मदोयरि । उव्वसि-रभ-तिलोतिम-सुदरि ।
चदवयण-सिरिक-तणुद्ध(द्द?)रि । कमलाणण-गधारि'व सुदरि ।
मालइ-चपय-माल-मणोहरि । जय-सिरि-चदण-लेह-तणूध(द?)रि ।
लच्छि-वसत-लेह-मिग-लोयण । जोयण-गध गोरि-गोरोयण ।
रयणावलि मयणावलि सुप्पह । काम-लेह काम-लय सइपह ।
सुहय वसत-तिलय मलयावइ । कुकुम-लेह-पउम-पउमावइ ।
उप्पल-माल-गुणावलि णिरुवम । कित्ति-बुद्धि-जय-लच्छि-मणोरम ।

घत्ता । आएहिँ सोआरियहि, अट्ठारह हि'व जुवइ-सहासेंहि ।
णव-घण-मालाडवरेंहिँ, छाइउ विज्जु[1] जेम चउपासेंहि ॥८॥

रोवइ लकापुर-परमेसरि । हा रावण ! तिहुयण-जण-केसरि ।
पइ विणु समर तूरु-कहों वज्जइ । पइ विणु वालकील कहों छज्जइ ।
पइ विणु णवगह-एक्कीकरणउ । को परिहेसइ कठाहरणउ ।
पइ विणु को विज्जा आराहइ । पइँ विणु चद-हासु को साहइ ।
को गधव्व-वापि आडोहइ । कण्णहों छवि-सहासु सखोहइ ।
पइ विणु को कुवेरु भजेसइ । तिजग-विहुसणु कहों वसें होसइ ।
पइ विणु को जमु विणिवारेसइ । को कइलासु'द्धरणु करेसइ ।
सहस-किरणु णलकुव्वर-सक्कहु । को अरि होसइ ससि-वरुणक्कहु ।
को णिहाण रयणइ पालेसइ । को वहुरूविणि विज्जा लएँसइ ।

---

[1] विच्छु(?)

घत्ता। दश दिवसाइँ स-रात्रियहिँ, जनु युध्यत न निद्रा प्राप्तउ।
सो चक्र-शय्यहिँ चढिया, रण-वधुयेहिँ सँग सुत्तउ ॥६॥
घत्ता। पेखि अवस्थ दशाननहों "हा हा स्वामि" भनत सवेदन।
अत पुर मूर्छाविकल, निपतेउ महिहिँ झट्ट निश्चेतन ॥७॥

(ग) मंदोदरि-विलाप—

तार-चक्र इव थानहिँ चूकउ। दुख दुख मूर्छहिँ आमुचउ।
लागु रोइबा तहँ मन्दोदरि। उर्ब्बशि-रभ-तिलोत्तम-सुदरि।
चद्रवदनि श्रीकात तनूदरी। कमलानन गधारि 'व सुदरी।
मालति-चपक-माल-मनोहरी। जयश्री-चदन-लेख तनूदरी।
लक्ष्मि-वसत-लेख मृगलोचन। योजन-गधाँ गोरि गोरोचन।
रतनावलि मदनावलि सुप्रभ। कामलेख कमलता स्वयप्रभ।
सुखद-वसत-तिलक मलयावति। कुकुम-लेख पद्म-पद्मावति।
उत्पल-माल-गुणावलि निरुपम। कीर्त्ति बुद्धि जय लक्ष्मि मनोरम।
घत्ता। आएँहि शोकार्त्तेहिँ, अट्ठारहहिँ वरयुवति-सहस्रेँहिँ।
नव घनमालाडवरेहिँ, छाइ विज्जु जेम चौपासेँहिँ ॥८॥
रोवै लकापुर-परमेश्वरि। "हा रावण! त्रिभुवन-जन-केसरि।
तुम विनु समर-तूर्य कहँ वाजै। तुम विनु वालक्रीड कहँ छाजै।
तुम विनु नवग्रह एकीकरणउ। को पहिरावै कठाभरणउ।
तुम विनु को विद्या[1] आराधै। तुम विनु चद्रहास[2] को साधै।
को गधर्व-वापि आडोभै। कर्णहु छवि-सहस्र सखोभै।
तुम विनु को कुवेर भजीहै। त्रिजगविभूष केहि वश होइहै।
तुम विनु को यम विनिवारीहै। को कैलाशोद्धरण करीहै।
सहसकिरण-नलकूवर-शक्रहु। को अरि होइहै शशि-वरुणउ कहँ।
को निधान रतनहि पालीहै। को वहुरूपिन विद्या लीहै।

---

[1] मंत्रशक्ति [2] तलवार

घत्ता । सामिय पइँ भविएण विणु, पुप्फविमाणे चडेँवि गुरुभत्तिएँ ।
मेरु-सिहरेँ जिण-मदिरइँ, को मइ णेसइ वदण-हृत्तिए ॥९॥

पुणुवि पुणुवि गयणगण-गोयरि । कलुणाकदु करइ मदोयरि ।
णंदण-वणेँ दिज्जति मणोहरि । सुमरमि पारियाय-तरु-मजरि ।
वुड्डुण वाविहेँ थण-परिचट्टणु । सुमरमि ईसि ईसि अवरुडणु ।
सयण-भवणेँ णहणियर-वियारणु । सुमरमि लीला-पकय-ताडणु ।
पणय-रोस-समए मएँ वघणु । सुमरिम रसणा-दाम-णिवधणु ।
सुमरमि दिज्जमाण दणु-दावणि । धरणेदहोँ केरउ चूडामणि ।
सुमरमि सामि कुमारहोँ केरउ । वरहिण पेहुण कण्णेँ ऊरउ ।
सुमरमि सुर-करि-मय-मलु सामलु । हारेँठविज्जमाणु मुत्ताहलु ।

घत्ता । सुमरमि सइ सुरयारुहणु, णेउर-वर-झकार-विलासु ।
तोइ महारउ वज्जमउ, हिअउ ण वेदलु होइ णिरासु ॥१०॥

पुणुवि पुणुवि मदोयरि जपइ । उट्ठेँ भडारा कित्तिउ सुप्पइ ।
जइ'वि णिरारिउ णिद्दएँ भुत्तउ । तो'वि ण सोहहि महियलेँ सुत्तउ ।
सामिय ! को अवराहु महारउ । सीयहेँ ढूई गय-सय-वारउ ।
तँहि अकारणिज्जेँ आरुड्ढउ । जेण परिट्ठिउ पाराउट्ठउ ।
तहिँ अवसरेँ पिउ पेँक्खेवि धाइउ । कावि करेइ अलीअइ-साइउ ।
आलिगेवि ण सव्वायामेँ । कावि णिवधइ रसणा दामेँ ।
कावि वरसुएण कवि हारेँ । कावि सुअध-कुसुम-पब्भारेँ ।
कवि उरेँ ताडिवि लीला-कमलेँ । पभणइ मउलिएण मुहकमलेँ ।

—रामायण ७६।४-११

(२) बंधु-विलाप

(क) राम-वनवासपर दशरथका विलाप

केणवि कहिउ ताम भरहे सहोँ । गय सोमित्ति राम वण-वासहोँ ।
त णिसुणेवि वयणु धुयवाहउ । पडिउ महीहरो'व्व वज्जाहउ ।

घत्ता । स्वामी ! तुमहि भये विनु, पुष्पविमान चढबि गुरु-भक्तिय ।
मेरु शिखरे जिनमदिरैं, को मोहिं लेइसै वदन हाथिय" ॥९॥

पुनि पुनि गगनगण-गोचरी । करुणाक्रदन कर मदोदरी ।
"नदनवनें दीयत मनोहरि । सुमिरौं पारियात्र-तरु-मजरि ।
डुब्वन-वापिहिं स्तन-परिवर्त्तन । सुमिरौं तनिक तनिक आलिगन ।
शयन-भवनें नख-निकर-विदारन । सुमिरौं लीलापकज-ताडन ।
प्रणय-रोष-समये मम बधन । सुमिरौं रसनादाम-निवधन ।
सुमिरौं दीयमान दनु-दानव । धरणीद्रहु केरहु चूडामणि ।
सुमिरौ स्वामि-कुमारहु केरउ । वर्हिन पिच्छहु कर्णपूरउ ।
सुमिरौं सुर-करि-मदमल श्यामल । हारें ठपीयमान मुक्ताफल ।

घत्ता । सुमिरौं सकृत-सुरत-आरोहण, नूपुर-वरझकार-विलास ।
तोंउ हमारौ वज्र-मय, हृदय न दो-दल होइ निराश" ॥१०॥

पुनिहु पुनिहु मदोदरि जल्पै । "उठु भट्टारक केतक सुत्तै ।
यदिउ अवश्यहि निद्रा भुक्तउ । तऊ न सोहै महितल-सुत्तउ ।
स्वामी ! को अपराध हमारउ । सीतहिं दूति गई शतवारउ ।
तहँ अकारणीय आरूढउ । जातें परि-स्थित-पारा-उट्ठउ" ।
तेंहि अवसरें प्रिय पेखब धाइउ । कोइ करेइ अलीकै साइउ ।
आलिगेवि न सर्वायामे । कोइ निबधै रसना-दामे ।
कोइ वरशुकेहिं कोइ हारें । कोंइ सुगध कुसुम-प्राग्भारें ।
कोइ उर ताडवि लीलाकमलेहिं । प्रभनै मुकुलितेहिं मुखकमलेहिं ।

—रामायण ७६।४-११

(२) बंधु-विलाप

(क) राम-वनवासपर दशरथका विलाप

काहुहिं कहेउ तवहिं दशरथ सहँ । गयें सौमित्रि राम वनवासहँ ।
सो सुनि केहिं वदन कँपवाँहेउ । पडेंउ महीधर इव वज्राहतु ।

घत्ता। ज मुच्छाविउ राउ, सयलु'वि जणु मुहू-कायरु।
पलयाणिल-सतत्तु, रसेवि लग्गु णं सायरु ॥६॥
चदणेण पव्वालिज्जतउ। चमरुक्खेविहिँ विज्जिज्जतउ।
"दुक्खु दुक्खु" आमासिउ राणउँ। जरठ-मियकु'व थिउ उद्धाणउ।
अविरल अमु-जलोल्लिय-णयणउँ। एम पजपिउ गग्गिर-वयणउ।
णिवडिय असणि अज्ज आयासहों। अज्ज अमगलु दसरहू-वंसहों।
अज्ज जाउँ हउँ सूडिय-वक्खउ। दुहू भायणु पर-मुँहू हउँ वेक्खउ।
अज्ज णयरु सिय-सपय-मेॅल्लिउ। अज्जु रज्जु परचक्कें पेल्लिउ।
एव पलाउ करोवि सहग्गएँ। राहव-जणणिएँ गउऊ लग्गएँ।
केस-विसठुल दिट्ठ रुअती। असु-पवाहू धाहू मेल्लती।
—रामायण २४।६-७

(ख) लक्ष्मणके लिये रामका विलाप

घत्ता। सोमित्ति-सोय-परिमाणेण, रहुवइ-णदणु मुच्छिअउ।
जलु चदणु चमरुक्खेवएँहिँ, दुक्खु दुक्खु उम्मुच्छिअउ ॥२॥
हा लक्खण-कुमार! एक्कोयर[1]। हा भद्दिय उविंद दामोदर।
हा माहव! महुमह महुसूयण। हा हरि-कण्ह-विण्हु-णारायण।
हा केसव! अनत-लच्छी-हर। हा गोविंद! जणद्दण-महिहर!
हा गभीर-महाणइ-रुभण। हा सीहोयर-दप्पणिसुभण।....
हा हा रुद्द-भुत्ति-विणिवारण। हा हा वालिखिल्ल-संहारण!
हा हा कविल-मरट्ट-विमद्दण। हा वणमाली-णयणाणदण।
हा अरि-दमण! मडप्फर-भजण। हा जिय-पोम सोम-मण-रजण।
हा महरिसि-उवसग्ग-विणासण। हा आरण्ण-हत्थि-सतावण!
हा करवाल-रयण-उद्दालण! सव-कुमार-विलास-णिहालण!
हा खर-दूसण-वलमुसुमूरण! हा सुग्गीव-मणोरहू-पूरण!
हा हा कोडिसिला-सचालण! हा हा मयर-हरो उत्तारण!..

---

[1] सहोदर, भाई

घत्ता । जो मूर्छायेॅउ राव, सकलहु जन मुँह-कातर ।
प्रलयानल-सतप्त, बोॅलन लागु जनु सागर ॥६॥
चदनेहिँ लेप्पाइज्जतउ । चमर्-उत्क्षेपेहिँ बीजायतउ ।
"दु ख दु ख" आश्वासै राणा । जरठ मृगाकि 'व ठिउ उद्धाना ।
अविरल-अश्रु-जलोलित-नयना । इमि प्रजल्पेउ गद्गद-वयना ।
"निपतिय अशनि आज आकाशहँ । आज अमगल दशरथ-वशहँ ।
आज जाउँ हौँ पीटिय वक्षहु । दोॅउ भाइन परमुँह हौँ पेखउँ ।
आज नगर सिय-सपति मेलेॅउ[1] । आज राज्य परचक्रैँ पेलेॅउ" ।
इमि प्रलाप करेव सहाग्रइ । राघव-जननिएँ आयउ लग्गेॅइ ।
केश-विसस्थुल दीस रोॅवती । अश्रुप्रवाह धाह मेलती[2] ।
—रामायण २४।६-७

(ख) **लक्ष्मणके लिए रामका विलाप**

घत्ता । सौमित्र शोकपरितापेॅहिँ, रघुपतिनदन मूर्छियउ ।
जल-चदन-चमर डुलावनहूँ, दु ख-दु खउ मूर्छियउ ॥२॥
"हा लक्ष्मण कुमार एकोदर ! हा भद्रिय उपेन्द्र दामोदर !
हा माधव मधुमथ मधुसूदन ! हा हरि कृष्ण विष्णु नारायण !
हा केशव अनत लक्ष्मीधर ! हा गोविंद जनार्दन महिधर !
हा गभीर-महानदि-रुधन ! हा सिंहोदर-दर्प-निनाशन !
हा हा रुद्र भुक्ति विनिवारण ! हा हा वालिखिल्य-सहारण !
हा हा कपिल-(कु)दर्प-विमर्दन ! हा वनमाली नयनानदन !
हा अरिदमन-गर्व-वी-भजन ! हा जितपद्म सोम-मन-रजन !
हा महाॅ ऋषि-उपसर्ग विनाशन ! हा आरण्य-हस्ति-सतापन !
हा करवाल-रतन-उद्दारण ! शावकुमार-विलास-निहारण !
हा खर-दूषण-बल-मुसमूरण ! हा सुग्रीव-मनोरथ-पूरण !
हा हा कोटिशिला-सचालन ! हा हा मकरधरो उत्तारन !

---

[1] त्यागेउ [2] शत्रु शासन

घत्ता । कहि तुहुँ कहि हउँ कह पिअय, कहि जणेरि कहि जणणु गउ ।
हय-विहि विछोउ करेप्पिणु, कवण मणोरह पुण्ण तउ ॥३॥

हरि-गुण सभरतु विद्दाणउ । रुवइ स-दुक्खउ राहव-राणउ ।
वरि पहिरउँ पर-णरवर-चक्कएँ । वरि खय-कालु ढुक्कु अत्थक्कएँ ।
वरि त कालकुट्टु विसु भक्खिउ । वरि जम-सासणु णयण-कडक्खिउ ।
वरि असिपजरें थिउ थोवतरु । वरि सेविउ कियत-दततरु ।
झप दिण्ण वरि जलण जलंतएँ । वरि वगला-मुहें भमिउ भमतएँ ।
वरि वज्जासणें सिरेंण पडिच्छिय । वरि ढुक्कति भवित्ति-समिच्छिय ।
वरि विसहिउँ जम-महिस-झडिविकउ । भीसण-काल-दिट्ठि अहिडकिउँ ।
वरि विसहिउ केसरि णह-पजरु । वरि[1] जोयउ कलि-कालु सणिच्छरु ।
घत्ता । वरि दति-दतें मुसलग्गेंहि, विणिभिंदाविउ अप्पणउ ।
वरि णरय-दुक्खु आयामिउ, णउ विऊउ भाइहिँ तणउ ॥४॥

——रामायण ६७।२-४

(ग) आहत लक्ष्मणके लिये भरतका विलाप

हुँउ भामडलु[2] हणुवत एहु । एँहु अगद रहसुच्छलिय देहु ।
तिण्णिवि आइय कज्जेण जेण । सुणु अक्खमि किं वहु वित्थरेण ।
सीयहि कारणें रोसिय-मणाहँ । रणु वट्टइ राहव-रावणाहँ ।
लक्खणु सत्तिएँ विणिभिण्णु तत्थु । दुक्करु जीवइ तें आय इत्थु ।
त वयणु सुणिवि परियालयेलु । ण कुलिस-समाहउ पडिउ सेलु ।
ण चवण-कालें सग्गहों सुरेंदु । उम्मुच्छिउ कहवि कहवि णरेंदु ।
दुक्खा उरु धाहा वणह लग्गु । पुण्णक्खइ हरिव मुयतु सग्गु ।
घत्ता । हा पइ सोमित्ति ! मरंतएण, मरइ णिरुत्तउ दासरहि ।
भत्तार-विहूणिय णारि जिह, अज्जु अणाहीहूय महि ॥१०॥

[1] वलि [2] सीताका भाई

घत्ता । कहँ तुहुँ कहिहौ का पियहिँ, कहँ जनेरि कहँ जनक गउ ।
हत-विधि ! विछोह कराइय, कवन मनोरथ पूर्ण तव" ॥३॥

हरि-गुण सवदत विद्राणउ । रोँवइ सदु खउ राघव-राणउ ।
वरु प्रहरौ पर-नरवर-चक्रउ[1] । वरु क्षयकाल ढुक्कु अत्थक्कउ ।
वरु सो कालकूट विष भक्षिउ । वरु यमशासन-नयनकटाक्षउ ।
वरु असिपजरेँ ठिउ थोडतर । वरु सेउव कृतात-दतान्तर ।
झप देँउब वरु ज्वलन जलते । वरु वगलामुखेँ भ्रमिव भ्रमते ।
वरु वज्रासनेँ शिरँहिँ प्रतीच्छिब । वरु ढुक्कत भविनि समीच्छिब ।
वरु विसहब यम-महिष-झडक्कउ । भीषण-काल-दृष्टि अभिडकउ ।
वरु विसहब केसरि-नख पजर । वरु जोयब कलिकाल-शनिश्चर ।
घत्ता । वरु दतिदतेँ मुसलग्रेँहि, विनि-भिदाविउ आपनहुँ ।
वरु नरक-दु ख आगामिउ, नहिँ वियोग भाइहिँतनउ ॥४॥

—रासायण ६७।२-४

(ग) आहत लक्ष्मणके लिये भरतका विलाप

हौँ भामडल हनुमत एहु । एहु अगद रभसोच्छलिय-देह ।
तीनहुँ आयउँ कार्येहिँ जेहि । सुनु भाखौँ का वहु विस्तरेहि ।
सीतहिँ कारणेँ रोषितमनाहँ । रण चल्लै राघव-रावणाहँ ।
लक्ष्मण शक्तिहि विनि-भिन्नु तत्र । दुष्कर जीवै सो आय अत्र" ।
सो वचन सुनिय परिपातयेल । जनु कुलिश-समाहत पडेउ शैल ।
जनु च्यवन-काल स्वर्गहँ सुरेन्द्र । उन्मूर्छिउ कहब कहब नरेन्द्र ।
दु खाकुल धाहा वनह लग्ग । पुण्य-क्षय हरि इव मरत सर्ग ।
घत्ता । हा तव सौमित्रि ! मरतई, मरै अवश्यहिँ दाशरथी ।
भर्त्तार-विहूनी नारि जिमि, आज अनाथा भइ मही ॥१०॥

---

[1] शत्रुराज शासन

हा भायर ! ऍक्कसि देहि वाय । हा पइ विणु जइसिरि-विहव जाय ।
हा भायर ! मइ मिरि पडिय गयणु । हा हियउ फुट्टु दक्खहि वयणु ।
हा भायर ! महुयर-महुर-वाणि । महु णिवडिऊ-सि दाहिणउ पाणि ।
हा ! कि समुद्दु जल-णिवहु खुट्टु । हा ! किह दिढु कुम्भकडाहु फुट्टु ।
हा ! किह मुरवइ[1] लच्छिएँ विमुक्कु । हा ! किह जमरायहों मरणु ढुक्कु ।
हा ! किह दिणयरु कर-णियरु चत्तु । हा ! किह अणगु दोहग्गु पत्तु ।
हा ! चंचल हयउ केम मेरु । हा ! केम जाउ णिद्धणु कुवेरु ।

घत्ता । हा ! णिव्विसु किह धरणेंदु[2] थिउ, णिप्पहु ससि-सिहि-सीयलउ ।
टलटलि हूई केम महि, केम समीरणु णिव्वलउ ॥११॥

लब्भइ रयणायरें रयण-खाणि । लब्भइ कोइल-कुलें महुर-वाणि ।
लब्भइ चदणु-मिरि मलय-सिगें । लब्भइ सुहवत्तणु जुवइ-अगें ।
लब्भइ घणुवणएँ धरापवण्णु । लब्भइ कचणें परवएँ सवण्णु ।
लब्भइ पेसेंण मामिएँ पसाउ । लब्भइ किएँ-विणएँ जणाणुराउ ।
लब्भइ सज्जणें गुण दाणें कित्ति । सिय असिवरें गुरु-उलें परम-तित्ति ।
लब्भइ वसियरणें कलत्त-रयणु । महकव्वें सुहासिउ सुकइ-वयणु ।
लब्भइउ वयार-मइहि सुमित्तु । मद्दवें हि विलासिणि चारु चित्तु ।
लब्भइ परतीरि महग्घु भडु । वरवेणु-मूलें वेलुज्ज-खडु[3] ।

घत्ता । गय- मोत्तिउ सिघलदीवें मणि, वइरागरहो वज्ज पउरु ।
आयइ सव्वइ लब्भति जइ, णवर ण लब्भइ भाइवरु ॥१२॥

—रामायण ६६।१०-१२

(घ) कुभकर्णके लिये रावणका विलाप

त णिसुणेवि दसाणण हल्लिउ । ण वच्छत्थलें सूलें सल्लिउ ।
थिउ हेट्ठामुँहु रावण-राणउ । हिम-हय-सयवत्तु व विद्दाणउ ।
रुवइ सदुक्खउ गग्गर-वयणउ । वाह भरतु णिरतर वयणउ ।
हा हा कुभयण्ण ! एक्कोयर । हा हा मय-मारिच्च-सहोयर ।

---

[1] इन्द्र [2] शेषनाग [3] हरितकांति वैदूर्यमणिका टुकड़ा

हा भायर ! एकहि देँहि वाच । हा तैँ विनु जयश्री विभव जाय ।
हा भ्रातर ! मम श्री पडिय गगन । हा हियहु फूटु डाहै वदन ।
हा भायर ! मधुकर मधुर-वाणि । मम निपतेँउ तुम दाहिनउ पाणि ।
हा ! का समुद्र-जल-निवह खुट्ट । हा ! का दृढ कुभकडाह फुट्ट ।
हा ! किमु सुरपति लक्ष्मियेहि मुञ्चु । हा ! किमु यमराजहँ मरन ढुक्कु ।
हा ! किमु दिनकर-कर-निकर-त्यक्त । हा ! किमु अनग दौर्भाग्य-प्राप्त ।
हा ! चचल होयउ केम मेरु । हा ! केम वनेँउ निर्धन कुवेरु ।
घत्ता । हा ! निर्विष किमु धरणीद्र ठिउ, निष्प्रभ शशि शिखि शीतलउ ।
टलटलि हूइ केम महि, केम समीरण निर्बलउ ॥११॥

लब्भै रतनाकरेँ रतनखानि । लब्भै कोकिल-कुलेँ मधुरवाणि ।
लब्भै चदन श्रीमलयश्रृगेँ । लब्भै सुखवत्त्वउ युवति-अगेँ ।
लब्भै धन-धान्य-धरा प्रपन्न । लब्भै कचन-पर्वतेँ सुवर्ण ।
लब्भै दासेहिँ[1] स्वामिय प्रसाद । लब्भै कृतविनये जन'नुराग ।
लब्भै सज्जनेँ गुण, दानेँ कीर्त्ति । सित असिवरेँ, गुरुकुलेँ परम तृप्ति ।
लब्भै वशिकरणेँ कलत्र-रतन । महकव्येँ सुभाषित सुकवि-वचन ।
लब्भै उपकार-मइहि सुमित्त । मार्दवेँहिँ विलासिनि चारुचित्त ।
लब्भै परतीरेँ महार्घ भाड । वर-वेणु-मूलेँ वेलुज्ज[2]-खड ।
घत्ता । गजमोतिउ सिंहलद्वीपेँ मणि, वैरागरहु वज्र ।
आगतेँ सर्वइ लब्भति यदि, पर नहिँ लब्भै भाइवरु" ॥१२॥

—रामायण ६९।१०-१२

(घ) कुंभकर्णके लिये रावणका विलाप

सो सुनिय दशानन हिल्लेउ । जनु वक्षस्थल मूलेहि सालेउ ।
ठिउ हेट्ठामुँह रावण राणा । हिम-हत-शतपत्रि 'व विद्राणा ।
रोव सदु.खउ गद्गद-वदना । वाह भरत निरतर वचना ।
"हा हा कुभकर्ण एकोदर ! हा हा मम मारीच-सहोदर !

---

[1] पेस=प्रेष्य (दूत, सदेशवाहक)　　[2] वंश-रतन

हा इदइ हा तोयदवाहण। हा जमहंट अणिट्ठिय-साहण[1]।
हा केसरि-णियव-दणु-दारण। जवुमालि हा सुग्र हा सारण।
दुक्खु दुक्खु पुणु मणु विणिवारिउ। सोय-समुद्दहों अप्प उत्तारिउ।
—रामायण ६७।९

(ङ) रावणके लिये विभीषणका विलाप

अप्पणु हणइ विहीसणु जावेंहिं। मुच्छइँ णाइ णिवारिउ तावेंहिं।
णिवडिउ धरणि वट्टि णिव्वेयणु। दुक्खु समुट्ठिउ पसरिय वेयणु।
चरण धरेवि रोएँवएँ लग्गउ। हा भायर महँ मुएँवि कहिं गउ।
हा हा भायर! ण किउ णिवारिउ। जण-विरुद्धु ववहरिउ णिरारिउ[2]।
हा भायर! सरीरें सुकुमारएँ। केम विश्रारिउ चक्कएँ धारएँ।
हा भायर! दुण्णिद्दएँ मुत्तउ। सिज्जें मुएँवि किं महियलें सुत्तउ।
घत्ता। किं अवहेरि करेवि थिउ, सीसें चडाविय चलण तुहारा।
अच्छमि सुट्ठुम्माहियउ, हिअउ फुट्ट आलिंगि भडारा ॥२॥
रुअइ विहीसणु सोयक्कमियउ। तुहु ण'त्थमिउ वसु अत्थमियउ।
तुहु ण जिऊसि सयलु जिउ तिहुयणु। तुहु ण मुऊसि मुयउ वदिज्जणु।
तुहु पडिऊसि ण पडिउ पुरंदरु। मउडु ण भग्गु भग्गु गिरि-कंदरु।
दिट्ठि ण णट्ठु णट्ठु लंकाउरि। वयण ण णट्ठु णट्ठु मंदोयरि।
हारु ण तुट्टु तुट्टु तारायणु। हियय ण भिण्णु भिण्णु गयणगणु।
चक्कु ण ढुक्कु ढुक्कु एक्कतरु। आउ ण खुट्टु खुट्टु रयणायरु।
जीउ ण गउ गउ आसापोट्टल। तुहु ण सुत्तु सुत्तउ महिमंडल।
सीय ण आणिय आणिय जमउरि। हरि-वल कुद्ध कुद्ध ण केसरि।
—रामायण ७६।२-३

[1] अपार रण साधन वाले [2] निरेही

हा इद्रजि(त्) हा तोयदवाहन ! हा यमघट अनिष्ठित-साधन !
　　हा केसरि-नितव-दनु-दारण । जबुमालि हा शुक हा सारण"।
"दुख दुख" पुनि मन विनिवारिउ । शोक-समुद्रहों आय उतारिउ ।
　　　　—रामायण ६७।६

(ङ) रावणके लिये विभीषणका विलाप

आपुहिँ हनै विभीषण जब्बे । मूर्छें जनुक निहारिउ तब्बैं ।
　　निपतेँउ धरणि घूमि निर्वेदन । दुख समुट्ठिउ पसरिउ वेदन ।
चरण धरिय रोअवै लागउ । "हा भायर ! मम मुइय कहाँ गउ ।
　　हा हा भायर ! न किउ निवारेँउ । जनविरुद्ध व्यवहरिउ निरारिउ ।
हा भायर ! शरीर सुकुमारा । केम विगारेउं चक्रहिँ धारा ।
　　हा भायर ! दुर्निद्रे मुक्तउ । शय्य मुएँउ का महितलेँ सुत्तउ ।
घत्ता । का अवहेल करेबि ठिय, सीस चढाइव चरण तुहारा ।
　　रहौँ सुठि उन्माथियउ हृदय फूटु आलिगु भट्टारा[1]" ॥२॥
रोँवै विभीषण शोक-क्रमियउ । तुहु न अस्तमिउ वश'स्तमियउ ।
　　तुहु न जीवसि सकल जिउ त्रिभुवन । तुहु न मुयउ मुयेँउ वँदनिय-जन ।
तुहुँ पडियेउ न पडेँउ पुरदर । मुकुट न भगु भगु गिरिकदर ।
　　दृष्टि न नष्ट नष्ट लकापुरि । वचन न नष्ट नष्ट मदोदरि ।
हार न टूटु टूटु तारागण । हृदय न भिदु भिदु गगनागण ।
　　चक्र न ढुक्कु[2] ढुक्कु एकतर । आयु न खुट्टु[3] खुट्ट रतनाकर ।
जीव न गउ गउ आशा-पोट्टल । तुहुँ न सुत्तु सुत्तु महिमडल ।
　　सीय न आनेँउ आनेँउ यमपुरि । हरि-बल क्रुद्ध क्रुद्ध जनु केसरि ।
　　　　—रामायण ७६।२-३

---

[1] महाराजा　[2] चीर कर भीतर घुसा　[3] खतम हुई

८. कविका संदेश

(१) काया नरक

माणुसु देहु होइ घिणि-विट्टलु । सिरेँहि णिवद्धउ हड्डह पोट्टलु ।
चलु कुजंतु माय-मउ कुहेँडउ । मलहोँ पुजु किमि-कीडहु सूडउ ।
पूउगंध[1] रुहिरामिस-भंडउ । चम्म-रुक्खु दुग्गंध-करंडउ ।
अतहोँ पोट्टलु पक्खिहँ भोयणु । वाहिहि भवणु मसाणहोँ भायणु ।
आयहु कलुसियऊ जहि अगउ । कवण पएसु सरीरहोँ चंगउ ।
अण्णुइ सुण्णरुव दुप्पेच्छउ । कडियलु पच्छाहर-सारिच्छउ ।
जोव्वणु गडहोँ अणुहरमाणउ । सिरु णालियर-करक-समाणउ ।

—रामायण ५४।११

एण सरीरेँ अविणय-थाणे । दिट्ठ णट्ठ जलविंदु-समाणे ।
सुर-चावेण'व अथिर सहावेँ । तडि फुरणेँण'व तक्खण-भावेँ ।
रंभा-गब्भेण'व णीसारेँ । पक्क-फलेण'व सउणाहारेँ ।
सुण्णहरेण'व विहडिय-बंधे । पच्छहरेण'व अइदुग्गंधे ।
उक्करुडेण'व कीलावासेँ । अकुलीणेण'व सुकिय-विणासे ।
परिवाहेण'व किमि-कोट्टारेँ । असुइहि भवणं भूमिहि भारेँ ।
अट्ठिय-पोट्टलेण वस-कुंडे । पूय-तलाये आमिस-उंडे ।
मलकूडेण रुहिर-जलधरणेँ । लसि-विवरेण पेम्म-णिज्झरणे ।
कुहिय-करंडएण घिणिवंते । चम्ममएण डमेँण कूजंते ।

—रामायण ७७।४

त चलणु जुअलु गय-मथरउ । सउणहि खज्जतु भयकरउ ।
त सुरय-णियव सुहावणउँ । किमि वुडवुडति चिलसावणउँ ।

---

[1] दुर्गंध

८. कविका संदेश

(१) काया नरक

मानुष देह होइ घृण-विट्टल[1]। शिराइँ बाँधेउ हाडह पोट्टल।
चलु सडत मायामय-कचरउ। मलहँ पुज कृमि-कीटहु सूडउ।
पूतिगध रुधिरामिष-भडा। चर्मवृक्ष दुर्गंध-करडा।
आँतह पोटल पक्षिहिँ भोजन। काढहिँ भवन मसानेहु भायन।
आयहु कलुषीयहु जहि अगउ। कवन प्रदेश शरीरह चगउ।
अन्यइँ शून्य-रूप दुष्प्रेक्ष्यउ। कटितल पच्छाघर सादृश्यउ।
जोबन गडहु[2] अनुहरमानउ। शिर नारियर-करक-समानउ।

—रामायण ५४।११

एहि शरीरे अविनय-थाने। दृष्ट-नष्ट जलबिदु-समाने।
सुर-चापा इव अथिर-स्वभावा। तडि-स्फुरणि' इव तत्क्षण भावा।
रभागर्भ इवा निस्सारा। पक्वफल इव शकुनाहारा।
शून्यघर इव विघटित-बधा। पच्छा घर[3] इव अतिदुर्गंधा।
कूडापुजि' इव कीटावासा। अकुलीना इव सुकृत-विनाशा।
परिवाधा इव कृमि-कोट्ठारा। अशुची-भवना भूमिहि भारा।
अस्थिय पोट्टलका वसकुडा। पूति-तलावा आमिष-कुडा।
मल-कूटऊ रुधिर-जल छरना। लसि-विवरा पीव-निर्भरणा।
कुथित करडा[4]ऊ घृणवता। चर्ममया एते कूजता।

—रामायण ७७।४

सो चरण-युगल गजमथरउ। शकुनेहिँ खाद्यत भयकरउ।
सो सुरत-नितव-सोँहावनऊ। कृमि बुजबुजति चिरसाइनऊ।

---

[1] गंदा विटलाहा (मल्लिका) [2] फोड़ा [3] पाख़ाना [4] पेटी

तं णाहि-पयेसु किसोयरउ । खज्जंतमाणु थिउ भासुरउ ।
तं जोव्वणु अवरुंडणमणउ । सुज्जंत नवर भीसावणउ ।
त सुदरुवयणु जियताहुँ । किमि कप्पिउ णवर मरताहुँ ।
तं अहर-विंवु वण्णुज्जलउ । लुचतु सिवेंहिँ घिणि-विट्टलउ ।
त णयणु-जुअलु विब्भम-भरिउ । विच्छायउ कायहिँ कप्परिउ ।
सो चिहुर-भारु कोडावणउ । उड्डतु णवर भीसावणउ ।
घत्ता । त माणुसु त मुह-कमलु, ते थण त गाढालिंगणउ ।
णवरि धरेविणु णा सउडु, वोलिज्जइ धिधि चिलिसावणउ ॥७॥

(२) गर्भवास दुःख

तहिँ तेहइ रस-वस-भूय-भरे । णव मास वसेंव्वउ देहघरे ।
णव णाहिकमलु उत्थल्लु जहिँ । पहिलउ जें पिंडु सवधु तहिँ ।
दस-दिवसु परिट्ठिउ रुहिर-जलु । कणु जेम पईयउ धरणियलु ।
विहि दस-रत्तिहि समुट्ठिअउ । ण जलें डिंडीर समुट्ठिअउ ।
तिहि दस-रत्तिहिँ वुब्वुड घडिउ । ण सिसिर-विंदु ककुम पडिउ ।
दस-रत्ति चउत्थहे वित्थरिउ । णावइ पवलकुरु णीसरिउ
पचमें दस-रत्ति जाउ वलिउ । ण सूरण-कदु चउप्पलिउ ।
दस-दस-रत्तेंहि कर-चरण-सिरु । वीसहि णिप्पण्णु सरीर थिरु ।
णव-मासिउ देहहों णीसरिउ । वट्टतु पडीवउ वीसरिउ ।
घत्ता । जेण दुवारें आइयउ, जो त परिहरे ण सक्कइ ।
पतिहि जुत्तु वइल्लु जिह, भव-ससारें भमतु ण थक्कइ ॥८॥

(३) आवागमन दुःख

इउ जणें वि धीरहि अप्पणउँ । करें ककणु जोवहि दप्पणउ ।
चउगइ[1] संसार भमतएँण । आवता जंत मरतएँण ।

---

[1] देव, मानुष, तिर्यक् (पशु पंछी), नरक

सो नाभिप्रदेश कृशोदरऊ। खाद्यतमान ठिउ भासुरऊ।
सो यौवन अवरुडन[1]-मनऊ। सुज्जत अती-भीषावणऊ।
सो सुदर वदन जियतेही। कृमि-काटिय तुरत मरतेही।
सो अधर-बिंब वर्णोज्वलऊ। नोचत शिवें हिँ[2] घृण-विट्टलऊ।
सो नयन-युगल विभ्रमभरिऊ। विच्छायउ[3] कायहँ खप्परिऊ।
सो चिकुर-भार हर्षावणऊ। उड्डुत तुरत भीषावणऊ।
घत्ता। सो मानुष सो मुखकमल, सो स्तन सो गाढालिंगनऊ।
तुरत धरते नासकुटू, बोलिय धिक् चिरसाइनऊ ॥७॥

(२) गर्भवास दु:ख

तहँ तेहिहि रस-वस-भूत-भरे। नव मास वसेयउ देहघरे।
नव नाभिकमल उच्छल्ल जहाँ। पहिलहिहि पिंड सबध तहाँ।
दस दिवस परिट्-ठिउ[4] रुधिर-जलू। कण जेम पडेऊ धरणितलू।
दोउ दशरात्रें हिँ सम्-उट्ठियऊ। जनु जलें डिंडीर[5] सुमुट्ठियऊ।
तें हिदश रात्रे बुद्बुद गडेँऊ। जनु शिशिरबिंदु कुकुम पडेऊ।
दशरात्रि चउत्थेहिँ विस्तरिऊ। न्याई प्रवलाकुर निस्सरिऊ।
पँचये दशरात्रे जायों वली। जनु सूरन-कद चऊपहली।
दश दशरात्रेहिँ कर-चरण-शिरू। बीसहिँ निष्पन्न शरीर थिरू।
नवमासे देहा नीसरिऊ। वर्त्तन्त प्रतीउ वीसरिऊ।
घत्ता। जेहि दुवारें आयऊ, जो तेहि परि-धारयउ न सक्कै।
पाँतिहि जुतो वइल्ल जिमि, भव-ससार भ्रमत न थाकै ॥८॥

(३) आवागमन दु:ख

हु जानवि धीरेहि आपनऊ। कर-ककण जोवैं दर्पणऊ।
चउगति ससार भ्रमतएहि। आवत-जात-मरतएहिँ।

---

[1] अवरुंडन=आलिंगन　[2] सियारों से　[3] कुरूप　[4] रहेउ　[5] कमलनाल

केँवि कड्ढउ सग्गहोँ वरि चडेवि । केँवि खय होणेँइ उप्परेँ चडेवि ।
केवि घारइ थोरइ पाव विसेण । केवि भक्खइ णाणाविहमसेँण ।
घत्ता । तहो कोवि ण चुक्कइ भुक्खियहोँ, काल-भुयंगहोँ दूसहहो ।
जिण-वयण-रसायणु लहु पियहोँ, जिं अजरामर-पउ लइहो ॥२॥
जइ काल-भुअगु णउव डसइ । तो किं सुर-वइ सग्गहोँ खसइ ।

—रामायण ७८।२,३

विरहाणल-जाल-पलित्त-तणु । चिंतेवएँ लग्गु विसण्ण-मणु ।
सच्चउ ससारि ण अत्थि सुहु । सच्चउ गिरि-मेरु-समाण दुहु ।
सच्चउ जर-जम्मण-मरण-भउ । सच्चउ जीविउ जलविंद-सउ ।
कहोँ घरु कहो परियणु बंधु जणु । कहोँ माय-वप्पु कहोँ सुहि-सयणु ।
कहोँ पुत्तु-मित्तु कहोँ किर घरिणि । कहोँ भाय-सहोयरु कहोँ वहिणि ।
फलु जाव ताव वधव-सयण । आवासिय पायवि जिह सउण ।
वलु एम भणेप्पिणु णीसरिउ । रोवतु पडीवउ वीसरिउ ।
घत्ता । णिद्धणु लक्खण-वज्जिअउ, अण्णु'वि वहु असणेँहिँ भुत्तउ ।
राहउ भमइ भुअगु जिह, वणेँ "हा हा सीय" भणतउ ॥११॥
हिंडतेँ मग्ग मडप्फरेण । वणदेवय पुच्छिय हलहरेण ।
"खणेँ खणेँ वेयारहिँ काइँ मइँ । कहिँ कहिमि दिट्ठ जइ कतयइँ" ।
वलु एम भणेप्पिणु सचलिउ । ता वग्गएँ वण-गयदु मिलिउ ।
"हे कुजर-कामिणि-गइ-गमणा । कहेँ कहिमि दिट्ठ जइ मिगणयणा" ।
णिय-पडिरवेण वेआरियउ । जाणइ सीयएँ हक्कारिअउ ।
कत्थइ दिट्ठइँ इदीवरइँ । जाणइ-धण-णयणइँ दीहरइँ[1] ।

---

[1] दीरघ

कोंइ निकसि सर्ग ऊपर चढई। कोंइ क्षय-होवन ऊपर चढई।
　　कोइ धारै थूरै पाप विषहिँ। कोइ भक्खै नानाविध मसहिँ।
घत्ता। तहँ कोइ न वाँचै भूखियहीँ, काल-भुजगह दुस्सहहीँ।
　　जिन-वचन-रसायन लघु पियहू, जिमि अजरामर-पद लहहू ॥२॥
यदि काल-भुजग नहीँ डँसई। तो किमि सुरपति स्वर्गहुँ खसई।

—रामायण ७८।२,३

विरहानल ज्वाल-प्रलिप्त तनू। चिंता इब लागु विषण्ण-मनू।
　　साँचै ससारेँ न अहै सुखू। साँचै गिरि-मेरु-समान दुखू।
साँचै जर-जन्मा-मरण-भवा। साँचै जीवित जलविदु-समा।
　　कहँ घर कहँ परिजन बधुजना। कहँ माय-बाप कहँ हित-सजना।
कहँ पुत्र-मित्र कहँ पुनि घरिनी। कहँ भाय-सहोदर कहँ बहिनी।
　　फल जबै तबै बाधव-स्वजना। आवासैँ पादपेँ जिमि शकुना।
वल[1] ऐसेँहि भनिया नीसरेऊ। रोवत पडीयउ बीसरिउ।
घत्ता। निर्धनु लक्ष्मण वर्जितउ, अन्यहु वहुत सनेहि त्यक्तऊ।
　　राघव भ्रमै भुजग जिमि, वने "हा हा सीय" भनतऊ ॥११॥
हिंडतो भग्न गर्वएहिँ। वनदेवत पूछिय हलधरेहिँ[2]।
　　"क्षण-क्षण विकारा काह मई। कहिँ कतहुँ दीस यदि कातां तईँ।"
वल[2] भनिया ऐसे सचलेऊ। तव आगेंइ वन-गयद मिलेऊ।
　　"हे कुजर कामिनि-गति-गमना! कहिँ कतहुँ दीस यदि मृगनयना।"
निज प्रतिरवेहिँ वीचारियऊ। जानै सीता हक्कारियऊ[3]।
　　कतहूँ दीसैँ इदीवरहीँ। जानै धनि-नयनि-'दीवरहीँ।

[1] राम पिछला　　[2] राम　　[3] पुकारा

कत्थइँ असोय-दलु हल्लियउ। जाणइ धण-वाहा डोल्लिअउ।
वणु सयलु गवेसवि सयल महिँ। पल्लट्टु पडीवउ दासरहि।
—रामायण ३९।७–१२

(५) कोई किसीका नहीं

जगेँ जीवहो णाहिँ सहाउ कोवि। रइ वधइ मोह-वसेण तोवि।
इय घरु इउ परियणु इउ कलत्तु। णउ वुज्झइ जिह सयलेहिँ चित्तु।
एक्केण कणुव्वउ विहुरकालेँ। एक्केण सुयेव्वउ जरपयाले।
एक्केण वसेव्वउँ तहि णिगोएँ। एक्केण रुइव्वउ पिय-विओएँ।
एक्केण भमेव्वउ भवसमुद्दे। कमोह मोह जलयर-रउद्दे।
एक्कहोँ जेँ दुक्खु एक्कहोँ जेँ सुक्खु। एक्कहोँ जेँ वधु एक्कहोँ जेँ मोक्खु।
एक्कहोँ जेँ पाउ एक्कहोँ जेँ धम्मु। एक्कहोँ जे मरणु एक्कहोँ जे जम्म।
—रामायण ५४।७

(६) सामाजिक भेदभाव धर्म-अधर्मके कारण

मुणिवर कहिवि लग्गु विउलाइँ। किं जणेण णियहि धम्मे फलाइँ।
धम्मे भड-थड-हय-गय-सदण। पावेँ मरण-विऊय-क्कदण।
धम्मे सग्गु भोग्गु सोहग्गु। पावेँ रोगु सोगु दोहग्गु।
धम्मेँ रिद्धि-विद्धि सिय-सपय। पावेँ अत्थहीण णर-विद्दय।
धम्मेँ कडय-मउड-कडिसुत्ता। पावेँ णर-दालिद्दे मुत्ता।
धम्मेँ रज्जु करति णिरुत्ता। पावेँ परपेसण-सजुत्ता।
धम्मेँ वर-पल्लकेँ सुत्ता। पावेँ तिण-सथारेँ विभुत्ता।
धम्मेँ णर देवत्तणु पत्ता। पावेँ णरय-घोरेँ सकता।
धम्मेँ णर रमति वर-निलयउ। पावेँ दुह-विऊय दुह-णिलयउ।
धम्मेँ सुदरु अंगु णिवद्धउ। पावेँ पगुलउ'वि वहिर'धउ।
—रामायण २८।९

कतहूँ अशोक-दल हिल्लियऊ। जानै धनि-बाहहूँ डोलियऊ।
वन सकल गवेषे॑उ सकल मही। पलटेउ पाछहूँ दाशरथी।
—रामायण ३६।७-१२

(५) कोई किसीका नही

जगे॑ जीवहूँ नाहिँ सहाय को॑ऊ। रति बाँधै मोहवशेहिँ तऊ।
एँहु घर एँहु परिजन एँहु कलत्र। ना बूझै जिमि सकलेहिँ चित्र।
एँकलेहि कानिबउ विधुर-काले॑। एँकलेहि सो॑ईवउ जरठ-काले॑।
एँकलेहि वसीवउ तहँ वियोगे॑। एँकलेहि रो॑इब्बउ प्रिय-वियोगे॑।
एँकलेहि भ्रमेबउ भव-समुद्रे॑। कर्मोघ-मोह-जलचर-रउद्रे॑।
एँकलेहिहि दुख एकलेहिहि सुक्ख। एकलेहिहि बँध एकलेहिहि मोक्ष।
एकलेहिहि पाप-एकलेहि धर्म। एकलेहिहि मरन एकलेहि जन्म।
—रामायण ५४।७

(६) सामाजिक भेदभाव धर्म-अधर्मके कारण

मुनिवर कहन लागु विपुलाइँ। का जनेहिँ निज-धर्म-फलाइँ।
धर्मे॑ भट-ठट-हय-गज-स्यदन। पापे॑ मरन-वियोग-क्रदन।
धर्मे॑ स्वर्ग-भोग-सौभाग्य। पापे॑ रोग-शोक-दौर्भाग्य।
धर्मे॑ ऋद्धि-वृद्धि सित-सपत। पापे॑ अर्थहीन नर-विद्रय।
धर्मे॑ कटक-मुकुट-कटि-सूत्रा। पापे॑ नर दारिद्रचे क्षिप्ता।
धर्मे॑ राज्य करति निश्चिता। पापे॑ पर-प्रेषण-सयुक्ता।
धर्मे॑ वर-पर्यके सुप्ता। पापे॑ तृण-साथरे॑ विमुक्ता।
धर्मे॑ नर देवत्त्वहिँ प्राप्ता। पापे॑ नरक-घोर-सक्राता।
धर्मे॑ नर रमति वर-निलये। पापे॑ दुख-वियोग-दुख-निलये।
धर्मे॑ सुदर अग निबधा। पापे॑ पगुल अरु वहिरधा।
—रामायण २८।६

§ ४. भूसुकुपा (शांतिदेव)

काल—८०० ई० (धर्मपाल-देवपाल ७७०-८०६-४६) । देश—नालंदा ।

(रहस्यवाद)

(६—राग पटमंजरी)

काहेरि घेणि मेलि अच्छहू कीस । वेढिल हाक पडअ चउदीस ।
अप्पण मासे हरिणा वइरी । खणह ण छाडअ भूसुकु अहेरी ।
तिण ण छूपइ पिवड ण पाणी । हरिणा हरिणीर णिलअ ण जाणी ।
हरिणी बोलअ सुण हरिणा तों । ए वन छाडि होहु भान्तो ॥
तरसँत हरिनार खुर न दीसइ । भूसुकु भणइ मुढ ! हिअहिँ ण पइसइ ॥६॥

(२१—राग वराडी)

णिशि अंधारी मूसा करअ अचारा । अमिअ-भखअ मूसा करअ अहारा ॥
मार रे जोइया ! मूसा-पवना । जेण तूटइ अवणा-गवणा ॥
भव विदारअ मूसा खणअ गाती । चचल मूसा कलिआँ णासअ थाती ॥
काला मूसा उह ण वाण । गअणे उठि करअ अमिअ पाण ॥
तव्वे मूसा अचल चचल । सद्‌गुरु वाहे करह सो निच्चल ॥
जव्वे मूसा अचार तूटअ । भूसुकु भणइ तव्वे वधण फिट्टइ ॥२१॥

(२३—राग वडारी)

जइ तुम्ह भूसुकु अहेरी जाइव मरिहसि पच जना ।
णलिणीवन पइसन्ते होहिसि एक्कु मणा ॥
जीवँत मा विहणि मएल ण अणिहिलि ।
णउ विणु मासे भूसुकु पउमवण पइसहिलि ॥
माआजाल पसारी बाँधेलि माआ हरिणी ।
सदगुरु बोहें बूझि रे कासु—(काहिणी ॥)

§ ४. भूसुकुपा (शांतिदेव)

कुल—राजपुत्र (राउत) भिक्षु, सिद्ध (४६) । कृतियाँ (हिन्दी)—सहज-गीति

(रहस्यवाद)

(६—राग पटमंजरी)

काहेर भक्ष्य मेलि रहों कईस । वेढिल हाक पडै चौदीस ॥
अपने माँसे हरिना वैरी । क्षणहु न छाडै भूसुक अहेरी ॥
तृण न छुवै पियै न पानी । हरिना हरिनी-निलय न जानी ॥
हरिनी बोलै सुनु हरिना तों । ई वन छाडि होवहू भ्रमन्तो ॥
तृषित धावत हरिना खुर ना दीसै । भूसुक भनै मुढ ! हियहिं न पइसै ॥६॥

(२१—राग वराडी)

निशि अँधियारी मूसा करै सँचारा । अमृत-भक्ष्य मूसा करै अहारा ॥
मारु रे जोंगिया ! मूसा पवना । जासे टूटै अवना-गवना ॥
भव विदारै मूसा खनै गाती । चचल मूसा खाइ नाशै थाती ॥
काला मूसा रोम न वर्ण । गगने उठि करै अमिय पान ॥
तव्वै मूसा अचल-चचल । सद्गुरु-वोधे करहु सो निश्चल ॥
जव्वै मूस-सँचारा टूटै । भूसुक भनै तव्वै वधन छूटै ॥२१॥

(२३—राग वराडी)

यदि तुम भूसुकु अहेरे जइवा, मरिहो पाँच जना ।
नलिनीवन पइठन्ते, होइहा एकमना ।
जीवत न हनिहा मरल न अनिहा ।
न विनु मास भूसुक पद्मवन पइठिहा ॥
माया-जाल पसारी वधिहा माया-हरिनी ।
सद्गुरु-वोवें बुझि रे कानु (एहु) कहनी ॥

(अप्पण काये छड्डुवि णउ मइलि खाअइ कालाकालें लेइ।
पाणी-वेणी णाहिं हरिणा पाणि अवेक्खउ ॥
चचल चचल चलिआ सुण्ण माँझे अत्थगऊ ॥)२३॥

(२७—राग कामोद)

अध राति भर कमल विकसिउ, बतिस जोइणी तासु अँग उल्हसिउ।
चालिअउ ससहर मग्ग अवधूई। रअणइ सहज कहेमि ॥
चालिअ ससहर-गउ णिव्वाणे। कमलिनि कमल वहइ पणालें ॥
विरमानद विलक्खण सुद्ध। जो एथु वुज्झइ सो एथु वुद्ध।
भूसुकु भणइ मइँ वूझिय मेलें। सहजाणद महासुह लीले ॥२७॥

(३०—राग मल्लारी)

करुणामेह निरन्तर फारिआ। भावाभाव द्वदल दालिआ।
उड्उ गअण माज्झ अदभूआ। पेख रे भूसुकु ! सहज सरूआ ॥
जासु मुणन्ते तुट्टइ इँदआल। णिहुए णिज मण देइउ उल्लाल।
विसअ विसुज्झें मइँ वुज्झिउ आणदे। गअणहँ जिम उजोली चन्दे ॥
ए तिलोए एत वि सारा। जोइ भूसुकु फडइ अँधआरा ॥३०॥

(४१—राग कण्हू-गुंजरी)

आइएँ अनुअनाएँ जग रे भन्तिएँ सो पडिहाइ।
रज्जु-सप्प देखि जो चमकिउ, साँचे जिम लोअ खाइउ[१] ॥
अकट जोइआरे मा कर हाथ लोण्हा। अइस सहावें जइज वुज्झसि तूटइ वासना तोरा ॥
मरु-मरीचि गधव-नअरी दापण-पडिविबु जइसा।
वातावत्तें सो दिढ भइआ, आयें पाथर जइसा ॥
वाझिसुआ-जिम केलि करई खेलइ वहुविह खेला।
वालुअ-तेले सस-सिंगे आकाश फूलिला ॥
राउतु भणइ वढ भूसुकु भणइ वढ सअला अइस सहावा।
जइ तो मूढा अच्छसि भान्ती पुच्छहु सदगुरु पावा ॥४१॥

---

[१] साँचे कित वोड़ो खाई J.D.L.

(आपन काये छडिहा ना मैली। खाय कालाकाले लेई।
पानी-वेणी नहिँ हरिना पानी चाहेउ।
चचल- चचल चलि शून्य-मध्ये अथयेउ)[१] ॥२३॥

(२७—राग कामोद)

आधीराति भर कमल विकसेँउ। वतिस जोगिनी तासु अँग हुलसेँउ॥
चालहु शशधर मग अवधूती। रतने सहज कहौँ मैँ॥
चालिय शशधर गयेँउ निर्वाणे। कमलिनि कमलहिँ बहै प्रणाले॥
विरमानद विलक्षण शुद्ध। जो एहु जानै सो एहिँ बुद्ध।
भूसुक भनै मै बूझयो मेला। सहजानद महासुख-लीला ॥२७॥

(३०—राग मल्लारी)

करुणा-मेघ निरन्तर फारी। भावाभाव द्वन्दहीँ दारी॥
उयेँउ गगनमाँझ अदभूता। पेखु रे भूसुकु सहज-स्वरूपा॥
जासु सुनत टूटै इन्द्रजाल। नि-धुए निजमन देइ उलास॥
विषय विशुद्धे मैँ बूझेँउँ आनदा। गगनहिँ जिमि उजाला चदा॥
एहि तिलोके एहुहि सारा। जोइ भूसुकु फटै अँधियारा ॥३०॥

(४१—राग कण्हू गुजरी)

आदिहिँ अजन्मते जग ई भ्रान्ति सोँ प्रतिभाइ।
रज्जु-सर्प देखि चमकेँउ साँचै जिमि लोग खाइ॥
अहह जोगिया! न कर हाथ लोना। ऐस स्वभाव यदि बूझसि टुटइ वासना तोरा॥
मरु-मरीचि गधर्व-नगरी दर्पण-प्रतिबिंब जैसा।
वातावर्त्ते सो दृढ होई, पानिहिँ पाथर जैसा॥
बाँझसुता जिमि केली करै, खेलै वहुविध खेला।
बालू-तेले शश-शृंगे आकाश फुलेला॥
राउतु भनै मूढ भूसुकु भनै मूढ सकल ऐस स्वभावा।
यदि तैँ मूढा हवै भ्रान्त पूछहु सद्गुरुपावा ॥४१॥

---

[१] अस्त हो गया

(४३—राग बंगाल)

सहज महातरु फरिअइ तिलोए। खसम सहावे वाणते मुक्क कोइ।
जिम जले पाणिअ टलिआ भेउ न जाअ। तिम मण-रअणा समरसे गअण समाअ ॥
यासु णाहि अप्पा तासु परेला काहि। आइ-अन्तअ ण, जाममरण भव नाहि।
भूसुकु भणइ वढ। राउतु भणइ वढ। सअला एह सहाव।
जाइ ण आवइ रे ण तहिँ भावाभाव ॥४३॥

(४६—राग मल्लारी)

राअ-नावडी पँउअखँटे वाहिउ। अदअ वँगाल देसह लूटेँउ।
आजि भूसुक वगाली भइली। णिअ घरिणी चडाली लेली ॥
डहिउ जे पँच पाटन इन्दि-विसआ णठा। ण जानमि चिअ मोर कँहि गइ पइठा ॥
सोण-रूअ मोर किंपि ण थाकिउ[1]। णिअ परिवारे महासुह थाकिउ।
चउकोडि भँडार मोग लइउ असेस। जीवँते मइलेँ णाहि विसेस ॥४६॥

—चर्यापद

२ : नवीँ सदी

§ ५. लुईपा

काल—८३० ई० (धर्मपाल-देवपाल ७७०-८०६-४६)
देश—मगध। कुल—कायस्थ, सिद्ध (१)

रहस्यवाद

(१—राग पटमंजरी)

काआ तरुवर पच' वि डाल। चचल चीए पइट्ठा काल ॥
दिढ करिअ महासुह परिमाण। लुई भणइ गुरु पुच्छिअ जाण ॥

---

[1] रहा

(४३—राग बंगाल)

सहज महातरु स्फुरै (फडै ?) त्रिलोके । ख-सम स्वभावे बँध-मुक्त कोइ ॥
जिमि जले पानी डाले भेद न जान । तिमि मन रतन समरस गगन-समान ॥
जासु न आपा तासु पराया काह । आदि-अन्त न जन्म-मरण भव नाहि ॥
भूसुकु भनै मूढ ! राउतु भनै मूढ ! सकल एह स्वभाव ।
जाइ न आवै रे ना तहँ भावाभाव ॥४३॥

(४९—राग मल्लारी)

राजनावडी पदुमखडे चलायेँउ । अ-दय बँगल-देश लूटेउ ।
आज भूसुकु बगाली भइली[१] । निज घरनी चडाली लेली ॥
डहेँउ पाँच पाटन इन्द्रि-विषया नष्टा । न जानों चित्त मोर कँह जाइ पइठा ॥
सोना-रूपा मोर किछुअ न रहेँऊ । निज-परिवारे महासुख रहेऊ ॥
चौकोटि भँडार मोर लियउ अशेष । जियले मुअले नाहि विशेष ॥४९॥
—चर्यापद

२ : नवीँ सदी

§ ५. लुईपा

कृतियाँ—अभिसमय-विभंग, तत्व स्वभाव-दोहा कोष । बुद्धोदय भगवद्-अभिसमय, गीतिका ।

रहस्यवाद

(१—राग पटमंजरी)

काया तरुवर पाँचउ डाल । चचल चित्ते पइठा काल ॥
दृढ करि महासुख परिमान । लुई भनै गुरु पूछिय जान ॥

---

[१] आज भूसुक युद्ध में हरलीँ—भाटे

सअल-समाहिहि काह करिअइ। सुख-दुखेतेँ निचित मरिअइ ॥
छडिअउ छद बांधकरण कपटेर आस। सुण्ण-पक्ख भिडि लेहु रे पास ॥
भणइ लुई आम्हे झाणे दिट्ठा। धमण-चमण वेणि उपरि बइट्ठा ॥१॥

(२९—राग पटमंजरी)

भाव ण होइ अभाव ण जाइ। अइस सँबोहेँ को पतिआइ ॥
लुई भणइ वढ ! दुलख विणाणा। तिधातुए विलइ ऊह लागेना।
जाहिर वण्ण-चिन्ह-रूअ ण जाणी। सो कइसे आगम-वेएँ वखाणी ॥
काहे रे किस भणि मइँ दिवि पिच्छा। उदक-चद जिम साच न मिच्छा।
लुई भणइ मइँ भावइँ कीस। जा लेइ अच्छम ताहेर ऊह न दीस ॥२९॥

—चर्यापद[1]

§ ६. विरूपा

काल ८३० ई० (देवपाल ८०६-४९) देश—त्रिउर (मगध ?)। कुल—भिक्षु, सिद्ध (३)। कृतियाँ—अमृतसिद्धि, दोहा-कोष, कर्मचंडालिका-

रहस्यवाद

(३—राग गवडा)

एक से शोडिनि दुइ घरे साँधअ। चीअ न वाकलअ वारुणी बाँधअ ॥
सहजे थिर करि वारुणि साधअ। जेँ अजरामर होइ दिढ काँधअ ॥
दसमी दुआरते चिन्ह देखइआ। आइल गराहक अपने बहिआ ॥
चउशटि घडिये देल पसारा। पइठल गराहक नाहि निसारा ॥
एक घडुल्ली सरुइ नाल। भणइ विरूआ थिर कर चाल़ ॥३॥

—चर्यापद

[1] J.S.L. Cal. XXX

सकल समाधिहिँ काह करिज्जै । सुख-दु खनतेँ निचित मरिज्जै ।।
छाडि छद-बध कर ना कपटकी ग्राश । शून्य-पक्ष भीडि लेहु रे पाश ।।
भनै लुई मैँ ध्याने दीठा । धमन-चमन दोँउहि ऊपर बैठा ।।१।।

(२९—राग पटमंजरी)

भाव न होइ ग्रभाव न होइ । ऐस सँबोधिहिँ को पतियाइ ।
लूइ भनै मूढ ! दु लँख विज्ञाना । त्रिधातुहिँ विलसै ऊह लागै ना ।।
जाहि वर्ण-चिन्ह-रूप न जानी । से कैसे ग्रागम-वेद बखानी ।
काहे रे कैसे भनि मैँ देबोँ पूछा । उदक-चद जिमि साँच न मिथ्या ।।
लूई भनै मै भावौँ कैसे । जे लेइ रहौ तेहि ऊह न दीसै ।।२९।।

—चर्यापद

§ ६. विरूपा

दोहाकोष, विरूप-गीतिका. विरूप-वज्र-गीतिका, विरूप-पद-चतुरशीति, मार्ग-फलान्विता ववादक, सुनिष्प्रपंचतत्त्वोपदेश ।

रहस्यवाद

(३—राग गबडा)

एक से सूँडिन[1] दुइ घरे साँधै । चीग्र न बाकल वारुणी बाँधै ।।
सहजे थिर करि वारुणि साँधा । जे ग्रजरामर होइ (न) दृढ स्कधा ।।
दशम दुवारे चिन्ह देखि कहँ । ग्रायउ ग्राहक ग्रपन लेन कहँ ।।
चौँसठ-घडिया देल पसारा । पइठु गराहक नाहिँ निसारा ।।
एक घडुल्ली स्वरूपी नाल । भनै विरूपा थिर करु चाल ।।३।।

—चर्यापद

---

[1] शराब बेँचने वाली

किन्तो मन्तो किन्तो तन्ते किन्तो झाण-वखाणे।
आप पइट्ठा महासुह लीलें दुलक्ख परम-निवाणे॥
दुखें सुखें एकू करिआ भुञ्जइ इन्दी जानी।
स्वपरापर न चेवइ दारिक सअलानुत्तर मानी।
राआ राआ राआ रे अवर राअ मोहे वाधा।
लुइपाअ-पए दारिक द्वादश भुअणे लाधा॥३४॥
—चर्यापद

§ ९. गुंडरीपा

काल—८४० ई० (देवपाल ८०९-४९)। देश—डिसुनगर।

रहस्यवाद

(४—राग अरुण)

तिअड्डा चापि जोइनि दे अँकवाली। कमल-कुलिश घोंटि करहु विआली॥
जोइनि तइँ विनु खनहि न जीवमि। तो मुह चुम्बि कमल-रस पीवमि।
खेपहुँ जोइनि लेप न जाअ। मणि-कुले वहिआ उडिआने समाअ॥
सासु घरें घालि कोचा-ताल। चाँद-सूज वेणि पखा फाल।
भणइ गुन्डरी अम्हे कुन्दुरे-वीरा। नर अ नारी माझे उभिल चीरा॥४॥
—चर्यागीति

§ १०. कुक्कुरीपा

काल—८४० ई० (देवपाल ८०९-४९)। देश—कपिलवस्तु। कुल—ब्राह्मण

रहस्यवाद

(२—राग गवडा)

दूलि दूहि पिटा धरण न जाइ। रूखेर तेंतुलि कुँभीरे खाइ।
आँगन घर पण सुन हे भोविआती। कानेट चोरी निल अधराती॥

की तोर मन्त्रे की तोर तन्त्रे की तोर ध्यान बखाने ।
आप पईठा महसुख लीले दुर्लख परम-निवाणे ॥
दुख-सुख एक करी भक्षै इन्द्रजाली ।
स्व-परापर न चीन्है दारिक सकल अनुत्तर मानी ॥
राजा राजा राजा अवर राजा मोह बँधाया ।
लूईपाद-पझे दारिक द्वादश भुवनहिँ पाया ॥३४॥
—चर्यापद

§ ९. गुंडरीपा

कुल—लोहार, सिद्ध (४)। कृतियाँ—गीति।

रहस्यवाद

(४—राग अरुण)

तियडा चाँपि जोगिनि दे अँकवारी। कमल-कुलिश घोँटि करहु बियाली ॥
जोगिनि तोहि विनु क्षणहुँ न जीयौँ। तव-मुख चूमि कमल-रस पीयौँ ॥
फेँकेहु जोगिनि लेप न जाय। मणि-कुडल बहि उड्याने समाय ॥
सासु घरे डाली कुजी-ताल। चाँद-सूर्य दोउँ पाखहिँ फाल ॥
भनै गुंडरी मैं कुन्दुरे वीरा। नर-नारी-भाँझे दीनेउँ चीरा ॥४॥
—चर्यागीत

§ १०. कुक्कुरीपा

सिद्ध (३४)। कृतियाँ—योगभावनोपदेश, स्रवपरिच्छेदन।

रहस्यवाद

(२—राग गवडा)

कूर्म दूहि पात्र धरन न जाय। वृक्षेर इम्ली कुभीर खाय।
आँगन घर पुनि सुनु कुविझाती। कानेट चोरि लियेउ अधराती ॥

ससुरा निंद गेल बहुडी जागअ । कानेट चोरे निल का गइ मागअ ॥
दिवसइ बहुडी काग-डरे भाअ । राति भइले कामरु जाअ ।
अइसन चर्या कुक्कुरिपाए गाइउ । कोडि माझे एकु हिअहिँ समाइउ ॥२॥

(२०—राग पटमंजरी)

हउँ निरासी खमन भतारी । मोँहोर विगोआ कहण न जाई ।
फिटल गो माए ! अन्तउडि चाहि । जा एथु बाहम सो एथु नाहि ॥
पहिल विआण मोर वासना पूडा । नाडि विआरन्ते सेव वापुडा ।
जाण जीवण मोर भइले से पूरा । मूलन खलि बाप सघारा ॥
भणथि कुक्कुरीपाए भवथिरा । जो एथु बूझइ सो एथु वीरा ॥२०॥

—चर्यापद

§ ११. कमरि(कंबल)पा

काल ८४० ई० (देवपाल ८०६-४६ ई०) । देश—उडीसा । कुल—राजकुमार

रहस्यवाद

(८—राग देवक्री)

मोने भरिती करुणा नावी ।
रूपा थोइ नाहिक ठावी ॥
वाहनु कामलि गअण-उवेसेँ ।
गेला जाम बाहुडइ कइसेँ ॥
खुटि उपाडी मेलिलि काच्छि ।
वाहतु कामलि सद्गुरु पुच्छि ॥
माँगत चढिले चउदिस चाहअ ।
(नाव-पीठ चढि विलहिँ पडअ) ।
केडुआल नाहि केँ कि (नाविक) वाहव के पारअ ॥
वाम दाहिण चाँपि मिलि मिलि (चढि) माँगा ।
बाटत मिलिल महासुह साँगा ॥८॥

—चर्यापद

सासु नीदि गइल बहुवा जागै । कानेट चोरि लिय कागहिँ माँगै ।।
दिवसहिँ वहू काग डर खाय । राति भइले कामरूप जाय ।।
ऐसन चर्या कुक्कुरि गाये । कोटि माँझ एक हियहिँ समाये ।।२।।

(२०—राग पटमंजरी)

हौँ निराशी ख-मन भतारी । मोर विज्ञान कहल न जाई ।
फूटल रे माई ! अन्त मैँ देखौँ । जो एहिँ गिरेँउ सो ऐँहि नाहीँ ।।
प्रथम विज्ञाने मोरि वासना टूटी । नाडी विचारते सोइ वापुडी ।।
नवयौवन मोर भइल से पूरा । मूल निखूटि पाप सहारा ।।
भनै कुक्कुरीपा भव थिरा । जो एहि बूझै सो एहिँ वीरा ।।

—चर्यापद

§ ११. कमरि(कंबल)पा

भिक्षु, सिद्ध (३०) । कृतियाँ—असंबंध-दृष्टि, असंबंध-सर्गदृष्टि, गीतिका ।

रहस्यवाद

(८—राग देवश्री)

सोनेँहिँ भरती करुणा नावी ।
रूपा थापै नाहिक ठाँवी ।।
ले चल कामलि गगन-उदेसे ।
गैला जन्म बहुरिहै कैसे ।
खूँटी उपाडि फेँकल काछी ।
ले चल कामलि सद्गुरु पूछी ।।
माँगे चढल चतुर्दिश देखै ।
(नाव-पीठ चढि बलहीँ पडई) ।
केडुआल नाहीँ कैसे चलायव पारै ।।
वाम-दहिन चाँपि मिलि (चढि) माँगा ।
वाटेहिँ मिलल महासुख-सगा ।।८।।

—चर्यापद

§१२. कण्हपा

(कृष्णपाद, चर्यापाद, कृष्णवज्रपाद), काल—८४० (देवपाल ८०६-४६ ई०)। देश—कर्नाटक : निवास—बिहार और बंगाल (सोमपुरी)।

(१) पंथ-पंडित-निंदा

लोअह गव्व समुव्वहइ, हँउ परमत्थेँ पवीण।
कोडिअ-मज्झे एक्कु जइ, होइ णिरंजण-लीण ॥१॥
आगम-वेअ-पुराणें (ही), पण्डिअ माण वहन्ति।
पक्क-सिरीफलें अलिअ जिम, बाहेरीअ भमन्ति ॥२॥
खिति-जल-जलण-पवण-गअण वि माणह।
मण्डल-चक्क विसअ-बुद्धि लइ परिमाणह ॥६॥

(२) सहज-मार्ग

णित्तरंग-सम सहज-रूअ सअल-कलुस-विरहिए।
पाप-पुण्य-रहिए कुच्छ णाहि काण्ह फुट कहिए ॥१०॥
बहिण्णिक्कालिआ सुण्णासुण्ण पइट्ठ।
सुण्णासुण्ण-वेणि मज्झें रे बढ ! किम्पि ण दिट्ठ ॥११॥
सहज एक्कु पर अत्थि तहि फुड काण्ह परिजाणइ।
सत्थागम बहु पढइ सुणइ बढ ! किम्पि ण जाणइ ॥१२॥
अह ण गमइ ऊह ण जाइ। वेण्णि-रहिअ तसु णिच्चल ठाइ।
भणइ काण्ह मण कहवि ण फुट्टइ। णिचल पवण घरिणि-घर वट्टइ ॥१३॥
वरगिरिकन्दर गुहिरे जगु तहिँ सअल' वि तुट्टइ।
विमल सलिल सोँस जाइ, कालग्गि पइट्ठइ ॥१४॥
पह वहन्ते णिअ-मणा, बन्धण किअउ जेण।
तिहुअण सअल' वि फारिआ, पुणु स[illegible]रिअ तेण ॥१७॥

---

[1]The Journal of the Department of Letters, Cal. Uni.

§ १२. कण्हपा

कुल—ब्राह्मण-भिक्षु, सिद्ध (१७)। कृतियाँ—गीतिका, महाढुंढन, वसंत तिलक, असंबंध-दृष्टि, वज्रगीति, दोहाकोष[1]।

(१) पंथ-पंडित-निंदा

लोगा गर्व समुद्वहै, हौं परमार्थ-प्रवीण।
कोटी-मध्ये एक यदि, होइ निरजन-लीन ॥१॥
आगम-वेद-पुराणहीं, पण्डित मान वहति।
पक्व-सिरीफल अलिय जिमि, बाहरहींहि भ्रमन्ति ॥२॥
क्षिति-जल-ज्वलन-पवन, गगनहु मानहु।
मडल-चक्र विषय-बुद्धि लेइ परिमाणहु ॥६॥

(२) सहज-मार्ग

निस्तरग सम सहज रूप, सकल-कलुष-विरहिए।
पाप-पुण्य-रहित किछू नाहि, काण्हे फुर कहिये ॥१०॥
बाहर निकालिय शून्याशून्य प्रविष्ट।
शून्याशून्य दोउ मध्ये, मूढा! किछुअ न दृष्ट ॥११॥
सहज एक पर अहै तहँ फुर काण्ह परि-जानै।
शास्त्रागम बहु पढै सुनै मूढ! किछुउ न जानै ॥१२॥
अधो न जाइ ऊर्ध्व न जाइ। द्वैत-रहित तासु निश्चल ठाइ।
भनै काण्ह मन कैसहु न फूटै। निश्चल पवन घरनी-घरे बाटै ॥१३॥
वर-गिरि-कन्दर-कुहरे, जग तँह सकलउ टुट्टै।
विमल-सलिल सुखि जाइ, काल-अगिन पइट्ठै ॥१४॥
प्रभा वहन्ता निज मन, बधन कियेऊ जेहिँ।
त्रिभुवन सकलउ फारिया, पुनि सहारिय तेहिँ ॥१७॥

---

[1] Vol. XXVIII, pp. 24-27

सहजे णिच्चल जेण किअ, समरसें णिअ-मण-राअ ।
सिद्धो सो पुण तक्खणे, णउ जरामरणह भाअ ॥१९॥

(३) निर्वाण-साधना

णिच्चल णिव्विअप्प णिव्विआर । उअअ-अत्थमण-रहिअ सुसार ।
अइसो सो णिव्वाण भणिज्जइ । जहिँ मण माणस किम्पि ण किज्जइ ॥२०॥

जइ पवण-गमण-दुआरे, दिढ तालावि दिज्जइ ।
जइ तसु घोरान्धारें, मण दिवहो किज्जइ ॥

जिण-रअण उअरें जइ, सो वरु अम्वरु छुप्पइ ।
भणइ काण्ह भव भुञ्जन्ते, णिव्वाणो'वि सिज्झइ ॥२२॥

वर-गिरि-सिहर उतुग मुणि, सवरें जहिँ किअ वास ।
णउ सो लघिअ पँचाणणेहि, करि-वर दुरिआ आस ॥२५॥

एहु सो गिरिवर कहिअ मँइ, एहु सो महसुह ठाव ।
एक्कु रअणी सहज-खण, लब्भइ महसुह जाव ॥२६॥

सव जगु काअ-वाअ-मण मिलि विफुरइ तहि सो दूरे ।
सो एहु भगे महासुह णिव्वाण एक्कु रे ॥२७॥

एक्कु ण किज्जइ मन्त ण तन्त । णिअ-घरणी लइ केलि करन्त ॥
णिअ-घरे घरणी जाव ण मज्जइ । ताव कि पञ्च वण्ण विहरिज्जइ ॥२८॥

एसो जप-होमे मण्डल कम्मे । अणुदिण अच्छसि काहिउ धम्मे ॥
तो विणु तरुणि णिरन्तर णेहें । वोहि कि लब्भइ एण'वि देहें ॥२९॥

जें किअ णिच्चल मण-रअण, णिअ-घरणी लइ एत्थ ।
सोह वाजिरा-णाहु रे, मयिँ वुत्तो परमत्थ ॥३१॥

जिमि लोण विलिज्जइ पाणिएँहि, तिम घरिणी लइ चित्त ।
समरस जाई तक्खणे, जइ पुणु ते सम णित्त ॥३२॥

—दोहाकोष[1]

[1] J D.L. Cal vol. XXVIII, pp 24-27

सहजे निश्चल जेँहिँ किय, सम-रस निज-मन राग।
सिद्धा सो पुनि तत्क्षणे, न जरामरणहँ भाग ॥१६॥

(३) निर्वाण-साधना

निश्चल निर्विकल्प निर्विकार। उदय-अस्तमन-रहित सु-सार।
ऐसो सो निर्वाण भनिज्जै। जँह मन-मानस कछुउ न किज्जै ॥२०॥

यदि पवन-गमन-दुआरे, दृढ तालाहू दीजै।
यदि तँह घोर अन्हारे, मन-दीपहु कीजै॥

जिन-रतन उये यदि, सो वर-अवर छूवै।
भनै काण्ह भव भोगतहिँ, निर्वाणहु सीझै ॥२२॥

वर-गिरि-शिखर-उतुग मुनि, शवरा[1] जँह किउ वास।
ना सो लाँघेँउ पाच मुख, करिवर दूरेँउ आस ॥२५॥

एहु सो गिरि-वर कहेँउँ मैँ, एहु सो महसुख-ठाँव।
एक रजनि सहज क्षणे, लभै महासुख जाव ॥२६॥

सब जग काय-वाक्-मन मिलि, स्फुरै नाहि सो दूरे।
सो एहि भगेँ महासुख निर्वाण एक रे ॥२७॥

एक न कीजै मन्त्र न तन्त्र। निज घरनी लेइ केलि करन्त।
निज घरे घरनी जौ न मज्जै। तौ की पच वर्ण विहरीजै ॥२८॥

एँहु जप-होमे मडल कर्मे। अनुदिन रहौ काहे धर्मे।
तो विनु तरुणि निरन्तर स्नेहे। बोधि कि लब्भै अन्यहिँ देहे ॥२९॥

जो किउ निश्चल मन-रतन, निज घरनी लेइ एत्थ।
सोँई बज्जरनाथ रे, मैँ बोलेँउँ परमार्थ ॥३१॥

जिमि नोन विलाय पानियहिँ, तिमि घरनी लेइँ चित्त।
सम-रस जाये तत्क्षण, यदि पुनि सो सम नित्त्य ॥३२॥

—दोहाकोष

---

[1] वजधर=निरजन=परमतत्व

(४) रहस्य-गीत

(२) गीतें[1]

(९—राग पटमंजरी)

एवकार दिढ वाखो ड मोड्डिउ । विविह् विश्रापक वाँधन तोडिउ ॥
काण्ह् विलसिश्रा श्रासव-माता । सहज-नलिनि-वन पइसि निवाता ॥
जिम जिम करिणा करिणिरें रीझअ । तिम तिम तथता-मश्रगल वरिसअ ॥
छड गइ सश्रल सहावें सुद्ध । भावाभाव वलाग न छुद्ध ॥
दशवल रश्रण हरिश्र दश दीसें । श्रविद्यकरिकूँ दम श्रकिलेसें ॥९॥

(१०—राग देशारव)

नगर वाहिरे डोम्वि तोहोरि कुडिश्रा । छाइ छोंड जाइ सो वाम्हण नाडिया ।
श्रालो डोम्वि तोए सम करिव म सग । निघिण काण्ह् कपालि जोई लाँग ॥
एक सो पदुम चौषठि पाखुडी । तहिँ चडि णाचश्र डोम्वि वापुडी ॥
हालो डोम्वि तो पूछमि सद्भावे । श्राइससि जासि डोम्वि काहरि नावें ॥
ताँति विकणश्र डोम्वी श्रवर न चँगेडा । तोहोर श्रन्तरे छडि नड पेडा ॥
तूँ लो डोम्वी हांउ कपाली । तोहोर श्रन्तरे मोए घेणिलि हाडेरि माली ॥
सरवर भाँजिश्र डोम्वी खाश्र मोंलाण । मारमि डोम्वी लेमि पराण ॥१०॥

(११—राग पटमजरी)

नाडि शक्ति दिढ धरिश्रा खाटे । श्रनहा डमरु वजइ विरनाटे ॥
काण्ह् कपाली जोइ पइठ श्रचारे । देह न श्ररि विहरइ एककारें ॥
श्रलि-कलि घटा नेउर चरणे । रवि-शशि-कुडल किउ श्राभरणे ॥
राग-दोष-मोहे लाइश्र छार । परम मोख लवएँ मुत्ताहार ॥
मारिश्र सासु नणँद घरें शाली । मा मरिश्र काण्ह् भइल कपाली ॥११॥

---

[1] J.D.L XXX (115—56)

(४) रहस्य-गीत

(२) गीतें

(९—राग पटमजरी)

एँहि विधि दोउ खम्भा मोडी। विविध-व्यापक बधन तोडी।
काण्ह विलासै आसव-माता। सहज नलिन-वन पइठि नि-वाता॥
जिमि जिमि करिणा करिणिहिँ रीझै। तिमि तिमि तथता मद-कण बरसै॥
षड्गति सकल स्वभावे शुद्ध। भावाभाव वालाग्र न शुद्ध॥
दशबल-रतन-भरित दश दीसा। अविद्या-करिहिँ दम अक्लेशा॥९॥

(१०—राग देशारव)

नगर-बाहिरे डोम्बी[1] तोहर कुटिका। छुइ छुइ जाइ सो बाभन-लडिका।
अरे डोम्बी तोरे साथ करब न सग। निर्घृण काण्ह कपाल-जोगि नग।
एकउ पदुम चौसठ पाँखुरी। तँह चढि नाचै डोम्बि बापुरी।
हे रे डोम्बी! तोहिँ पूँछौँ सद्भावे। आवै जाय डोम्बी! केकरि नावेँ॥
तन्ती विकिनै डोम्बी और चगेरा। तोहर कारण छाडी नल पेरा।
नैँ रे डोम्बी मै कपाली। तोहोँर कारण मै लेलोँ हाडकै माली॥
सरवर भाँगि डोम्बी खाइ मृणाल। मारहुँ डोम्बि लेई पार॥१०॥

(११—राग पटमजरी)

नागे शक्ति दढ धरिके खाटे। अनहद डमरु बजे वीर-नादे॥
काण्ह कपाली जोगी पइठो आचारे। देह-नगरी विहरै एकाकारे॥
आली-काली-घटा-नूपुर चरणे। रवि-शशि-कुण्डल कियउ आभरणे॥
राग-द्वेष-मोहे लाई छार। परम-मोक्ष लिये मुक्ताहार॥
मार उसासु-ननद घरेँ गाली। मातु मारि काण्ह भइल कपाली॥११॥

---

[1] सुरति=चित-एकाग्रता

(१८—राग गउडा)

तीन-भुअण मइँ वाहिअ हेलें । हँउ सूतेलि महासुह लीलें ॥
कइसनि डोम्बि तोहोंरि भाभरि आली । अन्ते कुलिण जण माँझें कवाली ॥
तँइ लो डोम्वी सअल विटालिउ । काज ण कारण ससहर टालिउ ।
केहों केहों तोंहोंरे विरुआ बोलइ । विदु जन लोअ तोरे कण्ठ न मेलइ ॥
काण्हे गाइ तू कामचँडाली । डोम्बि तआगलि नाहि छिनाली ॥१८॥

(१९—राग भैरवी)

भव-णिव्वाणे पडइ माँदला । मण-पवण-वेण्णि करँउ कशाला ॥
जअ जअ दुन्दुहि सद्द उछलिला । काण्हे डोम्बि-विवाहे चलिला ॥
डोम्बि विवाहिअ अहारिउ जाम । जउतुके किअ आणूतू धाम ॥
अहणिसि सुरअ-पसगे जाअ । जोइणि जाले रअणि पोंहाअ ॥
डोंविए मगे जोई रत्तो । खणह ण छाडअ सहज-उमत्तो ॥१९॥

(३६—राग पटमंजरी)

सुण्ण वाह तथता पहारी । मोह-भँडार लइ सअल अहारी ॥
घुमइ न चेवइ स-पर-विभागा । सहज-निदालु काण्हिला लाँगा ॥
चेअण ण वेअण भर निद गेला । सअल मुकल करि सुहे सुतेला ॥
सुअने मइँ देखिल तिहुअण सुण्ण । घोलिअ अवनागवण विहूण ॥
साखि करिव जालंधरि-पाए । पाखि न चहइ मोंरि पँडिआचाए ॥३६॥

(४२—राग कामोद)

चिअ सहजे सुण्ण सँपुण्णा । काँधवियोएँ मा होहि विसन्ना ॥
भण कइसे काण्हा नाही । फरइ अणुदिण तिलोएँ समाई ॥

(१८—राग गउडा)

तीन भुवन मैं गयरूँ हेलैं । मैं सूतलि महासुखें लीलैं ॥
कैसन डोम्बि ! तोर भाभर आली । अन्त कुलीन जन-मध्ये कपाली ॥
तैं रे डोम्बी ! सकल विटालेंउ । कार्य न कारण शशधर टालेंउ ॥
केंहु केंहु तोकहँ बरुआ बोलै । बड जन तोंके कठ न मेलै ॥
काण्हा गावै तू काम-चडाली । डोम्बी त आगे नाहिँ छिनाली ॥

(१९—राग भैरवी)

भव - निर्वाणे पटह मॉदला । मन-पवन दोऊ करौं कशाला ॥
'जय' 'जय' दुदुभि शब्द उचरिला । काण्हे डोम्बि-विवाहे चलिला ॥
डोम्बि वियाहि अहारेंउ जन्म । जौतुक कियउ अनुत्तर-धर्म ॥
अहनिशि सुरत-प्रसगे जाय । जोगिनि-जाले रजनि विताय ॥
डोम्बी-सग जोउ रक्त । क्षण ना छाडै सहजुन्मत्त ॥१९॥

(३६—राग पटमजरी)

शून्य वाहे तथता प्रहारिय । मोह-भडार लेंइ सकल अहारी ॥
सुतै न चिन्तै स्व-पर-विभगा । सहज-निद्रालु काण्हिला नगा ॥
चेतन न वेदन भर-नींदि गेला । सकल मुक्त करि सुखे सुतेला ॥
स्वप्ने मैं देखल त्रिभुवन शून्य । घोरि के अवनागवन - विहून ॥
साखि करब जालंधरपाद । पास न देखौं मोंर पडिताचार ॥३६॥

(४२—राग कामोद)

चित्त सहजेहिँ शून्य - सँपूर्णा । स्कध-वियोगे ना होहु विषण्णा ॥
भनु कैसे काण्हा नाहीं । फिरै अनुदिन तिलोक-समाई ॥

मूढा दिठ नाठ देखि काअर। भाँग तरग कि सोषइ साअर॥
मूढ! अछन्ते लोअण पेक्खइ। दूध माँझें लउ अच्छन्ते ण देक्खइ॥
भव जाई ण आवइ ण एथु कोई। अइस भावे विलसइ काण्हिल जोई॥४२॥

(४५—राग मल्लारी)

मण-तरु पाँच इन्दि तसु साहा। आसा-वहल पात फल वाहा॥
वर-गुरु-वअणें कुठारें छिज्जअ। काण्ह भणइ तरु पुण ण उइजअ॥
वढइ सो तरु सुभासुभ पाणी। छेवइ विदु-जन गुरु-परिमाणी॥
जो तरु छेवइ भेउ ण जाणइ। सडि पडिआँ मुढ! ना भव माणइ॥
सुण्णा तरुवर गअण-कुठार। छेवइ सो तरु-मूल ण डाल॥४५॥

—चर्यापद[1]

(५) वज्रगीति[1]

कोल्लयि रे ठिअ वोला, मुम्मुणि रे कक्कोला।
घणे किपिट्टहों वज्जइ, करुणेकि अई न रोला॥
तहि वल खज्जइ गाढे, मअ णा पिज्जिअई।
हले कलिञ्जल पणिअइ दुद्दुरु वज्जिअई॥
चउसम कस्तुरि सिहला कप्पुर लाइअई॥
मालइ-इधन सलील तहि भरु खाइअई॥
पेखण खेट करन्ते सुद्धासुद्ध ण माणिअइ॥
निरें सुह अङ्ग चडाविअइ जस नावि पणिअइ॥
मलअज कुन्दुरु वट्टइ, डिंडिम तहिँ णा वज्जिअइ॥

—चर्यापद[2]

[1] J.D.L. Cal. XXX, p 36 [2] J D L. Cal XXVIII, p. 36

मूढ ! दृष्ट नष्ट देखि कातर । भाग तरग कि सोखै सागर ।।
मूढ ! अछतै लोग न पेखै । दूध माँझ घृत अछत न देखै ।।
भव जाइ न आवै न एँहिँ कोई । ऐस भावहिँ विलसै काण्हिल योगी ।।२४।।

(४५—राग मल्लारी)

मन तरु पाँच इन्द्रि तसु साखा । आशा-वहुल पत्र-फल-वाहा ।।
वरगुरु-वचन कुठारेँहिँ छीजै । काण्ह भनै तरु पुनि न उपजै ।।
बढै सो तरू शुभाशुभ पानी । छेवै विदु-जन गुरु-परिमाणी ।।
जो तरु छेवै भेद न जानै । सड पडेँउचो मुढ ! न भव मानै ।।
शून्या तरुवर गगन-कुठार । छेवै सो तरु-मूल न डार ।।

—चर्यापद

(५) वज्रगीति[१]

कोल्लयि रे ठिअ बोला, मुम्मुणि रे कक्कोला ।
घणे किपिट्टहोँ वज्जइ, करुणेकि अई न रोला ।।
तहि वल खज्जइ गाढे, मअ णा पिज्जिअई ।
हले कलिञ्जल पणिअइ दुद्दुर वज्जिअई ।।
चउसम कस्तुरि सिहला कप्पुर लाइअई ।
मालइ-इँधन सलील तहि भरु खाइअई ।।
पेखण खेट करन्ते सुद्धासुद्ध ण माणिअइ ।
निरँ सुह अङ्ग चडाविअइ जस नावि पणिअइ ।।
मलअज कुन्दुरु वट्टइ, डिंडिम तहिँ णा वज्जिअइ ।।

—चर्यापद

[१] J.D.L Cal XXVIII, p 36

§१३. गोरखनाथ (गोरक्षपा)

काल—८४५ (देवपाल ८०६-४६)। देश—गोरखपुर(?)। कुल····
कृतियाँ—(१) गोरखवानी[1], (२) वायुतत्त्वोपदेश[2]

१. आत्म-परिचय[3]

(१) मछेन्द्र (मत्स्येन्द्र)के शिष्य—

प्यंडे होइ तो मरै न कोई। ब्रह्मंडै देषै[4] सब लोई।
प्यंड ब्रह्मंड निरंतर वास। भणत गोरष मछचंद्रका दास॥ (२५।७०)
गुदडी जुग च्यारि तैं आई। गुदडी सिव-साधिका चलाई।
गुदडीमें अतीतका वासा। भणत गोरख मछचंद्रका दासा॥ (६६।१६७)[5]

(२) चौरासी सिद्धोंसे संबंध

मन मछिंद्रनाथ पवन ईस्वरनाथ चेतना चौरंगीनाथ।
ग्यान श्रीगोरखनाथ। (पृष्ठ २०४)
नाद हमारै वाहै कवन। नाद बजाया तूटै पवन।
अनहद सबद बाजत रहै। सिध-संकेत श्रीगोरख कहै॥ (३७।१०६)
नौ नाथा नै चौरासी सिधा, आसणधारी हूव॥ (१३३।५)
आदिनाथ[6] नाती मछिंद्रनाथ पूता। व्यद तोलै राषीले गोरष अवधूता॥ (पृ० ६१)

---

[1] डाक्टर पीतांबरदत्त बडथ्वाल सम्पादित—हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग (संवत् १९९६) [2] भोट-भाषानुवाद (तनजुर ४८।१५१)

[3] सब उद्धरण गोरखवाणी से पृष्ठ और पद्यांक

[4] ष का उच्चार ख और श दोनों होता है, यहां ख है।

[5] गोरखवानीकी भाषा ६वीं सदी नहीं पंद्रहवीं-सोलहवीं की है।

[6] जलंधरपाद (दे० पुरातत्त्व-निबंधावली, पृ० १६३)

२. दर्शन (चौरासी सिद्धोंका)

(१) सहजयान

हबकि न बोलिबा ठबकि न चालिबा धीरै धोखा पाँव ।
गरब न करिबा, सहजै रहिबा भणत गोरषराव ॥ (११।२७)
गिरही सो जो गिरहै काया । अभि-अतरकी त्यागै माया ।
सहज-सीलका धरै सरीर । सो गिरही गगाका नीर ॥ (१७।४५)
निद्रा सुपनै बिन्दु कू हरै । पथ चलता आतमाँ मरै ।
बैठा षटपट ऊभा उपाधि । गोरख कहै पूता सहज-समाधि ॥ (७०।२१२)
जिहि घर चद-सूर नहिँ ऊगै, तिहि घरि होसी उजियारा ।
तिहा जे आसण पूरौ तौ सहजका भरौ पियाला मेरे ज्ञानी ॥ (९०।४)
सहज-पलाण पवन करि घोडा, लै लगाम चित चबका ।
चेतनि असवार ग्यान गुरू करि, और तजौ सब ढबका ॥ (१०३।३)
सहज गोरखनाथ वणिजे कराई, पच बलद नौ गाई ।
सहज सुभावै बाषर ल्याई, मोरे मन उडियानी आई ॥ (१०४।१)
भणत गोरखनाथ मछिद्रका पूता, एहा वणिज ना अरथी ।
करणी अपणी पार उतरणा, वचने लेणा साथी । (१०४।३)
काया गढ लेबा जुगे-जुग जीवा ॥टेक॥
काया गढ भीतरि नौ लष खाई , जत्र फिरै गढ लिया न जाई ।१।
ऊचे नीचे परबत झिलमिल षाई, कोठडीका पाणी पूरण गढ जाई ।
इहा नही उहा नही त्रिकुटी-मझारी, सहज-सुनि मै रहनि हमारी ।३।
आदिनाथ नाती मछिन्द्रनाथ पूता, कायागढ जीति ले गोरष अवधूता ।४। (१४३।३९)
त्रिभुवन डसती गोरखनाथ डीठी ॥टेक॥
मारौ स्रपणी जगाई ल्यौ भौरा,
जिनि मारी स्रपणी ताकौ कहा करै जौरा ।१।
स्रपणी कहै मै अबला बलिया,
ब्रह्मा बिस्न महादेव छलिया ।२।

माती माती स्रपर्नां दसौं दिसि धावै,
गोरखनाथ गारुडी पवन वेगि ल्यावै। (१३६।३)
अवधू सहज हसका षेल भणीजै, सुनि हसका वास।
सहजें ही आकार निराकार होइसी, परम-ज्योति हसका निवास। (१६१।४०)
अवधू सहज-सुनि उतपना आइ। समि सुनि सतगुरु वुझाइ।
अतीत मुनिमें रह्या समाइ। परम-तत्व मैं कहू समझाइ। (१६३।६२)
वाफ न निकसै वूद न ढलके, सहजि अगीठी भरि भरि राधै।
सिध-समाधि योग-अभ्यासी, तव गुरु परचै साधै। (२१८।४४)

(२) मध्य-मार्ग

पाये भी मरिये अणपाये भी मरिये। गोरख कहै पूता सजमि ही तरिये।
मधि निरतर कीजै वास। निहचल मनुवा थिर होइ सास। (५१।१४६)

(३) अलख और निरंजन-तत्त्व—

घरवारी सो घरकी जाणै। वाहरि जाता भीतरि आणै।
सग्व निरतंर काटै माया। सो घरवारी कहिये निरजनकी काया। (१६।४४)
पच तत्त ले सिघा मुडाया, तव भेटि ले निरजन-निराकार।
मन मस्त हस्ती मिलाइ अवधू, तव लूटि ले अषै भडार। (२७।७७)
अलेष लेपत अदेष देपत, अरस-परस ते दरस जाणी।
सुनि गरजत वाजत नाद, अलेप लेषत ते निज प्रवाणी। (३२।६१)
उदय न अस्त राति न दिन, सरवे सचराचर भाव न भिन्न।
सोई निरजन डाल न मूल, सर्वव्यापिक सुषम न अस्थूल। (३६।१११)
माता हमारी मनसा वोलिये, पिता वोलिये निरजन-निराकार।
गुरु हमारै अतीत वोलिये, जिन किया पिण्डका उधार। (६७।२०२)
नाद-विन्द गाठि प्रवाना। कवण घटि जोति कवण अस्थाना।
कहा निरजन वासा करही। कहाँ काली नागनी मीडक धरही॥ (१६६।१०)
कहाँ जलधर पवना मेला। उद्र कहाँ विलइया घेरा।
सींगी नाद कहाँ जोगी पूरा। जीत्या सग्राम पुरिष भया सूरा॥ (१६६।११)

(४) शून्य और आकाशतत्त्व

आकाश-तत सदा-सिव जाण। तसि अभिअतरि पद-निरबाण।
प्यडे परचानै गुरमुषि जोइ। बाहुडि आवागवन न होइ। (५७।१६८)
जोगी सो जो राषै जोग। जिभ्या यन्द्री न करै भोग।
अजन छोडि निरजन रहै। ताकू गोरख योगी कहै॥ (७३।२३०)
सुनि ज माई सुनि ज बाप। सुनि निरजन आपै आप।
सुनिकै परचै भया सथीर। निहचल जोगी गहर-गभीर॥ (७३।२३१)
अवधू मनका सुनि रूप, पवनका निरालभ आकार।
दमकी अलेख दसा, साधिबा दसवै द्वार॥ (१८७।८)
अवधू हिरदा न होता तब सुनि रहिता मन।
नाभी न होती तब निराकार रहिता पवन॥
रूप न होता तब अकुलान रहिता सबद।
गगन न होता तब अतरष रहिता चद॥ (१८६।२८)
स्वामी कौण तेज थैं जोति पलटै। कौण सुनि थे वाबा फुरै।
कौण सुनि थैं त्रिभुवन सार। कौण सुनि थैं उतरिबा पार॥ (१६४।६६)
अवधू सुने आवै सुने जाइ। सुने चीया रहे समाइ।
सहज-सुनि मन-तन थिर रहै। ऐसा विचार मछिंद्र कहै॥ (१६५।७८)
अवधू सबद अनाहद सुरति सोचित। निरति निरालभ लागै बध।
दुवध्या मेटि सहजमे रहै। ऐसा विचार मछिंद्र कहै। (१६६।८४)

(५) रहस्यवाद

सिष्टि-उतपती बेली प्रकास, मूल न थी, चढी आकास।
उरध गोढ कियौ विसतार, जाणनै जोसी करै विचार। (११६।१)
भणत गोरखनाथ मछिद्रना पूता, मारचौ मृघ भया अवधूता।
याहि हियाली जे कोई बूझै, ता जोगीको त्रिभुवन सूझै। (११६।५)

गुरु जी ऐसा करम न कीजै, ताथैं अमी-महारस छीजै ॥ टेक ॥

दिवसैं बाघणि मन मोहै राति सरोवर सोषै ।

जाणि बूझि रे मूरिख लोया घरि-घरि बाघणि पोषै ।

नदी तीरैं विरषा नारी सगैं पुरषा अलप-जीवनकी आशा ।

मनथैं उपज मेर षिसि पड़ई ताथैं कध विनासा ॥

गोड भये डगमग पेट भया ढीला, सिर बगुलाकी पँखियाँ ।

अमी-महारस बाघणी सोष्या घोर मथन जैसी अखिया ॥

बाँधिनीको निंदिलै बाघनीको विंदिलै बाघनी हमारी काया ।

बाघनी घोषि घोषि सुदर षाये भणत गोरखराया ।३।

(१३७।४३)

बाधौ बाधौ वछरा पीओ पीओ षीर । कलि अजरावर होइ सरीर । टेक ।

आकासकी घेन वछा जाया । ता धेनकै पूछ न पाया ।१।

बारह वछा सोलह गाई । घेन दुहावत रैन विहाई ।२।

अचरा न चरै घेन कटरा न षाई । पच ग्वालियाँकौ मारण धाई ।

याही धेनक दूध जु मीठा । पीवै गोरखनाथ गगन बईठा ॥ (१४७।५१)

साँभलि राजा बोल्या रे अवधू । सुणै अनोपम वाणी जी ।

निरगुण नारी सू नेह करता । झवकै रैणि विहाणी जी । टेक ।

डाल न मूल पत्र नहि छाया । विण जल पिंगुला सीचै जी ।

विणही मढीया मदला बाजै । यण विधि लोका रीझै जी ।१।

चीटया परवत ढोल्या रे अवधू । गाया बाघ बिडारया जी ।

सुसलै समदा लहरि मनाई । मृघा चीता मारया जी ॥

ऊझडि मारगि जाता रे अवधू । गुर विन नही प्रकासा जी ।

जीत्या गोरष अब नही हारै । समझि ररालै पासा जी । (१५३।५७)

गोरष बालडा बोलै सतगुरु वाणी रे ।

जीवता न परराया़ँ तेन्हे अगनि न पाणी' रे ॥ टेक ॥
षीलौ दूझै भैसि बिरोलै, सासूडी पालनडै बहुडी हिंडोलै ।१।
कोयल मोरी आबौ वास्यौ, गगन मछलडी वगलौ ग्रास्यौ ।२।
करसन पाकू रषवालू षाधू, चरि गया मृघला पारधी वाघू ।३।
सीँगी नादै जोगी पूरा, गोरखनाथ परन्या तिहाँ चद न सूरा । (१५५।६०)

३–साधना और उलटवाँसी

(१) साधना

बैठा अवधू लोकी षूँटी, चलता अवधू पवनकी मूठी ।
सोवता अवधू जीवता मूवा, बोलता अवधू प्यजरै सूवा । (२५।७१)
दृष्टि अग्रे दृष्टि लुकाइबा सुरति लुकाइवा कान ।
नासिका अग्रे पवन लुकाइवा, तव रहि गया पद निर्वानि । (२७।७५)
उलटचा पवना गगन समोइ, तब वालरूप परतषि होइ ।
उदै अहि अस्त हेम अहि पवन मेला, बँधिलै हस्तिया निज साल भेला ॥ (३१।८८)
अहकार तूटिवा निराकार फूटिवा, सोषीला गग-जमनका पानी ।
चद-सूरज दोऊ सनमुषि राखीला, कहो हो अवधू तहाँकी सहिंनाणी ॥
(३६।११३)
अवधू रवि अमावस चद सु पडिवा । अरधका महारस ऊरध ले चढिवा ॥
गगन अस्थाने मन उनमन रहै । ऐसा विचार मछिद्र कहै ॥ (१८८।१८)
षरतर पवना रहै निरतरि । महारस सीझै काया अभिअतरि ।
गोरख कहै अम्हे चचल ग्रहिया । सिव-सक्ती ले निज घर रहिया ॥ (४५।१३०)

(२) उलटवाँसी

गगनि-मडलि मै गाय वियाई कागद दही जमाया ।
छाछि छाँडि पिडता पीनी सिघा माषण खाया ॥ (६६।१६६)

नाथ बोले अमृत वाणी वरिषैंगी, कवली भीजैंगा पाणी । टेक ।

गडि पडरवा बाँधिलै पूटा, चलै दमामा बाजि ले ऊँटा ।१।

कउवाकी डाली पीपल वासै, मूसाकै सबद बिलइया नासै ।२।

चले बटावा थाकी बाट, सोवे डुकरिया ठौरे षाट ।३।

ढूकि ले कूकुर भूकि ले चोर, काढै धणी पुकारै ढोर ।४।

ऊजड पेडा नगर-मझारी, तलि गागरि ऊपर पनिहारी ।५।

मगरी परि चूंल्हा धूघाड, पोवणहाराकौ रोटी खाइ ।६।

कामिनि जलै अँगीठी तापै, बिच बैसदर थरहर काँपै ।७।

एक जु रढिया रढती आई, बहू विवाई सासू जाई ।८।

नगरीको पाणी कुई आवै, उलटी चरचा गोरख गावै । (१४१।४७)

४–गोरखका संदेश

(१) रूढि-खण्डन

अबूझि बूझि लै हो पडिता, अकथ कथिलै कहाणी ।

सीसनवावत सतगुरु मिलिया, जागत रैण विहाणी । (७२।२२२)

मेरा गुरु तीनि छद गावै,

ना जाणौं गुर कहाँ गैला, मुझ नींदडी न आवै ॥ टेक ॥

कुम्हराकै घरि हाँडी आछै, अहीराके घरि साँडी ।

बमनाकै घरि राडी आछै, राडी, साँडी हाँडी ।१।

राजाकै घरि सेल आछै, जगल-मधे बेल ।

तेलीके घरि तेल आछै, तेल-बेल-सेल ।२।

अहीरकै घरि महकी आछै, देवल-मध्ये ल्यग ।

हाटी-मधे हीगँ आछै, हीगँ, ल्यग, स्यग ।३।

एकै सुत्रै नाना वणियाँ, वहु भाति दिखलावै ।

भणत गोरष त्रिगुणी माया, सतगुर होइ लषावै ।

(१३६।४२)

सयम चितवो जुगत अहार । न्यद्रा तजौ जीवनका काल ।
छाडौ तत-मत वेदत । जत्र गुटिका धात पषड ।
(१७०।४)

जडी-बूटीका नाव जिनि लेहु । राज-दुवार पाव जिनि देहु ।
थभन मोहन वसिकरन छाडौ औचाट । सुणौ हो जोगेसरो जोगारभकी बाट ।
(१७०।५)

नैण महारस फिरौ जिनि देस । जटा भार बँधौ जिनि केस ।
रुष-विरष-बाडी जिनि करो । कूवा-निवाण षोदि जिनि मरौ । (१७६।७)
छोड़ौ बैद-वणज-व्यौपार । पढिवा गुणिवा लोकाचार । (१७०।६)
पूजा-पाठ जपौ जिनि जाप । जोग माहि विटबौ आप ।
जडी-बूटी भूलै मति कोइ । पहली रॉड वैदकी होइ ।
जडी-बूटी अमर जे करे । तौ वैद धनतर काहे को मरै । (१७७।१७)
सोनै रूपै सीझै काज । तौ कत राजा छोडै राज ।
पसुवा होइ जपै नहिँ जाप । सो पसुवा भोषि क्यो जात । (१७७।१८)

(२) राजा-प्रजाको समान देखना—

निसपती जोगी जानिबा कैसा । अगनी पाणी लोहा माने जैसा ।
राजा-परजा सम करि देष । तब जानिबा जोगी निसपतिका भेष । (४८।१३६)

(३) भोगमे योग

भग-मुषि व्यद अगनि-मुष पारा । जो राखै सो गुरू हमारा । (४६।१४२)
षाये भी मरिये अणषाये भी मरिये । गोरख कहै पूता सजमि ही तरियै ।
मधि निरतर कीजै बास । निहचल मनुवा थिर होइ साँस । (५१।१४६)
आओ देबी बैसो । द्वादिस अगुल पैसो
पैसत पैसत होइ सुष । तब जनम-मरनका जाइ दुष । (५३।१५५)
स्वामी काची वाई काचा जिद । काची काया काचा विंद ।
क्यूँ करि पाकै क्यूँ करि सीझै । काची अगनी नीर न षीजै ॥ (५४।१५६)

§ १४. टेंडरा(तंति)पा

काल—८४५ (देवपाल-विग्रहपाल ८०६–४६–५४)। देश—अवंतिनगर

(३३—राग पटमंजरी)

टालत (नगरत) मोर घर नाहि पडिवेशी।
हाँडीत भात नाहि निति आवेशी॥
वेङ्गस साप वड्हिल जाअ।
दुहिल दुधु कि वेन्टे समाअ॥
वलद विआअल गविआ बाँझे।
पिटहु दुहिअइ ए तिनो साँझे॥
जो सो बुधी सोच नि-बुधी।
जो सो चोर सोई साधी।
निति सिआला सिहे सम जूझअ।
टेण्टण पाएर गीत विरले बूझअ॥३३॥

§ १५. मही(महीधर)पा

काल—८७५ (विग्रहपाल-नारायणपाल ८५०–५४–९०८)। देश—मगध।

(१६—राग भैरवी)

तीनिए पाटें लागेलि अणहअ सन घण गाजइ।
ता सुनि मार भयकर विसअ-मडल सअल भाजइ॥
मातेल चीअ-गएन्दा धावइ। निरंतर गअणंत तुसे (रवि-ससि) घोलइ॥
पाप-पुण्ण वेण्णि तोडिअ सिंकल मोडिअ खम्भा ठाणा।
गअण-टाकली लागेलि रे चित्त पइट्ठ णिवाणा॥
महरस पाने मातेल रे तिहुअन सअल उएखी।
पच विसअ-नायक रे विपख कोबि न देखी॥
खर रवि-किरण सँतापें रे गअणङ्गण जइ पइठा।
भणन्ति महिआ मइ एथु बुडन्ते किम्पि न दिठ॥१६॥

—चर्यापद

§ १४. टेंडण(तंति)पा

(उज्जैन)। कुल—तँतवा (कोरी), सिद्ध (१३)। कृति—चतुर्योग-भावना।

(३३—राग पटमंजरी)

नगर-माँझ मोर घर, नाहि पडोसी।
हाँडीते भात नाही नित्य आवेशी॥
वेंगेहिँ साँप बधिल जाय।
कच्छू दूध कि मेंटे समाय॥
वरध वियाइल गैया बाँझी।
मेंटहि दूहिय तीनों साँझी॥
जो सो बुद्धी सोइ निर्बुद्धी।
जो सो चोर सोई साहु॥
नित्य, सियारा सिंह से जूझै।
टेंटणपा कै गीति बिरलै बूझै॥३३॥

§ १५. मही(महीधर)पा

कुल—शूद्र। कृतियाँ—वायुतत्त्व-दोहागीतिका।

(१६—राग भैरवी)

तीन पाटे लागल अनहद-स्वन घन गाजै।
तेहि सुनि मार भयकर विषय-मडल सकल भाजै॥
मातल चित्त-गयन्दा धावै, निरतर गगनते तुष (रवि-शशि) घोलै।
पाप-पुण्य द्वैत तोडि साँकल मरोडी खम्भा-थान।
गगन टकटकी लागलि रे चित्त पइठ निर्वाण॥
महारस पाने मातल रे त्रिभुवन सकल उपेक्षी।
पच विषय-नायकरे विपख काहु न देखी॥
खर-रवि किरण सतापेहिँ गगनागण जाइ पइठा।
भणै महीआ मैं एहिँ बूटत किछू न दीठा॥१६॥
—चर्यापद

§ १६. भादे(भद्र)पा

काल—८७५ (विग्रहपाल-नारायणपाल ८५०-५४-६०८)। देश—श्रावस्ती।

(३५—राग मल्लारी)

एत काल हांउ अच्छिल स्वमांहें।
एवें मइ बूझिल सद्‌गुरु-वोहें॥
एवें चिग्र-राग्र मोकू णठा।
गग्रण-समुद्दे टलिग्रा पडठा॥
पेखमि दह दिह सर्वइ सुन्न।
चिग्रविहुन्ने पाप न पुन्न॥
वाजुले दिल मो लक्ख भणिग्रा।
मइ ग्रहारिल गग्रणत पणिग्रा॥
भादे भणइ ग्रभागे लइला।
चिग्र-राग्र मइ ग्रहार कइला॥३५॥

—चर्यापद

§ १७. धाम(धर्म)पा

काल—८७५ ई० (विग्रहपाल - नारायणपाल ८५०-५४-६०)। देश—विक्रमशिला (भागलपुर)। कुल—ब्राह्मण, भिक्षु, सिद्ध (१६)।

(४७—राग गुर्जरी)

कम-कुलिश माँझे भमई लेली।
समता-जोएँ जलिल चण्डाली॥
डाह डोम्बिघरे लागेलि ग्रग्गी।
ससहर लइ सिंचहु - पाणी॥

§ १६. भादे(भद्र)पा

कुल—चित्रकार, सिद्ध (३२)। कृतियाँ—चर्यापद (गीति)

(३५—राग मल्लारी)

एतन काल, हौं रलों स्वमोहे।
अब मैं बुझलों सद्गुरु-बोधे ॥
अब चित्त-राग मोरा नष्टा।
गगन-समुद्रे टलिके पइठा ॥
पेखौं दश-दिशि सर्वहि शून्य।
चित्त-विहूने पाप न पुण्य ॥
बाजुल ने दीलो मोहिँ लक्ष्य भानी।
मैं आहारिल गगनसें पानी ॥
भादे भनै अभागे लियेँउ।
चित्त-राग मैं आहार कियेँउ ॥३५॥

—चर्यापद

§ १७. धाम(धर्म)पा

कृतियाँ—कालि-भावना-मार्ग, सुगतदृष्टि-गीतिका, हुँकार-चित्त-विंदु-भावना-क्रम।

(४७—राग गुर्जरी)

कमल-कुलिश माँझे भमई लेली।
समता-योगेहि ज्वलिल चँडाली ॥
डाह डोम्बि-घरे लागलि आगी।
शशधर लेइ सींचहु पानी ॥

णउ खरे जाला धूम ण दीसइ।
मेरु-सिहर लइ गअण पईसइ ॥
दाढ़इ हरि-हर-ब्रह्मण नाडा (भट्टा)।
दाढइ नव-गुण-शासन पाडा (पट्टा) ॥
भणइ धाम फुड लेहु रे जाणी।
पञ्चनालें उठे (ऊध) गेल पाणी ॥

—चर्यापद

३ : दसवीं सदी

§ १८. देवसेन

काल—९३३ ई०। देश—धारा (मालवा) में रहे। कुल—जैन साधु।

(१) सदाचार-उपदेश

दुज्जणु सुहियउ होउ जगि, सुयणु पयासिउ जेण।
अमिउ विसे वासस तमिण, जिम मरगउ कच्चेण ॥२॥
महु आसायउ थोडउवि, णासइ पुण्णु वहुत्तु।
वइसाणरहँ तिडिक्कडँइ, काणणु डहइ महन्तु ॥२३॥
जूँए धणहु ण हाणि पर, वयहँ मि होइ विणासु।
लग्गउ कट्ठु ण डहइ पर, इयरहँ डहइ हुयासु ॥२८॥
बेसहिं लग्गइ धनिय धणु, तुट्टइ बधउ मित्तु।
मुच्चइ णरु सव्वइँ गुणहँ, बेसाघरि पइसन्तु ॥४४॥
मुक्कहँ कूड-तुलाइयइँ, चोरी मुक्की होइ।
अह न वणिज्जइँ छाडियइँ, दाणु ण मग्गइ कोइ ॥४९॥
मण-वय-कामहि दय करहिँ, जेम ण ढुक्कइ पाउ।
उरि सण्णाहि वद्धइण, अवसि न लग्गइ धाउ ॥६०॥

नहिँ खरें ज्वाल धूम न दीसै।
मेरु-शिखर लेइ गगन पईसै॥
डाहै हरि-हर-ब्रह्म भट्टा।
डाहै नव-गुण-शासन पट्टा॥
भनै धाम, फुर लेहु रे जानी।
पच नालेहिँ उठि गइल पानी॥४७॥

—चर्यापद

३ : दसवीँ सदी

§ १८. देवसेन

कृतियाँ—सावयधम्म-दोहा।

(१) सदाचार-उपदेश

दुर्जन सुखियहु होहु जग, सुजन पकासेँउ जेहि।
अमृत विषे वासर तमसि, जिमि मर्कत काचेन॥२॥
मद-आस्वादन थोडहू, नाशइ पुण्य वहुत्त।
वैश्वानर चिंगारियउ, कानन डहै महन्त॥२३॥
जूएँहि धनको हानि पुनि, धर्महु होत विनाश।
लागो काठ न डहइ वरु, अन्यहु डहइ हुताश॥३८॥
वेश्यहि लागहिँ धनिक-धन, छूटइ वाधव-मित्र।
मुचइ नर सर्वहि गुणहि, वेश्या-घर पइसन्त॥४०॥
मुंचै कूट-तुलादिते, चोरी-मुक्ती होइ।
अथन वणिज्जहि छाँड तो, दान न माँगइ कोइ॥४७॥
मन-वच-कर्महि दया करु, जिमिना ढुक्कइ पाप।
उर सन्नाहे वाँधतो, अवशि न लागइ घाव॥६०॥

भोगहँ करहि पमाणु जिय, इंदिय म करिसि दप्प ।
हुंति ण भल्ला पोसिया, दुद्धे काला सप्प ॥६५॥

लोह् लक्ख विसु सणु मयणु, दुद्ध-भरणु पसु-भार ।
कडि अणत्थइ पिडि-पडिइ, किमि तरइहि ससार ॥६७॥

एहु धम्मु जो आयरइ, वभणु मुद्दु'वि कोइ ।
सो सावउ किं सावयहँ, अण्णु कि सिरिमणि होइ ॥७६॥

(२) दान-महिमा

जइ गिहत्थ दाणेण विणु, जगिव भणिज्जइ कोइ ।
ता गिहत्थ पखि वि इवइ, जें घरु ताइवि होइ ॥८७॥

धम्म करउँ जइ होइ धणु, इहु दुव्वयणु म बोल्लि ।
हक्कारउ जमभटतणउ, आवइ अज्जु कि कल्लि ॥८८॥

काइँ वहुत्तइ सपयइँ, जइ किविणहँ घर होइ ।
उयहि-णीरु खारें भरिउ, पाणिउ पियइ न कोइ ॥८९॥

(३) धर्माचरण-महिमा

धम्मे सुहु पावेण दुहु, एक पसिद्धउ लोइ ।
तम्हा धम्मु समायरहि, जेहिय इछिउ होइ ॥१०१॥

काइँ वहुत्तइँ जपियइँ, ज अप्पह पडिकूल ।
काइँ मि परहु ण त करहि, एहजि धम्महु मूल ॥१०४॥

(४) धर्माचरण

धम्मु विसुद्धउ त जि पर, ज किज्जइ काएण ।
अहवा त धणु उज्जलह, ज आवइ णाएण ॥११३॥

रूवहु उप्परि रइ म करि, णयण णिवारइ जत ।
रूवासत्त पयगडा, पेक्खइ दीवि पडत ॥१२६॥

गुणवन्तह सइ सगु करि, भल्लिम पावहि जेम ।
सुमण सुपत्त विवज्जियउ, वरतरु वुच्चइ केम ॥१४१॥

भोगहिँ मात्रा करहु जिय, इन्द्रिय ना करु दर्प ।
होत भला नहि पोसिया, दूधे॑ काला सर्प ॥६५॥
लोह, लाख, विष-सन, मयन, दुष्ट-भरण पशु-भार ।
छाडि अनर्थहि पिंड पडि, किमि तरिहै ससार ॥६७॥
एहि धर्महि जो आचरइ, ब्राह्मण, शूद्रहु कोइ ।
सो श्रावक कि श्रावकहिँ, अन्य कि सिर-मणि होइ ॥७६॥

(२) दान-महिमा

यदि गृहस्थ दानहि विना, जगमे भणियत कोइ ।
तो गृहस्थ पच्छिहु इवै, जे घर ताहउ होइ ॥८७॥
धर्म करौ यदि होइ धन, एँहु दुर्वचन न वोल ।
हकारउ जम-भटनते, आवइ आज कि कालि ॥८८॥
काह बहूतहिँ सपदहिँ, यदि कृपणहिँ घर होइ ।
उदधि-नीर खारे भरे॑उ, पानिउ पियै न कोइ ॥८९॥

(३) धर्माचरण-महिमा

धर्महि सुख पापहि दुख, एह प्रसिद्धउ लोक ।
ताते धर्म समाचरहु, जे हिय-वाछित होइ ॥१०१॥
काइ बहूते जल्पने, जो अपने प्रतिकूल ।
काहू दुख सो ना करइ, एँहु जे धर्मको॑ मूल ॥१०४॥

(४) धर्माचरण

धर्म विशुद्ध सोइ पर, जो कीजइ कामेन ।
अथवा सो धन उज्ज्वल, जो आवइ न्यायेन ॥११६॥
रूपहि ऊपर रति न करु, नयन निवारहु जात ।
रूपासक्त पतगडा, पेखहु दीप पडन्त ॥१२६॥
गुणवानै॑ सह सग करु, भल्लो पावइ जेमु ।
सुमन-सुपत्रन-वर्जितउ, वरतरु कहियतु केमु ॥१४१॥

अण्णाएँ आवति जिय, आवइ घरण ण जाइ।
उम्मग्गें चल्लत यहँ, कटइँ मज्जइ पाउ ॥१४५॥
कूड-तुला-माणाइयह, हरि-करि-खर-विस-मेस।
जो णच्चइ णटु पेखणउ, सो गिण्हइ बहु-वेस ॥१६२॥
दुल्लहु लहि मणुयत्तणउ, भोयह पेरिउ जेण।
लोह कज्जि दुत्तर तरणि, णाव विदारिय तेण ॥२२१॥

§ १६. तिल्लोपा[1]

काल—६६० ई० (राज्यपाल-गोपाल द्वि०-विग्रहपाल द्वि० ६०८-४०-६०-८०)। देश—भिगुनगर (मगध)। कुल—ब्राह्मण, भिक्षु, सिद्ध (२२)

(१) सहज-मार्ग

सहजें भावाभाव ण पुच्छह। सुण्ण करुण तहि समरस इच्छअ ॥२॥
मारह चित्त णिवाणें हणिआ। तिहुअण सुण्ण णिरजन पलिआ ॥३॥
आइ-रहिअ एहु अन्तर-हिअ। वर-गुरु-पाअ अद्दअ कहिअ ॥६॥
बढ ! अणँ लोअ-अगोअर तत्त, पडिअ लोअ अगम्म।
जो गुरु पाअ पसण्ण ,तहिँ की चित्त अगम्म ॥८॥

(२) निर्वाण-साधना

सअ-सवेअण तत्त-फल, तीलोपाअ भणन्ति।
जो मण-गोअर पइठई, सो परमत्थ ण होन्ति ॥६॥
सहजें चित्त विसोहहु चङ्गा। इह जम्महि सिधि मोक्खा भगा ॥१०॥
अद्दअ-चित्त तरुअरा, गउ तिहुअण वित्थार।
करुणा फुल्लिअ फलधरा, णउ परता ऊआर ॥१२॥

[1] J.D.L. XXVIII, pp 1—4

अन्याये आवइ यदि, आवइ धरेँउ न जाइ।
उन्मार्गे चल्लन्त कह, कटक भजइ पाउ ॥१४५॥
कूट-तुला-मानादि कह, हरि-करि-खर-विष-मेष।
जो नाचइ नट प्रेक्षणउ, सो गृण्हइ बहु-वेष ॥१६२॥
दुर्लभ लहि मनुजत्व कह, भोगेहि प्रेरेँउ येन।
लोह-लाइ दुस्तर तरणि, नाव विगाडेँउ तेन ॥२२१॥

§ १९. तिलोपा

कृतियाँ—निवृत्तिभावनाक्रम, करुणाभावनाधिष्ठान, दोहा-कोष, महामुद्रोपदेश।

(१) सहज-मार्ग

सहजे भावाभाव न पूछिय। शून्य-करुण तँह सम-रस इच्छिय ॥२॥
मारहु चित्त निर्वाणे हनिया। त्रिभुवन शून्य निरजन पेलिया ॥३॥
आदि-रहित एहु अन्त-रहित। वर-गुरु-पाद अद्वय कथित ॥६॥
मूढ-जन-लोग-अगोचर तत्त्व, पडित लोग-अगम्य।
जो गुरुपाद प्रसन्न (हो), तेहि की चित्त-अगम्य ॥८॥

(२) निर्वाण-साधना

स्वक-सवेदन[1] तत्त्व-फल, तीलोपाद भणन्ति।
जो मन-गोचर पइठै, सो परमार्थ न होन्ति ॥९॥
सहजे चित्त विशोधहु चगा। इहँ जन्महि सिद्धि मोक्षा भगा ॥१०॥
अद्वय-चित्त तरूवरा, गउ त्रिभुवन विस्तार।
करुणा फूली फलधरा, नहि परतो उपकार ॥१२॥

---

[1] स्वकीय अनुभव

पर अप्पाण म भन्ति करु, सअल णिरन्तर बुद्ध ।
तिहुअण णिम्मल परम-पउ, चित्त सहावें सुद्ध ॥१३॥

(३) निरंजन-तत्त्व

सचल णिच्चल जो सअलाचार । सुण्ण णिरजन म करु विआर ॥१४॥
एहु से अप्पा एहु जगु जो परिभावइ । णिम्मल चित्त सहाव सो कि बुज्झइ ॥१५॥
हँउ जग हँउ बुद्ध हँउ णिरजण । हँउ अमणसिआर भव-भजण ॥१६॥
मणह भअवा खसम म अवई । दिवाराति सहजे राहीअइ ॥१७॥
जम्म-मरण मा करहु रे भन्ति । णिअ-चिअ तहीं णिरन्तर होन्ति ॥१८॥

(४) तीर्थ-देव-सेवा बेकार

तित्थ तपोवण म करहु सेवा । देह सुचीहि ण सन्ति पावा ॥१९॥
बम्हा-विहणु-महेसुर देवा । वोहिसत्त्व मा करहू सेवा ॥२०॥
देव म पूजहु तित्थ ण जावा । देवपुजाही मोक्ख ण पावा ॥२१॥
बुद्ध अराहहु अविकल-चित्तें । भव णिव्वाणे म करहु थित्तें ॥२२॥

(५) भोग छोड़ना बुरा

जिम विस भक्खइ, विसहि पलुत्ता ।
तिम भव भुञ्जइ भवहि ण जुत्ता ॥२४॥
खण आणद भेउ जो जाणइ । सो इह जम्महि जोइ भणिज्जइ ॥२८॥
हँउ सुण्ण जगु सुण्ण तिहुअण सुण्ण । णिम्मल सहजें ण पाप ण पुण्ण ॥३४॥
जहि इच्छइ तहि जाउ मण, एत्थु ण किज्जइ भन्ति ।
अध उघाडि आलोअणे, झाणें होइ रे थित्ति ॥३५॥
—दोहाकोष[1]

[1] J.D.L. Cal XXVIII, pp. 1—4

पर-आपा न, भ्रान्ति करु, सकल निरन्तर बुद्ध ।
त्रिभुवन निर्मल परम-पद, चित्त स्वभावे शुद्ध ॥१३॥

(३) निरंजन-तत्त्व

सचल निचल जो सकलाचार । शून्य-निरजन न करु विचार ॥१४॥
एँहु सो आपा एँहु जग जो परिभावै । निर्मल चित्त-स्वभाव सो का बूझै ॥१५॥
हौं जग हौं बुद्ध हौं निरजन । हौं अ-मनसिकार भव-भजन ॥१६॥
मन भगवान् ख-सम[1] भगवती । दिवा-रात्रे सहजे रहई ॥१७॥
जन्म-मरण न करहु रे भ्रान्ति । निज चित्त तहाँ निरन्तर होन्ति ॥१८॥

(४) तीर्थ-देव-सेवा बेकार

तीर्थ-तपोवन न करहु सेवा । देह शुची ना होवै पापा ॥१९॥
ब्रह्मा-विष्णु-महेश्वर-देवा । बोधिसत्त्व ना करहु रे सेवा ॥२०॥
देव न पूजहु तीर्थ न जावा । देवपूजतें मोक्ष न पावा ॥२१॥
बुद्ध अराधहु अ-विकल चित्ते । भव-निर्वाणे न करहु स्थित्वे ॥२२॥

(५) भोग छोड़ना बुरा

जिमि विष भक्षै विषहिँ प्रलुप्ता ।
तिमि भव भोगै भवहिँ न युक्ता ॥२४॥
क्षण-आनद भेद जो जानै । सो एहि जन्महिँ जोगि भनीजै ॥२८॥
हौं शून्य जग शून्य त्रिभुवन शून्य । निर्मल-सहजे न पाप न पुण्य ॥३४॥
जँह इच्छै तँह जाउ मन, एहिँ न कीजै भ्रान्ति ।
अधो उघारि अवलोकने, ध्याने होइ रे स्थित्ति ॥३५॥
—दोहाकोष

---

[1] शून्य समान

§ २०. पुष्पदंत (पुप्फयंत)

काल—९५९-७२ (राष्ट्रकूट कृष्ण[1] तृतीय खोट्टिग[2] के समकालीन)। देश—ब्रज या यौधेय (दिल्ली) में जन्म, मान्यखेट[3] (मालखेड़, हैदराबाद-दक्खिन) में रचना।

१—आत्म-परिचय

(१) कृष्णराजके स्कंधावार (सेना-केम्प) में

उव्वद्ध-जूडु भू-भग-भीसु। तोडेप्पिणु चोडहों तणउ सीसु।
भुवणेक्कराम रायाहिराउ। जहिँ अच्छहि तुडिगु[4] महाणुभाव।
त दीण दिण्ण-धण-कणय-पयरु। महि परिभमतु मेपाडि[5]-णयरु।
अवहेरिय-खल-यणु गुण-महतु। दियहेहिँ पराइयु पुप्फयतु।
दुग्गम दीहर-पथेण रीणु। णव-यदु जेम देहेण खीणु।
तरु कुसुम-रेणु-रजिय-समीरि। मायद-गोछ-गोंदलिय-कीरि।
णदण-वणि किर वीसमइ जाम। तहिँ विण्णि पुरिस सपत्त ताम।
पणवेप्पिणु तेहिँ पवुत्तु एँव। "भो खड-गलिय-पावावलेव।
परिभमिर-भमर-रव-गुमगुमति। किंकर णिवसहि णिज्जण-वणति।
करि सर वहिरिय-दिच्चक्कवाल। पइसरहि ण किं पुरवरि विसालि?"

---

[1] ९३९ में गद्दी पर बैठा। चोल-युवराज राजादित्यको ९४९ ई०में मार कर कुमारी तक सारे दक्षिण पर प्रभाव। इसके परमार श्रीहर्ष (मालव-राज सीयक), और कलचूरी भी आधीन सामन्त। ९६८ (?) में मृत्यु। अपने समयका सबसे बड़ा भारतीय राजा।

[2] खोट्टिग, कृष्णका पुत्र, शासनकाल ९६८-७२। ९७२में मालवराज श्रीहर्ष (सीयक ९४९-७२, वाक्पतिराज मुंजका पिता) ने मान्यखेटको ध्वस्त किया। राष्ट्रकूट-शक्ति (५७०-७२) समाप्त।

[3] राष्ट्रकूट-राजधानी ८१५-९७२ ई०

[4] राष्ट्रकूट कृष्ण तृतीय

[5] मेलपाटी (उत्तरी-अर्काट)

§ २०. पुष्पदंत (पुप्फयंत)

कुल—ब्राह्मण, दर्बारी कवि। कृतियाँ[1]—महापुराण[2] (तिसट्ठि-महापुरिसगुणालंकार), जसहर चरिउ[3] (यशोधर-चरित), नायकुमार-चरिउ[4] (नागकुमार-चरित)।

१—आत्म-परिचय

(१) कृष्णराजके स्कंधावार (सेना-केम्प)मे

उद्-बद्ध-जूट भ्रूभग-भीष। तोडेँ वियउ चोलहिँकेर शीर्ष।
भुवन्-एकराम राजाधिराज। जहँ आछैँ[5] तुडिग महानुभाव।
सो दीन दत्त-धन-कनक-प्रवर। महि परिभ्रमत मेपाडि नगर।
अवधीरिय खल-जन गुण-महत। दिवसेँ हिँ तहँ आयेँउ पुष्पदन्त।
दुर्गम-दीरघ-पंथे 'वतीर्ण। नव-चद्र जिमी देहेहिँ क्षीण।
तरु-कुसुम-रेणु-रजित समीर। माकद-गुच्छ गोदलिय[6] कीर।
नदनवन फुरि विश्रमै जहाँ। तव दोउ पुरुष आयेउ तहाँ।
प्रणमीया तेहीँ कहेँउ एम। "हे खड-गलित-पापावलेप!
परिभ्रमत भ्रमर-रव-गुगगुमत। क्योँकर निवसहु निर्जन-वनात?
करि सर वाहिर-दिक् चक्रवाल। पइसहू न क्योँ पुर-वर-विशाल?"

---

[1] भरत और नल दोनो पिता पुत्र (राजमत्री) पुष्पदन्तके आश्रयदाता।

[2] डाक्टर पी० एल्० वैद्य द्वारा माणिकचन्द्र-दिगम्बर-जैन-ग्रथ-माला (बंबई)में सपादित (१९३७, १९४०, १९४१) तीन जिल्द।

[3] डाक्टर पी० एल्० वैद्य द्वारा करजा-जैन-ग्रथ-माला (करंजा, बरार) में संपादित १९३१ ई०

[4] प्रो० हीरालाल जैन द्वारा देवेन्द्र-जैन-ग्रंथ-माला (करंजा, वरार) में सम्पादित १९३३ ई०

[5] है [6] चबाया

त सुणिवि भणइ अहिमाण-मेरु¹ । "वरि खज्जइ गिरि-कदरि-कसेरु ।
णउ दुज्जण-भउँहा-वकियाइँ । दीसतु कलुस-भावकियाइँ ।
घत्ता । वर णरवरु धवलच्छिहे होउ, मा कुच्छिहे मरउ सोणि मुहणिग्गमे ।
खल-कुच्छिय-पहु-वयणइँ भिउडिय णयणइँ म णिहालउ सूरुग्गमे ।।३।।
चमराणिल उड्डाविय-गुणाइ । अहिसेय-धोय-सुयणत्तणाइ ।
अविवेयइ दप्पुत्तालियाइ । मोहधइ मारण-सीलियाइ ।
विससह जम्मइ जड रत्तियाइ । किं लच्छिइ विउस-विरत्तियाइ ।
सपइ जणु णीरसु णिव्विसेसु । गुणवतउ जहिं सुरगुरु¹ वि वेसु ।
तहिँ अम्हइ काणणु जि सरणु । अहिमाणे सहुँव वरि होउ मरण ।"
..पडिवयणु दिण्णु णायर-णरेहिँ ।

(२) आश्रयदाता मंत्री भरतकी प्रशंसा

घत्ता । "जण-मण-तिमिरोसारण मय-तरु वारण, णिय-कुल-गअण-दिवायर ।
भो भो केसव-तणुरुह ! णव-सररुहु-मुह कव्व-रयण-रयणाअर ! ।
वभड-मडवारूढ-किति । अणवरय-रइय-जिणणाह-भत्ति ।
सुहतुग-देव-कम-कमल-भसलु । णीसेस-सकल-विण्णाण-कुसलु ।।
पायय-कइ-कव्व-रसाव उद्धु । सपीय सरासइ-सुरहि-दुद्धु ।
कमलच्छ अमच्छरु सच्च-सधु । रण-भर-धुर-धरणुग्घुट्ठ-खधु ।।
सविलास-विलासिणि-हियय-थेणु । सुपसिद्ध-महाकइ-कामधेणु ।
काणीण-दीण-परिपूरियासु । जस-पसर-पसाहिय-दस-दिसासु ।।
पर-रमणि-पर-मुहु मुद्ध-सीलु । उण्णय-मइ सुयणुद्धरण-लीलु ।
गुरु-यण-पय-पणविय-उत्तमगु । सिरिदेवि-यव-गब्भुब्भवगु ।।
अण्णइय-तणय-तणुरुहु पसत्थु । हत्थि'व दाणोल्लिय-दीह-हत्थु ।।
दुव्वसण-सीह-सघाय-सरहु । ण वियाणहि किं णामेण भरहु ।।

---

¹ पुष्पदतका उपनाम भी शायद

सो सुनिय भनै अभिमान-मेरु[1] । "वरु खाइय गिरि-क़दरे कसेरु ।
नहिँ दुर्जन-भौँहाँ-वकिमाइँ । देखहूँ कलुष-भावाकिताइँ ।
घत्ता । वरु नरवर धवलक्षि होँउ, न कुक्षिहि, मरौ शोणित मुँह निर्गमे ।
खल-कुक्षित-प्रभु-वचना भृकुटित-नयना न निहारौ सूरोद्‍गमे ॥३॥
चमरानिलही उडेँऊ गुणाइँ । अभिषेक-धोँइ सुजनत्तनाइ[2] ।
अविवेकह दर्पोत्तालियाइँ । मोहाधताँ-मारण-शीलियाइँ ।
विपसँग जनमी जड रक्तियाइ । की लक्ष्मी विदुष-विरक्तियाइ ।
सप्रति जन नीरस निर्विशेष । गुणवतउ[3] जहँ सुरगुरुहु वेष ।
तहँ हमरेँहि काननही शरणा । अभिमान-सहित वरु होँहु मरणा ।"
. . . . । प्रतिउत्तर दियेँउ नागर-नरेहिँ ।

(२) आश्रयदाता मंत्री भरतकी प्रशंसा

घत्ता । "जन मन-तिमिर-अपसारण मदतरु-वारण, निज-कुल-कमल-दिवाकर ।
हे हे केशव-तनुरुह-नव सररुह मुख काव्य रतन-रतनाकर ।
ब्रह्माड-मडपारूढ-कीर्त्ति । अनवरत-रचित-जिननाथ-भक्ति ।
शुभतुग-देव-क्रम-कमल-भ्रमर । नि शेष-सकल-विज्ञान-कुशल ।
प्राकृत-कवि-काव्य-रसावलुब्ध । सपीय सरस्वति-सुरभि-दुग्ध ।
कमलाक्ष अमत्सर सत्यसध । रणभर-धुर-धरण्-उद्‍घुष्ट-स्कध ।
भविलास-विलासिनि-हृदय-स्तेन । सुप्रसिद्ध-महाकवि-कामधेनु ।
कानीन-दीन-परिपूरिताश । यशप्रसर-प्रसाधित-दश-दिगास ।
पररमणि-पराङ्‍मुख शुद्धशील । उन्नत-मति सुजनोद्धरण-लील ।
गुरुजन-पद-प्रणमित-उत्तमाग । श्रीदेवि-अव-गर्भोद्भवाग ।
अम्मइय-केर-तनुरुह प्रशस्त । हस्ति 'व दानोल्लित-दीर्घहस्त ।
दुर्व्यसन-सिह-सघात-शरभ । न विजानसि का नामही भरत ।

---

[1] पुष्पदत्त [2] सुजनता [3] गणहीनउ

(३) भरतके घरमे स्वागत

आवतु दिट्ठु भरहेण केम । वाई-सरि-सरि-कल्लोल जेम ।
पुणु तासु तेण विरइउ पहाणु । घर आयहों अब्भागय विहाणु ।
सभासणु पिय-वयणेहिँ रम्मु । णिम्मुक्क-डभु ण परमधम्मु ।
"तुहुँ आयउ ण गुण-मणि-णिहाणु । तुहुँ आयउ ण पकयहों भाणु ।"
पुण एव भणेप्पिणु मणहराइँ । पहरीण-भीण-तणु-सुहयराइँ ।
वर-ण्हाण-विलेवण-भूसणाइँ । दिण्णइँ देवगइँ णिवसणाइँ ।
अच्चत-रसालइँ भोयणाइँ । गलियाइँ जाम कइवय-दिणाइँ ।
देवी-सुएण कइ भणिउ ताम । "भो पुप्फयत ! ससिलिहिय-णाम !
णिय-सिरि-विसेस-णिज्जिय-सुरिंदु । गिरि-धीरु-वीरु भइरव-णरिंदु ।
पइँ मण्णिउ वण्णिउ वीर-राउ । उप्पण्णउ जो मिच्छत्त-राउ ।
पच्छित्त तासु जइ करहि अज्जु । ता घडइ तुज्भु परलोय-कज्जु ।।"
.. । ता जपइ वर-वाया-विलासु ।
"भो देवी-णदण जयसिरीह ! कि किज्जइ कव्वु सुपुरुस-सीह ।
घत्ता । "णउ महु बुद्धि-परिग्गहु णउ सय-सगहु णउ कासुवि करेउ वलु ।
भणु किह करमि कइत्तणु ण लहमि कित्तणु जगु जि पिसुण-सय-सकुलु ।"

—आदिपुराण (महापुराण, पृ० ५-६)

कोडिण्ण-गोत्त-णह-दिणयरासु । वल्लह-णरिद-घर-महयरासु ।
णण्णेहो मदिरि णिवसतु सतु । अहिमाण-मेरु कइ पुप्फ-यतु ।

—जसहर-चरिउ (पृ० ३)

भणु भणु सिरिपचमि-फलु गहीरु । आयण्णहिँ णायकुमार-वीरु ।
ता वल्लह-राय-महतएण । कलि-विलरिय-दुरिय-कयतएण ।
कोडिण्ण-गोत्त-णह-ससहरेण । दालिद्द-कद-कदल-हरेण ।
वर-कव्व-रयण-रयणायरेण । लच्छी-पोमिणि-माणस-सरेण ।
कुदव्व-भरह-दिय-तणुरुहेण ।
णण्णेण पवुत्तु महाणुभाव ।

—णायकुमार-चरिउ (पृ० ४)

(३) भरतके घरमें स्वागत

आवत दीस भरतेहिँ किमी । वापी-ससि-सर-कल्लोल जिमी ।
पुनि तासु तेहिँ विरचे प्रधान । घर आयेँहु अभ्यागत विहान ।
सभाषण प्रिय-वचनेहिँ रम्य । निर्मुक्त-दभ जनु परमधर्म ।
"तुहुँ आयउ जनु गुण-मणि-निधान । तुहुँ आयउ जनु पकजहु भानु ।"
पुनि ऐस भनियईं मनहराइँ । प्रहरीण झीन-तनु-सुखकराइँ ।
वर-स्नान-विलेपन-भूषणाइँ । दीनी देवागहिँ निवसनाइँ ।
अत्यत-रसालइँ भोजनाइँ । बीतेहु जिमि कतिपय-दिनाइँ ।
देवी-सुत कविहिँ भनेउ तव्व । "भो पुष्पदत ! शशि-लिखित नाम ।
निज-श्री-विशेष-निर्जित-सुरेन्द्र । गिरि-धीर वीर भैरव-नरेन्द्र ।
तैँ मानेँउ वर्णेउ वीर-राज । उत्पादेँउ जो मिथ्यात्व-राग ।
प्रा'श्चित्त तासु यदि करसि आज । तो घटै तोर परलोक-कार्य । "
. . . .　　। तो जल्पै वरवाचा-विलास ।
"हे देवीनदन जय-सिरीह ! का कीजै काव्य सुपुरुष-सीँह ।
घत्ता । ना मम बुद्धि-परिग्रह न सत-सग्रह ना काहु केरेँउ वल ।
भनु किमि करौँ कवित्वन न लहौँ कीर्त्तन, जगहु पिशुन-शत-सकुल ।।"

—आदिपुराण (महापुराण, पृ० ५-६)

कौंडिन्य-गोत्र-नभ-दिनकरास । **वल्लभ-नरेन्द्र-गृह-मख-करास** ।
नान्यहु मदिरेँ निवसत सत । अभिमान-मेरु कवि **पुष्पदंत** ।

—जसहर-चरिउ (पृ० ३)

भनु भनु श्री-पचमि-फल गँभीर । आकर्णहिँ नागकुमार-वीर ।
तो वल्लभराय-महतकेहिँ । कलि-विरलिय-दुरित-कृतात केहिँ ।
कौडिन्य-गोत्र-नभ-शशधरेहिँ । दारिद्रच-कद-कदल-धरेहिँ ।
वर-काव्य-रतन-रतनाकरेहिँ । लक्ष्मी-पद्मिनि-मानससरेहिँ ।
कुदँ इव भरत द्विज-तनुरुहेहिँ ।
नान्येहिँ प्रवृत्तु महानुभाव ।

—णायकुमार-चरिउ (पृ० ४)

२—काल-और ऋतु-वर्णन

(१) संध्या-वर्णन

अत्थमिइ दिणेसरि जिह सउणा । तिह पथिय थिय माणिय-सउणा ।
जिह फुरियउ दीवय-दित्तियउ । तिह कताहरणह-दित्तियउ ।
जिह सझा-राएँ रजियउ । तिह वेसा-राएँ रजियउ ।
जिह भुवणुल्लउ मतावियउ । तिहँ चक्कुल्लुवि[1] सँतावियउ ।
जिह दिसि-दिसि तिमिरइँ मिन्नियाइँ । तिह दिसि-दिसि जारइ मिलियाइँ ।
जिह रयणिहि कमलइँ मउलियाइँ । तिह विरहिणि-वयणइँ मउलियाइँ ।
जिह घरहँ कवाडइँ दिण्णाइँ । तिह वल्लह-सवइँ दिण्णाइँ ।
जिह चदे णिय-कर पसरु किउ । तिह पिय-केसहिँ कर-पसरु किउ ।
जिह कुवलय-कुसुमइँ वियसियइँ । तिह कीलय-मिहुणइँ वियसियइँ ।
जिह पीयइँ पाणइँ महुराइँ । तिह अहरहँ महु-रस-महुराइँ ।
जिह जिह गलति जामिणि-पहर । तिह तिह विइण्ण मउरइ पहर ।
जिह णहि सुक्कुग्गमु दरिसियउ । तिह चिडि सुक्कुग्गमु दरिसियउ ।
घत्ता । ता चक्क-उलहँ पकयहँ तव-किरण-पूरिय-भुवणोयरु ।
विरयहँ णर-णारी-यणहँ जीविउ देतु समुग्गउ दिणयरु ॥८॥

—आदिपुराण (पृ० २२८-२९)

(२) पावस-ऋतु-वर्णन

विस-कालिंदि-काल-णव-जलहर-पिहिय-णहतरालओ ।
धुय-गय-गड-मडलुड्डाविय-चल-मत्तालि-मेलओ ।
अविरल-मुसल-सरिस-थिरधारा-वरिस-भरत-भूयलो ।
हय-रवियर-पयाव-पसरुग्गय-तरु तण-णील-सद्दलो ।
पडु-तडि[2]-वडण-पडिय-वियडायल-रुजिय-सीह-दारुणो ।
णच्चिय-मत्त-मोर-गलकल-रव-पूरिय-सयल-काणणो ।

---

[1] चकवा-चकई [2] तडित्

२—काल-और ऋतु-वर्णन

(१) संध्या-वर्णन

अस्तमे दिनेश्वरें जिमि शकुना। तिमि पथिक ठिउ माणिक शकुना।
जिमि फुरियेउ दीपक-दीप्तियऊ। तिमि काताभरणहिँ दीप्तियऊ।
जिमि सध्या-रागें रजियऊ। तिमि वेशा-रागें रजियऊ।
जिमि भुवनल्लउ सतापियऊ। तिमि चक्कुल्लौ सतापियऊ।
जिमि दिशि-दिशि तिमरहिँ मिलियाईं। तिमि दिशि-दिशि जारहि मिलियाईं।
जिमि रजनिहिँ कमलिनि मुकुलिताइँ। तिमि विरहिनि-वदनइँ मुकुलिताइँ।
जिमि घरह् कपाटउ दिन्नाइं। तिमि वल्लभ-सपति दिन्नाइँ।
जिमि चदेंहि निज-कर-प्रसर-कियेंउ। तिमि पिय-केशहिँ कर-प्रसर कियेंउ।
जिमि कुवलय-कुसुमा विकसियऊ। तिमि कीरय-मिथुना विकसियऊ।
जिमि पीयँ पानहिँ मधुराईं। तिमि अधरह् मधुरस-मधुराईं।
जिमि जिमि बीतँ यामिनि-प्रहरा। तिमि तिमि विकीर्ण मृदु-रति-प्रहरा।
जिमि नहिँ शुक्रोदय दरसियऊ। तिमि चिंडि शुक्रोद्गम दरसियऊ।
घत्ता। तो चक्ककुलहँ पकजहँ ताम्रकिरण-पूरित-भुवनोदर।
विरही नर-नारीजनहू जीवन देत सम्-ऊगेउ दिनकर ॥८॥

—आदिपुराण (पृ० २२८-२९)

(२) पावस-ऋतु-वर्णन

विग-कालिंदि-काल-नवजलधर-छादित नभतरालआ।
धुत-गज-गड-मडल-उड्डाविय चल-मत्ता-लि-मेलआ।
अविरल-मुसल-सदृश थिर धारा वर्ष भरत-भूतला।
हत-रविकर-प्रताप-प्रसर-उद्गत-तरु कँह नील गाद्दला।
पटु तडि[1]-पतन-पतित-विकट-चल कुपित सिंह-दारुणा।
नाचत मत्त-मोर-कलकल-रव-पूरित-सकल-कानना।

---

[1] विजली

गिरि-सरि-दरि-सरत-सरसर-भय-वाणर-मुक्क-णीसणो ।
महियल-घुलिय-मिलिय-दुदुह-सयवय-सालूर[1]-पोसणो ।
घण-चिक्खल्ल-खोल्ल-खणि-खेड्य-हरिण-सिलिव-कय-वहो ।
वियसिय-णव-कलव-कुसुमुग्गय-रय-पिंजरिय-दिसिवहो ।
सुर-वइ-चाव-तोरणालंकिय-घण-करि-भरिय-णहरुहो ।
विवर-मुहोयरंत-जल-पवहारोसिय-सविस-विसहरो ॥
"पिय-पिय-पिय"-लवत-वप्पीहय-मग्गिय-तोय-विंदुओ ।
सर-तीरुल्ललत-हसावलि-भुणि-हल-वोल-सजुओ ॥
चपय-चूय-चार-चव-चदण-चिंचिणि-पीणियाउसो ।
वुट्ठो झत्ति जस्स कालम्मि जएँ सुहयारि पाउसो ॥
मुग्ग-कुलत्थ-कगु-जव-कलव-तिलेसी-वीहि-मासया ।
फलभर-णविय-कणिस-कण-लपड-णिवडिय-सुय-सहासया ॥
ववगय-भोय-भूमि-भव-भूरुह-सिरि-णरवइ-रमा सही ।
जाया विविह-धण्ण-दुम-वेल्ली-गुम्म-पसाहणा मही ।
—आदिपुराण (२९-३०)

खधावारहु उप्परि अहणिसु । ता णायहिँ वेउव्विउ पाउसु ।
मय-उलु तसइ रसइ वरिसइ घणु । पीयलु सामलु विरसइ सुरधणु ।
महि-णीहरिउ हरिउ वड्ढइ तणु । पवसिय-पियहि पियहि तप्पइ मणु ।
फुल्ल-कलव-तवु दीसइ वणु । तिम्मइ तम्मइ मणि जूरइ जणु ।
तडि तडयडइ पडइ रुजइ हरि । तरु कडयडइ फुडइ विहडइ गिरि ।
जलु परियलइ घुलइ घुम्मइ दरि । अइरय सरइ भरइ पूरें सरि ।
जलु थलु सयलु जलुजि सजायउ । मग्गु अमग्गु ण किंपि वि णायउ ।
सरु कूसुम-सरु णिररिउ सधइ । विरहें पथिय पथिय विंधइ ।
—आदिपुराण (पृ० २४०)

---

[1] एक प्रकारका कद

३–भौगोलिक वर्णन

(१) हिमालय-वर्णन

सीयल्ल-वेल्लि-तरुवर-गहणि । हिमवतहो दाहिण-गिरि-गहणि ।
जहिँ वग्घ-सीह-गय-गडयाइँ । मय-दुग्गह-करि-भल्लू-सयाइँ ।
सवर-वेउल्लइँ रोहियाइँ । एणइँ जहिँ पुल्लिहिँ छोहियाइँ ।
जहिँ सचरति वहु-मुग्गसाइँ । गत्ताइँ जाँह णिरु घग्घुसाइँ ।
जहिँ परडा कोक्कता भमति । झिल्लिरि खच्चेल्लइँ गुमगुमति ।
जहिँ भिल्ल-पुलिदइँ णाहलाइँ । वीणतइँ तरु-वेल्ली-हलाइँ ।
जहिँ कुक्कुरनि साहामयाइँ[1] । झुल्लतइँ तरु-साहा-गयाइँ ।
उड्डुणसीला तवोल-लग्ग । जहिँ हरि खज्जता कहिँ 'मि भग्ग ।
जहिँ घुरुहरत दाढा-कराल । सूलच्छहिँ सहुँ जुज्झसि कोल ।
कदुल्ल-गहर-गह्व्भु जेत्थु । हरि-हुल्लिहिँ जहिँ दूसियउ पथ ।
पचासहिँ थूणइ दारियाइँ । जहिँ भित्ली हरिणइँ मारियाइँ ।
जहिँ गहिरइँ धारइँ परिभमति । णिरु वायड-उल(ईँ) चुमचुमति ।
जहिँ वेल्लिहिँ वेठिय तरुवराइँ । ण कीलहिँ अवरुडण-पराइँ ।
—जसहर-चरिउ (पृ० ४०-४१)

सेणा-सेणाहिय,परियरिय । हिमवतु धरेप्पिणु सचलिय ।
सोहइ गच्छती पुव्वमुह । कुरुवस-णाह-पत्थिव-पमुह ।
दीसइ सेलत्थलि काणणउँ । महिसी-दुद्ध'व साहा-घणउँ
णाणा-महिरुह-फल-रस-हरइँ । कत्थइ किलिगिलियइँ वाणरइँ ।
कत्थइ रइरत्तइँ सारसइँ । कत्थइँ तव-तत्तइँ तावसइँ ।
कत्थइ झरझरियइँ णिज्झरइँ । कत्थइ जल-भरियइँ कदरइँ ।
कत्थइ वीणिय वेल्ली-हलइँ । दिट्ठइँ भज्जतइँ णाहलइँ ।
कत्थइ हरिणइँ उल्ललियाइँ । पुणु गोरी-गेयहु वलियाइँ ।

[1] वानर

३—भौगोलिक वर्णन

(१) हिमालय-वर्णन

शीतल्ल-बेलि तरुवर-गहना। हिमवतहु दक्षिण-गिरि-गहना।
जहँ व्याघ्र-सिंह-गज-गैंड आइँ। मृग दुर्ग्रह करि-भालू-शताइँ।
साँभर वेकुल्ला रोहिताइँ। एणी जहँ पुलकित कूदियाइँ।
जहँ सचरईं बहु मूँगुसाइँ। गर्त्ताइँ जहाँ निर घर्षसाइँ।
जहँ परडा कोक्कता भ्रमति। झिल्ली खच्चेल्लें गुमगुमति।
जहँ भील-पुलिदा नाहराइँ। बीन्ता तरु-बल्ली-फलाइँ।
जहँ कुक्करति शाखामृगाइँ। झूलता तरु-शाखा-गताइँ।
उड्डुन-शीला तावूल-लागु। जहँ हरि खादता कतहुँ भागु।
जहँ घुरघुरति दाठा-कराल। शूलाक्षहिँ सँग जूझति कोल[1]।
कदुल्ल-गहर गर्दभा जहाँ। हरि हुल्लिहिँ जहँ दूषियेंउ पथ।
पचासहु थूनें विदारिताइँ। जहँ भीली हरिनहिँ मारियाइँ।
जहँ गहिरै धारें परिभ्रमति। नित बादल-कुलहीं चुमचुमति।
जहँ बेली-वेष्टित तरुवराइँ। जनु कीडै अवगुंठन पराइँ।

—जसहर-चरिउ (पृ० ४०-४१)

सेना सेनाधिप-परिचरिता। हिमवत धरा-वन-सचलिता।
सोहै सो जाती पूर्वमुखा। कुरुवगनाथ-पार्थिव-प्रमुखा।
दीसै शैल-स्थलि-काननऊ। महिषी दुग्ध् इव शाखा-घनऊ।
नाना महिरुह-फल-रस-धरइँ। कतहूँ किलकिलहीं वानरहीं।
कतहूँ रसरक्ता सारसईं। कतहूँ तप तप्पैं तापसईं।
कतहूँ झरझरिया निर्झरईं। कतहूँ जल-भरिया कदरईं।
कतहूँ बीनैं बेली-फलईं। दीसैं भाजता नाहरईं।
कतहूँ हरिना उल्ललियाइँ। पुनि गौरी-गेहहु वलियाइँ।

---

[1] सूअर

कत्थइ हरि-णह-रुक्कत्तियइँ। करि-कुभुच्छलियइँ मोत्तियइँ।
कत्थइ मुम्मइ जक्खिणि-झुणिउँ। खयरी-कर-वीणा रणरणिउँ।
कत्थइ भसल-उलहिँ रुणरुणिउँ। कत्थइ सुएण कि किं भणिउँ।
घत्ता। कत्थइ किंणरहिँ गाइज्जइ सवण-पियारउ।
रिसह-णाह-चरिउ फणि-णर-सुर-लोयहु सारउ ॥१॥
—आदिपुराण (पृ० २४४)

(२) देश-विजय

पल्लव-सेंधव-कोँकण-कोसल। टक्क-ग्हीर-कीर-खस-केरल।
अग-कलिग-गग-जालधर। वच्छ-जवण-कुरु-गुज्जर-वव्वर।
दविड-गउड-कण्णाड-वराड'वि। पारस-पारियाय-पुण्णाडवि।
सूर-सुरट्ठ-विदेहा लाड'वि। कोग-वग-मालव-पचाल'वि।
मागह-जट्ट-भोट्ट णेवाल'वि। उड्ड-पुड-हरिकुरु-भगाल'वि।
—आदिपुराण (पृ०-८८)

सुरसिधु सरिहिँ देहलिय धरिवि, पइसरणु करिवि।
पुव्वावरेसु परिसठियाइँ, वइरट्ठियाइँ।
वेयड्ढ गिरिहि ओइल्लयाइँ, सुधणिल्लयाइँ।
चडाइँ मेच्छ-खडाइँ ताइँ, दोसाहियाइँ।
करवाले णिज्जिउ अज्ज-खडु, पट्टविवि दडु।
मालव-मागह-वग-'गगग, कालिंग - कोग।
पारस-वव्वर-गुज्जर-वराड, कण्णाड-लाड।
आहीर-कीर-गधार-गउड, णेवाल - चोड।
चेईस-चेर-मरु-दद्दुरडि, पचाल-पडि।
कोकण-केरल-कुरु-कामरुव, सिहल पहूय।
जालधर-जायव-पारियाय, णिज्जिणिवि राय।
पव्वत-वासि णीसेस लेबि, णिय-मुद्द देबि।
हेलाइ तिखडावणि हरेबि, असि करि करेबि।
—आदिपुराण (पृ० २३०-३१)

कतहूँ हरि-नख-फारियइँ। करि-कुंभ उछरिया मौक्तिकाइँ।
कतहूँ सुनियै यक्षिणि-धुनिऊ। खेचरि-करें वीणा हनहनिऊ।
कतहूँ भ्रमर-कुल रुन-झुनिऊ। कतहूँ शुकेहिँ का का भनिऊ।
घत्ता। कतहुँ किन्नरहिँ गाइऊ, श्रवण-पियारहूँ।
ऋषभनाथ-चरित, फनि-नर-सुर-लोकह सारऊ।
—आदिपुराण (पृ० २४४)

(२) देश-विजय

पल्लव-सैंधव-कोकण-कोसल। टक्क-अहीर-कीर-खस-केरल।
अंग-कलिंग-गंग-जालंधर। वत्स-यवन-कुरु-गुर्जर-बर्बर।
द्रविड-गौड-कर्नाट-बराडउ। पारस-पारियात्र-पुन्नाडउ।
शुर-सौराष्ट्र-विदेहा लाटउ। कोंग-वंग-मालव-पंचालउ।
मागध-जाट-भोट-नेपालउ। उड्र-पुड्र-हरिकेल-भँगालउ।
—आदिपुराण (पृ० ८८)

सुरसिंधु-सरिहिँ देहलिय धरव, प्रतिसरन करबी।
पूर्वावरेहिँ परिसस्थिताइँ, वैरस्थिताइँ।
वेताढ गिरिहिँ ओडल्लयाइँ, सुधनिल्लयाइँ।
चंडाइँ म्लेच्छ-खडाइँ ताइँ, दु:साधियाइँ।
करवालें जीतेंउ आर्यखंड, प्रस्थापि दंड।
मालव-मगध-वंग-'ड्ग'-गंग, कालिंग-कोंग।
पारस-वर्वर-गुर्जर, बराड, कर्नाट-लाट।
आभीर-कीर-गंधार-गौड़, नेपाल-चोल।
चेदीश-चेर-मरु-दर्दुरडि, पचाल-पंडि।
कोकण-केरल-कुरु-कामरूप, सिहल प्रभूय।
जालधर-यादव-पारियात्र, जीतेंहू राय।
प्रत्यंतवासि निःशेष लेइ, निज मुद्राँ देइ।
हेलहिँ तिरखडा'वनि हरेइ, असि करें करेइ।
—आदिपुराण (पृ० २३०-३१)

(३) यौधेय-भूमि-वर्णन

वित्थिण्णए जवुदीवि भरहें। खर-किरण-करावलि-भूरि-भरहें।
जोहेयउ णामि अत्थि देमु। ण धरणिएँ धरियउ दिव्व वेसु।
जहिं चलइँ जलाइँ स-विब्भमाइँ। ण कामिणि-कुलइँ स-विब्भमाइँ।
भगालइँ ण • कुकइत्तणाइँ। जहिं णील-णेत्त-णिद्धहिँ तणाइँ।
कुसुमिय-फलियइँ जहिँ उववणाइँ। ण महि-कामिणि-णव-जोव्वणाइँ।
गोवाल-मुहालुखिय-फलाइँ। जहिँ महुरइँ ण सुकयहों फलाइँ।
मथर-रोमथण[1]-चलिय-गड। जहिँ सुहि णिसिण्ण गो-महिंसि-सड।
जहँ उच्छु-वणइँ रस-दसिराइँ। ण पवण-वसेउ पणच्चिराइँ।
जहँ कण-भर-पणविय पक्क-सालि। जहिँ दीसइ सयदलु सदलु सालि।
जहिं कणिसु कीर-रिंछोलि चुणइ। गहवइ-सुयाहि पडिवयणु भणइ।
छोक्करण-राव-रंजिय-मणेण। पहि पउ ण दिण्ण पथिय-जणेण।
जहिँ दिण्णु कण्णु वणि मयउलेण। गोवाल-गेय-रंजिय-मणेण।
जहिँ जण-धण-कण-परिपुण्ण गाम। पुर-णयर-सुसीमाराम साम।
घत्ता। रायउरु मणोहरु रयणच्चिय घरु, तहिँ पुरवरु पवणुद्धयहिँ।
चल-चिंधहि मिलियहिँ णहयलि घुलियहिँ, छिवइ'व सग्गु सयभुअहिँ।
ज छण्णउँ सरसहिँ उववणेहिँ। ण विद्धउँ वम्मह-मग्गणेहिँ।
कय-सद्दहिँ कण्ण-सुहावएहिँ। कणइ'व सुर-हर-पारावएहिँ।
गय-वर-दाणोल्लिय वाहियालि। जहिँ सोहइ चिरु पवसिय पियालि।
सर-हसइँ जहिँ णेउर-रवेण। मउ चिक्कमति जुवई-पहेण।
ज णिय-भुयासि-वर-णिम्मलेण। अण्णुवि दुग्गउ परिहा-जलेण।
पडिखलिय-वइरिं-तोमर-झसेण। पडुर-पायारिं ण जसेण।
ण वेढिउ वहु-सोहग्ग-भारु। ण पुजीकय-ससार-सारु।
जहिँ विलुलिय-मरगय-तोरणाइँ। चउदारइँ ण पउराणणाइँ।

---

[1] चर्वितचर्वण (जुगाली करना)

(३) यौधेय-भूमि-वर्णन

विस्तीर्ण जंबुद्वीप-भरते। खरकिरण-करावलि भूरि भरित।
यौधेय नाम है (एक) देश। जनु धरणी धारेँउ दिव्य-वेष।
जहँ चलैँ जलाइँ स-विभ्रमाइँ। जनु कामिनि-कुलइँ स्व-विभ्रमाइँ।
भृगालैँ[1] जनु कुकवित्तनाइँ। जहँ नीलनेत्र-स्निगधतनाइँ।
कुसुमित-फलितहँ जहँ उपवनाइँ। जनु महि कामिनि नवयौवनाइँ।
गोपाल-मुखा चुनिया फलाइँ। जहँ मधुरइँ सुकृतहू फलाइँ।
मथर-रोमथन-चलित-गड। जहँ सुख-निषण्ण गोमहिष-संड।
जहँ इक्षु-वनइँ रस-दशिराइँ। जनु पवन बसेउ पनच्चिराइँ।
जहँ कण[2]-भर-प्रनमी पक्वशालि। जहँ दीसै शतदल-सदल-शालि।
जहँ मजरि कीर-पक्ती चुनै। गृहपति-सुताहिँ 'प्रतिवचन भनै।
छोक्करन-राज-रजित-मनेहिँ। पथ पद न दीन पथिक-जनेहिँ।
जहँ दीय कर्ण वनेँ मृगकुलेहिँ। गोपाल-गीत-रजित-मनेहिँ।
जहँ जन-धन-कण-परिपूर्ण ग्राम। पुर-नगर-सुषीमाराम श्याम।
घत्ता। राजपुर मनोहर रत्नाचित घर, तहँ पुरवर पवनोद्धतहिँ।
चल-चिन्हहिँ[3] मिलिया नभतले'घुरियहिँ, छुवेँ इव सर्ग स्वयभुजहिँ ॥३॥
जो छादित सरसेँहिँ उपवनेहिँ। जनु विद्धेँउ मन्मथ-मार्गणेहिँ[4]।
कल-शब्दहिँ कर्ण-सुखावहेहिँ। क्वणेँइव सुरघर-पारावतेहिँ।
गज-वर-दानोल्लित-वॉहिय-ालि। जहँ सोहै चिर-प्रवसित-प्रियालि।
सर-हसहँ जहँ नूपुर-रवेहिँ। सृग चिक्कमति युवती-प्रभेहिँ।
जो निज-भुज-ासि-वर-निर्मलेहिँ। अन्यउ दुर्गह परिखा-जलेहिँ।
प्रतिखलित-वैरि-तोमर-झषेहिँ। पाडुर प्राकारा जनु यशेहिँ।
जनु बेठेँउ वहु-सौभाग्य-भार। जनु पुजीकृत ससार-सार।
जहँ विलुलित-मरकत-तोरणाइँ। चौद्वारहिँ जनु पौराननाइँ।

---

[1] भृग-आलय [2] दाना [3] ध्वजा [4] तीर

जहिँ धवल-मंगलुच्छव-सराइँ। दु-ति-पच-सत्त-भोमइँ[1] घराइँ।
णव-कुकुम-रस-छडयारुणाइँ। विक्खित्त-दित्त-मोत्तिय-कणाइँ।
गुरु-देव-पाय-पकय-वसाइँ। जहिँ सव्वइँ दिव्वइँ माणुसाइँ।
सिरिमतइँ सतइँ सुत्थियाइँ। जहिँ कहि 'मि ण दीसहि दुत्थियाइँ।
—जसहर-चरिउ (पृ० ४, ५)

(४) मगधभूमि-वर्णन

खेडाम-गाम-पुरवर-विचित्तु। तहोँ दाहिणि दिसि थिउ भरह खेत्तु।
तहिँ मगह-देसु सुपसिद्ध अत्थि। जहिँ कमल-रेणु-पिंजरिय हत्थि।
जहिँ सुरवर-तरु-णदण-वणाइँ। जहिँ पक्क-सालि धण्णइँ तणाइँ।
वय-सय-हसावलि-माणियाइँ। जहिँ खीरसमाणइँ पाणियाइँ।
जहिँ कामधेणु-सम गोहणाइँ। घडदुद्धइँ णेहारोहणाइँ।
जहिँ सयल-जीव-कय-पोसणाइँ। घण-कण-कणि-सालइँ करिसणाइँ
जहिँ दक्खा-मडवि दुहु मुयति। थलपोमोवरि पथिय सुयति।
जहिँ हालिणि-कलरव-मोहियाइँ। पहि पहियइँ-हरिणा इव थियाइँ।
पुडुच्छु-वणइँ चउ-दिसु चलति। जहिँ महिस-सिंग-हय रस गलति।
जहिँ मणहर-मरगय-हरिय-पिंछ। मायद-गोंछि गोदलिय रिंछ।
घत्ता। तहिँ पुरवरु णामेँ रायगिहु, कणय-रयण-कोडिहिँ घडिउ।
वलिवड धरतहोँ सुरवइहिँ, ण सुर-णयरु गयण-पडिउ ॥६॥
—णायकुमार-चरिउ (पृ० ६)

(५) मालव-ग्राम

एत्थत्थि अवंती णाम विसउ। महिवहु भुजाविय जेण'वि सउ।
घत्ता। णदतहिँ गामहिँ विउलारामहिँ, सरवरकमलहिँ लच्छि-सही।
गलकल-केक्कारहिँ हसहिँ मोरहिँ, मडिय जेत्थु सुहाइ मही ॥२०॥

---

[1] दो-तीन-पाँच-सात तल्लेवाले (मकान)

जहँ धव-मगल-ोत्सव-सराइँ। दुइ-पच-सप्त-भूमिक घराइँ।
नव-कुकुम-रस-छट-आरुणाइँ। विखरीय-दीप्त-मौक्तिक-कणाइँ।
गुरु-देव-पादपकज-बशाइँ। जहँ सब्बै दिव्यै मानुषाइँ।
श्रीमन्तहिँ सतहिँ सुस्थिताइँ। जहँ कतहुँ न दीसै दु स्थिताइँ।
—जसहर-चरिउ (पृ० ४, ५)

(४) मगध भूमि-वर्णन

खेडाउ-ग्राम-पुरवर-विचित्र। तहँ दक्षिणदिशि ठिउ भरत-क्षेत्र।
तहँ मगध-देश सुपसिद्ध अस्ति। जहँ कमल-रेणु-पिंजरित हस्ति।
जहँ सुरवर-तरु-नदनवनाइँ। जहँ पक्व-शालि धान्यहिँ तनाइँ[1]।
व्रज-शत-हसावलि-माणिकाइँ। जहँ क्षीरसमाना पानियाइँ।
जहँ कामधेनु-सम गोधनाइँ। घट-दूधी स्नेहारोधनाइँ।
जहँ सकल-जीव-कृत-पोषणाइँ। धन-कण-कणिशालहँ[2] कर्षणाइँ।
जहँ द्राक्षामडपें दुध-मुचति। स्थलपद्मोपरि पथिक सोंवति।
जहँ हालिनि[3]-कल-रव-मोहिताइँ। पथें पथिक हरिना इव ठिताइँ।
पुड्-इक्षु-वना चौदिशि चलति। जहँ महिष शृग-हत रस गिरति।
जहँ मनहर-मरकत-हरित-पिच्छ। माकद-गुच्छ चर्विता वृक्ष।
घत्ता। तहँ पुरवर नामे राजगृह, कनक-रतन-कोटिहिँ गढेंऊ।
बलिवड-धरतह सुरपतिहँ, जनु सुर-नगर गगन पडेंऊ ॥६॥
—णायकुमार-चरिउ (पृ० ६)

(५) मालव-ग्राम

इहँ अहै अवती नाम विषय। महि वहु भोगेंउ जेहिहि सवय।
घत्ता। नदतेंहिँ ग्रामेंहिँ विपुलारामेंहिँ, सरवर-कमलेहिँ लक्ष्मि-सखी।
कलकल-केकारेंहिँ हसेहिँ मोरेंहिँ, मडित यत्र सुहाइ मही ॥२०॥

---

[1] तनाइ=केरी [2] फल-मजरी [3] हलवाहेकी बहू

जहिँ चुमचुमति केयार-कीर। वर-कलम-सालि-सुरहिय-समीर।
जहिँ गोउलाइँ पउ विक्किरति। पुंडुच्छु[1]-दंड-खंडइँ चरति।
जहिँ वसह-मुक्क-ढेक्कार-धीर। जीहा-विलिहिय-णंदिणि-सरीर।
जहिँ मथर-गमणइँ माहिसाइँ। दह-रमणुड्डाविय-सारसाइँ।
काहलिय[2]-वंस-रव-रत्तियाउ। वहुअउ घर कम्मि गुत्तियाउ।
सकेय-कुडुगण-पत्तियाउ। जहिँ झीणउ विरहिँ तत्तियाउ।
जहिँ हालिणि-रूव-णिवद्ध-चक्खु। सीमावडु ण मुअइ कोवि जक्खु।
जिम्मइ जहिँ ऍवहि पवासिएहिँ। दहि कूरु खीरु घिउ देसिएहिँ।
पव-पालियाइ जहिँ वालियाइ। पाणिउ भिंगार-पणालियाइ।
दिंतिऍं मोहिउ णिरु पहिय-विंदु। चगउ दक्खालि'वि वयण-चदु।
जहिँ चउपयाइँ तोसिय-मणाइँ। घण्णइ चरति णहु पुणु तिणाइँ।
उज्जेणि णाम तहिँ णयरि अत्थि। जहिँ पाणि पसारइ मत्त-हत्थि।

—जसहर-चरिउ (पृ० १७)

४—सामन्त-समाज

(१) राजत्वके दुर्गुण

रज्जहु कारणि पिउ मारिज्जइ। वधवहू मी सचारिज्जइ।
जिह अलि-गधे गउ सघारहु। तिह रज्जेण जीउ त वारहु।
भड-सामत-मति-कय-भायउ। चिंतिज्जतउ सव्वु परायउ।
तडुल-पसयहु कारणि राणा। णरइ पडति काइँ अ-वियाणा।
डज्झउ रज्जु'जि दुक्खु गुरुक्कउ। जइ सुहु किं ताएँ मुक्कउ।

—आदिपुराण (पृ० २९५)

---

[1] लाल लाल और मोटे गन्ने [2] झांझ (थालीनुमा काँसेका बाजा)

जहँ चुमचुमति केदार-कीर। वर-कलम-शालि-सुरभित-समीर।
जहँ गोकुलाइँ पय विक्षरति। पुड्-ईख-दड खडहिँ चरति।
जहँ वृषभ मुक्त-होँक्काड-धीर। जीभा-विलिहित-नदिनि-शरीर।
जहँ मथर गमनै माहिषाइँ। ह्रद-रमण्-उड्डायउ सारसाइँ।
काह्ली वशि-रव-रक्तियाउ। बधुआ घरकर्में गुप्तियाउ।
सकेत-कुडच-1गण-पक्तियाउ। जहँ झीनउ विरहे तप्तियाउ।
जहँ हालिनि-रूप-निबद्ध-चक्षु। सीमावट न मुवै कोइ यक्ष।
जेवैं जहँ ऐस प्रवासिनेहिँ। दधि-गूड-क्षीर-घिउ-दुस्सए'हिँ।
प्रप-पालिकाहिँ[2] जहँ बालिकाहिँ। पानिय-भृगार[3]-प्रणालिकाहिँ।
देतिअँ मोहेँउ अति पथिकवृन्द। चगा द्राक्षालि'व वदनचन्द्र।
जहँ चौपदाइँ तोषित-मनाइँ। धान्यै चरति नहि पुनि तृणाइँ।
उज्जेनि नाम तहँ नगरि अस्ति। जहँ पाणि प्रसारै मत्त-हस्ति।
—जसहर-चरिउ (पृ० १७)

४—सामन्त-समाज

(१) राजत्वके दुर्गुण

राज्यहि कारणें पितु मारिज्जै। बाधवहँ (पुनि) सचारिज्जै।
जिमि अलि-गधे गउ सहारा। तिमि राज्येहि जीवितऊँ वारा।
भट-सामत-मत्रि-कृत भायउ। चिंतीयतउ सब उपरागउ।
तडुल-पसरहँ कारणें राना। नरक पडति काइँ अ-विजाना।
जारहु राज्यहु दुख-गुरुकउ। यदी सुक्ख का तेहीं मूकउ।
—आदिपुराण (पृ० २६५)

---

[1] कपडा थान [2] पौसरेपर पानी पिलानेवाली [3] जलकी झारी

(२) राज-दर्बार[1]

अत्थाण-भूमि गउ मणि विसण्ण । कणय-मय-रयण-विट्ठरि णिसण्णु ।
दो-वासइँ चमरइँ महु पडति । वहु-दुक्ख-सहासइँ ण घटंति ।
सह-मडवि खुज्जय-वावणाइ । णच्चतइ णिरु कोड्डावणाइँ ।
वीणा-वसइँ गेयइँ भुणति । वेयालिय फफावय थुणति ।
एयाइँ जइवि णिरु सुहयराइँ । महु पुणु मुविरत्तहों दुहयराइँ ।
पोत्थय-वायणु आढत्त सरसु । मण-सवणहँ ज जणि जणइ हरिसु ।
तहिँ अवसरिँ पडिहारिँ वरेण । कणय-मय-दड-मडिय-करेण ।
पइसारिय भड-सामत-मति । अणवरय भमइ जगि जाँह कित्ति ।
पय-जुयलु णविउ महु णरवरेहि । मउडग्ग-कोडि-चुविय-धरेहि ।
अवलोइय णर-वइ मइँ णवत । पडियावयाइँ णावइ कुमित्त ।
गोविट्ठि-णिविट्ठ णरिंद सव्व । णिविडत्थवत ण सुकइ-कव्व ।

—जसहर-चरिउ (पृ० ३२)

(३) सामंती भोग

काम-भोय-सुह-रस-वसहों । तहु वसुमइहि काइँ वण्णिज्जइ ।
ज ज चितइ किंपि मणे । त त सयलु[2] वि खणि सपज्जइ ॥
जक्ख-पको दढ वल्लहालिंगण । मालई-मालिया कुकुमालेवण ।
उचओ मचओ चारु-सेज्जा-यल । आवरोहारि सोम्ह थणाण थल ।
उण्हय भोयण तुप्प-धारा-हर । रत्तओ कवलो छण्णरध घर ।
पुव्वपुण्णेण सव्व पि सजुत्तय । सीय-यालम्मि तेणेरिस भुत्तय ।
चदण चदपाया पिया णेहली । मल्लिया-दामय तार-हारावली ।
दाहिणो मयरो मारुओ सीयलो । रुक्ख-कीलाणिओ पल्लवो कोमलो ।
वल्लरी-मडवो पोमजुत्तो सरो । वीयण दोलणालीणओ सीयरो ।
थद्ध-थद्ध दहिँ सीयय पाणिय । उण्हयालम्मि तेणेरिस माणिय ।

---

[1] राजकुल [2] राजप्रांगण

(२) राज-दर्बार

आस्थान[1]-भूमि गउ मन-विषण्ण। कनकमय-रतन-विस्तर-निषण्ण।
दो पासेँहि चमरा मुहु पडति। वहु-दुख सहसैँ जनु घडति।
सभ-मडपेँ कुब्जा-वामनाइ। नाचतै अतिकोटावनाइ[2]।
वीणा-वशिहि गीतहि ध्वनति। वैतालिक फफावै स्तुवति।
एताइँ यदपि वहु सुख-कराइँ। मुहु पुनि सुविरक्तह दुखकराइँ।
पुस्तक-वाचन आरभेँउ सरस। मन-श्रवहँ जनु जनेँ जनै हरष।
तेँहि अवसर प्रतिहारेँहिँ वरेँहिँ। कनकमय-दड-मडित-करेँहिँ।
पइसारेउ भट-सामत-मत्रि। अनवरत भ्रमै जग जाह कीर्त्ति।
पद-युगल नमेँउ मुहु नरवराहिँ। मुकुटाग्र-कोटि-चुवित-धराहिँ।
अवलोकेँउ नरपति मोहिँ नमत। आ-पडिईँ न्याइँ कुमित्र।
गोष्ठीहिँ निविष्ट नरेन्द्र सर्व। निविडार्थवत जनु सुकवि-काव्य।

—जसहर-चरिउ (पृ० ३२)

(३) सामंती भोग

कामभोग-सुख-रस-वसहु, तेँहि वसुमतिहिँ किमि वर्णिज्जै।
जो जो चिंतै कछु मने, सो सो सकलहु क्षणेँ सपज्जै॥
यक्षपको (?) दृढ वल्लभालिगन। मालती-मालिका कुकुमालेपन।
ऊँचओ मचओ चारु-शय्यातल। आवरोहारि सूक्ष्म स्तनाहूँ तल।
उण्णओ भोजना तोपि धाराधर। रक्तओ कवलो वद-रध्र घर।
पूर्वपुण्येहिँ सर्व हि सयुक्तक। शीतकालेहि तेँहि इदृश भुक्तक।
चदनो चद्रपादा प्रिया स्नेहिली। मल्लिका-दामक तार-हारावली।
दाहिने मथरो मारुतो शीतलो। वृक्षक्रीडानियो पल्लवो कोमलो।
वल्लरी-मडपो पद्म-युक्तो सरो। वीजना-दोलना नीरको शीकरो।
गाढ-गाढ दही शीतल पानिय। उष्णकाले हि तेँहिँ ईदृश मानिय।

---

[1] दर्बार [2] उत्साहनाइँ

फुल्लियासा-कयवोह्-धूलीरत्रो । मत्त-माऊर-वदस्स केयारत्रो ।
णीर-धारा मुयतवु-वाहज्झुणी । सगया सूहवा पासि सीमतिणी ।
णिग्गल मदिर णिक्किय भूयलं । धावमाण रयाल पणाली-जल ।
इट्ठ-गोट्ठी-विसिट्ठेहिँ विण्णायय । दिव्व-गधव्वय कव्वय पायय ।
विज्जु-माला-फुरत णह दिप्पह् । तस्स मेहागमे तपि सोक्खावह् ।......

—आदिपुराण (पृ० ४०७)

(क) (वेश्या-बाजार)

वेसा-वाडइँ झत्ति पइट्ठउ । मयरकेउ पुरवेसहिँ दिट्ठउ ।
कावि वेस चितइ गय-मुण्णा । ए थण एयहों गहहिँ ण भिण्णा ।
कावि वेस चितइ कि वड्ढिय । णीलालय एएण ण कड्ढिय ।
कावि वेस चितइ कि हारें । कठु ण छिण्णउ एण कुमारें ।
कावि वेस अहरग्गु समप्पइ । झिज्जइ खिज्जइ तप्पइ कपइ ।
कावि वेस रइ-सलिलें सिंचिय । वेवइ वलइ घुलइ रोमचिय ।...
घत्ता । ता वीणा-कलरव-भासिणिए देवदत्तए रायविलासिणिए ।
हिय-उल्लए कामदेउ ठविउ कय-पजलि-हत्थें विण्णविउ ॥१॥
"परमेसर ! कारुण्णु वियप्पहि । जिह मणु तिह घर-पगणु चप्पहि ।
त णिसुणिवि उवयरियउ तेत्तहें । त तहें रमणिहें मदिरु जें त्तहें ।
आणु दिण्णु णिसण्णउ रयणिहिँ । णिव्वत्तिय-मज्जण-भूसण-विहि ।
भोयणु भुत्तउ मत्ता-जुत्तउ । सरसु कइदें कव्वु 'व उत्तउ ।
कामें कामिणि भणिय हसेप्पिणु । . .. .

—णायकुमार-चरिउ (पृ० ४८-४९)

(ख) विवाह-वर्णन

समवयस-कुयर-सहुँ चलिउ जाव । पारभिय थुइ णग्गुडिहिँ ताव ।
णच्चति विलासिणि गीउ रम्मु । गायण गायतिहिँ सुकिय-कम्मु ।
गय णदण-वणि मडव-दुवारु । वर-तोरण-मडिउ रयण-फारु ।
तहिँ किउ ज जोग्गु पुरोहिएण । आयारु कुमग्गणि रोहिएण ।

फूलि-आशा-कदब-ोघ-धूली-रजो। मत्त-मायूर-वृन्दोँ कॉ केकारवो।
नीरधारा मुचत्-अबुवाह्-द्-धुनी। सगता सूद्भवा पास सीमंतिनी।
निर्गंल मदिर निष्क्रिय भूतल। धावमान रजाल प्रणाली-जल।
इष्ट-गोष्ठी-विशिष्टेहिँ विद्याचय। दिव्यगधर्वक काविय पायय।
विज्जुमाला-फुरत नभ दिक्प्रभ। तासु मेघागमे सोउ सौख्यावह्।

—आदिपुराण (पृ० ४०७)

(क) (वेश्या-बाजार)

वेश्यावाटहिँ भट्ट पइट्ठेँउ। मकरकेतु-पुरवेषहिँ देखेँउ।
कोइ वेश्य चितै गति-शून्या। ए थन एतहँ नखेँहि न भिन्ना।
कोइ वेश्य चिन्तै का वाढिय। नीलालक एतेहिँ न काढिय।
कोइ वेश्य चिन्ता की हारेँ। कठ न छिन्देँउ एहिँ कुमारेँ।
कोइ वेश्य अधराग्र समर्पै। भिज्जै-खीभै-तापै-कपै।
कोइ वेश्य रति-सलिलेँ सीँचिय। वेपै बलै घुरै रोमाचिय।
घत्ता। तो वीणा-कल-रव-भाषिणिया देवदत्तआ राज-विलासिनिया।
हिय-उल्लया कामदेव थापेँउ कृत-प्राजलि-हाथेँ विज्ञापिया॥१॥
"परमेश्वर! कारुण्य-वियापै। जेँहि मन तेँहि घर-आँगन प्रापै।"
सो सुनिया उपकरियउ तेँतहिँ। सो तेँहि रमणिहिँ मदिर जेँतहिँ।
अन्यो दीनु निषण्णउ रजनिहिँ। पूरावेँउ मज्जन-भूषण-विधि।
भोजन भुक्तउ मात्रायुक्तउ। सरस कवीन्द्रेँ "काव्य'व उक्तउ।
कामेँ कामिनि भनियो हसिके। . . ..

—णायकुमार-चरिउ (पृ० ४८-४९)

(ख) विवाह-वर्णन

समवयस-कुमर-सँग ले चलेँउ जब्ब। प्रारभेउ स्तुति नग्गुडिहिँ तब्ब।
नाचति विलासिनि गीत रम्य। गायन गायती सुकृत-कर्म।
गउ नदनवन-मडप-दुवार। वरतोरण-मडित रतन-स्फार।
तहँ किउ जो योग्य पुरोहितहीँ। आचार कुमार्ग-निरोधिहहीँ।

सुपइट्ठउ मंडव-मज्झि जाम । वरु दिट्ठउ सज्जण-जणहिँ ताम ।
चउरिइ[1] णिविट्ठ कंदप्प-मुत्ति । पासेहि णिवेसिय तासु पत्ति ।
अग्गइ पयवखु किउ धूमकेउ । किउ होमु हुणेप्पिणु तिव्व-तेउ ।
अम्मय-मइ पाणि करेण गहिउ । सीयारु पमेल्लिउ ताह अहिउ ।
तहों दिण्ण कण्ण विरइउ विवाहु । सव्वेहिँ उच्चरिउ "साहु साहु" ।
णवयारिवि मायरि कण्ण सहिउ । णिग्गउ वरु एहु विवाहु कहिउ ।
—जसहर-चरिउ (पृ० २१)

(ग) रानियोका जीवन

क'वि अलय-तिलय देविहि करइ । क'वि आदसणु अग्गइ धरइ ।
क'वि अप्पइ वर-रयणाहरणु । क'वि लिप्पइ कुकुमेण चरणु ।
क'वि णच्चइ गायइ महुर-सरु । क'वि पारभइ विणोउ अवरु ।
क'वि परिरक्खइ णिसियासि करी । क'वि वारि परिट्ठिय दडधरी ।
अक्खाणउ कावि किंपि कहइ । दिण्णउँ कणडल्लु कावि वहइ ।
क'वि वार वार विणएँ णवइ । क'वि सुरसरि-सर-सलिलहिँ ण्हवइ ।
क'वि मालउ चेलिउ उज्जलउ । ढोयइ सब-लहणु सुपरिमलउ ।
—आदिपुराण (पृ० ३६)

(घ) नारी-सौंदर्य-वर्णन

ताहि घरणि मरुएवि भडारी । जाहि रूव-सिरि अइ-गरुयारी ।
अक्करहँ पतिइ पय-पणवतिइ । लधियाइँ अम्हइँ णहयतिइ ।
कमयलराऍं काइँ गविट्ठउ । एम णाइँ णेउरहिँ पघुट्ठउ ।
पण्हिहि रत्तउ चित्तु पदसिउँ । अगुलियहिँ सरलत्तु पयासिउँ ।
अगुट्ठुण्णईइ ज गूढइँ । गुप्फइँ त किर पिसुणइँ मूढइँ ।
णीरोमउ विसिरिउ वट्टुलियउ । मसिणउ सोहियाउ उज्जलियउ ।
जघउ कमहाणिइ ओहरियउ । दिट्ठउ ण खल-मित्तहँ किरियउ ।

---

[1] चबूतरेपर

सु-पईठेउ मडप-माँझ जब्ब । वर देखे॑उ सज्जन-जने॑हिँ तब्ब ।
चउरे॑ निविष्ट कदर्प-मूर्त्ति । पासेहिँ निवेसेउ तासु पत्नि ।
आगे॑हिँ प्रदक्षणे॑उ धूमकेतु । किउ होम हो॑मावन तीव्र-तेज ।
अमृतमय-पाणि करेहिँ गहे॑उ । शीत्कार प्रमेलत[1] स ाहि अहिउ ।
तहँ दियउ कन्याँ विरचे॑उ विवाह । सर्वेहिँ उच्चरे॑उ "साधु साधु" ।
नवकारिहु मायेर कन्याँ-सहित । निर्-गउ वर एहु विवाह कथित ।
—जसहर-चरिउ (पृ० २१)

(ग) रानियोका जीवन

को॑इ मलय-तिलक देविहिँ करई । को॑इ आरसिही॑ आगे धरे॑ई ।
को॑इ अर्पै॑ वर-रतनाभरना । को॑इ लेपै कुकुमही॑ चरणा ।
को॑इ नाचै गावै मधुर-स्वरा । को॑इ प्रारभै विनोद अपरा ।
को॑इ परि-रक्षै निशित-ासि करी । को॑इ द्वारे॑ परिट्-ठिउ दडधरी ।
आख्यानहु को॑इ किछू कहई । दीने॑उ कनइल्लु[2] को॑इ वहई ।
को॑इ बार बार विनये नमई । को॑इ सुरसरि-सर-सलिले॑हिँ स्नपई ।
को॑इ मालउ चोलिंउ उज्ज्वलऊ । धोवै सब लहण[3] सुपरिमलऊ ।
—आदिपुराण (पृ० ३६)

(घ) नारी-सौंदर्य-वर्णन

ताहि घरनि मरुदेवि भटारी[4] । जाहि रूपश्री अति गुरुकारी ।
अमरन् पक्तिहिँ पद-प्रणमतिइ । लघायऊ हमरो नख-पक्तिइ ।
कमतल राये काह गवेषिउ । ऍहि न्याई॑ नूपुरेहि प्रघोषिउ ।
पाष्णिहिँ रक्तउ चित्त प्रदर्शेउ । अगुलियहिँ सरलत्त्व प्रकाशिउ ।
अगुठ-उन्नति ही जिमि गूढा । गुल्फउ सो फुर पिशुना मूढा ।
नी-रोमउ विसिरिउ वर्त्तुलियउ । मसृणउ सोहियाउ अगुलियउ ।
जघउ क्रमहानी अव-धरियऊ । दीसे॑उ जनु खल-मित्रहँ किरियउ ।

---

[1] छोडती [2] कर्ण-फूल [3] लहँगा (?) [4] भट्टारिका=महाराणी

गूढइँ णरवइ-मता भासइँ । वायरणाइँ व रइय-समासइँ ।
णिविड-संधि-बंधइँ णं कव्वइँ । देविहि जण्हुयाइँ[1] अइभव्वइँ ।
ऊरुय-खंभ-णराहिव-दमणहु । तोरण खंभाइँ'व रइ-भवणहु ।
जेण स-सुर-णरु तिहुयणु जित्तउ । कामतच्चु ज देवहिँ वुत्तउ ।
दिण्ण थत्ति तहु सोणी विंवहु । किं वण्णमि गरुयत्तु णियं वहु ।
घत्ता । गभीर णाहि तहि मज्झु किसु, उयरु स-तुच्छउ दिट्ठु मइँ ।
ससग्गवसे गुणु कासु हुउ, जो णवि जायउ जम्मि सइँ ॥१५॥
तिवली-सोवाणेहिँ चडेप्पिणु । रोमावलि-कुहिणी लँघेप्पिणु ।
सिहिण-गिरिंदारोहण-दोरइ । लग्गहु वंम्महु मोत्तिय-हारइ ।
पिय-वसियरणु वसइ भुय-मूलइ । सुइ-सोहग्गु जाहि हत्थयलइ ।
णेह-बंधु मणि-बंधि परिट्ठिउ । लायण्णें समुद्दु ण सठिउ ।
जाहि तणउँ त जणिय-वियारउँ । महुरउ इयरउ केरउ खारउ ।
कठलीह णउ कवु पावइ । पर-सास-ऊरिउ कहँ जीवइ ।
णियउ णिविट्ठउ जिय-ससि-कंतिहि । धोयहि धवलहि णाइँ पवालउ ।
अहर-विंवु रेहइ रायालउ । मुक्तावलियहि णाइँ पवालउ ।
अम्हहँ ठाइ कयाइ ण समुहु । उज्जुहु णासावसु वि दुम्मुहु ।
भउँहउँ वकत्तणु' वि ण सहियउ । णयणहिँ जपि'व कण्णहुँ कहियउ ।
णिसि-दिणि ससि रवि गयण विलंविय । विण्णि'वि गडयलइ पडिविंविय ।
कुंडल-सिरि वहंति धवल-च्छिहि । जिण-जणणियहि सलक्खण-कुच्छिहि ।
कुडिलालय भाल-यलि णिरंतर । मुह-कमलहु घुलंति ण महुयर ।
अवरु' वि ताहँ भारु विवरेरउ । मुह-ससहर-भएण ण तमरउ ।
तरुणिहे पिट्ठि पइट्ठउ दीसइ । कुसुम-रिक्ख-मीसियउ विहासइ ।

—आदिपुराण (पृ० ३१-३२)

---

[1] जाह्नवी (गंगा)

गूढा नरपति-मत्रा भाषा। व्याकरणहिँ इव रचित-समासा।
निविड-सधि[1]-वध जनु काव्या। देवि जाह्नवी इव अतिभव्या।
ऊरू-खभ नराधिप-दमनहँ। तोरण-खभा इव रति-भवनहँ।
जातेँ स-सुर-नर-त्रिभुवन जीतउ। कामतत्त्व जो देवेँहिँ उक्तउ।
दीन थाप तेँहि श्रोणीबिंवहु। का वरनौ गरुअत्त्व नितबहु।
घत्ता। गभीर नाभि तहि माँझ कृश, उदर स-तुच्छउ देखु मईँ।
ससर्ग वशे गुण कासु हुयेउ, जो नहि जायेउ जन्मतेँईँ ॥१५॥
त्रिवली-सोपानेहि चढेविय। रोमावलि केँहुनी लघेविय।
स्तनक-गिरीन्द्रारोहण-डोरा। लागहु मन्मथ मौक्तिकहारा।
प्रिय-वशिकरण वसै भुज-मूलहिँ। शुचि सौभाग्य जाहि हत्थतलहिँ।
स्नेहबध मणिबध परिट्-ठिउ। लावण्ये समुद्र ना स-ठिउ।
जाहिकेर सो जनित-विकारा। मधुरउ इतरहु-केरउ खारा।
कठलीहिँ नहिँ कबू पावै। पर-श्वासा-पूरित किमि जीवै।
निकट-निविष्टउ जित-शशि-कान्तिहिँ। धोवै धवलहि न्याइ प्रवालहिँ।
अधर-बिंब रोचै रागालउ। मुक्तावलियहिँ न्याइँ प्रवालउ।
हमरे ठहर कदाचि न समुख। ऋज्जुहु नासा-वशउ दुर्मुख।
भौँहउँ वकपनहु नहि सहियउ। नयनहिँ जल्पिय कर्णहँ कहियउ।
निशि-दिन रवि-शशि गगने लविउ। दोऊ गड-तलैँ प्रतिविंवउि।
कुडल-श्री वहत धवलाक्षिहिँ। जिन-जननियहि स-लक्षण-कुक्षिहिँ।
कुटिलालक भालतले निरतर। मुखकमलहु घुरति जनु मधुकर।
अवरउ ताहँ भार विवरेरउ। मुख-शशधरभरेहिँ जन तमसउ[2]।
तरुणिहिँ पृष्ठ पईठेउ दीसै। कुसम-ऋक्ष-मिश्रितउ विभासै।

—आदिपुराण (पृ० ३१-३२)

---

[1] सर्ग (अपभ्रंश काव्योंमें सधि और कडवका क्रम होता है) [2] अधकार

राएँ गउ णिय-सिविरहु तरतु । . . । पत्तउ सुरसरि-जल-मज्झ-ठाणु ।
जोयवि गगहि सारसहँ जुयलु । जोयइ कतहि थण-कलस-जुयलु ।
जोयवि गगहि सुललिय-तरग । जोयइ कतहि तिवली-तरग ।
जोयवि गगहि आवत्त-भवँणु । जोयइ कतहि वर-णाहि-रमणु ।
जोयवि गगहि पप्फुल्ल-कमलु । जोयइ कतहि पिउ-वयण-कमलु ।
जोयवि गगहि वियरत मच्छ । जोयइ कतहि चल-दीहरच्छ ।
जोयवि गगहि मोत्तियहु पति । जोयइ कतिहि सिय-दसण-पति ।
जोयवि गगहि मत्तालि-माल । जोयइ कतहि धम्मेल्ल णील ।
घत्ता । णिय-गेहिणि वम्मह-वाहिणि, देवि सुलोयण जेही ।
मंदाइणि जण-मुह-दाइणि, दीसइ राएँ तेही ॥७॥

—आदिपुराण (पृ० ४६)

(क) नारी-नख-शिख—

णिय वणिणा कणय-उरहों मयच्छि । दिट्ठा वरेण ण मयणलच्छि ।
जो कतह णह-यलि दिट्ठु राउ । मुहु भावइ सो णह-यर-णिहाउ ।
चारत्तु णहहँ एए कहति । अगुट्ठय परमुण्णय, वहति ।
गुप्फइँ गूढत्तणु ज धरति । ण भुअणु जिणहु मतु'व करंति ।
जघा-जुयलउ णेउर-दुएण । वण्णिज्जइ ण घोसें हुएण ।
वग्गइ वम्महु वहु-विग्गहेण । जण्हुय सधाएँ परिग्गहेण ।
ऊरू-थभहिँ रइघरु अणेण । रेहइ मणि-रसणा[1] तोरणेण ।
कडियल-गरुयत्तणु त पहाणु । ज धरिया मयण-णिहाण-ठाणु ।
मणि चितवतु सय-खडु जाहि । तुच्छोयरि किह गभीर-णाहि ।
सो सिय ससि-वयणहे तिवलि-भग । लायण्ण-जलहों णावइ तरग ।
थण-थड ढत्तणु परमाण णासु । भुय-जुयलउ कामुय-कठ-पासु ।
गीवहे गइवेयउ हियय-हारि । बद्धउ चोरु'व रूवावहारि ।
अहरुल्लउ वम्मह-रस-णिवासु । दतहि णिज्जिउ मोत्तिय-विलासु ।

---

[1] कांची (करधनी)=कटिका आभूषण

राय गऊ निज शिविरेहिँ तुरत । . . . । . पायउ सुरसरि-जल-माँझ थान ।
जोयउ गगहिँ सारसहँ युगल । जोवै काता-स्तन-कलश-युगल
जोयउ गगहिँ सुललित-तरग । जोवै काता-त्रिवली-तरग ।
जोयउ गगहिँ आवर्त्त-भ्रमण । जोवै काता-वर-नाभि-रमण ।
जोयउ गगहीँ प्रफुल्ल कमल । जोवै काता-प्रियवदन-कमल ।
जोयउ गगहिँ विचरत मच्छ । जोवै कान्ता-चल-दीर्घ-अक्ष ।
जोयउ गगहिँ मोतियहु पाँति । जोवै कान्ता-सित-दशन-पाँति ।
जोयउ गगहिँ मत्तालिमाल । जोवै कान्ता-धम्मिल्ल[1]-नील ।
घत्ता । निज-गेहिनि मन्मथ-वाहिनि, देवि सुलोचन जैसी ।
मदाकिनि जन-सुख-दायिनि, दीसै राजहिँ तैसी ।।७।।

—आदिपुराण (पृ० २६)

(क) नारी-नख-शिख—

निज वर्णे कनक-उरहोँ मृगाक्षि । दीसति वरेहि जिमि मदन-लक्ष्मि ।
जो कतह नभ-तल देखु राव । मुहु भावै सो नभचर-निधाव ।
चारुत्व नभहँ ईँहै कहति । अगुट्ठक-परमुन्नत वहति ।
गुल्फा गूढत्तन जो धरति । जनु भुवन-विजय मत्र इव करति ।
जघा-युगलउ नूपुर-द्वयेहिँ । वर्णिज्जै जनु घोषे हुयेहिँ ।
वल्गै मन्मथ वहु-विग्रहेहिँ । जानू सधान-परिग्रहेहिँ ।
ऊरू-थभहिँ रतिघर एँहीहिँ । राजै मणि-रसना-तोरणेहिँ ।
कटितल गरुत्तन सो-प्रधान । जनु धरिय मदन-निधान-थान ।
मणि चितवत शतखड जाह । तुच्छोदरि कहँ गभीर नाभि ।
शेषिय शशिवदनहँ त्रिवलि-भग । लावण्य जलहँ नदिही तरग ।
स्तन-कठिनत्वहु परमान-नाश । भुज-जुगलउ कामुक-कठपाश ।
ग्रीवहेँ गतिवेगउ हृदयहारि । वद्धउ चोर इव रूपापहारि ।
अधरुल्लउ मन्मथ-रस-निवास । दतेहिँ जीतेँउ मौक्तिक-विलास ।

[1] केशपाश

घत्ता। जइ भउहाँ-कुडिलत्तणेण, णर सुरधणुरुहेण पहयमय।
तो पुणु वि काइँ कुडिलत्तणहों, सुदरि-सिरि धम्मिल्ल-गय ॥१७॥
—णायकुमार-चउि (पृ० १२)

(च) कुपिता नायिका—

'हेट्ठामुह वहु वरेण भणिया। किं हुइ तुहुँ मलिणाणणिया।
घणु सोहइ एक्कइ विज्जुलइ। वणु सोहइ एक्कइ कोइलइ।
इह सोहमि हउँ एक्काइ पइँ। गुरु-वयणु करेवउ तोवि मइँ ;
मा रूसहि सज्जण-वच्छलिइ। अलि-णील-कुडिल-भउँ-कोतलिइ।
तेँ वयणेँ रोस-णियत्तणउँ। जायउँ तहि रम्मु पेम्मु घणउँ।
वप्पिल सपाइउ रमण-वसा। तडि-रय-तडि-वेयहु तणिय ससा।
चल-णयण-जुयल-णिज्जिय-हरिणि। रइकता मयणवई तरुणि।
—आदिपुराण (पृ० ५६१)

(छ) नारी-विलाप—

ते णव वधव सहुँ परिवारें। सोउ करति दुक्ख-वित्थारें।
सा सिवएवि रुयइ परमेसरि। "हा देवर! पर-भड-गय-केसरि।
हा किं जीविउँ तिणु परिगणियउँ। कोमल-वउ हुय-वहि किं हुणियउँ।
हा पयाइ किं किउँ पेसुण्णउँ। हा किं पुरि-परिभमहुँ ण दिण्णउँ।
हा कुल-धवल केव विद्धसिउ। हा जय-सिरि विलासु किं णिरसिउ।
हा पइँ विणु सोहइ ण घरगणु। चद-विवज्जिउँ ण गयणगणु।
हा पइँ विणु दुक्खें पुरु रण्णउँ। हा पइँ विणु माणिणि-मणु सुण्णउँ।
हा पइँ विणु को हारु थणतरि। को कीलइ सरहसु'व सरवरि।
पइँ विणु को जण-दिट्ठिउ पीणइ। कदुय-कील देव को जाणइ।
हा पइँ विणु को एवहिँ सूहउ। पइँ आपेक्खिवि मंयणु'वि दूहउ।

---

[१] निम्नमुख, नतमुख

घत्ता। यदि भौहाँ-कुटिलत्तनेहिँ, नर सु-धनु रुहेहिँ प्रभामय।
तो पुनिहु काइँ कुटिलत्तनहीँ, सुदरि श्री-धम्मिल्ल-गत ॥१७॥
—णायकुमार-चरिउ (पृ० १२)

(च) कुपिता नायिका—

हेट्ठामुँह बधु वरेहिँ भनियाँ। "का हुइ तुहूँ मलिनाननिया।
घन सोहै एकइ विज्जुलई। वन सोहै एकइ कोइलई।
ऍहिँ सोहौँ मै एकइ तुहई। गुरुवचन करेबउ तोउ मई।
ना रूसहु सज्जन-वत्सलिई। अलि-नील-कुटिल-भौँ-कुन्तलिई।
तव वदने रोषयित्तनऊ। जायउ तहँ रम्य-प्रेम-घनऊ।
बप्पिल स-पायेउ रमण-वशा। तडि-रज-तडि-वेगहँकेर श्वसा।
चल-नयन-युगल-निर्जित-हरिनी। रतिकता मदनवती तरुणी।"
—आदिपुराण (पृ० ५६१)

(छ) नारी-विलाप—

सो नव-वाधव-सँग परिवारेँ। सोउ करति दुख विस्तारेँ।
सा शिवदेवि रोँवै परमेश्वरि। "हा देवर! परभट-गज-केसरि।
हा का जीवित तृण परिगणियउ। कोमल-वय हुतवहेँ का होँमियउ।
हा प्र-जाइ का किउ पैशुन्यउ। हा का पुरि-परिभ्रमउ न दीनेँउ।
हा कुल-धवल कैस विध्वसेँउ। हा जयश्री विलास का निरसेँउ।
हा तैँ विनु सोहै न घरागन। चद्र-विवर्जित जनु गगनागन।
हा तैँ विनु दुखे पुर रुन्नउ[1]। हाँ तैँ विनु मानिनि-मन सुन्नउ।
हा तैँ विनु को हार थनतरेँ। को क्रीडै सरहस'व सरवरेँ।
तैँ विनु को जनदृष्टिहिँ प्रीणै। कदुक-क्रीड देव! को जानै।
हा तैँ विनु को ऐसो सूखउ। तैँ आपेक्षिय मदनउ दूखउ।

---

[1] रोयेउ

हा पइँ विणु णिय-गोत्त-ससकहु । को भुय-वलु समुद्द-विजय -कहु ।
हा पइँ विणु सुण्णउँ हियउल्लउँ । को रक्खइ मेरउ कडउल्लउँ ।
छार-रासि हूयउ पविलोयउ । एव वंधुवग्गें सो सोइउ ।
पजलीहिँ मीणावलि-माणिउँ । ण्हाइवि सव्वहिँ दिण्णउँ पाणिउँ ।
—उत्तरपराण (प० ३४)

(५) युद्ध

छुडु गज्जिय गुरु-सगाम-भेरि । ण भुक्खिय तिहु-यण गिलिवि मारि ।
छुडु णिग्गउ भुय-वलि साहिमाणि । छुडु एत्तहि पत्तउ चक्कपाणि ।
छुडु कालें णीणिय दीह-जीह । पसरिय माणुस-मसासणीह ।
थिय लोयवाल जीविय-णिरीह । डोल्लिय गिरि रुजिय गहणि सीह ।
छुडु भड-भारें ढलहलिय धरणि । छुडु पहरण-फुरणें हरिउ तरणि ।
छुडु चदवलाइँ पलोइयाइँ । छुडु उहयवलाइँ पधावियाइँ ।
छुडु मच्छर-चरियइँ वड्ढियाइँ । छुडु कोसहु खग्गहिँ कड्ढियाइँ ।
छुडु चक्कइँ हत्थुग्गमियाइँ । छुडु सेल्लइँ भिच्चहिँ भीमयाइँ ।
छुडु कोंतइँ धरियइँ समुहाइँ । धूमवइँ जायइँ दिम्मुहाइँ ।
छुडु मुट्ठि-णिवेसिय लउडि-दड । छुडु पुखुज्ज-गुणि णिहिय कड ।
छुडु गय कायर थरहरिय-प्राण । छुडु ढोइय सदण ण विमाण ।
छुडु मेठ-चरण-चोइय-मयग । छुडु' आसवार-वाहिय-तुरग ।
घत्ता । छुडु छुडु कारणि वसुमइहि सेण्णइँ जाम हणति परोप्परु ।
—आदिपुराण (पृ० २८८)

जयसिरि[1]-रामालिंगण-लुद्धहँ । एक्कमेक्क पहरतहँ कुद्धहँ ।
असि-सघट्टणि उट्ठिउ हुयवहु । कढकढतु सोसिउ सोणिय-दहु ।
दसवि दिसा सइँ तेण पलित्तइँ । पक्खर-चमरइँ चिंधइँ छत्तइँ ।
ता पडिवक्ख-पहर-भय-तट्ठउँ । महुमहवलु दस-दिसि वह णट्ठउँ ।

---

[1] कृष्ण-जरासंधका युद्ध

हा तैँ विनु निजगोत्र-शशाकहु । को भुज-बल-समुद्र-विजयाकहु ।
हा तैँ विनु सुन्नउ हृदयुल्लउ । को राखै मेरो कडयल्लउ ।
क्षार-राशि होयउ प्र-विलोकउ । इमि वधू-वर्गे सो सोयउ ।
प्राजलीहिँ मीनावलि-मानिउ । स्नाइब सर्वहिँ दिन्नउ पानिउ ।
—उत्तरपुराण (पृ० ३४)

(५) युद्ध

यदि गर्जिय गुरु-सग्राम-भेरि । जनु भुक्खिय त्रिभुवन गिलबि मारि ।
यदि निर्-गउ भुजबलेँ साभिमान । यदि एतहिँ आयउ चक्रपाणि ।
यदि कालेँ लेलिय दीर्घ-जीह । पसरिय मानुष-मासाश[1]नीह ।
ठिय लोकपाल जीवित-निरीह । डोलिय गिरि गर्जिय गहनेँ सीँह ।
यदि भटभारेँ दलदलिय धरणि । यदि प्रहरणु-फुरणे हरेँउ तरणि ।
यदि चद्र-बलाइँ प्रलोकिताइँ । यदि उभय-बलाइँ प्रधाविताइँ ।
यदि मत्सर-चरितहँ बद्धियाइँ । यदि कोपहँ खड्गहु कड्ढियाइँ ।
यदि चक्रैँ हाथ्-उट्ठाइयाइँ । यदि सेलइँ भृत्येहिँ भ्रमियाइँ ।
यदि कुन्तइँ धरियइँ सँमुखाइँ । धूमधा जावैँ दिग्मुखाइँ ।
यदि मुष्टि-निवेशिय लउरि-दड । यदि पुख्-उज्-ज्यागुणेँ निहित-काड ।
यदि गज कायर थरहरिय प्राण । यदि ढोइय स्यदन जनु विमान ।
यदि मेठ[2]-चरण-चोदित-मतग । यदि आसवार-चालिय-तुरग ।
घत्ता । यदि यदि कारणे वसुमतिहि, सेनइ जब्ब हनति परस्पर ।
—आदिपुराण (पृ० २८८)

जय-श्री-रामा-'लिगन-लुब्धहँ । एक-एक प्रहरतँह क्रुद्धहँ ।
असि-सघट्टनेँ उट्ठेँउ हुतवह । कडकडत शोषेँउ शोणित-दह ।
दसउ दिशाशइँ तेहिँ प्रलिप्तहँ । पक्खर-चमरैँ चिन्हैँ छत्रहँ ।
सो प्रतिपक्ष-प्रहर-भय-त्रस्तउ । मधुमथ-बल दशदिशि पथ नष्टउ ।

---

[1] नरमासभक्षी [2] महावत

पोरिस-गुण-विभाविय-वासउ । "हणु" भणतु सइँ धाइउ केसउ ।
णरहरि तुरय-रहिंग सचूरइ । सारइ दारइ मारइ जूरइ ।
धीरइ हक्कारइ पच्चारइ । हणइ वणइ विहुणइ विणिवारइ ।
दमइ रमइ, परिभमइ पयट्टइ । सघट्टइ लोट्टइ आवट्टइ ।
सरइ धरइ अवहरइ ण सचइ । खचइ कुचइ लुचइ वचइ ।
उल्लालइ वालइ अप्फालइ । रूसइ दूसइ पीलइ हूलइ ।
ईहइ सखोहइ आवाहइ । रोहइ मोहइ जोहइ साहइ ।
अत ललतइँ गाढइँ ताडइ । रुड-मुड-खडोहइँ[1] पाडइ ।
वेढइ उव्वेढइ सदाणइ । रक्खइ भुक्खारीणइँ पीणइ ।
वग्गइ रगइ णिग्गइ पविसइ । दलइ मलइ उल्ललइ ण दीसइ ।
घत्ता । कुस-पास-विलुचइ हय-वरहँ, गल-गिज्जउँ तोडइ गयवरहँ ।
वर-वीर रणगणि पडिखलइ । मडलियहँ रयण-मउड दलइ ।।८।।
—उत्तरपुराण (पृ० १०८)

उद्धवत वहुमच्छरो भडो । हत्थि-खभ-हत्थो महाभडो ।
चरण-चार-चालिय-धरायलो । धाइयो भुया-तुलिय-मयगलो ।
ता कयतेहि तेण दारुण । परियलत-वण-रुहिर-सारुण ।
मलिय-दलिय-पडिखलिय-सदण । णिविड-गय-घडा-वीढ-मद्दण ।
अरिदमणु पधायउ साहिमाणु । "हणु हणु" भणतु कड्ढिवि किवाणु ।
—णायकुमार-चरिउ (पृ० ४७-४८)

सगाम-भेरीहिँ, ण पलयमारीहिँ । भुअण गसतीहिँ, गहिर रसतीहिँ ।
सण्णद्ध-कुद्धाइँ; उद्धुद्ध-चिंधाइँ । उववद्ध-तोणाइँ, गुण-णिहिय-वाणाइँ
करि-चडिय-जोहाइँ, चल-चामरोहाइँ । छत्तधयाराइँ, पसरिय-वियाराइँ ।
वाहिय-तुरगाइँ, चोइय-मयगाइँ । चल-धूलि-कविलाइँ, कप्पूर-धवलाइँ ।
मयणाहि-कसणाइँ, कय-वइरि-वसणाइँ । भड-दुण्णिवाराइँ, रह-दिण्ण-धाराइँ ।
रोसाव उण्णाइँ, चलियाइँ सेण्णाइँ । तिहुअण-रईसस्स, अतर-णरिन्दस्स ।

---

[1] टुकडे-टुकड़े करता है

पौरुष-गुण-वीभावित-वासव। "हन" भनत स्व धायेँउ केशव।
नरहरि तुरग-रथेहिँ स-चूरै। सारै दारै मारै जूरै।
धीरै हक्कारै प्रच्-चारै। हनै वनै विधुनै विनिवारै।
दमै रमै परिभ्रमै-प्रवर्तै। सघट्टै लोटै आवर्त्तै।
सरै धरै अपहरै न सचै। खचै कुचै नोचै वचै।
उल्लालै बालै आस्फालै। रूषै दूषै पीडै हूलै।
ईहै सक्षोभै आबाधै। रोधै मोहै जोधै साधै।
अत ललतै गाढेँ ताडै। रुड-मुड-खडोघैँ पाटै।
वेठै[1] उद्बेठै सदानै[2]। रक्खै भूखापीडिय प्रीणै।
वलै रगै निर्-गै प्रविशै। दलै मलै उल्ललै न दीसै।

घत्ता। कुशपाशउ नोचै हयवरहँ, गलगिज्जउँ तोडै गजवरहँ।
वरवीर-रणगनेँ प्रतिस्खलै। मण्डलिकहँ रत्नमुकुट दलै॥८॥

—उत्तरपुराण (पृ० १०८)

उद्-धाँवत वहुमत्सरा भटा। हस्ति-खभ-हस्ता महाभटा।
चरन-चार-चालित-धरातला। धायऊ भुजा-तुलित-मदकला।
तो कृतान्तेँहिँ तेहि दारुण। परिचलत-व्रण-रुधिर-सारुण।
मलिय दलिय प्रति-स्खलिय स्यदन। निविड-गजघटा-पीठ-मर्दनं।
अरिदमन प्रधायउ साभिमान। "हन हन" भनत काढे कृपाण।

—णायकुमार-चरिउ (पृ० ४७-४८)

सग्राम-भेरिहिँ जनु प्रलय-मारीहिँ। भुवनहँ ग्रसतीहिँ, गभिर-रसतीहिँ।
सन्नद्ध-क्रुद्धाइँ उर्ध्वोर्ध्व चिन्हाइँ[3]। उपवद्ध-तूणाइँ, गुण-निहित-बाणाइँ।
करि-चढिय-योधाइँ चल-चामरोघाइँ। छत्र-धकाराहिँ, प्रसरिय विकाराहिँ।
चालिय तुरगाइँ, चोदिय मतगाइँ। चूल-धूलि-कपिलाइँ, कर्पूर-धवलाइँ।
मृगनाभि-कृष्णाइँ, कृत-वैरि-वसनाइँ। भट-दुर्विवाराइँ, रथे दीय-धाराइँ।
रोषावपूर्णाइँ, चलिताइँ सेनाइँ। त्रिभुवन-रतीशाह, अन्तर-नरेन्दाह।

---

[1] घेरै [2] चढ़ाई करै [3] पताका

दुग्गावहारेण, जण-पाय-भारेण। धरणी'वि संचलइ, मदरु'वि टलटलइ।
जलणिहि'व झलझलइ, विसहरुवि चलचलइ।
जिगि-जिगिय खग्गाइँ, णिद्दलिय मग्गाइँ।
समरेक्क-चित्ताइँ, गिरि-णयरु-पत्ताइँ। सुकयाइँ फलियाइँ, मित्ताइँ मिलियाइँ।..
घत्ता। आयउ चडप-पजोउ, अरिवम्मु'वि सण्णज्झइ।
धीय ण देइ महतु, वलवतें सह जुज्झइ॥५॥
सण्णज्झतु भणइ भडु वच्चमि। अज्जु वइरि-सीसें रणु अच्चमि।
कड्ढिवि अज्जु वइरि-वण-सोणिउ। वड्ढउ असिवरें मेरउ[1] पाणिउ।
कोवि भणइ उज्जुय-पय देप्पिणु। पिसुण-कव्वु पहु-पुरउ लुणेप्पिणु।
कोवि भणइ लइ सत्थइँ सिक्खिउ। अज्जु वराणणें हउँ रणें दिक्खिउ।
कोवि भणइ खल वेसावाडउ[2]। खाउ अज्जु सिव हियउ महारउ।
सामिहें केरउ रिणु आवग्गउ। कोवि भणइ महुँ वट्टइ लग्गउ।
खट्टा-मरणे काइँ करेसिमि। कोवि भणइ सर-सयणें मरेसमि।
भड-मुह-मुक्क-हक्क-लल्लक्कइँ। भोसिय-सुक्क-सक्क-चदक्कहिँ।
वज्ज-मुट्ठि-चूरिय-सीसक्कइँ। उर-यल-भरिय-फुरिय-चल-चक्कइँ।
सुरकामिणि-यण-णयण-णिरिक्कइँ। विजयलच्छि-सुर-गणिय-मिरिक्कइँ।
—णायकुमार-चरिउ (पृ० ७४-७५)

(६) हस्ति-युद्ध-क्रीड़ा

दावंतु दत करु करि घिवइँ। आलिंगइ सव्वगइँ छिवइ।
मणु रक्खइ मेलेप्पिणु दमइ। पुणु ढुक्कइ चउपासहिँ भमइ।
स-रयणु-वहु-रयण-विहूसणहु। अणुहरइ हत्थि कामिणि जणहु।
चलु चतु-चरणतरि पइसरइ। हक्कइ हुकारइ णीसरइ।
लघइ आसघइ कुभयलु। पावइ पुच्छुप्पलु वच्छयलु।
दस-दिसिहिँ 'वि हिंडइ कुजरहु। पहु विज्जु-पुजु ण जलहरहु।

---

[1] मेलउ [2] वेशवाट (नगरका प्रधान पथ)

दुर्गा-'पहारेहिँ, जन पाद-भारेहिँ । धरणीउ सचलै, मदरहु टलटलै ।
जलनिधिउ झलझलै, विषधरउ चलचलै ।
जिगजिगिय खड्गाइँ, निर्दलिय मार्गाइँ ।
समर्-एक-चित्ताइँ गिरि-नगर प्राप्ताइँ । सुकृताइँ फलिताइँ मित्राइँ मिलिताइँ ।
घत्ता । आयउ चडप्रजोत अरिवर्मउ सन्नद्धई ।
धीयाँ न देइ महत, बलवतेँ सँग जुज्झई ।।५।।
"सन्नद्धहहु" भनत भट वचौँ । आज वैरि-शीशे रण अचौँ ।
काढबि आज वैरि-व्रण-शोणित । बाढहु असिवर मेरहु पाणिउ ।
कोइ भनै "ऋज्जुअ पद देइय । पिशुन-काव्य प्रभु-पुरब लुनेविय ।"
कोइ भनै "लेइ शस्त्रइँ सीखेउ । आज वराननेँ हौँ रणेँ देखेँउ ।"
कोइ भनै "खल वेश्या-वाटउ । खाउ आज सोँइ हृदय हमारउ ।
स्वामिहिँ केरउ ऋण आवग्गउ" । कोइ भनै "मैँ वाटे लग्गउ ।
खाटे मरने काइँ करीहौँ" । कोइ भनै "शर-शयन मरीहौँ ।"
भट-मुँह मुच हाँक-ललकारइँ । भीषित शुक्र-शक्र-चद्रार्कइँ ।
वज्र-मुष्टि चूरिय शीशक्कइँ । उर-तल भरिय फुरिय चल-चक्रइँ ।
सुर-कामिनि-जन-नयन-निरीक्षैँ । विजय-लक्ष्मि सुर गनिय पुलक्कैँ[1] ।
—णायकुमार-चरिउ (पृ० ७४-७५)

(६) हस्ति-युद्ध-क्रीड़ा

दाबत दत कर करि देवई । आलिंगै सर्वांगहँ छुवई ।
मन राखै मेलियई दमई । पुनि ढूकै चौपासे भ्रमई ।
स-रचन-वहुरतन-विभूषणहीँ । अनुहरै हस्ति कामिनि जनहीँ ।
चलु चतु-चरणातर पइसरई । हक्कै हुकारै निसरई ।
लघै आसघै कुम्भ-तलू । पावै पुच्छोत्पल-वक्षतलू ।
दशदिशहिँहु हिडै कुजरहू । प्रभु-विज्जु-पुज जनु जलधरहू ।

[1] मुस्कराये

णिम्महइ गहीर-सरेण सरु। रगतु धरेइ करेण करु।
आकुंचिय-तणु वचण-कुसलु। अक्कमिं वि कमेण दसण-मुसलु।
बलिणा वलेण णिव्वूढ-वलु। जुज्झेप्पिणु सुइरु महल-वलु।
—आदिपुराण (पृ० ३९)

५–धार्मिक आचार

(१) श्रोत्रिय कौन ?

वणि-वाणिज्जारउ जाणियउँ। किमियरु हलधारउ भाणियउ। ..
सो सोत्तिउ जो ण दुट्ठु भणइ। सो सोत्तिउ जो णउ पसु हणइ।
सो सोत्तिउ जो हियएण'मुइ। सो सोत्तिउ जो परमत्थ-रुइ।
सो सोत्तिउ जों ण मास गसइ। सो सोत्तिउ जो ण सुयणि भसइ।
सो सोत्तिउ जो जणु पहि थवइ। सो सोत्तिउ जो सुतवें तवइ।
सो सोत्तिउ जो मतहूँ णवइ। सो सोत्तिउ जो ण मिच्छु चवइ।
सो सोत्तिउ जो ण मज्जु पियइ। सो सोत्तिउ जो वारइ कुगइ।
सो सोत्तिउ जो जिण-देसियउ। पण्णा-सतिकिरियहिँ भूसियउ।
घत्ता। जो तिल-कप्पासइँ दव्वविसेसइँ, हुणिवि देव गह पीणइ।
पसु-जीव ण मारइ मारय वारइ, परु अप्पु'वि समु जाणइ ॥६॥
—उत्तरपुराण (पृ० ३०९-१०)

(२) कापालिकोका धर्म-कर्म

तहि जगह भयाउल अलिय-रासि। भइरउ-अहिणामि सव्वगासि।
तहि भमइ भिक्ख अरु देइ सिक्ख। अणुगयहँ जणहँ कुल-मग्ग-दिक्ख।
बहु-सिक्खहिँ सहियउ डभयारि। घरि घरि हिंडइ हुकारकारि।
सिरि टोप्पी दिण्णर वण्ण-वण्ण। सा झपवि सठिय दोण्णि कण्ण।
अंगुल-दुतीस-परिमाणु दडु। हत्थें उप्फालिवि गहइ चडु।
गलि जोग-वट्टु सज्जिउ विचित्तु। पाउडिय जुम्मु पइँ दिण्णु दित्तु।

निर्मंथै गँभीर स्वरेहिँ सरा। रगत धरेइ करेहिँ करा।
आकुंचित-तनु वचन-कुशला। आक्रमेउ क्रमेँहिँ दशन-मुसला।
बलिना वलेन निर्व्यूढ-बला। जुज्झेबिउ स्वरै महत-बला।

—आदिपुराण (पृ० ३९)

५—धार्मिक आचार

(१) श्रोत्रिय कौन ?

बनिय-बनिजारउ जानियऊँ। कृषिकर-हलधारउ भानियऊँ।
सो श्रोत्रिय जो न दुष्ट भनई। सो श्रोत्रिय जो ना पशु हनई।
सो श्रोत्रिय जो हृदयेहिँ शुची। सो श्रोत्रिय जो परमार्थ-रुची।
सो श्रोत्रिय जो न मास ग्रसई। सो श्रोत्रिय जो न सुजनेँ भषई।
सो श्रोत्रिय जो जन पथेँ थपई। सो श्रोत्रिय जो सुतपेँ तपई।
सो श्रोत्रिय जो सन्तहँ नमई। सो श्रोत्रिय जोँ न मिथ्य बोँलइ।
सो श्रोत्रिय जोँ न मद्य पिवइ। सो श्रोत्रिय जो वारै कुगती।
सो श्रोत्रिय जो जिन-देशितऊ। प्रज्ञा-सत्किरियहिँ भूषितऊ।
घत्ता। जो तिल-कप्पासैँ द्रव्य-विशेषैँ, हुतिय देव-ग्रह प्रीणई।
पशु-जीव न मारै मारत वारै, पर-आपन सम जानई॥६॥

—उत्तरपुराण

(२) कापालिकोका धर्म-कम

तहँ जगहँ भयाकुल अलिक-राशि। भैरव अभि-नामी सर्वग्रासि।
तहँ भ्रमै भिक्ष अरु देइ शिक्ष। अनुगतहँ जनहँ कुल-मार्ग-दीक्ष।
वहु-शिक्षहिँ सहितउ दभधारि। घर-घर हिंडै हुकार-कारि।
शिरेँ टोपी दीनेहु वर्ण-वर्ण। तहि झपेँउ स-ठिय दोउ कर्ण।
अगुल-बत्तिस-परिमाण दड। हाथे उत्फालिबि गहेँउ चड।
गलेँ योगपट्ट साजेँउ विचित्र। पावडी-युग्म पद दियोँ दीप्त।

तड-तड-तड-तड-तडतडिय सिंगु। सिंगग्गु छेवि किउ तेण चगु।
अप्पि अप्पहोँ माहप्पु दप्पु। अण-उंछिउ जपइ थुणइ अप्पु।
"महु पुरउ पसप्पिय जुय चयारि। हँउ जरइँ ण घिप्पमि कप्प-धारि।
णल-णहुस-वेणु-मधाय जेवि। महि भुजिवि अवरइँ गयइँ तेवि।
मइँ दिट्ठु राम-रावण-भिडत। सगाम-रगि णिसियर पडत।
मइँ दिट्ठु जुहिट्ठिलु वधु-सहिउ। दुज्जोहणु ण करइ विण्हु[1]-कहिउ।
हँउ चिरजीविउ मा करहु भति। हँउ सयलहँ लोयहँ करमि सति।
हँउ थभमि रविहि विमाण जतु। चदस्स जोण्ह छायमि तुरत।
सव्वउ विज्जउ महु विप्फुरति। वहु'तत-मत अग्गइ सरति।'
पेसियउ महल्लउ गुण-वरिट्ठु। गउ तेण भइरवाणदु दिट्ठु।
"आएसु करेविणु" भणइ मति। "तुह दसणि रायहोँ होइ सति"।
सिग्घउ गउ जहिँ ठिउ णरवरिदु। सह-मज्झि परिट्ठिउ ण उविदु।
दिट्ठउ जोईसरु णरवरेण। सीहासणु मेल्लिर हासिरेण।
समुहु जाएविणु धरणि पडिउ। दडुव्व दडपडिवाइ णडिउ।
आसीसिउ णरवइ भइरवेण। "हँउ भइरव तुट्ठउ णियमणेण।"
उच्चासणि वइसाविवि तुरतु। सलहणहँ लग्गु तहोँ पइ पडतु।
"तुहुँ देव! सिट्ठि-सहार-कारि। तुहुँ जोईसरु कुल-मग्ग-चारि।
तुहुँ चिरजीविउ ज हुवउ किंपि। पयउहि ज होसइ कज्जु तपि।
तुहुँ महु उप्परि साणद भाउ। वियरहि हो सामि महापसाउ।"
घत्ता। जोईसरु मणि तुट्ठउ चितइ, "दुट्ठउ इदिय-सुहु महु पुज्जइ।
ज ज उद्देसमि त भुजेसमि 'आएसहु सपज्जइ॥६॥
ता चवइ जोइ "महु सयल रिद्धि। विप्फुरइ खणतरि विज्ज-सिद्धि।
हउँ हरण-करण-कारण-समत्थु। हउँ पथडु धरायलि गुण-पसत्थु।
ज ज तुहुँ मग्गहि किंपि वत्थु। त त हउँ देमि महापयत्थु।"
पप्फुल्ल वयणु ता चवइ राउ। "महु खेयरत्त करिवि हिय-छाउ।"

---

[1] कृष्ण

तड-तड-तड-तड-तडतडिय शृग ! शृगाग्र छेदि किउ तेन चग ।
आपुहिँ आपन माहात्म्य-दर्प । अन-पूँछेँउ जल्पै स्तुवै आप ।
"मम सँमुहाँ बीतेँउ युग चतारि हौँ जरौँन, ठहरौँ कल्पधारि ।
नल-नहुष-वेणु-मधात जोउ । महि भुजिय औरेउ गयउ सोउ ।
मैँ दीखु राम-रावण-भिडत । सग्राम-रगेँ निशिचर पडत ।
मैँ दीखु युधिष्ठिर बधु-सहित । दुर्योधन न करै विष्णु-कथित ।
हौँ चिरजीवी ना करहु भ्राति । हौँ सकलहँ लोकहँ करौँ शाति ।
हौँ थाम्हौँ रविहि विमान-यत्र । चद्रह ज्योत्स्ना छादौँ तुरत ।
सर्वा विद्या[1] मम विस्फुरति । वहु तत्र-मत्र आगे सरति ।" . .
प्रेषेँऊ महल्लक गुण-गरिष्ट । गउ सोउ भैरवानद दृष्ट ।
"आयसु करेबी" भनै मत्रि । "तव दर्शनेँ राजह होइ शाति ।"
शीघ्रै गउ जहँ ठिउ नर-वरेन्द्र । सभ-माँझ बईठो जनु उपेन्द्र ।
दीखेँउ योगीश्वर नरवरहीँ । सिहासन मेलेँउ[2] रभसरहीँ ।
समुख जाईय धरणि पडेँउ । दड 'व दड-प्रतिपात नटेँउ ।
आशीषेँउ नरपति भैरवेहिँ । "हौँ भैरव तुष्टउँ निज-मनेहिँ ।"
उच्चासनेँ वैसायो तुरत । श्लाघहीँ लागु तहँ पद-पडत ।
"तुहँ देव ! सृष्टि-सहार-कारि । तुहुँ योगीश्वर कुलमार्ग-चारि ।
तुहुँ चिरजीवी जो हुओ किछुउ । प्रकटहु जो होइहि कार्य सोउ ।"
तुहुँ मम ऊपर सानद भाव । विचरहु होँहु स्वामि-महाप्रसाद ।"
घत्ता । योगीश्वर मनेँ तुष्टउ चितै, दुष्टउ इद्रियसुख मोँहिँ पूज्यइ ।
जो जोँ उदेसौ सोँ भोगेवौँ, आदेशहु सपद्यइ ॥६॥
तव वदै योगि "मोहिँ सकल ऋद्धि । विस्फुरै क्षणतरेँ विद्याँसिद्धि ।
हौँ हरन-करन-कारन-समर्थ । हौँ प्रथित धरातलेँ गुण-प्रशस्त ।
जो जो तू माँगै कोइ वस्तु । सो सो हौ देउँ महापदार्थ ।"
प्रप्फुल्ल-वदन तव वदै राव । "मम खेचरत्व करव हिये छाव ।"

---

[1] मत्र-विद्या [2] छोडेँउ

"तुइ खेयरत्तु[1] हउँ करमि वप्प ! परमोवएसु जइ णिव्वियप्प ।
भो भो णिव-कुल-कुवलय-मयक ! दुव्वार-वइरि-वारण असक ।
मा णिसुणहि णिय-परिवार-वयणु । णिस्सके लब्भइ गयण-गमणु ।
जइ देवि पुज्ज आगमिण उत्त । जइ जुयल-जुयल जीवेहिँ जुत्त ।
णहयर थलयर जलयर अणेय । पसु-पक्खि-मिहुण वहु-वण्ण-भेय ।
जइ णर-मिहुणुल्लउ अवय-पुण्णु । देवी-मडउ तुहुँ करहि पुण्णु ।
तुह एम करतहों वलिविहाणु । हउँ तूस मित्तु चडियममाणु ।
ता तुज्झ होइ खेयरिय-सत्ति । विज्जाहर सेविहिँ अतुल-सत्ति ।
तुह खग्गि वसइ जयसिरि सछाय । अमरत्तु होइ तह अजर काय ।"
छेल-मिहुण-सूयरा । रोभ-हरिण-कुजरा ।
वाल-वसह-रासहा । मेस-महिस-रोसहा ।
घोड-करह-भल्लुया । मीह-सरह-गडया ।
वग्घ-ससय-चित्तया । एवँ वहु-चउप्पया ।
कक-कुरर-मोरया । हस-वलय-चउरया ।
घूय-सरढ-काउला । कोडि - पूस - कोइला
कुम्म-मयर-गोहया । गाभ-भसय-रोहया ।
जीव सयल जाणिया । तीएँ पुरउ आणिया ।..
कडिवद्ध-चल-चीरिया-चिंघ-जालाइँ । कर-धरिय-विप्फुरिय-कत्तिय-कवालाइँ ।
पायडिय-णिय-गुरुकमारूढ-लिंगाइँ । कुल-घोसमय चम्म-पच्छाइ अगाइँ ।
मुद्दा विसेसेण दूर णमताइँ । पय-घग्घरोलीहिँ घव-घव-घवताइँ ।
कह-कह-कहताइँ सवियार-वेसाइँ । मुक्कट्ट हासाइँ भपडिय-केसाइँ ।
जहिँ विविह-भेयाइँ कउलाइँ मिलियाइँ । कीलति ढड्ढरइँ अट्ठग-वलियाइँ ।
जहिँ करड-पटहाइँ वज्जति वज्जाइँ । इट्ठाइँ मिट्ठाइँ पिज्जति मज्जाइँ ।
छिज्जति सीसाइँ णिवडति भीसाइँ । रस-वस-विमीसाइँ खज्जति माँसाइँ ।
गिज्जति गेयाइँ चामुड-चडाइँ । गहिऊण तुडेण रुडस्स खडाइँ ।

---

[1] आकाशगामिता

तोँहि खेचरत्व हौँ करौँ बाबु। परमोपदेश यदि निर्विकल्प।
हे हे निजकुल-कुवलय-मृगाक। दुर्वार-वैरि-वारन-अशक।
मति सुनिहौ निज-परिवार-वचन। नि शके लब्भै गगन-गमन।
यदि देवि पूजु आगमे उक्त। यदि युगल-युगल-जीवेहिँ युक्त।
नभचर-थलचर-जलचर अनेक। पशु-पक्षि-मिथुन वहु-वर्णभेद।
यदि नर-मिथुनुल्लौ वयव'-पूर्ण। देवी-मडप तुहुँ करहि पूर्ण।
तुहुँ ऐस करतह बलि-विधान। हौ तूष मित्र ! चडी-समान।
तब तोहिँ होइ खेचरी-शक्ति। विद्याधर सेवहिँ अतुल-शक्ति।
तव खड्गे बसै जयश्री सछात्। अमरत्व होइ तिमि अजर-काय।".
छेरि-मिथुन-शूकरा। रोज[1]-हरिन-कुजरा।
वाल-वृषभ-रासभा। मेष-महिष-रोसहा।
घोड-करभ-भल्लुआ। सिह-शरभ-मैँडआ।
बाघ-शशक-चित्तआ। एहि विध चतुष्पदा।
कक-कुरर-मोरआ। हस-वलक-चतुरका।
घूच-शरट-काउला। कोटि-पूस-कोइला।
कूर्म-मकर-गोहआ। गार्भ-भषक-रोहआ।
जीव सकल जानिया। तेहिँ सँमुख आनिया।..
कटिबद्ध-चल-चीरिया-चिन्ह-जालाइँ। कर धरिय विस्फुरित-कृत्तिक-कपालाइँ।
प्राकटिय निज गुरु-क्रमारूढ लिगाइँ। कुल-घोष-मद-चर्म प्रच्छादि अगाइँ।
मुद्रा-विशेषेहिँ दूर नमताइँ। पद-घर्घरोलीहिँ घव-घव-घवताइँ।
कह-कह-कहताइँ सविकार-वेषाइँ। मुक्त-'ट्टहासाइँ झपडिय केशाइँ।
जहँ विविध-भेदाइँ कौलाइँ मिलिताइँ। क्रीडति ढडढरैँ अष्टाग-बलियाइँ।
जहँ करड-पटहाइँ बाजति वाद्याइँ। इष्टाइँ मिष्टाइँ पीयति मद्याइँ।
छिद्यन्त शीशाइँ निपतति भीषाइँ। रस-वश-विमिश्राइँ खाद्यत मासाइँ।
गीयत गीताइँ चामुड-चडाइँ। गहियाउ तुडेहिँ रुडाइ खडाइँ।

---

[1] घोडरोज (नीलगाय)

दुप्पेच्छ-रत्तच्छ-विच्छोह-दाइणिउ । णच्चति जोइणिउ साइणिउ डाइणिउ ।
पसु-रुहिर-जल-सित्त-पगण-पएसम्मि । पसु-दीह-जीहा-दल'च्चण-विसेसम्मि ।
पसु-अट्ठि-कय-पिट्ठ-रगावलिल्लम्मि । पसु-तेल्ल-पज्जलिय-दीवय-जुइल्लम्मि । ..

—जसहर-चरिउ (पृ० ८-१३)

६—कृष्ण-लीला

(१) गोपियोंके साथ

दुवई । धूलीधूसरेण वर-मुक्क-सरेण तिणा मुरारिणा ।
कीला-रस-वसेण गोवालय-गोवी-हियय-हारिणा ॥
रगतेण रमत-रमते । मथउ धरिउ भमतु अणते ।
मदीरउ तोडिवि आ-वट्टिउँ । अद्धविरोलिउँ दहिउँ पलोट्टिउँ ।
कावि गोवि गोविंदहु लग्गी । एण महारी मथणि भग्गी ।
एयहि मोल्लु देउ आलिंगणु । णं तो मा मेल्लहु मे अगणु ।
काहिंवि गोविहि पडुरु चेलउँ । हरि-तणु तेएँ जायउँ कालउँ ।
मूढ जलेण काइँ पक्खालइ । णिय-जडत्तु सहियहिँ दक्खालइ ।
थणणरसिच्छिरु छायावतउ । मायहिँ समुहुँ परिधावतउ ।
महिस-सिलवउ हरिणा-धरियउ । ण कर-णिवधणाउ णीसरियउ ।
दोहउ दोहण-हत्थु समीरइ । मुइ मुइ माहव कीलिउँ पूरइ ।
कत्थइ अगण-भवणा-लुद्धउ । वालवच्छु वालेण णिरुद्धउ ।
गुजा-फेडुय-रइय-पओएँ । मेल्लाविउ दुक्खेहिँ जसोएँ ।
कत्थइ लोणिय-पिंडु[१] णिरिक्खिउ । कण्हेँ कसहु ण जसु भक्खिउँ ।
घत्ता । पसरिय-कर-यलेहिँ सद्दतिहिँ सुइ-सुहकारिणिहिँ ।
भट्टिइ णियडि थिए धरयम्मु ण लग्गइ णारिहिँ ॥६॥ ..

—उत्तरपुराण (पृ० ६४-६५)

---

[१] नवनीत-पिंड

दुष्प्रेक्ष्य-रक्ताक्ष-विच्छोभ-दायिनिउ। नाचति योगिनिउ शाकिनिउ डाइनिउ।
पशु-रुधिर-जल-सिक्त-प्रागण-प्रदेशेहिँ। पशु-दीर्घजिह्वा-दलार्चन-विशेषेहिँ।
पशु-अस्थि-कृत-पिष्ट-रगावलिल्लहि। पशु-तैल-प्रज्वलित-दीपक-द्युतिल्लहि।.
—जसहर-चरिउ (पृ० ६-१३)

६—कृष्ण-लीला

(१) गोपियोके साथ

द्विपदी। धूली-धूसरेहिँ वर-मुक्त-शरेहिँ तेँहि मुरारिहीँ।
क्रीडा-रस-वशेहिँ गोपालक-गोपी-हृदय-हारिहीँ॥
रगतेहिँ रमत-रमते। पथग्र धरिउ भ्रमत अनते।
मदीरउ[1] तोडिय आ-वट्टिउँ। अर्ध-विलोनिय दधिय पलोट्टिउँ।
कोइ गोपि गोविंदहँ लागी। "इनहिँ हमारी मथनि भाँगी।
एतहँ मोल देउ आलिगन। ना तो न आवहु मम आँगन।"
कोइहु गोपिहि पाडुरु चोली। हरि तनु तेँही जायउ काली।
मूढ जलेहिँ काइँ प्रक्षालै। निज-जडत्व सखियन देक्खावै।
स्तन्य-रसि-त्थिर छायावतउ। मातहिँ समुख परिधावतउ।
महिष-शृगहू हरिहीँ धरियउ। न कर-निबधनाउ नीसरियउ।
दोहहु दोहन-हाथ समीरै। मुदि मुदि माधव क्रीडिउ पूरै।
कतहूँ आँगन-भवन-लुब्धउ। बाल-वत्स वालेहिँ निरुद्धउ।
गुजा-गुच्छक-रचित प्रयोगेँ। मेल्लाबिउ दुखेहिँ यशोदेँ।
कतहूँ नैनू-पिंड निरेखेँउ। कृष्णेँ कसहु जनु यश भक्षेउ।
घत्ता। प्रसरित करतलेहिँ शब्दतिहिँ शुचि-सुखकारिणिहीँ।
भद्रिइ निकट स्त्री धरइ न लागै नारिहीँ॥६॥
—उत्तरपुराण (पृ० ६४-६५)

---

[1] मथानी

(२) पूतना-लीला

जाणिइ अरिवरि, ता तहिँ अवसरि । कसाएसें, माया-वेसें ।
वल मायाविणि, धाइय जोइणि । वच्छर-वाउलु, गय त गोउलु ।
जयसिरि-तण्हहु, णव-महु कण्हहु । पासि पवण्णी, झत्ति णिसण्णी ।
पभणइ पूयण, "हे महुसूयण । पिय-गरुडद्धय, आउ थणद्धय ।
दुद्ध-रसिल्लउ, पियहि थणुल्लउ ।" त आयण्णिवि[1], चगउ मण्णिवि ।
चुय-पय-पडुरि, वयणु पयोहरि । हरिणा णिहियउँ, राहु गहियउँ ।
णं ससि-मडलु, सोहइ थणयलु । सुरहिय परिमलु, ण णीलुप्पलु ।
सिय-कलसुप्परि, विंभिउ मणि हरि । कडुएँ खीरें, जाणिय वीरें ।
"जणणि ण मेरी, विप्पियगारी । जीविय-हारिणि, रक्खसि वइरिणि ।
अज्जु'जि मारमि, पलउ समागमि ।" इय चिंततें, रोसु वहतें ।
माण महतें, भिउडि करते । लच्छीकतें, देवि अणतें ।
दतहिँ पीडिय मुट्ठिइ ताडिय । दिट्ठिइ तज्जिय, थामें णिज्जिय ।
अणुवि ण मुक्की, णहहिँ विलुक्की । खलहि रसतहि, मुण्णु हसतहि ।
भीमें वाले, कयकल्लोलें । लोहिउँ सोसिउँ, पलु आकरिसिउँ ।
दाणव-सारी, भणइ भडारी । "हिय-रुहिरासव, मुइ मुइ केसव ।
णदाणदण, मेल्लि जणद्दण । कसु ण सेवमि, रोसुण दावमि ।
जहिँ तुहुँ अच्छहि, कील-समिच्छहि । तहिँ णउ पइसमि, छलु ण गवेसमि ।"
घत्ता । इय रुयति कलुण कह , कहव गोविंदें मुक्की ।
गय देवय कहिँमि, पणु णद-णिवासि ण ढुक्की ॥६॥

(३) ओखल-बंधन

दुवइ । वर-काहलिय-वस-रव-वहिरए, गाइय गेय-रस-सए ।
रोमथत - थक्क - गो - महिसि - उल - सोहिय - पएसए ॥

---

[1] सुन कर

(२) पूतना-लीला

जानिय अरिवर, सो तेहि अवसर। कंसादेशे, मायावेषें।
वल-मायाविनि, धाइय जोगिनि। वत्सर बावल, गउ सो गोकुल।
जयश्री-तृष्णहँ, नवमधु कृष्णहँ। पास प्रवर्णी, झट्ट निषण्णी।
प्रभनै पूतन, "हे मधुसूदन! प्रिय गरुडध्वज, आउ थनध्वज।
दूध-रसिल्लउ, पियहु स्तनुल्लउ।" सो आकर्णिय, चंगा मानिय।
चुव-पय-पाडुर, वदन-पयोधर। हरिहीं निहितउ, राहुँहि गहियउ।
जनु शशि-मंडल, सोहै स्तनतल। सुरभित परिमल, जनु नीलोत्पल।
सित-कलशोपरि, विस्मेउ मनें हरि। कडुये क्षीरें, जानिय वीरें।
जननि न मेरी, विप्रियकारी। जीवित-हारिणि, राक्षसि वैरिणि।
आजुहि मारौं, प्रलय समारौं।" इमि चिंतंता, रोष वहंता।
मान महंता, भृकुटि करंता। लक्ष्मीकंता, देव अनंता।
दाँतहिँ पीडिय, मुट्ठिहिँ ताडिय। दृप्टिइँ तर्जिय, स्थामें[1] जीतिय।
भनहु न मुक्की[2], नभहिँ वि-लुक्की। खलहिँ रसंतहिँ, शून्य हसंतहिँ।
भीमा बाला, किउ कल्लोला। लोहिउ शोषेंउ, बल आकर्षेंउ।
दानव सारी, भनै भटारी। "हिय-रुधिरासव, मुइ मुइ केशव।
नंदानंदन, छोडु जनार्दन। कंस न सेवौं, रोष न देवौं।
जहँ तुहँ आछहिँ[3], क्रीडा-इच्छहि। तहँ ना पइसौं, छल न गवेषौं।"
घत्ता। इमि रोवंति करुण कथ, कहब गोविंदें मुक्की[4]।
गइ देवत कहँहि, पुनि नंद-निवास न ढुक्की॥९॥

(३) ओखल-बंधन

द्विपदी। वर-काहलिय-वंशि-रव-बधिरए, गाइय गीत-रस-सए।
रोमंथंत थाक[5] गो-माहिषि-कुल-शोभित-प्रदेशए॥

---

[1] वलसे [2] छूटी [3] रहो [4] छोडी [5] रहे

अण्णहिँ पुणु दिणि, तहिँ णिय-पगणि । जण-मणहारी, रमइ मुरारी ।
घोट्टइ खीर, लोट्टइ णीर । भजइ कुभ, पेल्लइ डिभ ।
छडइ महियं, चक्खइ दहिय । कड्ढइ चिंच्चि, धरइ चलंच्चि ।
इच्छइ केलि, करइ दुवालि । तहिँ अवसरए, कीलाणिरए ।
दुवइ । मरु-हय-महीरुहेहिँ पहि चप्पिउ गद्दह-तुरय चूरिओ ।
अवरु उइहलम्मि पइँ वद्धउ जाणहुँ वालु मारिओ ॥
धाइय तासु जसोय विसंठुल । कर-यल-जुयल-पिहिय-चल-थण-यल ।
वद्धउ उक्खलु मेल्लिवि घल्लिउ । महु जीविएण जियहि सिसु वोल्लिउ ।
फणि-णर-सुरहँमि अइ सइयउ । हरि-मुहि चुंविवि कडियल लइयउ ।
कि खरेण कि तुरएँ दट्ठउ । मायइ सयलु अगु परिमट्ठउँ ।

(४) देवकी पुत्र देखने नंद घर गई

महुरापुरि घरि घरि वण्णिज्जइ । णद-गोट्ठि पत्थिवहु कहिज्जइ ।
तहु देवइ मायरि उक्कठिय । पुत्तसिणेहेँ खणु विणु सठिय ।
गो मुह-कूवउ सहउ चउत्थी । लोयहु मिसु मडिवि वीसत्थी ।
चलिय णद-गोँउलि सहुँ णाहेँ । सहुँ रोहिणि-सुएण चदाहेँ ।
घत्ता । मायइ महु-महणु वहु गोवहँ मज्झि णिरिक्खिउ ।
वय-परिवेठियउ कलहसु जेम ओलक्खिउ ॥१३॥
भायउ सिसु कीला-रय-रगिउ । हलहरेण दिट्ठिइ आलिंगिउ ।
भुय-जुयलउँ पसरतु णिरुद्धउँ । जायउँ हरिसे अगु सिणिद्धउँ ।
चिंतिवि तेण कस-पेसुण्णउँ । आलिगणु देतेण ण दिण्णउँ ।
गाढ-सिणेह-वसेण णवतइ । आणाविय रसोइ गुणवतइ ।
गध-फुल्ल-दीवउँ सजोइउ । भोयणु मिट्ठउँ मायइ ढोइउँ ।
अल्लय-दल-दहि-ओल्लिय-कूरहिँ । मडय-पूरणेहिँ घियपूर[1]हिँ ।
णाणा-भक्ख-विसेसहिँ जुत्तउँ । सरसु भावि भूणाहेँ भुत्तउँ ।....

---

[1] घेवर

अन्यहि पुनि दिन, तहँ निज.प्रागने । जन-मन-हारी, रमै मुरारी ।
घोट्टै क्षीर, लोट्टै नीर । भगै कुभ, पेल्लै डिभ ।
छाडै महिय, चाखै दहिय । काढै चींचीं, धरै चल-र्चि ।
इच्छै केलि, करै दुवारि । तेंहि अवसरए, क्रीडा निरते ।
द्विपदी । मरुहत-महिरुहेहिँ पथि चाँपेउ गद्दह तुरग चूरिया ।
अवर ओखलिहिँ तैं बाँधेउ, जानहु बाल मारिया ।।
धाइय ताहँ यशोद विसस्थुल[1] । करतल-युगल-ढाँकि चल-स्तनतल ।
"बाँधेंउ ओखलि मेल्लिय घालेंउ । मम जीवनहिँ जियै शिशु" बोलेउ ।
फणि-नर-सुरहँहु अतिशय यउ । हरि-मुख चुबी कटितल लइयउ ।
की खरेंहिँ की तुरगें देखेउ । मातइ सकल-अग परिमर्षेंउ ।

(४) देवकी पुत्र देखने नंद घर गईं

मथुरापुरि घर घर वर्णिज्जै । नद-गोष्ठें पार्थिवहँ कहिज्जै ।
तहँ देवकि माता उत्कठिय । पुत्र सिनेहें क्षण विनु स-ठिय ।
गोमुख-कूप उत्सवइ चतुर्थी । लोकहँ मिस मडिय विश्वस्ती ।
चलिय नद-गोकुल-सँग नाथे । सँग रोहिणि-सुतेहिँ चद्राभें ।
घत्ता । मायइ मँधुमथन वहु गोपहँ माँझ निरेखियऊ ।
वत परिवेठियउ, कलहस-जिमि ओलख्-खियऊ ।।१३।।
भाइय शिशु क्रीडा-रज-रगिउ । हलधरेहिँ देखिय आलिगउ ।
भुज-युगलउ पसरत निरुद्धउ । जायउ हर्ष अग सिनिग्धउ ।
चिंतिय सोइ कस-पैशुन्यउँ । आलिगन देतऊ न दिन्नउँ ।
गाढ - सिनेह - वशेहिँ नमतै । ले आइय रसोइ गुणवतै ।
गध-फूल-दीपउँ सजोयउ । भोजन मिट्ठउँ मायें देयउ ।
अल्लयदल-दधि ओल्लिय गूडहिँ । मडा-पूरणेहिँ घृतपूरहिँ ।
नाना भक्ष्य-विशेषेहिँ युक्तउ । सरस भावें भू-नाथें भुक्तउ ।

[1] अस्तव्यस्त

(५) गोवर्धन-धारण

जलु गलइ, झलझलइ। दरि भरइ, सरि सरइ।
तडयडइ, तडि पडइ। गिरि फुडइ, सिहि णडइ।
मरु चलइ, तरु घुलइ। जलु थलु'वि, गोउलु'वि।
णिरु रसिउ, भय-तसिउ। थरहरइ, किरमरइ।
जाव ताव, थिर भाव—। धीरेण, वीरेण।
सर-लच्छि-जयलच्छि-तण्हेण, कह्लेण।
सुर थुइण, भुय-जुइण। वित्थरिउ, उद्धरिउ।
महिहरउ, दिहियरुउ। तम जडिउँ, पायडिउँ।
महि-विवरु, फणि-णियरु। फुप्फुवइ, विम्नु मुयइ।
परिघुलइ, चलवलइ। तरुणाँइ, हरिणाइँ।
तट्ठाइँ, णट्ठाइँ। कायरइँ, वणयरइँ।
हिसाल-चडाल-चडाइँ, कंडाइँ।
तावसइँ, परवसइँ। दरियाइँ जरियाइँ।
घत्ता। गो-व्वद्धण-परेण गो-गोमि-णिभारु व जोइउ।
गिरि गोवद्धणउ गोवद्धणेण उच्चाइयउ ॥१६॥.

(६) कालिय-दमन

वइरि जसोयहि पुत्तु, इय कसें मणि परिछिण्णउ।
कमलाहरणु रउद्दु तें, णदहु पेसणु दिण्णउँ ॥ ध्रुवक ॥
सिहि-चुरुलि-भूउ, गउ राय-दूउ। तें भणिउ णदु, मा होहि मदु।
जहिँ गरल-गाहि, णिवसइ महाहि। जउणा सरतु, त तुहुँ तुरतु।
जायवि जपेण, कय-जण-रवेण। आणहि वराइँ, इन्दीवराइँ।
ता णदु कणइ, सिर-कमलु धुणइ। जहिँ दीण-सरणु, तहिँ ढुक्कु[1] मरणु।

---

[1] प्रविष्ट हुआ

(५) गोबर्धन-धारण

जल गलै झलझलै। दरि भरै, सरि सरै।
तडतडै तडि पडै। गिरि फुटे शिखि नटै।
मरु चलै तरु घुरै। जल-थलहु, गोकुलहु।
अतिरसित भय-त्रसित। थरथरै किलमिलै।
जाव ताव स्थिर भाव, धीरेहिँ वीरेहिँ।
सर - लक्ष्मि - जयलक्ष्मि - तृष्णेहिँ कृष्णेहिँ।
सुर-स्तुतिहिँ भुजयुगहिँ, विस्तारेउ उद्धारेउ।
महिधरउ दिशिचरउ, तम जडेँउ प्राकटेँउ।
महि-विवर फणि-निकर, फुफ्फुवै विष मुचै।
परि-घुरैँ चलवलैँ, तरुणाइँ हरिनाइँ।
तत्-स्थाइँ नष्टाइँ, कातरइँ वनचरइँ।
पडियाइँ रडियाइँ, क्षिप्ताइँ त्यक्ताइँ। हिंसाल-चडाल-चडाइँ कॉण्डाइँ।
तापसैँ परवशैँ, दारिताइँ जीर्णाइँ।
घत्ता। गो-बर्धन परेहि गो-गोपिणिँ[1] भार इव-जोयउ।
गिरि गोवर्धनउ गोवर्धनेहिँ ऊँचाइयउ ॥६॥

(६) कालिय-दमन

वैरि यशोदापुत्र, एँहु कसह मनेँ परि-आइयउ।
कमलाहरण रउद्र तैँ, नदह प्रेषण दीनेऊ ॥ ध्रुवक ॥
शिखि चुरुकि भूत, गउ राजदूत। सो भनेउ "नद ! ना होहु मद।
जहँ गरले-आहि, निवसै महा'हि। जमुना सरत तहँ तुहुँ तुरत।
जायवि जवेहिँ कृत-जन-रवेहिँ। आनहि वराइँ इन्दीवराइँ।
तव नद ऋँदै, शिरकमल धुनै। जहँ दीन शरण, तहँ ढुक्कु मरन।

---

[1] गोपाल

जहिँ राउ हणइ, अणाउ कुणइ । किं धरइ अण्णु, तहिँ विगय-मण्णु ।
हउँ काइँ करमि, लइ जामि मरमि । फणि सुट्ठु चडु, त कमल-सडु ।
को करिण छिवइ, को झँप घिवइ । धगधगधगति, हुयवहि जलति ।
उप्पण्ण-सोय, कदइ जसोय । "महु एक्कु पुत्तु, अहिमुहि णिहित्त ।
मा मरउ बालु, मइँ गिलउँ कालु ।" इय जा तसति, दीहर ससति ।
पियरइँ रसति, ता विहिय सति । अलिकाय-कंति, रणधीरु मति ।
पभणइ उविंदु[1], "णिहणवि फणिंदु । णलिणाइँ हरमि, जलकील करमि ।"

घत्ता । इय भाणिवि कण्हु सप्राइउ जउणा सरवरु ।
उब्भड-फड-वियडगु यम-पासु वाव धाइउ विसहरु ॥१॥

ण कंस-कोव-हुयवहहु धूमु । ण णइ-तरुणी-कडि-सुत्त-दाम ।
ण ताहि जि केरउ जल-तरगु । ण कालमेहु दीही कयगु ।
सिय-दाढा-विज्जुलियहिँ फुरतु । चल-जमल-जीहु विस-लव मुयतु ।
हरि सउहुँ फडगुलि रयण णक्खु । पसरिउ जमेण करु घाय-दक्खु ।
ण दड-दाणु सर-सिरिइ मुक्कु । गइ-वेयउ कण्हहु पासि ढुक्कु ।
फणि फुप्फुयतु चल जुज्झ-लोलु । ण तिमिरहु मिलियउ तिमिर-लोलु ।
दीसइ हरि दहि भसलउल-कालु । ण अजण-गिरिवरि णव-तमालु ।
तणु-कंति-परज्जिय-घण-तमासु । णक्खइँ फुरति पुरिसोत्तमासु ।
सिरि माणिक्कइँ विसहर-वरासु । दीसतइँ देंति 'व देहणासु ।
तवेहिँ कुसुम-मणि-थरहिँ तबु । ण सरि वेल्लिहि पल्लउ पलबु ।
अहि घुलिउ अगि महुसूयणासु । ण कत्थूरी-रेहा-विलासु ।

घत्ता । विसहर-घोलिर-देहु, सरि भमतु रेहइ हरि ।
कच्छालकिउ तुंगु, ण मयमत्तउ दिस-करि ॥२॥. . .

---

[1] विष्णु, कृष्ण

जहँ राव हनै, अन्याय करै। की धरै अन्य तहँ विगत-मन्यु।
हौं काहँ करौं, लेइँ जाउँ मरौं। फणि अतिव चंड, सो कमल-षंड।
को करेंहिँ छुवै, को झप देंवै। धगधगधगत हुतवह ज्वलत।
उत्पन्न-शोक ऋदै यशोद। "मम एकपुत्र अहिमुख नि-क्षिप्त।
ना मरउ बाल, मैं गिरौं काल।" इमि त्रसति दीरघ श्वसति।
पियरहिँ रसति तो विहित-शांति। अलिकाय-कांति रणधीर मति।
प्रभनै उपेन्द्र निहनब फणीद्र। नलिनाइँ हरौं, जलक्रीड करौं।

घत्ता। इमि भनिय कृष्ण (तहँ) गयऊ यमुना-सरिवर।
उद्भट-फण-विकटांग यमपाश इव धायेंउ विषधर ॥१॥

जनु कंस-कोप-हुतवहह धूम। जनु नदि-तरुणी-कटि-सूत्रदाम।
जनु ताहिय केरउ जलतरंग। जनु कालमेघ दीर्घीकृतरांग।
सित-दाढा विज्जुलियहिँ फुरत। चल-यम-जीभ विषलव मुंचत।
हरि सँमुहँ फणांगुलि-रतन-नक्ख। पसरेंउ जमहीं कर घात-दक्ष।
जनु दंडदान सर-श्रीहि मुक्क। जा वेगहिँ कृष्णहँ पास ढुक्क।
फण फुफ्फुवत चल युद्धलोल। जनु तिमिरहँ मिलियौ तिमिर लोल.।
दीसै हरि तहँ भसल[1]-कुल-काल। जनु अंजन-गिरिवरें नवत-माल।
तनु-कांति-पराजिय घन-त मास। नक्खैं फुरति पुरुषोत्तमास. ।
शिर माणिक्यहिँ विषधर-वराहँ। दीसतै ढेति'व देह-नाश।
ताम्रेहिँ कुसुम-मणि-करहिँ ताम्र। जनु सरें वेल्लिहि प्रलंब।
अहि घूरेंउ अंग मधुसूदनाहँ। जनु कस्तूरी-रोवा-विलास।

घत्ता। विषधर-घोलिर देह, शिर भ्रमत राजै हरि।
कक्षालंकृत तुंग-जनु मदमत्तउ दिश-करि ॥२॥

---

[1] भ्रमर

(७) कृष्ण-महिमा

कण्हेण समाणउ कोवि पुत्तु। सजणउ जणणि विद्दविय-सत्तु।
दुर्धर-भर-रण-धुर-दिण्ण-खधु। उद्धरिय जेण णिवडत वधु।
भजिवि नियलइँ गय-वर-गईह। सहुँ माणिणीइ पोमावईह।
कइवय दियहहिँ रइ-कीलिरीहिँ। बोल्लाविउ पहु गोवालिणीहिँ।

७-कविका संदेश

"भगुत्तउँ पइँ माहव सुहिल्लु। कालिदितीरि मेरउँ कडिल्लु।
एवहिँ महुरा-कामिणिहिँ रत्तु। महुँ उप्परि दीसहि अथिर चित्तु।"
क'वि भणइ "दहिउ मथतियाइ। तुहुँ मइँ धरियउ उब्भतियाइ।
लवणीय-लित्तु करु तुज्झ लग्गु। क'वि भणइ पलोयइ मज्झु मग्गु।
"तुहुँ णिसि णारायण सुयहिँ णाहिँ। आलिगिउ अवरहिँ गोवियाहिँ।
सो सुयरहि किं ण पउण्ण-वधु। सकेय-कुडगुड्डीणु रिछु।"
घत्ता। कावि भणइ "णासतु उद्धरिवि खीर-भिगारउ।
कि वीसरियउ अज्जु ज मइँ सित्तु भडारउ॥१०॥
इय गोवी-यण-वयणाइँ सुणतु। कीलइ परमेसरु दरहसतु।
सभासिउ मेल्लिवि गव्व-भाउ। "इह जम्महु महुँ तुहुँ ताय ताउ।
परिपालिउ थण-थण्णेण[1] जाइ। वीसरमि ण खणु मि जसोय माइ। ...
—उत्तरपुराण (पृ० ६४-८९)

(१) गरीबी

वक्कल-णिवसणु कदर-मदिरु। वण-हल-भोयणु वर त सुदरु।
वर दालिद्दु सरीरहु दडणु। णउ पुरिसह अहिमाण-विहडणु।
पर-पय-रय-धूसर किंकर-सरि। असुहाविणि ण पाउस-सिरि-हरि।
णिव-पडिहार-दड-सघट्टणु। को विसहइ केरण उर-लोट्टणु।

---

[1] स्तन्य=दूध

(७) कृष्ण-महिमा

कृष्णेहिँ समानो कोइ पुत्र। सजनें उ जननि विद्रविय शत्रु।
दुर्धर-भर-रणधुर दीनु खध। उद्धरिय जेहिँ निपतत बधु।
भजवि नियरैं गजवर-गईह। सँम्मननीहि पद्मावतीह।
कतिपय-दिवसैं रति क्रीडिरीहिँ। वोलावेड प्रभु गोपालिनीहि।

७—कविका संदेश

"-सगुप्तउ तैं माधव सुहिल्ल। कालदि तीरें मेरउ करिल्ल[1]।
अब्बहिँ मथुरा कामिनिहिँ रक्त। मम ऊपर दीसै अथिर-चित्त।"
कोंइ भनै "दही मथतियाई। तुहुँ मोहिँ धरियउ उद्भ्रतियाइ।
नवनीत-लिप्त कर तोहिँ लाग।" कोंइ भनै विलोकै मध्य मार्ग।
"तुहुँ निशि नारायण सुतहि नाहिँ। आलिगें उ अपरहिँ गोपियाहिँ।
सो-सुकरहि की न प्रद्युम्न-वधु। सकेत-कुडग[2]-उड्डीन रिछ[3]।
घत्ता। कोइ भनै "नाशत उद्धरिव क्षीर-भृगारउ।
की विसरियउ आज, जो मैं सिंचु भटारउ[4] ॥१०॥
एहु गोपीजन वचनइँ सुनत्त। क्रीडै परमेश्वर दर हसत।
सभाषें उ मेलिय गर्वभाव। "एँहि जन्महुँ मम तव ताप ताउ।
परिपालें उ स्तन-स्तन्येहिँ जाहि। विसरौं न क्षणहुँ यशोद माइ।"
—उत्तरपुराण (पृ० २६७-६८)

(७) गरीबी

वल्कल निवसन कदर मदिर। वन-फल भोजन वर सो सुदर।
वर दारिद्र शरीरह दडन। नहिँ पुरुषह अभिमान-विखडन।
परपद-रज-धूसर-किंकर-सर। अ-सोंहावनि जनु पावस-श्री-धर।
नृप-प्रतिहार-दड-सघट्टन। को विसहै करेहिँ उर-लोट्टन।

---

[1] उत्सव उत्कर्ष [2] एक खेल [3] कल्लोलना' [4] भट्टारक

को जोयइ मुँहु भूभगालउ। कि हरिसिउ किं रोसें कालउ।
पहु आसण्णु लहइ धिट्ठत्तणु। पविरल-दसणु णिण्णेहत्तणु।
मोणें जड्डु भड्डु खतिइ कायरु। अज्जवु वसु पडियउ पलाविरु।

—उत्तरपुराण (पृ० २६७-६८)

(२) नीति-वचन

जो रसतु वरिसइ सो णव-घणु। ज वकउँ दीसइ त सुरधणु।
जो गिरि दलइ चलइ साविज्जुल। चचरीय-चुंविय कोमलदल।

—आदिपुराण (पृ० ३०)

अधे वट्ट बहिरे गीय। ऊसर-छेत्ते बविय बीय।
सढे[1] लग्ग तरुणि-कडक्ख। लवण-विहीण विविह भक्ख।
अण्णाँणें तिब्ब तव चरण। बल-सामत्थ-विहीणे सरण।
असमाहिल्ले सल्लेहणय। णिद्धण-मणुए णव-जोव्वणय।
णिब्भोइल्ले[2] सचिय-दविण। णिण्णेहे वर-माणिणि-रमण।
अविय अपत्ते दिण्ण दाण। मोह-रयधे धम्म-क्खाण।

—जसहर-चरिउ (पृ० १६)

(३) सोहै

सोहइ जलहरु सुर-धणु-छायएँ। सोहइ णर-वरु सच्चएँ वायएँ।
सोहइ कइ-यणु कहएँ सुबद्धएँ। सोहइ साहउ विज्जएँ सिद्धएँ।
सोहइ मुणि-वरिदु मण-सुद्धिएँ। सोहइ महि-वइ णिम्मल-बुद्धिएँ।
सोहइ मति मतविहि दिट्ठिएँ। सोहइ किंकरु असि-वर-लट्ठिएँ।
सोहइ पाउसु सास-समिद्धएँ। सोहइ विहउ स-परियण-रिद्धिएँ।
सोहइ माणुसु गुण-सपत्तिएँ। सोहइ कज्जारभु समत्तिएँ।
सोहइ महिरुह कुसुमिय-साहए। सोहइ सुहडु सुपोरिस-राहएँ।

—आदिपुराण (पृ० ४०७)

---

[1] नपुसक [2] कंजूस

को जोवै मुख भ्रूभगलऊ। की हर्षेउ की रोषे कालउ।
प्रभु आसन्न लहै धृष्टत्वन। प्रविरल दर्शन नि स्नेहत्वन।
मौने जड भट क्षतिइँ कायर। आर्जव पशु पडितउ पलायिर।
—उत्तरपुराण (पृ० ६४-८६)

(२) नीति-वचन

जो रसत बरिसइ सो नवघन। जो वकउ दीसै सो सुरधनु।
जो गिरि दलै चलै सो विज्जुल। चचरीक-चुवित कोमल-दल।
—आदिपुराण (पृ० ३०)

अधे वाटउ बहिरे गीत। ऊसर खेत्ते बीजब बीज।
षढे लग्गा तरुणि-कटाक्ष। लवण-विहीना विविधा भक्ष।
अज्ञाने तीव्र तपचरन। वल-सामर्थ्य-विहीने शरण।
असमाधिल्ले सल्लेखनय[1]। निर्धनमनुजे नवयौवनय।
निर्भोगिल्ले सचित्त-द्रविण। निर्नेहे वर-मानिनि-रमण।
अपि अपात्रे दिन्न दान। मोह-रजाधे धर्माख्यान।
—जसहर-चरिउ (पृ० १६)

(३) सोहै

सोहै जलधर सुरधनु-छायएँ। सोहै नरवर साँचहि वाचएँ।
सोहै कवि-जन कथइ सुबद्धइ। सोहै साधक विद्यहिँ सिद्धए।
सोहै मुनिवरेन्द्र मन-शुद्धिएँ। सोहै महिपति निर्मल-बुद्धिएँ।
सोहै मन्त्रि मन्त्रविधि दृष्टिएँ। सोहै किंकर असिवर-लट्ठिएँ।
सोहै पावस सस्य-समृद्धिएँ। सोहै विभव स्वपरिजन-ऋद्धिएँ।
सोहै मानुष गुण-सपत्तिएँ। सोहै कार्यारभ समाप्तिएँ।
सोहै महिरुह कुसुमित-शाखैँ। सोहै सुभट सु-पौरुष-राधएँ।
—आदिपुराण (पृ० ४०७)

---

[1] भूखे मरना

(४) दर्शन-वेदान्त

"कि खण-विणासि किं णिच्चु एक्कु। कि देहत्थुवि कम्मेण मुक्क।
कि णिच्चेयणु चेयण-सरूउ। किं चउभूयहँ सजोय-भूउ।
कि णिग्गुणु णिक्कलु णिव्वियारि। किं कम्महँ कारउ कि अकारि।
ईसर-वेसण कि रय-वसेण। ससरइ देव! ससारिकेण।
परमाणु-मेत्तु कि सव्वगामि। अप्पउ कहेंउ भणु भुवण-सामि।"
.... । "जइ[1] खण-विणासि अप्पउ णिरुत्त।
तो कि जाणइ णिहियउँ णिहाणु। वरिसहँ सएवि णिहिदव्वठाणु।
णिच्चहु किर कहिँ उप्पत्ति मच्चु। जपइ जणु रइ-लपडु, असच्चु।
जइ एक्कु जि तइ को सग्गि सोक्खु। अणुहुजइ णरइ महलु दुक्ख।
जइ भूय-वियारु भणति भाउ। तो फिर किं लब्भइ मइ-विहाव।
णिक्किरियहु कहिँ करणइँ हवति। कहि पयइ-वधु जुत्ति'वि थवति।
जइ सिव-वसु हिंडइ भूय-सत्थु। तो कम्म-कडु सयलु'वि णिरत्थु।
घत्ता। जइ अणुमेत्तउ जीवो एहउ। तो सज्जीवउ किह करि देहउ॥७॥

—उत्तरपुराण (पृ० १२७)

(५) काया नरक

माणुस-सरीरु दुह-पोट्टलउ। धायेउ धायेउ अइ-विट्टलउ।
वासिउ वासिउ णउ सुरहि मलु। पोसिउ पोसिउ णउ धरइ वलु।
तोसिउ तोसिउ णउ अप्पणउ। मोसिउ मोसिउ धरभायणउ।
भूसिउ भुसिउ ण सुहावणउ। मडिउ मडिउ भीसावणउ।
बोल्लिउ बोल्लिउ दुक्खावणउ। चच्चिउ चच्चिउ चिलिसावणउ।
मतिउ मतिउ मरणहों तपइ। दिक्खिउ दिक्खिउ साहुहुँ भसइ।
सिक्खिउ सिक्खिउ 'वि ण गुणि रमइ। दुक्खिउ दुक्खिउ 'वि ण उवसमइ।
वारिउ वारिउ 'वि पाउ करइ। पेरिउ पेरिउ 'वि ण धम्मि चरइ।

---

[1] बौद्ध दर्शनके क्षणिकवादकी आलोचना

(४) दर्शन-वेदान्त

"की[1] क्षण-विनाशि की नित्य एक। की देहस्थउ कर्मेहिँ मुक्त।
की निश्चेतन चेतन-स्वरूप। की चतु-भूतहँ सयोग-भूत।
की निर्गुण निष्कल निर्विकार। की कर्महँ कारक की अ-कार।
ईश्वर-वसेहिँ की रज-वशेहिँ। ससरै देव ! ससारिकेहिँ।
परमाणु-मात्र की सर्वगामि। आत्मा कहेँउ, भनु भुवन-स्वामि ?"
। "यदि क्षण-विनाशि आत्मा कहिय।
तो की जानै निहितउँ निधान। वर्षह शतेउ निधि द्रव्य थान।
नित्यहु फुर कहँ उत्पत्ति-मृत्यु। जल्पै यदि रज-लपट असत्त्य।
यदि एकै ता को सर्गें सौख्य। अनुभोगै नरकें महत दु:ख।
यदि भूत-विकार भनत भाव। तो फुर की लब्भै मति-विभाव।
निष्क्रियहू कहँ करणेहि[2] भवति। कहँ प्रजावधु युक्तिउ थपति।
यदि शिव-वश हिंडै भूत-सत्त्य। तो कर्मकाड सकलहु निरर्थ।
घत्ता। यदि अणुमात्रे जीव एहौ। तो सज्जीवउ कहँ करें देहौ ॥७॥
—आदिपुराण (पृ० १२७)

(५) काया नरक

मानुष-शरीर दुख-पोट्टलऊ। धोयो धोयो अति विट्टलऊ[3]।
वासेँउ वासेँउ ना सुरभि मलू। पोसेँउ पोसेँउ ना धरै वलू।
तोपेउ तोषेउ ना आपनऊ। मोपेँउ मोषेँउ धर भायनऊ।
भूषेउ भूषेउ न सोँहावनऊ। मडेउ मडेउ भीषावनऊ।
वोलेँउ बोलेँउ दुखावनऊ। चर्चेँउ चर्चेँउ चिरियावनऊ।
मत्रेँउ मत्रेँउ मरणहँ भसई। दीक्षेँउ दीक्षेँउ साधुहिँ भषई।
शिक्षेँउ शिक्षेँउ न गुणे रमई। दुखेँउ दुखेँउ ना उपशमई।
वारेँउ वारेँउ ह पाप करै। प्रेरेँउ प्रेरेँउ हु न धर्म चरै।

---

[1] क्या [2] उपचार [3] मलिन

अब्भंगिउ[1] अब्भगिउ फरिसु। रुक्खिउ रुक्खिउ आमइ-सरिसु।
मलियउँ मलियउँ वाएँ घुलइ। सिंचिउ सिंचिउ पित्ति जलइ।
सोसिउ सोसिउ सिंभि गलइ। पच्छिउ पच्छिउ कुट्ठहँ मिलइ।
चम्मे बद्धु 'वि कालि सडइ। रक्खिउ रक्खिउ जममुहि पडइ।
—जसहर-चरिउ (पृ० ३०-३१)

(६) संसार तुच्छ

अंतेउरु अंतेउरु हणइ। खय-कालहों आयहों कि कुणइ।
सण्णाहु-कय तहों किं करइ। छत्ते छायहु किं उवयरइ।
णउ कहिँ मि मरण-दिणे उव्वरइ। चमराणिलु सासाणिलु धरइ।
सुहु राय-पट्ट-बधे वसइ। कि आउ-णिवधणु णउ ल्हसई।
ण रहेहिँ रहिज्जइ जमहु वहु। किं मणुयहँ लग्गउ रज्जगहु।
होइवि जाइवि सहसत्ति किह। रायत्तणु सभाराउ जिह।
—णायकुमार-चरिउ (पृ० ६०)

(७) भाग्य और पूर्वकर्मवाद

बाहिल्ल ते भिल्ल ते मूअ ते लल्ल। ते पगु ते कुट बहिरध ते मट।
ते काण काणीण धण-हीण ते दीण। दुहरीण बल-खीण।
णिक्काम णिद्धाम णिच्छाम णिण्णाम। णित्तेय णिप्पाण चडाल ते पाण।
ते डोब कल्लाल मच्छधि णीवाल। दाढाल ते कोल ते सीह-सद्दूल।
ते सिंगि वियराल ते णह-पहराल। ते पक्खि पिँछाल।
ते सप्प रत्तच्छ मसासिणो मच्छ। छिंधणइँ रुधणइँ बधणइँ वचणइँ।
लुचणइँ खचणइँ कुचणइँ लुट्टणइँ। कुट्टणइँ घट्टणइँ वट्टणइँ।
पउलणइँ पीलणइँ हूलणइँ चालणइँ। तलणाइँ दलणाइँ मलणाइँ गिलणाइँ।
णिरएसु णरएसु मणुएसु रुक्खेसु। दुक्खाइँ भुजति सग्ग कह जति।
—जसहर-चरिउ (पृ० ३४)

---

[1] मालिश

अभ्यगेँउ अभ्यगेँउ परुषा। रोकेँउ रोकेँउ आम्रइ-सरिसा।
मलियेँउँ मलियेँउँ वातेँ घुलई। सिंचेँउ सिचेँउ पित्तेँ जलई।
शोषेँउ शोषेँउ श्लेष्महिँ गलई। पाछेँउ पाछेँउ कुष्टहँ मिलई।
चर्मे बद्धउ काले सडई। रक्षिय रक्षिय यम-मुखेँ पड़ई।
—जसहर-चरिउ (पृ० ३०-३१)

(६) संसार तुच्छ

अत पुर अत उर हनई। क्षय-कालह आयउ की करई।
सन्नाहकृत तहु की करई। छत्ते छायउ की उपकरई।
ना कतहुँ मरन-दिन ऊबरइ। चमरानिल श्वासानिल धरइ।
सुख राजपट्ट-बधे वसई। की आयु निबधन ना ह्रसई।
न रथेहिँ रहिज्जै यमहुँ वहू। की मनुजहँ लागउ राज्य-ग्रहू।
होइब जाइब सहसाहि किमि। राजत्वन सध्याराग-जिमि।
—णायकुमार-चरिउ (पृ० ६०)

(७) भाग्य और पूर्वकर्मवाद

वहेल्ल[१] ते भिल्ल ते मूक सो लल्ल[२]। ते पगु ते कुट वधिर'न्ध ते मट।
ते कानाँ कनीन धन-हीन ते दीन। दुखरीन बलहीन।
निकाम निधाम नि-छाम नि-नाम। नि-तेज नि-प्राण चँडाल ते प्राण।
ते डोम कलाल मछधि नि-वाल[३]। दढाल तेँ कोल ते सीँह-शदूल।
ते शृँगी विकराल ते नभ-पधराल। ते पक्षि पिछाल।
ते सर्प रक्ताक्ष मासाशिन माच्छ। छिन्दनैँ रुधनैँ वधनैँ वचनैँ।
लुचनैँ खचनैँ कुचनैँ लुट्टनैँ। कुट्टनैँ घट्टनैँ वट्टनैँ।
प्रोलनैँ पीडनैँ हूलनैँ चालनैँ। तलनाइँ दलनाइँ मलनाइँ गिलनाइँ।
तिर्यकेनारके मनुजे औ वृक्षे। दु खाइँ भुजति स्वर्ग कहाँ जाति।
—जसहर-चरिउ (पृ० ३४)

---

[१] वहेलिया [२] लोलुप, सतृष्ण [३] मच्छीमार बच्चे

(८) साम्यवादी उत्तर-कुरु[1] द्वीप

घत्ता। णिच्चु जि उच्छवु णिच्च दिहि, णिच्चु जि तणु तारुण्णु णवल्लउ।
भोय-भूमिरुह-माणुसहँ, ज ज दीसइ त त भल्लउ।

ण दुज्जणु दूसिय सज्जण-वासु। ण खासु ण सोसु ण रोसु ण दोसु।
ण छिक ण जिभणु णालसु दिट्ठु। ण णिद्द ण णेत्त-णिमीलणु सुट्ठु।
ण रत्ति ण वासरु धतु ण घम्मु। ण इट्ठ-विश्रोउ ण कुच्छिय कम्म।
अयालि ण मच्चु ण चितु ण दीणु। कयाइ कहिंपि सरीरु ण भीणु।
पुरीस-विसग्गु ण मुत्त-पवाहु। ण लालु ण सिभु ण पित्ति वि डाहु।
ण रोउ ण सोउ ण सेउ विसाउ। किलेसु ण दासु ण कोइवि राउ।
सुरूव सुलक्खण माणव दिव्व। अगव्व सुभव्व समाण जि सव्व।
सुहाउ विणीसउ सासु सुयधु। कलेवरि वज्ज समट्ठिय-बधु।
ति-पल्ल-पमाणु थिराउ-णिबधु। करीसर केसरि तेविहु बधु।
ण चोरु ण मारि ण घोरु वसग्गु। अहो कुरु-भूमि निससइ सग्गु।

—उत्तरपुराण (पृ० ४०९-१०)

§ २१. शान्तिपा

(कलिकाल-सर्वज्ञ रत्नाकरशान्ति)। काल—१००० ई०
(विग्रहपाल-महीपाल ९६०-८८-१०३८)।

(रहस्यवाद)

(राग रामक्री)

सअ-सवेअण-सरूअ विआरें अलक्ख लक्ख ण जाइ।
जे जे उजुवाटे गेला[2] अणा वाटे भइला सोइ॥

---

[1] आर्योंका पूर्वनिवास [2] मैथिली

(८) साम्यवादी उत्तर-कुरु द्वीप

घत्ता । नित्यहिँ उत्सव नित्य देहि, नित्यहि तनु तारुण्य नवल्ल ।
भोग-भूमि रुह मानुषहँ, जो जो दीसै सो सो भल्ल ।

न दुर्जन-दूषित सज्जन-वास । न खाँस न शोष न रोष न दोष ।
न छींक न जम्भा न आलस दृष्ट । न निद्र न नेत्र निमीलन सुष्ट ।
न राति न वासर घद न घाम । न इष्ट-वियोग न कुक्षिय काम ।
भयासि न मृत्यु न चित न दीन । कदापि कहूँहु शरीर न भीन[1] ।
पुरीष-विसर्ग न मूत्रप्रवाह । न लाल न श्लेष्म न पित्तह डाह ।
न रोग न शोक न सेतु विपाद । किलेश न दाश न कोउह राज ।
सुरूप सुलक्षण मान दिव्य । अगर्व सुभव्य समानहिँ सर्व ।
मुखाह विनीसै श्वास सुगध । कलेवरें वज्र समस्थिय बध ।
त्रिपल्ल प्रमाण थिरायु-निबध । करीश्वर केसरि तेहुअउ बधु ।
न चोर न मार न घोर उपसर्ग[2] । अहो कुरु भूमि निसशय स्वर्ग ।
—उत्तरपुराण (पृ० ४०६-१०)

§ २१. शान्तिपा

देश—मगध । कुल—ब्राह्मण, भिक्षु, सिद्ध (१२), राजगुरु ।
कृति—सुखदुःखद्वय-परित्यागदृष्टि ।

(रहस्यवाद)

(१५—राग रामक्रीं)

स्वसवेदन स्वरूप विचारे । अलख लख्यो ना जाई ।
जो जो ऋजुवाटे गइला, अन्यवाटे भइला सोई ॥

---

[1] क्षीण   [2] उपद्रव, खुराफात

काअरुअ ण बुज्झिअ मूढहि उजुवाट ससारा।
(महुअरेहि एक्क अन्न राजहि कणकधारा।)
माआ मोह समुद्द अन्त बुज्झसि ताहा।
आगे णाव नभेला दीसइ भन्ति न पुच्छसि णाहा॥
सूनापान्तर ऊह न दीसइ, भान्ति न वासने जान्ते।
एषा अट्ठ महासिज्झि सिज्झइ उजुवाटे जाअन्ते॥
वाम दाहिण दो बाटा छाडी शान्ति बोलथेउ सकेलिउ।
घाट ण शुक्क खडतडि ण होइ आँखें बुज्झिअ वाट जाइउ॥१५॥

(२६—राग शबरी)

तुला धुणि धुणि अशूहि अशू। अशू धुणि धुणि णिरवर सेसू।
तउ से हेतुअ ण पाविअइ। सान्ति भणइ किं स भाविअइ॥
तुला धुणि धुणि सुण्णे आहारिउ। पुण लइअ अप्पण चटारिउ।
वहल वढ [1] दुइ भाग ण दीशअ। शान्ति भणइ वालग्ग ण पइसइ।
काज ण कारण ण एहु जुगती। सअ-सवेअण बोलथि[1] सान्ती॥२६॥
—चर्यापद

§ २२. योगीन्दु (जोइंदु)

काल १०००। देश—राजस्थान (?)। कुल—जैन साधु। कृतियाँ—

(१) ज्ञान-समाधि

जो जाया झाणग्गिएँ, कम्म-कलक डहेवि।
णिच्च-णिरजण-णाणमय ते परमप्प णवेवि॥१॥
ते हँउ वदउँ सिद्ध-गण, अच्छहिँ जे वि हवत।
परम-समाहि-महग्गियएँ, कम्मि-धणइँ हुणत॥२॥

---

[1] मगही क्रियापद

कायरूप ना बूझै मूढहिँ ऋजु वाटा ससारा।
मधु-करहिं एक भक्ष्य , राजहि कनकधारा ॥
मायामोह समुद्रहि अन्त न बूझसि थाहा।
आगे (न) नाव नभेला दीसै, भ्रान्तिहिँ पूछसि न नाथा ॥
शून्य-प्रान्तर ऊह न दीसै भ्रान्ति न वासने जाये।
एही अष्ट महासिद्धि सिद्धै, ऋजुवाटेही जाये ॥
वायँ दहिन दो वाट छाडी शान्ति वोलेउ सकेरिय।
घाटे न शुल्क खरतरी न होइ, आँखि बुयझिवाट जाइय ॥१५॥

(२६—राग शवरी)

तुला धुनि धुनि रेशहि रेशा। धुनि धुनि निरवर शेषू।
तउ सो हेतु न पाइयइ। शान्ति भनै की सो भवियइ।
तुल धुनि धुनि शून्ये धारेउ। पुनि लेइय आपन चट्टारिउ।
वहुत मूढ ! दुइ भाग न दीसै। शान्ति भनै वालाग्र न पइसै।
कार्य न कारण न एह जुगती। स्वक-सवेदन बोलै शान्ती ॥२६॥

—चर्यापद

§ २२. योगीन्दु (जोइंदु)

परमात्म-प्रकाश दोहा, योगसार-दोहा[1]।

(१) ज्ञान-समाधि

जे जायेँउ ध्यानाग्नियेहिँ, कर्म-कलक डहाइ।
नित्य-निरजन-ज्ञानमय, ते परमात्म नमामि ॥१॥
तिन हौं वन्दौ सिद्धगण, रहें जोउ होवन्त।
परम-समाधि महाग्नियेहिँ, कर्मेन्धनहिँ होमन्त ॥३॥

---

[1] ए० एन्० उपाध्ये सम्पादित (श्री रायचद्र जैन-शास्त्र-माला १०, बम्बई १९३०)

भावि पणविवि पचगुरु, सिरि-जोइंदु-जिणाउ ।
भट्टपहायरि विण्णविउ, विमलु करे विणु भाउ ॥८॥
गउ ससारि वसतहँ, सामिय काल अणतु ।
पर मइँ किंपि ण पत्तु सुहु, दुक्खुजि पत्तु महतु ॥९॥

(२) अलख-निरंजन

तिहुयण-वदिउ सिद्धि-गउ, हरि-हर झायहिँ जोजि ।
लक्ख, अलक्खें धरिवि थिरु, मुणि परमप्पउ सोजि ॥१६॥[1]
णिच्चु णिरजणु णाणमउ, परमाणद-सहाउ ।
जो एहउ सो सतु सिउ, तासु मुणिज्जहि भाउ ॥१७॥
जो णिय-भाउ ण परिहरइ, जो पर-भाउ ण लेइ ।
जाणइ सयलुवि णिच्चु पर, सो सिउ सतु हवेइ ॥१८॥
जासु ण वण्णु ण गधु रसु, जासु ण सद्दु ण फासु ।
जासु ण जम्मणु मरणु णवि, णाउ णिरजणु तासु ॥१९॥
जासु ण कोहु ण मोहु मउ, जासु ण माय ण माणु ।
जासु ण ठाणु ण झाणु जिय, सोजि णिरजणु जाणु ॥२०॥
अत्थि ण पुण्णु ण पाउ जसु, अत्थि ण हरिसु विसाउ ।
अत्थि ण एक्कुवि दोसु जसु, सोजि णिरजणु भाउ ॥२१॥
जासु ण धारणु धेउ णवि, जासु ण जतु ण मतु ।
जासु ण मडलु मुद्द णवि, सो मुणि देउँ अणतु ॥२२॥

(३) आत्मा

हउँ गोरउ हउँ सामलउ, हउँजि विभिण्णउ वण्णु ।
हउँ तणु-अगउँ थूलु हउँ, एहउँ मूढउ मण्णु ॥८०॥
हउँ वरु बभणु वइसु हउँ, हउँ खत्तिउ हउँ सेसु ।
पुरिसु णउसउ इत्थि हउँ, मण्णइ मूढु विसेसु ॥८१॥
अप्पा गोरउ किण्हु णवि, अप्पा रत्त ण होइ ।
अप्पा सुहुमु वि थूलु णवि, णाणिउ जाणें जोइ ॥८६॥

भावहिँ प्रणवो पचगुरु, श्री योगीन्दु जिनाव्।
भट्टप्रभाकर वीनवेँउ, निर्मल करिके भाव ॥८॥
गयउ ससार वसतहीँ, स्वामी काल अनन्त।
पर मै किछु पायउँ न सुख, दु खइ पायउँ महन्त ॥९॥

(२) अलख-निरंजन

त्रिभुवन-वदित सिद्धिगत, हरि-हर ध्यावे जेहि।
लक्ष्य अलक्ष्ये धरिबि थिर, मुनि परमात्मा सोइ ॥१६॥
नित्य निरजन ज्ञानमय, परमानद स्वभाव।
जो ऐसो सो शान्त शिव, तासु मनिज्जै भाव ॥१७॥
जो निज भाव न परिहरै, जो परभाव न लेइ।
जानै सकलउ नित्य पर, सो शिव शान्त हवेइ ॥१८॥
जासु न वर्ण न गध रस, जासु न शब्द न स्पर्श।
जासु न जन्म न मरणहू, नाम निरजन तासु ॥१९॥
जासु न क्रोध न मोह मद, जासु न माय न मान।
जासु न थान न ध्यान जिय, सोइ निरजन जान ॥२०॥
अहै न पुण्य न पाप जसु, अहै न हर्ष विषाद।
अहै न एकहु दोष जसु, सोइ निरजन भाव ॥२१॥
जासु न धारण ध्येय नहिँ, जासु न यत्र न मत्र।
जासु न मडल मुद्र नहिँ, सो मॉनु देव अनन्त ॥२२॥

(३) आत्मा

हौँ गोरो हौँ सामलो, हौँ हि विभिन्नउ वर्ण।
हौँ तनु-अगौ स्थूल हौँ, ऐसो मूढै मन्व ॥८०॥
हौँ वर-ब्राह्मण वैश्य हौँ, हौँ क्षत्रिय हौँ शेष।
पुरुष नपुसक इस्त्रि हौँ, मानै मूढ विशेष ॥८१॥
आत्मा गोरा कृष्ण नहि, आत्मा रक्त न होइ।
आत्मा सूक्ष्महु स्थूल नहिँ, ज्ञानी जाने जोइ ॥८६॥

अप्पा पंडिउ मुक्खु णवि, णवि ईसरु णवि णीसु ।
तरुणउ बूढउ बालु णवि, अण्णुवि कम्म-विसेसु ॥९१॥

पुण्णु वि पाउ वि कालु णहु, धम्माधम्मु वि काउ ।
एक्कुवि अप्पा होइ णवि, मेल्लिवि चेयण-भाउ ॥९२॥

अण्णु जि तित्थु म जाहि जिय, अण्णु जि गुरुउ म सेवि ।
अण्णुजि देउ म चिंति तुहुँ, अप्पा विमलु मएवि ॥९५॥

अप्पा णिय-मण णिम्मलउ, णियमे वसइ ण जासु ।
सत्थ-पुराणइँ तव-चरणु, मुक्खुवि करहिँ कि तासु ॥९८॥

(४) परमात्म-तत्त्व

जे दिट्ठें तुट्टंति लहु, कम्मइँ पुव्व कियाइँ ।
सो परु जाणहि जोइया, देहि वसतु ण काइँ ॥२७॥

देहा-देवलि जो वसइ, देउ अणाइ-अणतु ।
केवल णाण-फुरंत-तणु, सो परमप्पु णिभतु ॥३३॥

देहें वसतुवि णवि छिवइ, णियमें देहुवि जोजि ।
देहें छिप्पइ जोवि णवि, मुणि परमप्पउ सोजि ॥३४॥

जसु अब्भतरि जगु वसइ, जग-अब्भतरि जोजि ।
जगिजि वसतुवि जगु जिणवि, मुणि परमप्पउ सोजि ॥४१॥

जसु परमत्थें बधु णवि, जोइय णवि ससारु ।
सो परमप्पउ जाणि तुहुँ, मणि मिल्लिवि ववहारु ॥४६॥

णवि उप्पज्जइ णवि मरइ बधु ण मोक्खु करेइ ।
जिउ परमत्थें जोइया, जिणवरु एउँ भणेइ ॥६८॥

छिज्जउ भिज्जउ जाउ खउ, जोइय एहु सरीरु ।
अप्पा भावहि णिम्मलउ, जि पावहि भवतीरु ॥७२॥

जोइय अप्पें जाणिएँण, जगु जाणियउ हवेइ ।
अप्पहँ केरइ भावडइ, बिबिउ जेण वसेइ ॥९९॥

आत्मा पडित मूर्ख नहिँ, नहि ईश्वर न अनीश ।
तरुण वूढ बालहु नही, अन्यैहु कर्म विशेष ।।६१।।

पुण्यउ पापउ काल नभ, धर्माधर्मंहु काय ।
एकहु आत्मा होइ नहिँ, छडि ऍक चेतनभाव ।।६२।।

अन्यहि तीर्थ न जाहि जिय, अन्यहिँ गुरुहिँ न सेव ।
अन्यहिँ देव न चित तुहुँ, छाँडि एक विमलात्माहिँ ।।६५।।

आत्मा निजमन निर्मले, नियमेहिँ वसै न जासु ।
शास्त्र-पुराणहु तप-चरण, मोक्ष कि करिहै तासु ।।६८।।

(४) परमात्म-तत्त्व

जेहि देखे टूटैँ तुरत,, कर्मा पूर्वकृताइँ ।
सो पर जानहि जोगिया, देह वसत कि नाहिँ ।।२७।।

देह-देवले जो वसै, देव अनादि अनन्त ।
केवल ज्ञान-फुरत-तनु, स परमात्म निर्भ्रान्ति ।।३३।।

देह वसतहु नहि छुवै, नियमेहिँ देहेँ जोइ ।
देहे छिप्यो जोइ नहिँ , माँनु परमात्मा सोइ ।।३४।।

जासु भीतरे जग वसै, जगत्-भीतरे जोइ ।
जगहिँ वसतहु जग जोँ नहिँ, माँनु परमात्मा सोइ ।।४१।।

जसु परमार्थे वध नहिँ, जोगी ! नहिँ ससार ।
तहि परमात्मा जान तुम, मन छाडी व्यवहार ।।४६।।

नहि उपजै नाही मरै, बध न मोक्ष करेइ ।
जिउ परमार्थे जोगिया, जिनवर ऐस भनति ।।६८।।

छीजहु भीजहु जाहु क्षय, जोगी एहु शरीर ।
आपा भावै निर्मलहिँ, जेहिँ पावे भवतीर ।।७२।।

जोगी ! आपा जानिये, जग जानियत हवेइ ।
आत्मा केरी भावनहि, विँवित येन वसेइ ।।९९।।

अप्पु पयासइ अप्पु परु, जिम अवरि रवि-राउ ।
जोइय एत्थु म भति करि, एहउ वत्थु-सहाव ॥१०१॥
तारा-यणु जलि बिंबियउ, णिम्मलि दीसइ जेम ।
अप्पएँ णिम्मलि बिंबियउ, लोयालोउ 'वि तेम ॥१०२॥
सो पर बुच्चइ लोउ परु, जसु मइ तित्थु वसेइ ।
जहिँ मइ तहिँ गइ जीवहँजि, णियमें जेण हवेइ ॥१११॥
जहिँ मइ तहिँ गइ जीव तुहुँ, मरणु वि जेण लहेहि ।
तें परबभु मुए वि मँह, मा पर-दब्बि करेहि ॥११२॥
जइ णिविसद्धुवि कुवि करइ, परमप्पइ अणुराउ ।
अग्गि-कणी जिम कट्ठगिरि, डहइ असेसु वि पाउ ॥११४॥

(५) निरंजन-योग

मेल्लिवि सयल अवक्खडी, जिय णिच्चितउ होइ ।
चित्तु णिवेसहि परमपएँ, देउ णिरजणु जोइ ॥११५॥
जोइय णिय-मणि णिम्मलएँ, पर दीसइ सिउ सतु ।
अबरि णिम्मलि घण-रहिएँ, भाणु जिजेम फुरतु ॥११६॥
जसु हरिणच्छी हियवउएँ, तसु णवि बभु वियारि ।
एक्कहि केम समति बढ, वे खडा पडियारि ॥१२१॥
णिय-मणि णिम्मलि णाणियहँ, णिवसइ देउ अणाइ ।
हसा सरवरि लीणु जिम, महु एहउ पडिहाइ ॥१२२॥
देउ ण देउले णवि सिलएँ, णवि लिप्पइ णवि चित्ति ।
अखउ णिरजणु णाणमउ, सिउ सठिउ सम-चित्ति ॥१२३॥
हरि-हर बभुवि जिणवरवि, मुणि-वर-विदवि भव्व ।
परम-णिरजणि मणु धरिवि, मुक्खुजि झायहिँ सव्व ॥१३१॥
मुत्ति-विहूणउ णाणमउ, परमाणदु-सहाउ ।
णियमि जोइय अप्पु मुणि, णिच्चु णिरजणु भाउ ॥१४१॥
जो णवि मण्णइ जीउ समु, पुण्णुवि पाउवि दोइ ।
सो चिरु दुक्खु सहतु जिय, मोहहिँ हिंडइ लोइ ॥१७८॥

आत्म प्रकाशै आत्म पर, जिमि अवरे रवि-राग ।
जोगी ! इहाँ न भ्रान्ति करु, एही वस्तु-स्वभाव ॥१०१॥

तारागण जले बिबित, निर्मल दीसै जेमि ।
आत्महिँ निर्मल बिबित, लोकालोकउ तेमि ॥१०२॥

सो पर कहियत लोक पर, जसु मति तहाँ वसेइ ।
जहँ मति तहँ गति जीव की, नियमें हि क्यों कि हवेइ ॥१११॥

जहँ मति तहँ गति जीव तुहुँ, मरणउ क्योकि लभेइ ।
ता परब्रह्महिँ छाडि जनि, मति परद्रव्य करेइ ॥११२॥

यदि निमिषार्द्धउ कोंइ करै, परमात्महिँ अनुराग ।
अग्नि कणी जिमि काठें गिरि, डहें अशेषहिँ पाप ॥११४॥

(५) निरंजन-योग

मेली सकल अपेक्षडी, जिव निश्चिन्ता होइ ।
चित्त निवेशै परमपदें, देव निरजन जोइ ॥११५॥

जोगी ! निजमन निर्मले, **पर** दीसै शिव शान्त ।
अबरें निर्मल घनरहित, भानू जेमि फुरन्त ॥११६॥

जसु हरिणाक्षी हृदयमे, तासु न ब्रह्म विचार ।
एकहिँ मूढ ! समाप किमि, दो खड्गा प्रतिकारि ॥१२१॥

निजमन निर्मलें ज्ञानि के, निवसै देव अनादि ।
हसा सरवर लीन जिमि, मोहिँ ऐसहि प्रतिभाति ॥१२२॥

देव न देवलें नहि शिलहिँ, नहि लेप्य नहिं चित्र ।
अक्षय निरजन ज्ञानमय, शिव समचित्ते थित्त ॥१२३॥

हरि-हर ब्रह्महु जिनवरहु, मुनिवर वृन्दहु-भव्य ।
परम-निरजनें मन धरी, मोक्षहि ध्यावैं सर्व ॥१३१॥

मुर्त्तिविहीना ज्ञानमय, परमानद स्वभाव ।
नियमेहिँ जोगी ! आप मनु, नित्य निरजन भाव ॥१४१॥

जो नहिँ मानै जीव सम, पुण्यहु पापहुँ दोय ।
सो चिर दुःख सहत जिव, मोहेहिँ हिंडै लोक ॥१७८॥

(६) पंथ-पोथी-पत्राकी निंदा

देवहँ सत्थहँ मुणिवरहँ, भत्तिएँ पुण्णु हवेइ ।
कम्म-क्खउ पुणि होइ णवि, अज्जउ संति भणेइ ॥१८४॥

देउ णिरंजणु इँउ भणइ, णाणि मुक्खु ण भंति ।
णाणविहीणा जीवडा, चिरु संसारु भमंति ॥१९६॥

सत्थ पढंतुवि होइ जडु, जो ण हणेइ वियप्पु ।
देहि वसंतुवि णिम्मलउ, णवि मण्णइ परमप्पु ॥२०६॥

तित्थइँ तित्थु भमन्तहँ, मूढहँ मोक्खु ण होइ ।
णाण-विवज्जिउ जेण जिय, मुणिवरु होइ ण सोइ ॥२०८॥

चेल्ला-चेल्ली-पुत्थियहिँ, तूसइ मूढु णिभंतु ।
एयहिँ लज्जइ णाणियउ, बंधहँ हेउ मुणंतु ॥२११॥

भल्लाहँवि णासंति गुण, जहँ संसग्ग खलेहिँ ।
वइसाणरु लोहहँ मिलिउ, तें पिट्टियइ घणेहिँ ॥२३३॥

रूवि पयंगा सद्दि मय, गय फासहि णासंति ।
अलि-उल गंधहिँ मच्छ रसि, किम अणुराउ करंति ॥२३५॥

देउलु देउवि सत्थु गुरु, तित्थुवि वेउ वि कव्वु ।
वच्छु जु दीसै कुसुमियउ, इंधणु होसइ सव्वु ॥२५३॥

(७) शून्य-ध्यान

पँचहँ णायकु वसि करहु, जेण होंति वसि अण्ण ।
मूल विणट्ठइ तरुवरहँ, अवसइँ सुक्कहिँ पण्ण ॥२६३॥

सुण्णउँ पउँ झायतहँ, वलि वलि जोइय जाहँ ।
समरसि-भाउ परेण सहु, पुण्णुवि पाउ ण जाहँ ॥२८२॥

उव्वस वसिय जो करइ, वसिया करइ जु सुण्ण ।
वलि किज्जउँ तसु जोइयहिँ, जासु ण पाउ ण पुण्ण ॥२८३॥

(६) पंथ-पोथी-पत्राकी निंदा

देव-शास्त्र-मुनिवरन की, भक्तिहिं पुण्य हवेइ ।
कर्मक्षय पुनि होइ नहिं, आरज शान्ति भनेइ ॥१८४॥

देव निरजन यों भनै, ज्ञानेहि मोक्ष न भ्रान्ति ।
ज्ञानविहीना जीवडा, चिर ससार भ्रमति ॥१६६॥

शास्त्र पढतौ होइ जड, जो न हनेइ विकल्प ।
देह वसतउ निर्मलउ, नहि मानै परमात्म ॥२०६॥

तीर्थहिं तीर्थ भ्रमन्तकहिं, मूढहिं मोक्ष न होइ ।
ज्ञानविवर्जित जो कि जिव, मुनिवर होइ न सोइ ॥२०८॥

चेला-चेली-पोथियहिं, तूषै मूढ निभ्रान्त ।
एतहिं लज्जै ज्ञानियउ, वधन हेतु बुझन्त ॥२११॥

भलन केरहू नशैं गुण, जहँ ससर्ग खलेहिं ।
वैश्वानर लोहहिं मिल्लेउ, तेहि पिट्टियइ घनेहिं ॥२३३॥

रूपें पतगा शब्दें मृग, गज स्पर्शे नाशति ।
अलिकुल गन्धे, मत्स्य रसें, किमि अनुराग करति ॥२३५॥

देवल देवउ शास्त्र गुरु, तीर्थहु वेदहु काव्य ।
वृक्ष जों दीसै कुसुमित, इधन होइहै सर्व ॥२५३॥

(७) शून्य-ध्यान

पच नायकन वश करहु, जेन होहिं वश अन्य ।
मूल विनष्टे तरुवरहि, अवशि सूखिहै पर्ण ॥२६३॥

शून्य पदहिं ध्यायन्तहँ, वलि वलि जोगिय जावँ ।
समरसभाव परेन सहँ, पुण्य पाप ना जाहि ॥२८२॥

उवसा वसिया जो करै, वसिया करै जों शून्य ।
वलि जाऊँ तेहि जोगियहिं, जासु न पाप न पुण्य ॥२८३॥

णास-विणिग्गउ साँसडा, अवरि जेत्थु विलाइ ।
तुट्टइ मोह तडत्ति तहिँ, मणु अत्थवणहँ जाइ ॥२८५॥
मोहु विलिज्जइ मणु मरइ, तुट्टइ सासु-णिसासु ।
केवल-णाणु वि परिणमइ, अवरि जाहँ णिवासु ॥२८६॥
घोरु करतु'वि तव-चरण, सयल'वि सत्थ मुणतु ।
परम-समाहि-विवज्जियउ, णवि देक्खइ सिउ सतु ॥३१४॥
जो परमप्पउ परम-पउ, हरि-हर-बभुवि बुद्धु ।
परम-पयासु भणति मुणि, सो जिण-देउ विसुद्धु ॥३२३॥
——परमात्मप्रकाश[1]

(८) योग-भावना

ससारहँ भयभीयहँ, मोक्खहँ लालसयाहँ ।
अप्पा-सबोहण-कयइ, दोहा एक्कमणाहँ ॥३॥
णिम्मलु णिक्कलु सुद्ध जिणु, विण्हु बुद्धु सिव सतु ।
सो परमप्पा जिण भणिउ, एहउ जाणि णिभतु ॥९॥
जो परमप्पा सो जि हउँ, जो हउँ सो परमप्पु ।
इउ जाणे विणु जोइया, अण्णु म करहु वियप्पु ॥२२॥
जाव ण भवहि जीव तुहुँ, णिम्मल अप्प-सहाउ ।
ताव ण लब्भइ सिव-गमणु, जहिँ भावइ तहि जाउ ॥२७॥
मूढा देवलि देउ णवि, णवि सिलि लिप्पइ चित्ति ।
देहा देवलि देउ जिणि, सो वुज्झहि समचित्ति ॥४४॥
धम्मु ण पढियइँ होइ, धम्मु ण पोत्था-पिच्छियइँ ।
धम्मु ण मढिय-पएसि, धम्मु ण मत्थालुचियइँ ॥४७॥
जेहइ मण विसयहँ रमइ, तिमि जइ अप्प मुणेइ ।
जोइ भणइ हो जोइयहु, लहु णिव्वाणु लहेइ ॥५०॥

---

[1] ए० एन्० उपाध्ये सम्पादित रायचद्र जैन-शास्त्र-माला, बम्बई १९३७ ई०

नासहिँ निकस्या साँसडा[१], अवर जहाँ विलाइ ।
टूटै मोह तुरत तहँ, मन अस्तमने जाइ ॥२८५॥

मोह विलाये मन मरै, टूटै श्वास-निश्वास ।
केवल ज्ञानहु परिणमै, अवर जासु निवास ॥२८६॥

घोर करन्ते तपचरण, सकलहु शास्त्र जॉनन्त ।
परम समाधि विवर्जित, नहि देखै शिव-शान्त ॥३१४॥

जो परमात्मा परम-पद, हरि-हर-ब्रह्मा-बुद्ध ।
परमप्रकाश भनति मुनि, सो जिन-देव विशुद्ध ॥३२३॥

—परमात्मप्रकाश

(८) योग-भावना

ससारहँ भयभीत जे, मोक्ष लालसा जाहि ।
आत्मा-सबोधन कियउ, दोहा एकमनाहि ॥३॥

निर्मल निष्कल शुद्ध जिन, विष्णु बुद्ध शिव शान्त ।
सो परमात्मा जिन भन्यो, एहउ जानु निभ्रान्त ॥९॥

जो परमात्मा सोइ हौँ, जो हौँ सो परमात्म ।
एह जाने विनु जोगिया, अन्य न करहु विकल्प ॥२२॥

जौ न भावै जीव तुहुँ, निर्मल आत्मस्वभाव ।
तौ न लहै शिवगमनहिँ, जहँ भावै तहँ जाव ॥२७॥

मूढ ! देवले देव नहिँ, शिलहिँ लेप्य नहि चित्रे ।
देह देवले देव जिन, सो बूझै समचित्त ॥४४॥

धर्म न पढिया होइ, धर्म न पोथा पिच्छियहिँ ।
धर्म न मठप्रवेश, धर्म न माथा-लुचियहिँ ॥४७॥

जैसे मन विषयहिँ रमै, तिमि यदि आत्म लगेइ ।
योगि भनै हे योगियो, तुरत निवाण लहेइ ॥५०॥

---

[१] श्वास

णासग्गिँ अब्भिन्तरहँ, जे जोवहिँ असरीरु ।
बहुडि[1] जम्मि ण सभवहिँ, पिवहिँ ण जणणी-खीरु ॥६०॥

जो जिण सो हउँ सोजि हुँउ, एहउ भाउ णिभतु ।
मोक्खहँ कारण जोइया, अण्णु ण ततु ण मतु ॥७५॥

जो सम-सुक्ख-णिलीणु वहु, पुण पुण अप्पु मुणेइ ।
कम्मक्खउ करि सोवि फुडु, लहु णिब्बाणु लहेइ ॥९३॥

(९) सभी देव सम्माननीय

सो सिउसकरु विण्हु सो, सो रुद्द्'वि सो बुद्ध ।
सो जिणु ईसरु बभु सो, सो अणतु सो सिद्धु ॥१०५॥

एवँहि लक्खण-लक्खियउ, जो पर णिक्कलु देउ ।
देहहँ मज्झहिँ सो वसइ, तासु ण विज्जइ भेउ ॥१०६॥

—योगसार

§ २३. रामसिंह

काल—१००० ई० (?) । देश—राजपूताना (?) । कुल—जैन साधु ।

(१) जग तुच्छ (वैराग्य)

अप्पायत्तउ जोजि सुहु, तेण जि करि सतोसु ।
पर सुह बढ[1] चिततह, हियइ ण फिट्टइ सोसु ॥२॥

ज सुहु विसय परमुहउ, णिय अप्पा झायतु ।
त सुहु इदु वि णउक लहइ, देविहिँ कोडि रमतु ॥३॥

घर वासउ मा जाणि जिय, दुक्किय वासुउ ऐहु ।
पासु कपते मडियउ, अविचल णवि सदेहु ॥१२॥

---

[1] फिर

नासाग्रे अभ्यन्तरहिँ, जे जावैं अशरीर ।
बहुरि जन्म ना सभवै, पिवै न जननी-क्षीर ॥६०॥

जो जिन सो हौँ सोइहौ, एही भाव निभ्रान्त ।
मोक्षइँ कारण जोगिया, अन्य न तत्र न मत्र ॥७५॥

जो शम-सुक्ख-निलीन वहु, पुनि पुनि आत्म मनेइ ।
कर्मक्षय करि सोइ फुर, तुरत निवाण लहेइ ॥६३॥

(९) सभी देव सम्माननीय

सो शिव-शकर विष्णु सो, सो रुद्रउ सो बुद्ध ।
सो जिन ईश्वर ब्रह्म सो, सो अनत-सो सिद्ध ॥१०५॥

ऐसे लक्षण-लक्षितउ, जो पर निष्कल देव ।
देह-मध्यही सो वसै, तासु नहीँ है भेद ॥१०६॥

—योगसार

§ २३. रामसिंह

कृति—पाहुड-दोहा[1]

(१) जग तुच्छ (वैराग्य)

आत्मायत्तउ जोहि सुख, तेनहि करु सन्तोष ।
पर सुख चिन्तत मूढ रे, हृदय न छूटइ सोच ॥२॥

जो सुख विषय-पराङ्मुख, निज आत्मा ध्यायन्त ।
जो सुख इन्दुहु ना लहइ, देवन् कोटि रमन्त ॥३॥

घरवास हु न जानु जिय, दुष्कृत-वासहु एहु ।
पाश कृतातेहि फेकियउ, अविचल नहि सदेह ॥१२॥

---

[1] करजा जैन-ग्रथमाला, करजा (वरार)

सप्पि मुक्की कचुलिय, ज विसु त ण मुएइ ।
भोय न भाउ न परिहरइ, लिगग्गहणु करेइ ।।१५।।

अथिरेण थिरा मइलेण णिम्मला णिग्गुणेण गुणसारा ।
काएण जा विढप्पइं सा किरिया किण कायव्वा ।।१६।।

वर विसु विसहरु वरु जलणु, वरु सोविउ वणवासु ।
णउ जिणधम्म-परम्मुहउ मित्थत्तिय सहवासु ।।२०।।

हउ गोरउ हउ सामलउ हउ मि विभिण्णउ वण्णि ।
हउँ तणु-अगउ थूलु हउँ एहउ जीव म मण्णि ।।२६।।

(२) निरंजन-साधना

वण्ण-विहूणउ णाणमउ, जो भावइ सब्भाउ ।
सतु णिरजणु सो जि सिउ तहिं किज्जइ अणुराउ ।।३८।।

उपलाणहि जोइय करहुलउ, दावणु छोडहि जिम चरइ ।
जसु अखइ णिरामइँ गयउ, मणु सो किम बुहु जगिरइ करइ ।।४२।।

पच वलद्दण रक्खियइँ, णदणवणु ण गओसि ।
अप्पु ण जाणिउ ण वि परु वि, एमइ पव्व इओसि ।।४४।।

पचहि बाहिरु णेहडउ, हलि सहि लग्गु पियस्स ।
तासु न दीसइ आगमणु, जो खलु मिलिउ परस्स ।।४५।।

मणु जाणइ उवएसडउ, जहिँ सोवेइ अचतु ।
अचितहो चित्तु जो मेलवइ, सो पुणु होइ णिचिंतु।।४६।।

वट्टडिया अणुलग्गयहँ, अग्गड जोयताहँ ।
कटउ भग्गइ पाउ जइ, भज्जउ दोसु ण ताह ।।४७।।

मणु मिलियउ परमेसरहो, परमेसर जि मणस्स ।
विण्णि' वि समरसि हुइ रहिय, पुज चडावउँ कस्स ।।४६।।

देहादेवलि जो वसइ, सत्तिहि सहियउ देउ ।
को तहिँ जोइय सत्तसिउ, सिग्घु गवेसहिँ भेउ ।।५३।।

सर्पहिँ मोची केंचुली, जो विष सो न मुँचेइ ।
भोगहि भाव न परिहरइ, भेस-ग्रहण करेइ ॥१५॥

अथिरेहिँ थिरा मइलेहि निर्मला निर्गुणहिँ गुणसारा ।
कायेहि जा वढइ सा क्रिया कीन कर्तव्या ॥१६॥

वरु विष, विषधर वरु ज्वलन, वरु सेविव वनपास ।
ना जिन-धर्म-पराङ्मुख, मिथ्याइय-सहवास ॥२०॥

हौं गोरा, हौं श्यामला, हौंहि विभिन्नो वर्ण —।
हौं तनु-अंगो, स्थूल हौं, एहउ जीव न मान ॥२६॥

(२) निरंजन-साधना

वर्ण-विहूनहिँ ज्ञानमय, जो भावइ सद्भाव ।
सत निरजन मोइ शिव, तहिँ कीजइ अनुराग ॥३८॥

उत्पला नहीँ जोइ करि कला दामहिँ छोडी जिमि चरइ ।
जस अक्षय निरामहिँ गयउमन, सो किमि वह जगरति करइ ॥४२॥

पाँच वरद्दन राखियउ, नन्दन-वन न गयोसि ।
आत्म न जानेँउ नापि पर, एवँइँ प्रव्रज्योसि ॥४४॥

पचहिँ वहिर नेहडा, हे सखि लगेँउ पियेहिँ ।
तासु न दीसइ आगमन, जो खल मिलेँउ परेहि ॥४५॥

मन जानइ उपदेसडहिँ, जहँ सोवई अचिन्त ।
अचिते चित्त जो मेलवइ, सो पुनि होइ निचिन्त ॥४६॥

वटिया अनुसरतन्तहेँ, आगे जोयन्ताहँ ।
काँटा लागइ पाय यदि, लागहु दोप न ताह ॥४७॥

मन मिलिया परमेश्वरहिँ, परमेश्वरहु मनाहिँ ।
दोऊ समरस व्है रहेँउ, पूज चढाउँ काहिँ । ॥४९॥

देह-देवले जो वसइ, शक्ति सहितो देव ।
को नहँ जोगी ! शक्ति-शिव, शीघ्र गवेसहु भेद ॥५३॥

सिव विणु सन्ति ण वावरइ, सिउ पुणु सन्ति-विहीणु ।
दोहिँ मि जाणहिँ सयलु जगु, बुज्झइ मोह-विलीणु ॥५५॥

अब्भिन्तर चित्ति वे मइलियइ, बाहिरि काइ तवेण ।
चित्ति णिरजणु कोवि धरि, मुच्चहि जेम मलेण ॥६१॥

देह महेली एह वढ ! तउ सत्ता वइ नाम ।
चित्तु णिरजणु परिणसिहु, समरसि होइण जाम ॥६४॥

सइ मिलिया सइ विह डिया जोइय, कम्मणि भति ।
तरल सहावहिँ पथियहिँ, अण्णु कि गाम वसति ॥७३॥

(३) पाखंड-खंडन

वक्खाणडा करतु बुहु, अप्पि ण दिण्णुणु चित्तु ।
कणहिँ जि रहिउ पयालु जिम, पर सगहिउ वहुत्तु ॥८४॥

पडिय पडिय पडिया, कणु छडिवि तुस कंडिया ।
अत्थे गथे तुट्ठोसि, परमत्थु ण जाणहि मूढोसि ॥८५॥

अक्खरडेहि जि गव्विया, कारणु तेण मुणति ।
वस-विहत्था डोम जिम, परहत्थडा धुणति ॥८६॥

बहुयइ पढियइ मूढपर, तालू सुक्कइ जेण ।
एक्कुजि अक्खरु त पढहु, सिवपुरि गम्मइ जेण ॥९७॥

हउँ सगुणी पिउ णिग्गुणउ, णिल्लक्खणु णीसगु ।
एकहिँ अगि वसतयहँ, मिलिउ ण अगहिँ अगु ॥१००॥

मूलु छडि जो डाल चडि, कहँ तह जोयाभासि ।
चीरुणु वुणणह जाइ वढ ! विणु डहियईँ कपासि ॥१०९॥

छह, दसण धधइ पडिय, मणह ण फिट्टिय भति ।
एक्कु देउ छह भेउ किउ, तेण ण मोक्खह जति ॥११६॥

हलि सहि काइ करइ सो दप्पणु । जहिँ पडिबिंबु ण दीसइ अप्पणु ॥
धधवालु मो जगु पडिहासइ । धरि अच्छतु ण घरवइ दीसइ ॥१२२॥

शिव बिनु शक्ति न व्यापरइ, शिव पुनि शक्ति-विहीन ।
दोउहिँ जानें सकल जग, बूझिय मोह-विलीन ॥५५॥

अन्तहि चित्तहि मइलियहि, बाहिर काह तपेहिँ ।
चित्ते निरजन कोंइ धरु, मुचहि जिमी मलेहि ॥६१॥

देह मेहरिया एह मूढ, तोहिँ सतावइ ताव ।
चित्त निरजन परहिँ सो, समरस होइ न जाव ॥६४॥

स्वय मिल्लेँउ, स्वय वीछुडेँउ, योगी ! कर्म न भ्रान्ति ।
तरल स्वभावहि पथिकही, अन्य कि गाँव वसन्ति ॥७३॥

(३) पाखंड-खंडन

व्याख्यानडा करन्त बहु, आत्महि दियउ न चित्त ।
कणहिउँ रहित पुआल जिमि, पर मग्रहँउ बहुत्त ॥८४॥

पडित पडित पडिता, कण छाडेँउ तुष कूटिया ।
अर्थहिँ ग्रथहिँ तुष्टोसि, परमार्थ न जानइ मूढोसि ॥८५॥

अक्खरडेहिँ जे गर्विया, कारण ते न जाँनत ।
वास-विहूनो डोम जिमि, पर हाथडा धुनत ॥८६॥

बहुतहि पढिया मूढ पर, तालू सूखइ जेहिँ ।
एकइ अक्षर सो पढहु, शिवपुर जावे जेहिँ ॥९७॥

हौं सगुणी प्रिय निर्गुण, निर्लक्षण, निस्सग ।
एकहि अक वसतहुँ, मिलेँउ न अगहि अग ॥१००॥

मूल छोडि जो डाल लढि, कहँ तेहि योगाभ्यास ।
चीर न बीनेँउ जाइ मुढ, विनु ओटिया कपास ॥१०९॥

खटदर्शन धधे पडी, मतहिँ न टूटी भ्रान्ति ।
एक देव छ भेद किय, ताते मोक्ष न यान्ति ॥११६॥

हे सखि ! काह करिय सो दर्पण । जहँ प्रतिबिंब न दीसइ आपन ॥
धधवाल मोहि जग प्रतिभासइ । घर अछते णा घरपति दीसइ ॥१२२॥

जसु जीवतहँ मणु मुवउ, पचेन्दियहिँ समाणु ।
सो जाणिज्जइ मोक्कलउ, लद्धउ पहु णिव्वाणु ॥१२३॥

मुडिय मुडिय मुडिया । सिरु मुडिउ चित्तु ण मुडिया ।
चित्तहँ मुडण जि कियउ । ससारह खडणु ति कियउ ॥१३५॥

पोत्था पढणि मोक्खु कहँ, मणुवि असुद्धउ जासु ।
बहुयारउ लुद्धउ णवइ, मूलट्ठिउ हरिणासु ॥१४५॥

भल्ला णवि णासति गुण, जहिँ सहु सगु खलेहिँ ।
वइसाणरु लोहहँ मिलिउ, पिट्टिज्जइ सघणेहिँ ॥१४८॥

मुडु मुँडाइवि सिक्ख धरि, धम्महँ वद्धी आस ।
णवरि कुडुबउ मेलियउ, छुडु मिल्लिया परास ॥१५३॥

जे पढिया जे पडिया, जाहिँ मि माण मरट्टु ।
ते महिलाणहि पिडि-पडिय, भमियइँ जेम घरट्टु ॥१५६॥

देवलि पाहणु तित्थि जलु, पुत्थइँ सव्वइँ कव्वु ।
वत्थुज दीसइ कुसुमियउ, इधणु होसइ सव्वु ॥१६१॥

तित्थइँ तित्थ भमतयहँ, किण्णेहा फल हूव ।
बाहिरु सुद्धउ पाणियहँ, अब्भितरु किम हूव ॥१६२॥

तित्थइँ तित्थ भमेहि वढ ! धोयउ चम्मु जलेण ।
एहु मणु किम धोएसि तुहुँ, मइलउ पाव-मलेण ॥१६३॥

(४) गुरु-महिमा

ज लिहिउ ण पुच्छिउ कहव जाइ । कहियउ कासु वि णउ चित्ति ठाइ ।
अह गुरु उवएसे चित्ति ठाइ । त तेम धरतिहि कहिँ मि ठाइ ॥१६६॥

वे भजेविणु एक्कु किउ, मणह ण चारिय विल्लि ।
तहि गुरुपहि हउँ सिस्सिणी, अण्णहिं करमि ण लल्लि ॥१७४॥

अग्गइँ पच्छइँ दहदिहहि, जहि जोवउ तहि सोइ ।
ता महु फिट्टिय भतडी, अवसणु पुच्छइ कोइ ॥१७५॥

जासु जीवनहिं मनु मुयो, पचेन्द्रियहिँ समान ।
सो जानीयइ मोचलउ, लाहेँउ पथनिर्वाण ॥१२३॥

मुँडिया-मुँडिया-मुडिया, सिर मूँडेउ चित्त न मूडिया ।
चित्तहि मुडन जिन कियउ, ससारहि खडन तिन कियो ॥१३५॥

पोथा पढनी मोक्षकहँ मनहि असुद्धउ जास ।
बधकारक लुब्धक नवै, मूले ठिय हरिणास ॥१४६॥

भल न काह नाशइ गुण, जहँ लह सग खलेहि ।
वैश्वानर लोहहिँ मिलेँउ, पिट्टीयत सुघनेहिँ ॥१४८॥

मूँड मुँडाडवि सीख धरि, धर्महि बाँधी आस ।
न निक कुटुबहि छोडियह, छोड फेँकान पराग ॥१५३॥

जे पढिया, जे पडिया, जेहि कि मान मर्याद ।
ते मेहरी पिडहि पडी, भ्रमियत जेम घरट्ट ॥१५६॥

देवल पाहन तीर्थ जल, पोथिहि सर्वहि काव्य ।
वस्तु जो दीसइ कुसुमित, इधन होइहै सर्व ॥१६१॥

तीर्थहि तीर्थ भ्रमतयहँ, किछु नाही फल होत ।
वाहिर सुद्धो पानियहँ, अभ्यन्तर किमि होत ॥१६२॥

तित्यइँ तित्थ भ्रमेँउ मूढ, धोयेँउ चाम जलेहि ।
एहु मन किमि धोग्रेसि तुहँ, मइलउ पाप-मलेहि ॥१६३॥

(४) गुरु-महिमा

जो लिखेँउ न पूछेँउ कहु पि जाइ, कहियउ काहुपि न चित्त ठाइ ।
अथ गुरु-उपदेसे चित्तु ठाड, सो तिमि धारतोहि कहुंपि ठाइ ॥१६६॥

दो भजाविय एक किय, मनहिं न चारी वेलि ।
तेहि गुरुवहि हउँ शिष्यणी, अन्यहि करउँ न लाल ॥१७४॥

आगेहिं, पाछेहिं, दसदिसिहि, जहँ जोवउँ तहँ सोइ ॥
सो मम काटी आतडी, अवग न पूछिय कोइ ॥१७५॥

घत्ता। धक्कड वणिवसि माएसरहों समुब्भविण।
धणसिरिदेवि-सुएण, विरइउ सरसइ-सभविण।

—भविसयत्त-कहा पृ० १४८

२—भौगोलिक वर्णन

(१) कुरु-जांगल[1] देश

एह भरहखित्ति सुन्दर पएसु। कुरु-जगल नामि मही विसेसु।
वण्णिज्जइ सपय काइँ तासु। जहिँ निवसइ जणु अमुणिय पयासु।
आरामच्छित्तघरवित्ति विद्धु। परिपक्ककलमि - गोहण - समिद्धु।
जहिँ पुरइँ पवड्ढिय कलयलाइँ। धम्मत्थ-काम सचिय फलाइँ।
जहिँ मिहुणइँ मयण-परव्वसाइँ। अवतुप्प तुपरिवडिया रसाइँ।
उवभोय भोय-सुह सेवयाइँ। गामइँ कुक्कुड सडे वयाइँ।
जहि जलइँ कयावि न सुसियाइँ। मयरद-रेणुवामीसियाइँ।
जहिँ सरइँ कमल-पह-तबिराइँ। कारड-हस-चय-चुबिराइँ।
जहिँ पथिय तत्तु छायहिँ भमति। जत्थत्थमियइँ तहिँ णिसि गमति।
पामर वियड्ढि वयणइँ णियति। पुडुच्छु-रसइँ लीलइँ पियति।

—वहीं पृ० २,३

(२) गज (हस्तिना)-पुर

घत्ता। तहिँ गयउरु णाउँ पट्टणु, जणजणियच्छरिऊ।
ण गयणु मुएवि सग्गखडु महि अवयरिऊ॥
त गयउरु को वण्णणहँसमत्थु। ज वुहइह मडलु ण पसत्थु।
ज भुत्तु मउड-कुडलधरेहिँ। मेहे सराड बहु-णरवरेहिँ।
महवा चक्केसतु जित्थु आसि। जें भुन्त वसुधरि जेम दासि।
पुणु सणकुमातु णिहिरयणवालु। छक्खडवसुह सुह सायिसालु।

---

[1] कुरु देश

घत्ता । धक्कड वनिक-वशें माएसरहँ समुद्भवेहिँ ।
धनश्रीदेवि सुतेहिँ विरचेउ सरस्वतिसभवेँहिँ ॥

—भविसयत्तकहा पृ० १४८

२–भौगोलिक वर्णन

(१) कुरु-जांगल देश

एहु भरत-क्षेत्रें सुदर प्रदेश । कुरुजगल नामे महि-विशेष ।
वानिज्जै सपति काइँ तासु । जहँ निवसै जन अमुनिय-प्रयास ।
आराम-क्षेत्र - घरवित्त - वृद्ध । परिपक्वकलम - गोधन - समृद्ध ।
जहँ पुरैं प्रवर्द्धिय कलकलाइँ । धर्मार्थ-काम-सचित-फलाइँ ।
जहँ मिथुनै मदन-परब्वशाइँ । अवतृप्तेउ पाकरके रसाइँ ।
उपभोग - भोग - सुख - सेवयाइँ । ग्रामो कुक्कुट - ससेवयाइँ ।
जहँ जलैं कदापि न शोषियाइँ । मकरद-रेणुवा-मिश्रिताइँ ।
जहँ सरहिँ कमल-प्रभ-ताम्रकाइँ । कारड-हस-चय-चुविताइँ ।
जहँ पथिक तप्त छायहिँ भ्रमति । यत्र अस्त मिया तहँ निशि गमति ।
पामर विदग्धें वचनै नियति । पुँड्र-इक्षु-रसैं लीलैं पिवति ।

—वहीँ पृ० २,३

(२) गज पुर[१]

घत्ता । तहँ गजपुर[१] नामे पट्टन, जन-जनिताश्चरिऊ ।
जनु गगन मुँचिय स्वर्ग-खड, महि अवतरिऊ ॥
सो गजपुर को वर्णन-समर्थ । जो पुहुमिह मडन जनु प्रशस्त ।
जो भुक्तु मुकुट-कुडल-धरेहिँ । मेघेश्वरादि-वहु-नरवरेहिँ ।
मघवा चक्रेगत यत्र आसि[२] । जेहि भुक्तु वसुधर जेम दासि ।
पुनि सनकुमार निशिरतन-पाल । छै खड वसुध शुभ स्वामिसाल ।

---

[१] हस्तिनापुर [२] थे

जहँ अण्णवि णर णरवइ महत । सग्गापवग्गवर सुहइँ पन्त ।
जसु कारणि णिय-सुहि तडवेहिँ । कुरुखेत्ति भिडिउ कुरु-पडवेहिँ ।
घत्ता । जहिँ तुग तवगि सठिउ सख-कुद-धवलू ।
जणु सुतुवि उद्धु देखइ गगाणइहिँ-जलु ॥

—वहीँ पृ० ३

३—वाणिज्य-सार्थ

(१) बधुदत्तके सार्थकी तैयारी

तुरिउ गमण-सामग्गि पयासिय । सुइ-सत्थत्थवत सभासिय ।
जाणाविउ भूवाल-णरिदहोँ । समइ परिट्ठिउ सण्णणविंदहोँ ।
हट्ट-मग्गि कुल-सील-णिउत्तहँ । घोसण[1] दिण्ण पुरउ वणिउत्तहँ ।
"चल्लउ जो चल्लइ कयविज्जें । बधुअत्तु सचलिउ वणिज्जें ।
साहुमाणि वणिउत्तहँ चाहइ । अधणहँ भडुल्लइ सवाहइ ।"
त णिसुणेवि पमाय-पउत्तहँ । मतिउ थोव-विहव-वणिउत्तहँ ।
"अहोँ पुर-जण-मण-णयणाणदणु । सेवहोँ धणवइ-सेट्ठिहिँ णदणु ।
पइसहुँ अतरेउ सहुँआएँ । अवसि लच्छि होइ ववसाएँ ।
वणि-तणुरुह-रहसेण समागय । सज्जिय करह-वसह-महिसह सय ।"

—वहीँ पृ० १६-१७

(२) भविष्यदत्तकी माँका विरोध

माइ महल्ल महुज्जम विज्जेँ । बधुअत्तु सचलिउ वणिज्जेँ ।
तेण समाण मइँमि जाइव्वउ । त वोहित्थु तीरि लाइव्वउ ।
देसतर-पवासु माणिव्वउ । णियपुण्णहँ पमाणु जाणिव्वउ ।
दयिवायत्तु जडवि विलसिव्वउ । तो पुरिसिं ववसाउ करिव्वउ ।
त णिसुणेवि सगग्गिर-वयणी । भणइँ जणेरि जलद्दिय-णयणी ।
हा इउ पुत्त ! काइँ पइँ जपिउ । सिविणतरिवि णाहिँ महु जपिउ ।

---

[1] डुगडुगी पिटवाई—घोषणा की

जहँ अन्यउ नर नरपति महत्त । स्वर्गापवर्ग वर सुखहिँ प्राप्त ।
जसु कारणेँ निज-सुखेँ ताडवेहिँ । कुरुक्षेत्र भिडेँउ कुरु-पाडवेहिँ ।
घत्ता । जहँ तुग तपागेँ स-ठिउ, शख-कुन्द-धवलू ।
जनु सूती ऊर्ध्वं देवइ, गगानदिह जल ॥

—वहीँ पृ० ३

३—वाणिज्य-सार्थ

(१) बंधुदत्तके सार्थकी तैयारी

तुरत गमन-सामग्रि प्रकाशिय । शुचि-सार्थ-र्थवत सभाषिय ।
जनवायउ भूपाल-नरेन्द्रहँ । समयहँ पूछेँउ सज्जन-वृन्दहँ ।
हाट-मार्ग-कुल-शील-नियुक्तहँ । घोपण दीन पुरहँ वणि-पुत्रहँ ।
"चल्लो, जो चल्लै क्रय-वेँचे । वधुदत्त सचलेउ वनिज्जे ।
साधु मानि वणिपुत्तहँ चाहै । अ—धनहँ भडुल्लइ[1] स-वाहै[2] ।"
सो सुनियाहि प्रमाद-प्रयुक्तहँ । मत्रेउँ थोड-विभव-वणिपुत्रहँ ।
"अहोँ पुर-जन-मन-नयन-नदना । सेवहु धनपति-श्रेष्टिहिँ नदन ।
पइसहु अतरेउ सहुआयेँ । अवशि लक्ष्मि होई व्यवसायेँ ।
वणि-तनुरुह रभसेहिँ[3] समा-गउ । साजेँउ करभ-वृषभ-महिषइ सौ ।

—वहीँ पृ० १६-१७

(२) भविष्यदत्तकी माँका विरोध

"माइ ! महल्ल-महोद्यम-विद्येँ । वधुदत्त स-चलेउ वनिज्जेँ ।
तेही सगेँ हमहूँ जाइव्वो । सो वोहित-तीरेँ लाइव्वो ।
देशातर-प्रवास मानिव्वो । निज-पुण्यहँ प्रमाण जानिव्वो ।
दैवायत्त यदपि विलसिव्वउ । तहूँ पुरु व्यवसाय करिव्वउ ।"
सो सुनियाहि सगद्गद-वदनी । भनै जनेरिँ[4] जलार्दित-नयनी ।
हा ई पुत्र ! काह तैँ जल्पेउ । स्वप्नतरेउ नाहिँ मोहिँ जल्पेउ ।

---

[1] सौदा　[2] देवं　[3] तुरत　[4] माता

एक्क अकारणि कुविय-वियप्पें। दिण्णु अणतु दाहु तउ वप्पें।
अण्णुवि पइं देसतरु जतहों। को महु सरणु हियइ पजलतहों।
अण्णुवि तेण समउ तउ जतहों। णिव्वुइ खणु'वि णाहिं महुचित्तहों।
घत्ता। को जाणइ कण्ण महाविसइ, अणुदिणु दुम्मइ मोहियइँ।
सम-विसम-सहावहिँ अतरइँ, दुट्ठसवत्ति[1]हि दोहियइँ॥
एक्कुमिक्कु ववसाउ करतहँ। समसाहिट्ठिउ भडु भरतहँ।
विहि पडिकूलु अम्ह पडिसक्कइ। अत्थहँ छेउ करिबि को सक्कइ।
एक-दव्व-अहिलास-विचित्तइ। को जाणइँ दाइयहँ चरित्तइ।
जइ सरूव दुट्ठत्तणु भासइ। बधुअत्तु खल वयणहिँ वासइ।
जो तउ करइ अमगलु जतहों। मूलु[2]वि जाइ लाहु चितंतहों।"
जपइ मामहु महुरकलाएँ। "चगउ वुत्तु पुत्त! कमलाएँ।
अम्हह एत्थु-वसतहों तेहउ। को'वि ण मित्तु पहाणु सणेहउ।
बधुअत्तु पुरमज्झि सइत्तउ। राउलि सण्णमाणु धणयत्तउ।
घत्ता। जइ-जणणि-वयण विस-विस-मगइ, दाइय-मच्छरु मणि वहई।
तो तुम्हहँ अम्हहँ सयणहमि, वचिबि कुलि परिहउ करई॥"
भविसयत्तु विहसेविणु जपइ। "तुम्हहँ भीरत्तणिण समप्पइ।
अइयारि वामोहु ण किज्जइ। समवय-जणि पोढत्तणु हिज्जइ।
अइणएण जणि कायरु वुच्चइ। अइभएण जइ-लच्छिएँ मुच्चइ।
अइमएण दप्पुब्भडु णावइ। अइधिएण भोयणु'वि ण भावइ।
अइरूवि तिय-रयणु विणासइ। अइयारि सव्वहों गुणु णासइ।
जइ ववसाइ दाउ णउ दिज्जइ। तो णायरहँ मज्झि लज्जिज्जइ।
जइ सो कहव सवत्तिहि जायउ। तो'वि तांयहों सरीरि सभूयउ।
एक्कु सरीरु जाउ विहि भायहिँ। तहिँ किर काइँ राय-वेयारहिँ।

---

[1] सौत [2] पूँजी

एक अकारण कुपित विकल्पे। दीन अनत-दाह तव बापे॑।
अन्यउ तैं॑ देशान्तर जातह। को मम शरण हृदय-प्रज्वलतह।
अन्यउ तेहिँ सग तव जातह। निर्वृति[1] क्षणहु नाहि ममचित्तह।
घत्ता। को जानै कर्ण महाविषइँ, अनुदिन दुर्मति-मोहितइँ।
सम-विषम स्वभावहिँ अतरइँ, दुष्ट सौतियह दोहितइँ॥
एकमेक व्यवसाय करतहँ। सम-साझेहीँ॑ भाड भरतहँ।
विधि-प्रतिकूल समर-प्रतिसक्कै। अर्थहँ छेद करबि को सक्कै।
एक द्रव्य-अभिलाष-विचित्रा। को जानै दैवयहँ चरित्रा।
यदि स्वरूप दुष्टत्वउ भासै। वधुदत्त खल-वचनहिँ वासै।
जो तव करै अमगल जाँतह। मूलउ जाइ लाभ चिततहँ।"
जपै मामहँ मधुरकलाये॑। "चगउ उक्त पुत्र! कमलाये॑।
हमरे इहाँ वसतह तेही। कोउ न मित्र प्रधान सिनेही।
वधुदत्त पुर-माँझ स्वयत्तउ। राउले[2] सर्व्वमान धनदत्तउ।
घत्ता। यदि जननि-वचन-विष-विषमगति, दर्शित मत्सर मने॑ वहई।
तो तुम्महँ हम्महँ स्वजनहउ, वचिय कुले॑ परिभव करई।"
भविषदत्त विहसि जल्पियई। "तुम्हहँही भीरुता-समर्पियई।
अतिचारे व्यामोह न किज्जै। सम-वय-जने॑ प्रौढत्व हीज्जै[3]।
अतिगमने जने॑ कायर उच्चै। अतिभयेहिँ जयलक्ष्मी मुचै।
अतिमदेहिँ दर्पोद्भट नावै। अतिघिवेहिँ भोजनउ न भावै।
अतिरूपे॑ तिय-रतन विनाशै। अतिचारे॑ सर्व्वउ गुण नाशै।
यदि व्यवसाय दाव ना दिज्जै। तो नागरहँ माँझ लज्जिज्जै।
यदि सो कहब सौतीको जायो। तोपि तातहँ शरीर-सभूतो।
एक शरीर जाउ दोउ भाई। तहँ फुर काईं॑ राग-विचारी।

---

[1] चैन [2] राजकुल (=दर्बार) [3] कम होना

अण्णु'वि तहिँ कुल-सील-निउत्तहँ। होसहिँ पच्च-सयइँ वणिउत्तहँ। . .
अण्णुवि अम्हह तेण समाणु। किंपि ण पुव्व-विरोह-विहाणु।
घत्ता। म माइ चित्तु कायरु करहि, फुडु कम्मइँ कम्महु कारणु।
खुट्टइ जीविज्जइ जेम णवि, तेम अखुट्टइ नउ मरणु।"
—वहीं पृ० १७-१८

(३) माताका उपदेश

घत्ता। जोव्वण-वियार-रस-वस-पसरि, सो सूरउ सो पडियउ।
चल-सम्मणवयणुल्लावएहिँ, जो परतियहिँ ण खडियउ ॥१८॥
पुरिसिं पुरिसिव्वउ पालिव्वउ। परधणु परकलत्तु णउ लिव्वउ।
त धणु ज अविणासिय-धम्में। लब्भइ पुव्वक्किय-सुह-कम्में।
त कलत्तु परिओसिय-गत्तउ। ज सुहि पाणिग्गहणि विढत्तउ।
णिय-मणि जेण सक उप्पज्जइ। मरणंति'वि ण कम्मु त किज्जइ।
अण्णु-'वि भणमि पुत्त! परमत्थें। जइवि होहि परिपुण्ण महत्थें।
तरुणि तरल लोयण मणि भाविउ। पहु-सम्माण-दाण गुण गाविउ।
तहिँमि कालि अम्हहिँ सुमरिज्जहि। एक्कवार महु दसणु दिज्जहि।
पर-धणु पायधूलि भण्णिज्जहि। परकलत्तु मइँ समउ गणिज्जहि।
—वहीं पृ० २०

(४) सार्थ (कारवाँ)की यात्रा

अग्गेय दिसइँ मल्हति जति। कुरुजंगलु महिमडलु मुअति।
लघति वियण-काणण-पलव। पुर-गाम-खेड-कव्वड-मडव।
जउणानइ सलिलु समुत्तरेवि। जल-दुग्गइँ थल-दुग्गइँ सरेवि।
अन्नन्न-देस-भासइँ नियत। रयणायरें वेला-उलइ पत्त।
लक्खिउ समुद्दु जल-लव-गहीरु। सप्पुरिसु'व थिरु गंभीरु धीरु।
आसीविसो[1]'व्व विस-विसम-सीलु। वेला-महल्ल कल्लोल-लीलु।

---

[1] साँप

अन्यउ तहँ कुल-शील-सँयुक्ता। होइहैं पचशता वणिपुत्रा।. ..
अन्यउ हम्मउ तेहि समाना। किछुउ न पूर्व-विरोध-विधाना।
घत्ता। मति मा! चित्त कातर करहि, फुर कर्मड कर्महँ कारण।
खुट्टइ[1] जीविज्जै जेम नहिँ, तेम अखुट्टइ ना मरण।"
—वहीँ पृ० १७-१८

(३) माताका उपदेश

घत्ता। "यौवन-विकार-रस-वश- प्रसर, सो शूरा सो पडित।
चल-मन्मथ-वचनोल्लापएहिँ, जो परतियहिँ न खडित ॥१॥
पुरुषेँ पुरुषत्त्वउँ पालिब्बउ। परधन-कलत्र नाहीँ लिब्बउ।
सो धन जो अविनाशिय धर्मे। लब्भै पूर्वँकृत-शुभकर्मे।
सो कलत्र परि-योषित-गात्रउ। जो सुखेँ पाणिग्रहण विहित्तउ।
निज मनेँ जातेँ शक उत्पज्जै। मरतेहूँ न कर्म सो किज्जै।
अन्यउ भनउँ पुत्र! परमार्था। यदपि होइ परिपूर्ण महार्था।
तरुणि-तरल-लोचन मनेँ भाविउ। प्रभु-सम्मान-दान-गुण गाविउ।
तेँहउ काल मोहिहि सुमरिज्जै। एक वार मोहिँ दर्शन दिज्जै।
परधन पाद-धूलि भन्निज्जै। परलत्र मोँहिँ सम गणिज्जै।
—वहीँ पृ० २०

(४) सार्थ (कारवाँ)की यात्रा

आग्नेय दिशहिँ छोडति जाति। कुरुजगल महिमडल मुँचति।
लघति विजन-कानन-प्रलब। पुर-ग्राम-खेड-कव्वड-मडप।
यमुना नदि् सलिल सम्-उत्तरेउ। जल-दुर्गहिँ थल-दुर्गहिँ सरेउ।
अन्यान्य-देश-भाषहिँ नियत्त। रत्नाकर-वेलाकुलहिँ प्राप्त।
लक्खेउ समुद्र जल-लव-गँभीर। सत्पुरुष 'व थिर गभीर धीर।
आशीविष इव विष-विषम-शील। वेला-महल्ल-कल्लोल-लील।

---

[1] आयु घटनेपर

दिट्ठइँ विउलइँ वेलावलाइँ। कय-विक्कय-रय-वयणाउलाइँ।
धम्मत्थ-कामकखिर सुहाइँ। सुवियड्ढ-वयण विलयामुहाइँ।
तहि थाडवि जलजतइँ कियाइँ। परिहरिबि वसह-महिसय-सयाइँ।
जलजता कम्मतरु करेबि। करणइह पियवयर्णहिँ सवरेवि।
वहणहिँ[1] आरुढ महापहाण। वणिवरहँ सयइँ पचहिँ समाण।
—वहीं पृ० २१-२२

(५) बंधुदत्तके साथ समुद्र-यात्रा

घत्ता। णिज्जावयवयणुज्जुअमुहइँ, किखवइँ णण भडईं।
सचल्लइ रयणायरहों जलि, खरपवणाहय-धय-वडईं॥

दिढ-बधइँ जिह मल्लर-गणाइँ। णिल्लोहइँ जिह मुणिवर-मणाइँ।
णिब्भिण्णइँ जिह सज्जण-हियाइँ। अकियत्थइँ जिह दुज्जण-कियाइँ।
वहणइँ वहति जलहर-रउद्दि। दुत्तरि अत्थाहि महासमुद्दि।
लेघतइँ दीवतर-थलाइँ। पिक्खति विविह कोऊहलाइँ।
इय लीलइँ वच्चताहँ ताहँ। उच्छाह-सन्ति-विक्कम पराहँ।
दुप्पवणें घणतरुवर-समीवें। वहणइँ लग्गइँ मयणाय-दीवें।
कल्लोल-बोल-जलरव वमालें। असगाह-गाह गहणतरालें।
तीरतरें ज सघट्ट पोय। उत्तरिय तरिव पमुहाइ लोय॥

घत्ता। त वयणु सुणिवि णायर-जणहु, न सिरि वज्जदडु पडिऊ।
वोहित्थइँ लेवि दुरास खलु, गहिर महासमुद्दि चडिऊ॥२५॥

पमुक्के कुमारे दुरायारिएहिँ। अमोहे जलोहे वहतेहिँ तेहिँ।
थिय विभिय त वणिदाण विंद। वियप्पाउर करयलुग्गिण्ण-मुद्द।
अहो सुदर होइ एयाण कज्ज। अगम्मपि गतूण खद्ध अखज्ज।
गय णिप्फल ताम सव्व वणिज्ज। छुव अम्ह गोत्तम्मि लज्जावणिज्ज।

---

[1] बड़ी नाव, महापोत (बजरा)

दीसैं विपुलैं वेलाकुलाइँ। क्रय - विक्रय - रत - वचनाकुलाइँ।
धर्मार्थ-काम-काक्षी सुखाइँ। सुविदग्ध-वचन वनिता-मुखाइँ।
तहँ थायेँउ[1] जलपोतहिँ केताहिँ। परिहरेउ वृषभ-माहिष-शताहिँ।
जलपोता कर्मांतर करेउ। करनै प्रियवचनहिँ सवरेउ।
वहन[2]हँ आरूढ महाप्रधान। वणि-वरहँ गतहँ-पचहि समान[3]।

—वहीं पृ० २१-२२

(५) बंधुदत्तके साथ समुद्र-यात्रा

घत्ता। विद्या-वय-वचन ऋजुकमुखा, की खला, नाना भटई।
सचल्लै रत्नाकर जले, खर-पवनाहत-ध्वज-पटई॥

दृढ वधाइँ जिमि मल्लर[4]-गणाइँ। निर्लोभी जिमि मुनिवर-मनाइँ।
निर-भिन्ना जिमि सज्जन-हियाइ। अकृतार्था जिमि दुर्जन-क्रियाइँ।
वहनैं वहति जलधर-रउद्र। दुस्तर अथाह महासमुद्र।
लघता द्वीपातर - थलाइँ। पेखता विविध कुतूहलाइँ।
इमि लीलै वाँचत ताँह ताँह। उत्साह-शक्ति-विक्रम-पराह।
दुप्-पवने घन-तरुवर-समीपेँ। प्रवहण लागेँउ मैनाकद्वीपेँ।
कल्लोल-बोल-जल-रव-भ्रमरे। असख ग्राह ग्राह गहन-'तरालेँ।
तीरतरे जो सघट्ट पोत। उत्तरेँउ तरी-प्रमुखादि लोग।

घत्ता। सो वचन सुनिय नागरजनहु, जनु शिरेँ वज्रदड पडेँऊ।
वोहितेहिँ लेइ दुराश खल, गहिर महासमुद्र चढेँऊ॥२५॥

प्रमुचे कुमारे दुराचारियेहि। अमोघे जलोघे वहतेहि तेहि।
ठिआ विस्मिता सो वणीन्द्रान-वृन्दा। विकल्पातुरा करतलो दग्गीर्ण-मुद्रा।
"अहो सुदरो होइ एहू न काजा। अगम्याह गन्तु अखद्याउ खाद्या।
गओ निष्फला एह सव्वा वनिज्या। छुयो अम्ह गोत्रेहु लज्जावनीया।

---

[1] रहेउ [2] प्रवहण (जहाज) [3] सहित [4] पहलवान

ण जत्ता ण वित्त ण मित्त ण गेह । ण धम्म ण कम्म ण जीय ण देह ।
ण पुत्त कलत्त ण इट्ठं पि दिट्ठं । गय गयउरे[1] दूरदेसे पइट्ठं ।
खय जाइ नूण अहम्मेण धम्म । विणट्ठेण धम्मेण सव्व अकम्म ।
कय दुक्किय दोहएण हएण । सुहायारभट्ठेण दुट्ठेण एणं ।
अणिट्ठ कणिट्ठ भुअ सप्पहाये । समुद्दे रउद्दे खय तुम्ह जाये ।

—वही पृ० २२, २३

४—सामंती वणिक्समाज

(१) वसंत-वर्णन

घत्ता । एत्तहि महुमासहो आगमणु, एत्तहि पियपुत्त-समागमणु ।
परमोच्छवि रोमचिय भुवहो, मुहु वियसिउ धणयत्तहों सुवहो ॥८॥

जिम तित्थु तेम पचहि सएहि । किय भवण सोह निव्वुइ गएहि ।
घरि-घरि मगलइ पघोसियाइँ । घरिघरि मिहुणइ परिओसियाइँ ।
घरिघरि तोरणइँ पसाहियाइँ । घरिघरि सयणइ अप्पाहियाइँ ।
घरिघरि बहुचदण-छडय दिन्न । मरु-कुद-वणय-दवणय-पइन्न ।
घरिघरि सरेणु-रइ-पिंजरीउ । सोहति चूयतरु-मजरीउ ।
घरिघरि चच्चरि कोऊहलाइँ । घरिघरि अदोलय सोहलाइँ ।
घरिघरि कय-वत्थाहरण सोह । घरिघरि आरद्ध-महाजसोह ।
घरिघरि सरूव-रजिय-मणाइ । जुवइहि जोइयइ सदप्पणाइ ।

घत्ता । घरिघरि जलमगलकलस किय, घरिघरि घरदेवय अवयरिया ।
घरिंघरि सिंगार-वेसु धरिवि, नच्चिउ वर-जुवइहि उत्थरिवि ॥९॥

त गयउरु सो पउर-समागमु । सो सियपक्खु वसतहो आगमु ।
ताइ निरतराइँ चुअ वणइँ । ताइ धवलपुजवियइ भवणइँ ।

---

[1] हस्तिनापुर

न यात्रा न वित्तो न मित्रो न गेहो । न धर्मो न कर्मो न जीवो न देहो ।
न पुत्रो कलत्रो न इष्टोउ दष्टो । गयउ गजपुरे दूरदेशे पइट्ठो ।
क्षयो होइ निश्चय अधर्मेहि धर्मो । विनष्टेहि धर्मेहि सर्वो अकर्मो ।
करेंउ दुष्कृत दोहकेहि हतेहि । शुभाचारभ्रष्टेहि दुष्टेहि एहि ।
अनिष्टो कनिष्टो भुजो सप्रहाइ । समुद्र रउद्रे क्षयो तुम्ह जाइ ।
—वही पृ० २, २३

४—सामंती वणिक्समाज

(१) वसंत-वर्णन

घत्ता । इतहू मधुमासह आगमनू । इतहू प्रियपुत्र-समागमनू ।
परमोत्सवें रोमाचित-भुजहू । मुह विकसिउ धनदत्तह सुतहू ॥८॥
जिम तीर्थ तेमि पचहु गतेहिँ । कियउ भवन सोह निर्वृति-गतेहिँ ।
घरघर मगलइ प्रघोपिताइँ । घरघर मिथुनै परितोपिताइ ।
घरघर तोरणै प्रसाधिताइँ । घरघर स्वजनै अल्पाधिकाइँ ।
घरघर वहुचदन-छटा दीन । मरु-कुन्द-वनय-दवना-प्रकीर्ण ।
घरघर स-रेणु[1]-रज-पिजरीउ । सोहति चूत तरु-मजरीउ ।
घरघर चर्चरि कौतूहलाइँ । घरघर अदोलै सोहलाइँ ।
घरघर कृत-वास्त्राभरण सोह । घरघर आरब्ध महायशोघ ।
घरघर स्वरूप-रजित-मनाइँ । युवती जोवैं (मुँह) दर्पणाइँ ।
घत्ता । घरघल जल-मगल-कलश किय, घरघर देवय अवतदिणा ।
घरघर शृगारवेप धरेंऊ, नाचेउ वरयुवतिहिँ उच्छलिया ॥९॥
सो गजपुर सो पौरसमागम । सो सित-पक्ष वसतहँ आगम ।
सोइँ निरतराइँ चूत-वनईं । सोइ धवलपुजवियइँ भवनइँ ।

---

[1] पटवास, सौगधिक चूर्ण

सो बहु परिमलट्ठु वण-तूरउ। पिय-सुह-सीयलु दाहिण मारुउ।
सो पुर-सोह कासु उवमिज्जइ। जा पिक्खवि सुर हमिरइ दिज्जइ।
जहिँ उज्जाण-पुरइ सुहसचिय। दाहिणपवन पहय-कुसुमचिय।
जहिँ मरुकुद-कुसुम सचलियउ। दवणय-मजरीउ नव हरियउ।
जहिँ आयबिर फुल्लप लासउ। सोहइ नाइ पलित्तु हुवासउं।
जहिँ वहु रस-विसेस-वस-कमलइ। बहु-कुसुमइ धुणति भमर-उलइ।
घत्ता। जहिँ मालइ-कुसुमामोयरउ, चुबतु भमइ वणि महुअरऊ।
अइमुत्तए'वि जहि रइ करइ, सो वरवसतु -को न सरई॥१०॥
—वही पृ० ५६-५७

(२) नारी-सौन्दर्य

दिट्ठि कुमारि वियणि सोवणघरि। लच्छि नाइँ नव-कमल-दलतरि।
जिण-सासणि छज्जीव दया इव। पडिय-मरणि सुगइ वरिमाइव।
मुहुमारुइण मलय-वणराइव। सिहलदीवि रयणविख्याइव।
सोहइ दप्पणि कील करती। चिहुर-तरग-भग विवरती।
सो फलिहतरेण सा पिक्खइ। सावि तासु आगमणु न लक्खइ।
घत्ता। न वम्मह भल्लि विंधण-सील जुवाण-जणि।
तहि पिक्खिवि कति, विंभिउ झत्ति कुमारमणि॥८॥
उप्पल दल-दीहर-पायहिँ। नह-मणि-किरण-करविय-छायहिँ।
जघोरुय गुज्झतर पासइँ। सुणियत्थइँ णिझीण परिवासइँ।
पोततर उब्भिन्न पयासइँ। त विहसति पिहिय परिहासइँ।
वियडु नियब-बिबु सोहिल्लउ। रेहइ अद्धाइद्ध कडिल्लउ।
रोमावलि वलि अगि विहावइ। थिय पिपीलि-रिंछोलि'व नावइ।
रसणादाम निबधणु सोहइ। किंकिणरणझणतु मणु खोहइ।
समचक्कलु कडियलु किसु मज्झइ। नज्जइ करयल मुट्ठिहि गिज्झउ।
तिवलि-तरगइँ नाही-मडलु। न आवत्ता-इद्धु महाजलु।

सो वहुपरिमलाढच-वन-तूर्यंउ । प्रिय-सुख-शीतल-दक्षिणमारुतु ।
सो पुर-शोभाँ कासु 'पमिज्जै । जा पेखिय सुर अचरज दिज्जै ।
जहँ उद्यानपुरै सुख-सचित । दक्षिण-पवन-प्रहत-कुसुमचित ।
'जहँ मरु-कुद-कुसुम सचलियउ । दवना-मजरीउ नव-हिलियउ ।
जहँ आताम्रहु फुल्लपलाशउ । सोहै न्याइँ प्रदीप्त-हुताशउ ।
जहँ-वहुरस विशेष-शव कमलइँ । वहुकुसुमैँ धुनति भ्रमरकुलइँ ।
घत्ता । जहँ मालति-कुसुमामोदरत, चुवत भ्रमैँ वनेँ मधुकरऊ ।
अतिमुक्तएउ जहँ रति करई, सो वर-वसत को न स्मरई ॥१०॥
—वही पृ० ५६-५७

(२) नारी-सौन्दर्य

दीख कुमारि विजनेँ सोवनघरेँ । लक्ष्मि न्याइँ नवकमल-दलतरेँ ।
जिन-शासने छै जीव-दया इव । पडित मरनेँ सुगति-वरिमा इव ।
मुख-मारुतेँ मलय-वन-राजि'व । सिहलद्वीपेँ रतन-विख्याति'व ।
सोहै दर्पणेँ क्रीडाँ करती । चिकुर - तरग - भग विवरती ।
सो स्फटिकातरेहिँ तहिँ पेखइ । सापि तासु आगमन न लक्खई ।
घत्ता । जनु मन्मथ-भल्ल-विधानशील युवान-जनेँ ।
ताहि पेखिय काति, विस्मेउ झट्ट कुमार मनेँ ॥८॥
उत्पलदल-दीरघ-पायहिँ । नख-मणि-किरण-करवित-छायहिँ ।
जघ-उरू-गुह्यान्तर-पासइँ । सुनिवसितैँ झीन परिवासइँ ।
पीतातर-उद्भिन्न-प्रयासइँ । तेहिँ वह सति पिहित-परिहासैँ ।
विकट - नितव-विब सोहिल्लउ । राजै अर्द्धोअर्द्ध कटिल्लउ ।
रोमावलि वलि अगेँ विभावै । थिउ पिपीलि-रेखा इव नावै ।
रसना-दाम-निबधन सोहै । किकिणि रण-झणत मन क्षोभै ।
सम-चक्कर कटितट कृश-मध्यउ । आवे करतल-मुष्टिहु ग्राह्यउ ।
त्रिवलि-तरगइ नाभीमडल । ननु आवता ऋद्धि-महाजल ।

पीणुन्नय-निबिडइँ थणवट्टइँ । निब्भिदइँ हारावलि थट्टइँ ।
मालइ-माला कोमल-बाहउ । रयण-कडय-केऊर-सणाहउ ।
सरलंगुलि सुरेह कोमल कर । सम्भा-वयव नाइँ- नहतविर ।
रयणाहरण विहूसिय कंठि । वेलासिरि'व उयहि-उवकंठि ।
किउ अपमाणु णिउत्तु मुहुल्लउ । अहरउ नावइ दाडिम-हुल्लउ ।
उत्तुंगि , तिक्खग्गें नासि । पच्छन्नेण'व अमुणिय सासें ।
कन्निहिँ कुंडल-जुअ-गडयलिहिँ । नयणिहिँ दीह-कसण-चलधवलिहिँ ।
भंउहा-जुअलएण सुविहत्तें । भालयलेण अद्ध-ससिपत्तें ।
महुपिय-पेसल महुरालावि । सिरु आवचिय केस-कलावि ।
सो पिक्खेबि अणोवमरूवें । अच्छेरइँ विब्भम . सभूवें ।
बोल्लाविय नायइ-परिहासइँ । मणहर-कामुक्कोवण-भासइँ ।
"हे मालूर[१]-पवर-पीवर-थणि । अच्छहिँ काइँ इत्थु वज्जिय जणि ।
कारणु काइँ नयरु ज सुन्नउँ । मढ-विहार-देहुरहिँ रवन्नउँ ।
राणउ कवणु आसि इह राउलि । धय-तोरण-मणि-खंभ-रमाउलि ।"
तं निसुणेबि सलज्जिय-वयणी । थिय हिट्ठामुह पगलिय-नयणी ।
मइल-कवोल कज्जला मीसिय । नियकुल-देवयाइँ म भीसिय ।
घत्ता । वरइत्तु पुत्तियहु तउतणउ, मुहकमलु निहालहिँ करि विणउ ।
लइ जलु पक्खालहि लोयणइँ, म चिरु करि दुक्खुक्कोयणइँ ।।
—वहीं पृ० ३२-३३

(३) आभूपण-सज्जा

नियं-पुत्त-विढत्तु पिक्खिबि अतुलु महाविहउ ।
वट्टिउ सिंगारु पइ परिहरिउ, परिहरिबिगउ ।।
कमलइँ पुत्त-पयाव फुरतिएँ । लइउ दिव्वु आहरणु तुरतिए ।
बद्धु कडिल्लि अलक्खिय नामउ । उप्परि पीडिउँ रसणादामउ ।

---

[१] कपित्थ (कैथ)

पीनोन्नत-निविडइँ स्तनवट्टैं। निर्भिदैं हारावलि ठट्टैं।
मालति-माला - कोमल - बाहुउ। रतन - कटक - केयूर - सनाथउ।
सरलांगुलि-सुरेख कोमल कर। सन्ध्या'वयव न्याइँ नभ-तामर।
रतनाभरण - विभूषित कंठे। वेलाश्री'व उदधि - उपकंठे।
किउ अपमान अनूप-मुखल्लउ। अधरउ नावइ दाडिम-फुल्लउ।
उत्तुंगे तीक्ष्णाग्रे नासें। प्रच्छन्नेंहिँ 'व अज्ञात श्वासें।
कर्णे कुंडल-युग गण्ड-स्थले। नयनेहिँ दीर्घ-कृष्ण-चल-धवले।
भौंहा युगलएहिँ सुविभक्ते। भाल-तलेहिँ अर्ध-शशि-पत्रे।
मधु-प्रिय-पेशल-मधुरालापें। शिर आच्छादिय केश-कलापें।
सो पेखिया अनूपमरूपा। अप्सराइँ विभ्रमस-भूता।
वोलेरू नागर-परिहासइँ। मनहर-कामु-त्कोपन-भाषइँ।
"हे मालूर प्रवर-पीवर-थनि! आछेहि[1] काह इहाँ वर्जित-जनें।
कारन काइँ नगर जो सूना। मठ-विहार-देवलहिँ रमन्ना।
राना कवन आसि[2] एहि राउलें। ध्वज-तोरण-मणिखंभ समाकुले।"
सो सुनियाउ सलज्जिय-वदनी। थिउ हेट्ठामुख पघरिय-नयनी।
मइल्-कपोल कज्जला-मिश्रिय। निजकुलदेवताइँ जनु भीपिय।
घत्ता। वरयात पुत्रियह तवकेरउ, मुखकमल-निहारहिँ करि विनय।
लेइँ जल पक्खारैं लोचनइँ, जनु चिर करि दुखुत्कोचनइ॥
—वहीं पृ० ३२-३३

(३) आभूषण-सज्जा

निज पुत्र विदग्धता पेखि, अतुल महाविभव।
वाटेंउ शृंगार पति परिहरेंउ गउ॥
कमला पुत्र-प्रताप स्फुरतिएँ। लयेंउ दिव्य-आभरण तुरतिएँ।
वाँधु कटिल्लि अलक्षित-नामउ। ऊपर पीडेंउ रसनादामउ।

---

[1] रमणीय [2] हो

मुक्कउ किंकिणीउ नउ सकिउ। भरिबि रयण-कचुकउ तडक्किउ।
मुद्ध मराल-जुयलि किउ छन्नउँ। कबुकठ कंदलिए रवन्नउँ।
पीण-घणत्थण-मडल-हारि। सिरु धम्मिल्ल-कुसुम-पब्भारि।
कन्नहिँ कुडलाइँ आइद्धइँ। उप्परि वेढियाइँ पहचिधइँ।
पूरिउ रयण-चूडु मणि-वलयहों। दिन्नइँ केंउरइँ बाहु-लयहो।
अगुलीय मणि मुज्जावत्तउ। बीसहिँ अगुलीहिँ पक्खित्तउ।
पय-मणिवद्धय नेउर-जुयलउ। सुह-सजनिय महुर-रव-मुहलउ।
जघाजुयलि रयण पज्जत्तउ। कडियलि[1] रसण-कणय-कडि-सुत्तउ।
मुहि मणि-चूडहों ककण जुयलउ। सोहिउ अद्धहारि वच्छयलउ।
एमाहरणु लेबि सविसेसिं। थिय नदणहों बियडि परिओसि।
—वहीं पृ० ६७-६८

(४) विरह-वर्णन

घत्ता। तो वुच्चइ अहरु पुरतियइँ णिवसतिहि तउतणइँ घरि।
उप्पाइय केणवि भति पहु, जा सा कहि म हियइ धरि ॥७॥
तुहुँ पुरवरहों सव्व-साहारणु। जाणहिँ कज्जाकज्ज-वियारणु।
णवर णिरारिउ विप्पियगारउ। सुहियउ होइ सगु तुम्हारउ।
सेविज्जति विचित्त सणेहउ। मछुडु तुहुँ जिण जम्मिबि एहउ।
तो वरइत्ति वुत्तु अवकउ[2]। को सक्कइ तउ करिवि कलकउ।
हउमि णाहि तउ विप्पिय-गारउ। जाणहिँ तुहुँ जि सगु अम्हारउ।
णवर ण जाणमि काइमि कारणु। जाउ असत्थ पियम्म निवारणु।
केम कतिपइँ मणिण कलकमि। खणमित्तु'बि देक्खणहँ न सक्कमि।
मउ-चलति णिघतहों णयणइँ। अणशमऊ करति तव वयणइ।
घत्ता। अच्छतु ताम पियविप्पियइँ, एक्कगणिबि म रइ करहि।
परियाणिबि एही कज्जई, ज जाणहिँ त मणि धरहि ॥८॥

---

[1] कटितल [2] अ-कुटिल

मुक्तउ किणीउ ना शकेँउ । भरिउ रतन-कचुकउ तडक्कउ ।
मूर्ध मराल-युगलेँ किउ छन्नउ । कबुकठ-कदलिएँ रमन्नउ[1] ।
पीन-घन-स्तनमडल-हारेँ । शिर-धम्मिल-कुसुम-प्रब्-भारेँ ।
कर्णहिँ कुडलाइँ आबद्धैँ । ऊपर बेठियाइँ प्रभ-चिन्हैँ ।
पूरेँउ रतन-चूड मणि-वलयहोँ । दीनी केयूरइँ वाहुलतहोँ ।
अगुलीय-मणि मुजावर्त्तउ । वीसहिँ अगुलीहि प्रक्षिप्तउ ।
पद-मणि-वद्धेउ नूपुर-युगलउ । सुख-सजनित मधुर-रव-मुखरउ ।
जघा-युगलेँ रतन-प्रज्-जुत्तउ । कटितलेँ रसन-कनक-कटिसूत्रउ ।
मुखेँ मणि-चूडहोँ ककण-युगलउ । सोहेँउ अर्धहार वक्षतलउ ।
ए आभरण लेइ सविशेषेँ । ठिय नदनहोँ विकट परितोषेँ ।

—वहीँ पृ० ६७-६८

(४) विरह-वर्णन

घत्ता । तो वोले अधरफुरतियइँ, निवसतिहि तवकेर घरे ।
उत्पादिय कैसेँहुँ भ्रान्ति प्रभु, या सा काहि न हृदय धरे ॥७॥
तव पुरवरहोँ सर्व-साधारण । जानैँ कार्याकार्य-विचारन ।
केवल अत्यन्त विप्रिय-कारउ । सुहृदउ होइ सग तुम्हारउ ।
सेविज्जइँ विचित्र-सनेहउ । मत्सर तोहि न जन्मेँउ एहउ ।
तो वरयातो वोल अवकउ । को सक्कै तव करव कलकउ ।
हौँहु नाहि तव विप्रिय-कारउ । जानै तुहुँहु सग हम्मारउ ।
केँवल न जानौँ काहुउ कारण । जाउ अस्वस्थ प्रियम्म्[2]-निवारण ।
केम काति तेइँ मनेहिँ कलकउँ । क्षणमात्रउ देखवहु न सक्कउँ ।
मद चलति देखते नयनइँ । अनरामउ[3] करति तव वदनइँ ।
घत्तो । रहै ताँह प्रिय-विप्रियइँ, एकागनेहु न रति करहि ।
परि-जानिय एँहि कार्यगती, जो जानहि सो मनेँ धरहि ॥८॥

---

[1] था [2] प्रेम, प्रियतम [3] अनभीष्ट

णिसुणिवि तासु परम्मुह वयणइँ। मुहुँ मउलिउ जलभरियइँ णयणइँ।
हियवइ निब्भरु मैणु सम्मारिउ। "दुक्खु दुक्खु" पुणु मणु साहारिउ।
थिय गरुयाहिमाणि मणु लाइवि। मच्छरु माणु मरट्टु पमाइवि।
णउ पहसइ णउ तणुसिगारइ।
णउ केणवि सहु णयण-कडक्खइ। णउ कासुवि गुणदोसइँ अक्खइँ।
तोबि ताहँ घरवइ ण सुहावइ। अवखेरतु पुणुवि वोल्लावइ।
अच्छहिँ काइँ एत्थु दुक्कदिरि। णीसरु कति जाहि पियमदिरि।
त दुव्वयण वासु असहती। णिग्गय परिमणु आउच्छती।
—वहीँ पृ० १०-११

५—सामन्त-समाज

(१) राजद्वार, राजांगण

रायगणगणि पयडिबि दुट्ठहोँ दुच्चरिउ।
त निसुणहु जेम भविसयत्ति-जसु वित्थरिउ।
दाइय दुप्पपचु आयन्निवि। माण-कसाय-सल्लु मणिमन्निवि।
हरियत्तहोँ सकेउ समासिवि। कमलदलच्छि लच्छि सवासिवि।
नियय जणेरि वयण सपेसिवि। पुव्वावर सकेउ गवेसिवि।
बहु नवल्ल पाहुडइँ समारिवि। चदप्पहुँ जिणवरु जयकारिवि।
निग्गउ वणिवरिदु पहुवारहोँ। भडथड-निवह-विसम-सचारहोँ।
जहिँ गय गुलगुलति पिहु जगम। हिलिहिलति तुक्खार-तुरगम।
जहिँ मडलिय सक्क-सामतहँ। निवडिय कणयदडु पइसतहँ।
गलइ माणु अहिमाणु न पुज्जइ। निय-सच्छद-लील नउ जुज्जइ।
जहिँ अव्-भोट्ट[1] जट्ट जालधर। मारुअ-टक्क-कीर-खस-बब्बर।
मरु-वैयग-कुंग-वेराडवि। गुज्जर-गोड-लाड-कन्नाडवि।
इय एमाइ अउव्व-वसुधर। अवसरु पडिवालति महानर।

---

[1] देशोके नाम

सुनिया तासु परामुख-वचनैं। मुख मुकुलेँउ जल भरियउ नयनैं।
हियवइ निर्भर मन सभारेँउ। "दुख दुख" पुनि मन सधारेँउ।
ठिउ गरुआभिमान मन लाइय। मत्सर-मान-दर्प प्र-मार्जेउ।
ना प्रहसै ना तनु शृगारै। ।
ना काहुहिँ सँग नयन कटाक्षै। नहि कासुउँ गुण-दोषै आखै[1]।
तोहु ताहँ घरपति न सोँहावै। अपमानँत पुनिहू बोलावै।
"अछहि काहँ इहाँ दुष्-कदिरेँ। नीसरु कात! जाहि प्रियमदिरेँ।"
सो दुर्वचन-वास असहँती। निर्-गउ परिजन आ-पूछती।
—वहीँ पृ० १०-११

५—सामन्त-समाज

(१) राजद्वार राजांगण

राजागण जाई प्रकटिउ दुष्टहँ दुश्चरितू।
सो सुनहु जिमि भविषदत्त-यश विस्तरिउ॥
दर्शिय दुष्प्रपच आकर्णिय। मान-कषाय-शल्य मनेँ मानिय।
हरिदत्तहोँ सकेत समासेँउ। कमलदलाक्षि-लक्ष्मि सवासेँउ।
निजहिँ जनेरि-वचन सप्रेषिय। पूर्वापर सकेत गवेषिय।
वहु नवल्ल पाहुरइँ[2] सँभारिय। चद्रप्रभ-जिनवर जयकारिय।
निर्-गउ वणि-वरेद्र प्रभु-द्वारहोँ। भट-ठट-निवह-विषम-सचारहोँ।
जहँ गज गुलगुलति पृथु जगम। हिलहिलति तूषार-तुरगम।
जहँ मडलियेँ गरु-सामन्तहँ। वारेउ कनकदड पइसतहँ।
गलै मान अभिमान न पुज्जै। निज-स्वच्छद लील ना जुज्जै।
जहँवाँ भोट-जट्ट-जालधर। मारुव-टक्क-कीर-खस-बर्बर।
मरुवे - अग - कुग - वैराटउ। गुर्जर - गौड - लाट - कर्नाटउ।
ई एताइ अपूर्व-वसुधर। अवसर प्रतिपालति महानर।

---

[1] वोलै [2] प्राभृत (=भेंट)

घत्ता । सामंत-सएँहिँ ज सेविज्जइ रत्तिदिणु ।
त रायदुवारु पिक्खिवि कासु न खुट्टइ मणु ॥

—वहीं पृ० ७१

(२) सामन्ती युगकी शिक्षा

घत्ता । चिन्हइँ दरिसतु महत्तरइँ, सज्जण-जण-हियवउ भरइ ।
आणद णदि-कलयल-रवेण, उज्झासाल पईसरइ ॥
तहिवि तेण गुतु वयण णिउत्ति[1]। परमागम-कल-गुण-सजुत्ति ।
पुणि अक्खर सकेय-कयत्थें । बहु वायरण-सद्द-सत्थ-त्थें ।
सयलकला-कलाव-परियाणिय । अवगाहण-सत्तिए लहु जाणिय ।
जोइस-मत-तत बहु-भेयइँ । धणु-विन्नाण वाण-गुण-छेयइँ ।
विविहाउहइँ विविह-सवरणइँ । रणि हत्थापहत्थ-वावरणइँ ।
दिण्ण पहर पडिपहर पमुक्कइ । लक्खण-चलण-चचला हुक्कइँ ।
मल्लजुज्झ आवग्गण-सचइँ । ढोक्कर-कत्तरि करण पवचइँ ।
गय-तुरग-परिवाहण सन्नइँ । सारासार-परिक्खण गन्नइँ ।
घत्ता । एमाइ विसिट्ठइँ अण्णहिँमि अगउ गुणिहिँ तासु वरिउ ।
जिण महिम पुज्ज दाणोच्छविण उज्झासालहिँ णीसरउ ॥२॥
उज्झासाल मुएँवि घरु आयहों । थिर-गभीर-गुणिहिँ विक्खायहों ।

—वहीं पृ० ८

(३) युद्ध (भविषदत्तका)

पढमउँ पहरतएँ सामिसालि । परिभमिय विसम-भडण-करालि ।
भडथडु अप्प परिहोइ जाम । पाइक्कहों पसरु न होइ ताम ।
त मतिहु वयण सुणेवि तेण । अवलोइय नर हरिसियभुएण ।
दिट्ठइँ सम्माणइँ जोह जाम । पाइक्कहों पसरु न होइ ताम ।

---

[1] ग्रहण करते हैं

घत्ता। सामत शतेंहिँ जो सेविज्जै रात्रिदिन।
सो राजदुवारहँ पेखि कासु न खुट्टै मन ॥

—वहीँ पृ० ७१

(२) सामन्ती युगकी शिक्षा

घत्ता। चिन्हैं दर्शन्त महत्तरहिँ, सज्जन-जन-हृदयउ भरै।
आनदनदि-कलकल-रवेहिँ, पाध्या-शाला[1] पईसरै ॥
तहीँ तेहिँ गुरुवचन-नियुक्ते। परमागम-कलाँ-गुण-सयुक्ते।
पुनि अक्षर-सकेत-कृतार्थे। बहु व्याकरण-शब्द-शास्त्रार्थे।
सकल-कला-कलाप-परिजानिय। अवगाहन शक्तिएँ बहु जानिय।
ज्योतिष-मत्र-तत्र बहुभेदइँ। धनु-विज्ञान बाण-गुण-छेदइँ।
विविध-आयुधइँ विविध-सवरणैँ। रणें हस्त-पहस्त व्यापरणैँ।
दीनु प्रहर प्रतिप्रहर प्रमुचइँ। लक्षण-चलन-चंचला-हुक्कइँ।
मल्लयुद्ध आवल्गन सचइँ। ढोक्कर-कर्त्तरि-करन प्रपंचइँ।
गज-तुरग-परिवाहन सज्झइँ। सारासार-परीक्षण गिन्नइँ।
घत्ता। एताइँ विशिष्टइँ, अन्यहँउ अगउ, गुणेहिँ तासु वरिऊ।
जिन-महिम-पूज-दानोत्सवेंहिँ, पाध्याशालहिँ नीसरिऊ।
पाध्याशाल मुचि घर आयउ। थिर-गभीर-गुणेंहिँ विख्यायउ।

—वहीँ पृ० ८

(३) युद्ध (भविषदत्तका)

प्रथमउँ प्रहरतउ स्वामिशाल। परिभ्रमिय विषम-भडन कराल।
भट-ठट आपा-परिहोइ जाहँ। पायक्कहोँ पसर न होइ ताहँ।
सो मन्त्रिहु वचन सुनीय तेहिँ। अवलोकेंउ नर हर्षित-भुजेहिँ।
दृष्टैँ सम्मानैँ योध जाहँ। पाइक्कहोँ प्रसर न होइ ताहँ।

---

[1] उपाध्यायशाला, पाठशाला

पसरइ साकेय-नरिद-सिन्नु । रोमच उच्च कचुअ पवन्नु ।
हरि-खर-खुर-रवि खोणी खणतु । गयपय पहारि धरदरमलतु ।
"हणु मारि मारि" कलयलु करालु । सन्नद्ध वद्ध भड-थडव मालु ।
त निऍवि सधणु अहिमुहुँ चलतु । धाइउ कुरु साहणु पडिखलतु ।

घत्ता । कलयल-गभीरइँ दिन्नसरीरइँ, हय-रणभेरि-भयकरइँ ।
कुरुपोयणवल्लहँ अणिहय-मल्लहँ भिडियइँ वलइँ समच्छरइँ ।।

दुवई । सो हरि-खर-खुरग्ग-सघट्टि छाइउ रणु अतोरणे ।
ण भड-मच्छरग्गि-सधुक्कण धूमतमधयारणे ।।

धूलीरउ गयणगणु भरतु । उट्ठिउ जगु अधारउ करतु ।
नउ दीसइ अप्पु न परु स-खग्गु । न गइदु न तुरउ न गयणमग्गु ।
तेहवि काले अविसट्ट-मोह । हुकारहु पहरु मुअति जोह ।
किवि आहणति दिसि बहु मुणेवि । गय-गज्जिउ हय-हिसिउ सुणेवि ।
किवि कोक्किवि पडिसद्दहों चलति । असि-मुट्ठिए नियं-लोयण मलति ।
धावतु कोवि अहियाहिमाणु । गयदतहिँ भिन्नु अपिच्छमाणु ।
कत्थइ पहराउर[1] अयसमोह । गयघड पयट्ट निहणति जोह ।
रउ नट्ठु विहिडिउ भडवलेण । महि मुद्दिय वण-सोणिय-जलेण ।

घत्ता । तो गय-घड पिल्लिउ सुहडहिँ मिल्लिउ अवरुप्परि कंप्परियतणु ।
सरजालो मालिउ पहर करालिउ, भमरावत्ति भमिउ रणु ।।

दुवई । तो इक्कवयकन्न-पगुरणहिँ सुहडहिँ नारसिहहिँ ।
दढ-दाढा-कराल-मुह-भासुर लोलललत जीहाहिँ ।।१।।

खज्जतु भमिउँ करवट्ट सिन्नु । ओसारु निविड गयघडहिँ दिन्नु ।
तेहइ वि कालि सोडीर-वीर । पहरति सुहड सगाम-धीर ।
केणवि कासुवि असिधाउ दिन्नु । उरु सिरु स-खग्गु भुअ-दडु छिन्नु ।
असि वाहइ कोवि गलद्ध सेसु । हत्थेण धरेवि पडतु सीसु ।

---

[1] प्रहार से पीडित

पसरै साकेत-नरेन्द्र शीर्ण । रोमाच उच्च-कचुक प्रॉवरण ।
हरि-खर-खुर-रवें क्षोणी खनत । गजपदप्रहरें धर दरदरत ।
"हन, मार,मार" कलकल-कराल । सन्नद्ध बद्ध भटठटहँ माल ।
सो निजहु स-धनु अभिमुख चलत । धायेंउ कुरु-साधन[1] प्रतिखलत ।
घत्ता । कलकल-गभीरइँ, दीर्णशरीरइँ, हत-रणभेरि-भयकरईं ।
कुरुउनवल्लभ, अनिहत-मल्लहँ, भिडियैं वलइँ समत्सरईं ॥

द्विपदी । तो हरि-खॉर-खुराग्र-सघट्टें, छाइउ रणुअतोरणे ।
जनु भट-मत्सर-'ग्नि-सधुक्षण धूमतम'न्धया रणे ॥
धूली-रज गगनागणें भरंत । उट्ठेउ जग-अधारउ करत ।
ना दीसै आपु न पर स-खङ्ग । न गयद न तुरग न गगन-मार्ग ।
तेहिइ काले अ-विसृष्ट-मोह । हुकारहु "प्रहरु" मुँचति योध ।
केउ आ-हनति दिशि-बधु मॉनेइ । गज-गर्जन हय-हिन्हिन सुनेइ ।
केउ कोक्किउ प्रतिशब्दहु वदति । असि-मुष्टिहिँ निज-लोचन मलति ।
धावत कोंइ अधिकाभिमान । गजदतहिँ भिन्दु आपृच्छमान ।
कतहूँ प्रहरातुर अयश-मोह । गजघट-प्रवृत्त नि-हनति योध ।
रज नष्टउ हिंडिउ भटवलेहिँ । महि मुद्रिय व्रण-शोणित-जलेहिँ ।
घत्ता । गजघट पेंल्लेंउ सुभदेहिँ मिल्लेंउ, अपरोपरि कर्परिय तनू ।
शरजालो मालेउ, प्रहर करालेउ, अमरावर्त्तें भ्रमेंउ रणू ॥

द्विपदी । तो एकहिँ एक प्रागुरणहि सुभटहिँ नरसिंहहिँ ।
दृढ दष्ट्रा-कराल मुख-भासुर लोलललत जीभहिँ ॥
खाद्यत भ्रमिउ कर-वाहँ-शीर्ण । ओसार निविड गजघटहिँ दिन्न ।
तेहिंई काल शौडीर-प्रवीर । प्रहरति सुभट सग्राम-धीर ।
केहुउ काहुहिँ असिघाउ दिन्न । उरु-शिर स-खङ्ग भुजदड छिन्न ।
असि वाहै कोउ गलार्ध-शेष । हार्थेहिँ धरेउ पडत-शीश ।

---

[1] सेना

केणवि आरोडिउ लवकन्नु। वचेवि फरसु कुतेण भिन्नु।
केणवि रणि तज्जिउ एक्कवाउ। विज्जाहर कर्णि दिन्नु घाउ।
केणवि ढुक्कतु ललतु जीहु। दोखडिवि पाडिउ नारसीहु।
कत्थइ कडु आविय गयहँ पति। परिभमिय सुहड सीसइँ दलति।
कत्थइ पहराउर दुन्निवार। हिंडिय[1] तुरग पडि आसवार।
कत्थइ सरोहु वण सोणियधु। सुरहिउ करि नरकेसरिहि खघु।
एहइ वट्टतए रणि असक्कि। मतणउँ जाउ महिवाल चक्कि।
"अहो! अच्छइ हु काइँ निरावसन्न। कुरुवइहि ओंसारिय लवकन्न।
मछुडु दुज्जउ भूवाल राउ। दीसइ धणपइ-सुउ बहु-पसाउ"।
त मतिवयणु हियवइ धरेवि। उट्ठिय सयलवि समहरु करेवि।
घत्ता। महिवइ सामतिहिँ समरि भिडतिहिँ कुरुवइ साहणु ओसरिउ।
दिढ पहर करालिउ समरस-जालिउ, रणमहि मिल्लिवि नीसरिउ ॥१५॥
दुवई। भग्गइ सामि सिन्नि पइसतए पसरिबि नियमडले।
निरु खलभलिय गाम-पुर-पट्टण, तहिँ कुरुभूमि-जगले ॥
—वही पृ० १०२-१०३

४ : ग्यारहवीं सदी

§ २५. अज्ञात कवि

काल—१०१० (भोज-काल १००९-४२)।

१–तैलप-पराजित मुंजकी विपदा

(१) मुंजका पश्चात्ताप

इणि राजिइँ नहु काजु, भोज-गुणागर तूह विणु।
काठ दिवारउ आज, जिम जरई भोजह मिलूँ ॥

---

[1] भटका फिरता ह

काहुहि आलोडेँउ लबकर्ण । वचाइ परशु-कुतेहिँ भिन्न ।
काहुहिँ रणेँ तर्जेँउ एक बाव । विद्याधर-कर्णे दिन्न घाव ।
काहुहि ढुक्कत ललत जीभ । दोखडउ पातेँउ नारसीह ।
कतहूँ कउ आवी गजहँ पक्ति । परिभमिय सुभट शीशैँ दलति ।
कतहूँ प्रहरातुर दुर्निवार । हिंडिय तुरग, पडिया सवार ।
कतहूँ सरोष व्रण-शोणित'न्ध । सुरभिउ करि नरकेसरिहि खध ।
ऐसेँइँ होवते रणेँ असक्केँ । मत्रण हुई महिपाल-चक्र ।
"अहोँ ! आछै काइँ निरावसन्न । कुरुपतिहिँ ओसारेँउ लवकर्ण ।
निश्चय दुर्जय भूपाल राव । दीसै धनपति-सुत वहु-प्रसाद ।"
सो मन्त्रिवचन हृदयहिँ धरेइ । उट्ठिय सकलउ समहर करेइ ।
घत्ता । महिपति सामतहिँ समर-भिडतहिँ, कुरुपति-साधन अपसरँऊ ।
दृढ-प्रहरकरालउ, समर-सज्वालेँउ, रण-महि, मेलिय नीसरेऊ ॥१५॥
द्विपदी । भागै स्वामि शीर्ण पइसतएँ पसरेँइ निजय-मडले ।
अति-खलबलिय ग्राम-पुर-ट्टपन, तहँ कुरुभूमि-जगले ॥

—वही पृ० १०२-१०३

४ : ग्यारहवीँ सदो

§ २५. अज्ञात कवि

काल—१०१० (भोज-काल १००९-४२) ।

१—तैलप[1]-पराजित मुंजकी विपदा

(१) मुंजका पश्चात्ताप

एहि राजहिँ नहिँ काज, भोज गुणागर ताहि विनु ।
काठ दिवारउ आज, जिमि जाई भोजहँ मिलौँ ॥

---

[1] चालुक्यराज तैलप

सामिय अतिहिँ अजाणु, ज इण परिबोलइ हियइ ।
जाण्या एहु प्रमाणु, कीधउँ ज न कयत्थियइ ॥
—[1]प्रबध चितामणि, पृ० २२

(२) रुद्रादित्यकी तैलप पर न चढ़नेकी सलाह

देव ! अम्हारी सीष, कीजइ अवगणिअइ नहीँ ।
तूँ चालती भीष , इणि मत्रिहिँ हुस्यइ सही ॥
रुलियउँ रायह राजु, तइँ वइठइ मइँ लघियइ ।
ए पुणि वडउँ अकाजु, तूँ जाणे मालव-धणी ॥
सामी मुह तउ वीनवइ, ए छेहलउ जुहारु ।
अम्ह आइसु हिय सीसि, तुह पडतउँ देषूँ छारु ॥
—प्र० चि० पृ० २२

(३) मुंजसे तैलपका भीख मँगवाना

झोली तुट्टवि कि न मुअ, किँ हुउ न छारह पुजु ।
हिण्डइ दोरी दोरियउ, जिम मकडु तिम मुज ॥
चित्ति विसाउ न चितियइ, रयणायर गुण-पुजु ।
जिम जिम वायइ विहिपडहु, तिम नाचिजइ मुजु ।
सायरु षाईँ लकगढु, गढवइ दसशिरु राउ ।
भग्ग षई सो भजि गउ, मुज म करिसि विसाउ ॥
गय गय रह गय तुरयगय, पायक्कडानि भिच्च ।
सग्गट्ठिय करि मतणउँ, महता रुद्दाइच्च ॥
—प्र० चि०, पृ० २३

---

[1] प्रबंध-चिंतामणि, विश्व-भारती, शांति-निकेतन (संवत् १९८९)

स्वामिय अतिहि अजान, जो इन पर बोलै हिय।
जान्या एहु प्रमाण, कीधौं जो न कदर्थियइ ॥
—प्रबंध चिंतामणि, पृ० २२

(२) रुद्रादित्यकी तैलप पर न चढ़नेकी सलाह

देव ! हमारी सीख, कीजै औगनियै नहीं।
तू चालती भीख, इन मन्त्रिहिँ होइह सखी ॥
रुलियउ राजहँ राज, तैं बइठै मैं लघियइ।
ए पुनि बडो अकाज, तू जाने मालव-धनी ॥
स्वामी मुखतें वीनवै, यह पाछिउ जुहार।
मोहिँ आयसु हिय शीश तुह, पडतो देखूँ छार ॥
—प्र० चिं०, पृ० २२

(३) मुंजसे तैलपका भीख मँगवाना

झोली टुट्टी की न मुअ, कि हुअ न छारह पुंज।
हिंडै[१] डोरी डोरियउ, जिमि मर्कट निमि मुंज ॥
चित्तें विषाद न चिंतियइ, रतनाकर गुण-पुंज।
जिमि जिमि वाजै विधि-पटह, तिमि ना चिज्जै मुंज ॥
सागर खाईं लंक-गढ, गढपति दश-शिर राव।
भाग्य क्षयी सो भजि गउ, मुंज ! न करहि विषाद ॥
गयें गज रथ गयें तुरग गयें पायकडानउ भृत्य।
सर्गे ठिउ करि मंत्रणा, महता रुद्रादित्य ॥
—प्र० चिं०, पृ० २३

---

[१] घूमता है, भटकता है

२—सुखी कुटुंब

भोली मुन्धि म गव्वु करि, पिक्खवि पहु-ख्वाइँ।
चउदह-सइँ छहुत्तरइँ, मुजह गयह गयाइँ॥
च्यारि बइल्ला धेनु दुइ, मिट्ठा-बुल्ली नारि।
काहू मुज कुडबियहँ, गयवर बज्झइँ वारि॥
—प्र० चिं०, पृ० २४

३—दासी[1]-प्रेम-निंदा

दासिहिँ नेह न होइ, नाना निरहीँ जाणियइ।
राउ मुँजेसरु जोइ, घरिघरि भिक्खु भमाडियइ॥[2]
वेसा छडि वडायती, जे दासिहिँ रच्चति।
ते नर मुजनरिन्द-जिम, परिभव घणा सहति॥
—प्र० चिं०, पृ० २४.

४—नीति-वाक्य

जे थक्का गोला नई, हूँ बलि कीजूँ ताह।
मुज न दिट्ठउ विहलिऊ, रिद्धि न दिट्ठ खलाहँ॥
जा मति पच्छइ सम्पजइ, सा मति पहिली होइ।
मुज भणइ मुणालवइ, विघन न वेढइ कोइ॥
—प्र० चिं०, पृ० २४

५—वैराग्य

कसु करु रे पुत्त कलत्त धी कसु करु रे करसण वाडी।
एकला आइवो एकला जाइवो हाथ-पग बेहु झाडी॥
—प्रबधचिंतामणि, पृ० ५१

[1] मृणालवती [2] घुमाती है

२–सुखी कुटुंब

भोली मुग्धे ! न गर्व करु, पेखेँवि प्रति-रूपाइँ ।
　　चौदहसै छेहत्तरा, मुजह गजह गताइँ ॥
चारि बइल्ला धेनु दुइ, मिट्ठा-बोली नारि ।
　　काह मुज ! कुटुंवियइँ, गज-वर बाँधे द्वारि ॥
—प्र० चिं०, पृ० २४

३–दासी-प्रेम-निंदा

दासिहिँ स्नेह न होइ, नाना निरखी जानियइ ।
　　राव मुँजेश्वर जोइ, घर-घर भीख भ्रमावई ॥
वेसा छाडि बडायती, जे दासिहिँ रजति ।
　　ते नर मुज-नरेन्द्र जिमि, परिभव घना सहंति ॥
—प्र० चिं०, पृ० २४

४–नीति-वाक्य

जे थाके[१] गोदा नदी, हौँ वलि कीजौँ ताह ।
　　मुज न देखेउ विहरियउ, ऋद्धि न दीसु खलाहँ ॥
जा मति पाछे ऊपजै, सा मति पहिले होइ ।
　　मुज भनै मृणालवति, विघन न वाढै कोइ ॥
—प्र० चिं०, पृ० २४

५–वैराग्य

कासुकर रे पुत्र-कलत्र-धी कासुकर रे कर्षण-वाडी ।
　　एकले आइव एकले जाइव हाथ-पग दोनोँ झाडी ॥
—प्रबंध चिंतामणि, पृ० ५१

---

[१] ठैर रह्यो, ठहर जाय

§ २६. अब्दुर्रह्मान[1]

काल—१०१० ई०। देश—मुल्तान। कुल—जुलाहा (मीरसेन। मीरहसन)

१—परिचय

अणुराइयरयिहरु कामिय-मणहरु, मयण मणह-पह-दीवयरो।
विरहिणिमइरद्धउ सुणहु विसुद्धउ, रसियह रस-सजीवयरो ॥२२॥
अइणेहिण भासिउ रइमइवासिउ, सवणसकुलियह अमिय सरो।
लइ लिहइ वियक्खणु अत्थह लक्खणु, सुरइ-सगि जु विअड्ढ-नरो ॥२३॥

२—प्रोषितपतिकाका संदेश

(प्रोषितपतिका पथिकको रोकती है)

धम्मिलउ मुक्कमुह, विज्जभइ अरु अगु मोडई।
विरहानलि सतविअ, ससइ दीह, कर-साह तोडई॥
इम मुद्धह विलवतियह महि चलणेहि छिहतु।
अद्धुड्डीणउ तिणि पहिउ पहि जोयउ पवहतु ॥२२॥
तं जि पहिय पिक्खेविणु पिअ-उक्कखिरिया,
मथर-गय सरलाइवि उत्तावलि चलिया।
तह मणहर चल्लतिय चचलरमणभरि,
छुडवि खिसिय रसणावलि किंकिणि-रव पसरी ॥२६॥
त जं मेहल ठवइ गठि णिट्ठुर सुहय,
तुडिय ताव थूलावलि णवसर-हारलय।
सा तिवि किवि सवरिवि चइवि किवि सचरिया,
णेउर चरण-विलग्गिवि तह पहि पखुडिया ॥२७॥

---

[1] पच्चाए सि पहूओ पुव्वपसिद्धो य मिच्छ देसो त्थि।
तह विसए संभूओ आरद्दो मीरसेणस्स ॥३॥

§ २६. अब्दुर्रह्मान

पुत्त अद्दहमाण) (आरद्द) । कृति—संनेह-रासय (सदेश-रासक), शृंगारी कवि ।

१—परिचय

अनुरागी-रतिघर कामी-मनहर, मदनमना पथ-दीपकरो ।
विरहिणि-मकरध्वज सुनहु विशुद्धउ रसिकन रस सजीवकरो ॥२२॥
अतिस्नेहहिँ भाषेँउ रतिमतिवासित, श्रवण-शष्कुलिहिँ अमृतसरो ।
लये लिखै विचक्षण अर्थहिँ लक्षण, सुरति-सगेँ जोँ विदग्ध-नरो ॥२३॥

२—प्रोषितपतिकाका संदेश

(प्रोषितपतिका पथिक को रोकती है)

केशमुक्तमुख जँभाये अरु अग मोडई ।
विरहानलेँ सतपिय, श्वसै दीर्घ-कर-शाख तोडई ॥
इमि मुग्धा विलपती महिहिँ चरणेहिँ छुवन्ती ।
अर्धोद्विग्ना सा पथिक पथेँ जोयउ चलतो ॥२५॥
तहि पथिकहिँ पेखिया प्रियहिँ उत्कठितिका,
मथर-गति सरलाइय उत्तावलि चलिया ।
तिमि मनहर चल्लन्ती चचलरमणभरी,
छुटी खिसकि रसनावलि, किंकिणि-रव पसरी ॥२६॥
ता मेखलहिँ राखि गाँठेँ निष्ठुर सुभगा,
टुटी तबहिँ स्थूलावलि नव-सर-हार-लता ।
वह तेहिँ किछुक उठाइ किछुक तजि सचलिता,
नूपुर चरण लपटिया इमि पथि आ-पडिया ॥२७॥

तह तणयो कुलकमलो पाइय कव्वेसु गीय विसयेसु ।
अद्दहमाण पसिद्धो सनेहय रासय रइयं ॥४॥
—सदेशरासक (भारतीय विद्या (बबई) मार्च १९४२ ई०)

पडिउट्ठिय सविलक्ख-सलज्जिर संभसिया,
तउ सय सच्छ णियसण मुद्धहवि वलसिया।
तं संवरि अणुसरिय पहिय पावयणमणा,
फुडवि णित्त कुप्पास विलग्गिय दर सिहणा ॥२८॥
छायंती कह कह व सलज्जिर णिय करहीं,
कणय-कलस झपती ण इदीवरहीं।
तो आसन्न पहुत्त सगग्गिर-गिरवयणी,
कियउ सद्दु सविलासु करुण दीहरनयणी ॥२९॥
ठाहि ठाहि णिमिसद्धु सुथिरु अवहारि मणु,
पिसुणि किंपि ज जपउँ हियइ पसिज्जि खणु।
एय वयण आयन्नि पहिउ कोऊहलिउ,
णेय णिअत्तउ तासु कमद्धु'वि णहु चलियउ ॥३०॥
गाहा तं निसुणेविणु राय-मराल-गइ,
चलणगुट्ठि धरत्ति सलज्जिर उल्लिहइ।
तउ पथिउ कणयगि तत्थ बोलावियउ,
"कहि जाइसि हिव पहिय कहँ व तुह आइयउ" ॥४१॥
"णयरणामु सामोरु सरोरुहदलनयणी,
णायर-जन-सपुन्नु हरिस ससिहरवयणी।
धवल-तुग-पायारिहिँ तिउरिहि मडियउ,
णहु दीसइ कुइ मुक्खु सयलु जणु पडियउ ॥४२॥
तवण-तित्थु चाउद्दिसि मियच्छि वखाणियइ,
मूलत्थाणु[१] सुपसिद्धउ महियलि जाणियइ।
तिह हुतउ हउँ इक्किण लेहउ पेसियउ,
खभाइत्तइँ वच्चउँ पहु-आएसियउ" ॥६५॥

---

[१] मुल्तान (मूलस्थान=मूलत्राण ?)

पडि उट्ठी सविलक्ष सलज्जिल सभ्रमिया,
तब सित-स्वच्छ-वसन मूर्धहिँ खसिया।
ढाँकि ताहि अनुसरी पथिक-मिल्लन-मनसा,
फटी कचुकी क्षुद्र-छिद्र तहँ झलक कुचा ॥२८॥
ढाँकती कैसहूँ सलज्जिल निज-करहीँ,
कनक-कलश झाँपती मनहुँ इदीवरहीँ।
नियरे पुन. पहुँचि सगद्गद-गिर-वदनी,
कहेँउ शब्द सविलास करुण-दीरघ-नयनी ॥२९॥
"ठहर ठहर निमिषार्ध सुथिर अवधारु मने,
सुनु जो किछु मैँ भाखौँ हियहिँ पसीजु क्षणे।"
एह वचन सुनि पुनि पथिक कौतूहलियउ,
तुरतहिँ लौटेँउ तासु पदार्धउ ना चलियउ ॥३०॥
गाथा ताहि सुनाइय, राज-मराल-गती,
चरणागुष्ठहिँ भूमि सलज्जिलसोँ खनती।
इमि पथिकहिँ कनकागि वहाँ बोलाइयऊ,
"कहँ जाइस हे पथिक! कहाँसे आइयऊ" ॥४१॥
"नगर नाम सामोरु[1] सरोरुहदलनयनी!
नागरजनसपूर्ण अहै शशिधरवदनी!
धवल-तुग-प्राकारेँहिँ त्रिपुरेँहिँ मडितऊ,
नहिँ दीसै कोँइ मूर्ख सकल जन पडितऊ ॥४२॥
तपन-तीर्थ चौदिसहिँ मृगाक्षि! बखानियई,
मूलतान सुप्रसिद्धउ महितलेँ जानियई।
तहँते मोहिँ केहु लेख देइ भेजावियऊ,
खभातहिँ मैँ जाउँ प्रभूप्रेषियत हउँ" ॥६५॥

---

[1] शाम्बपुर=मुल्तान

एय वयण आयन्नवि सिंधुब्भववयणी,
ससिवि सासु दीहुन्हउ सलिलुब्भवनयणी।
तोडि करंगुलि करुण सगग्गिर-गिर पसरु,
जालधरि व समीरिण मूध थरहरिय चिरु ॥६६॥
रुइवि खणद्धु फुसावि नयण पुण वज्जरिउ,
"खभाइत्तहँ णामि पहिय तणु जज्जरिउ।
तह मह अच्छइ णाहु विरह-उल्हावयरु,
अहिय कालु गम्मियउ ण आयउ णिद्दयरु ॥६७॥
पउ मोडबि निमिसिद्धु पहिय जइ दय करही,
कहउँ किंपि सदेसउ पिय तुच्छक्खरही"।
पहिउ भणइ "कणयंगि ! कहह कि रुन्नयण,
झिज्जंती णिरु दीसहि उव्विन्नमियनयण" ॥६८॥
"जसु णिग्गमि रेणुक्करडि, कीअ ण विरहदवेण।
किम दिज्जइ सदेसडउ, तसु णिट्ठुरइ मणेण ॥६९॥
जंसु पवसंत ण पवसिआ, मुइअ विओइ ण जासु,
लज्जिज्जउँ सदेसडउ, दिंती पहिय पियासु" ॥७०॥
लज्जवि पथिय जइ रहउँ, हिअउ न धरणउ जाइ।
गाह पढिज्जसु इक्क पिय, कर लेविणु मन्नाइ ॥७१॥
तुह विरहपहर सचूरिआइँ, विहडंति ज न अगाइँ।
त अज्ज-कल्ल-सघडण-ओसहे णाह तग्गति ॥७२॥
कहवि इय गाह पथिय ! मन्नाएवि पिउ।
दोहा पचकहिज्जसु, गुरुविणएण सँउ ॥७४॥
पिअ-विरहानल सतविउ, जइ वच्चइ सुरलोइ।
तुअ छड्डिवि हिय अट्ठियह, त परिवाडि ण होइ ॥७५॥
कंत जु तइ हिअयट्ठियह, विरह विडवइ काउ।
सप्पुरिसह मरणाअहिउ, परपरिहव-संताउ ॥७६॥

एह वयन काने सुनि सिंधूद्भववदनी,

लेइ दीर्घोष्ण-निश्वास सलिलसभववदनी ।

फोडि करागुलि करुण सगद्गद-गिरा कही,

मुग्धा वातेहिँ कदली जिमि थहराय रही ॥६६॥

रोइ क्षणार्द्धहिँ पोँछि नयन पुनि बोलियऊ,

"खम्भातहि को नाम पथिक ! तनु जर्जरिऊ ।

तहँ मम आछै नाथ विरह-उल्लासकर,

अधिक काल चलि गयउ, न आयउ निर्दयर ॥६७॥

पद मोडहु निमिषार्ध पथिक ! यदि दया करी,

कहौँ किमपि सदेश प्रियहिँ तुच्छाक्षरहीँ ।"

पथिक भनै "कनकागि ! कहहु किमि रुदिययनी,

खिन्ना दीसै वहु उद्विग्निल मृगनयनी" ॥६८॥

"जेहि निकसे भस्मोत्कर, कीय न विरहदवेहिँ,

किमि दीजै सदेसडा, ताँसु निष्ठुरहि मनेहिँ ॥६९॥

जासु प्रवास न प्रवसिया, मुई वियोग न जेहि ।

लज्जीअउँ सदेसडउ, देती पथिक ! प्रियेहिँ ॥७०॥

लज्जिय पथिक ! यदि रहौँ, हियहु न धारिय जाइ ।

गाथा पढियहु एक प्रिय, कर गहि लेहु मनाइ ॥७१॥

'तव विरहचोटहिँ चूरचूर" नष्ट जो ना अँग हुये ।

सो आजकल-मिलन-उत्सहेँहिँ नाथ ठहरे हुये ॥७२॥

कहियउ एँह गाथा पथिक, मनायो प्रिय ।

दोहा पाँच कहीजो, वहुविनयेहिँ० सह ॥७४॥

प्रिय-विरहानल सतपित, यदि जाओँ सुर-लोक ।

तोँहि छाडी हृदयस्थितहँ, सो पुनि नीक न होइ ॥७५॥

कन्त ! जोँ तोँहिँ हृदयस्थितहिँ, विरह पराजै काहु ।

सत्पुरुषहिँ मारणाधिक, पर-परिभव-संताप ॥७६॥

गरुअउ परिहवु कि न सहउ, पइ पोरिस-निलएण ।
जिहि अगिहि तू विलसियउ, ते दद्धा विरहेण ॥७७॥
विरह-परिग्गह छावडइ, पहराविउ निरवक्खि ।
तुट्टी देह ण हउ हियउ, तुअ समाणिय पिक्खि ॥७८॥
मह ण समत्थिम विरहसउं, ता अच्छहु विलवति ।
पालीरूअ पमाण पर, धण सामिहि घुम्मति ॥७९॥
सदेसडउ सवित्थरउ, पर मइ कहण न जाइ ।
जो काणगुलि मूँदडउ, सो बाहडी समाइ ॥८१॥
ल्हसिउ अंसु उद्धसिउ, अगु विलुलिय अलय,
हुय, उब्बिर वयण खलिय, विवरीय गय ।
कुकुम कणय-सरिच्छ कति कसिणा वरिया,
हुइय मुध तुय विरहि णिसायर णिसियरिया" ॥८७॥
पहिउ भणइ "पडिउजि जाउ ससिहरवयणी,
अहवा किंवि कहणिज्जसु मह कहु मियनयणी" ।
"कहउ पहिय ! कि ण कहउ कहिसु कि कहियण,
जिण किय एह अवत्थ णेहरइ-रहिय-यण ॥९१॥
जिणि हउ विरहह कुहरि एव करि घल्लिया,
अत्थलोहि अकयत्थि इकल्लिय मिल्हिया ।
सदेसड़उ सवित्थरु तुहु उत्तावलउ,
कहिय पहिय ! पिय गाह वत्थु तह डोमिलउ ॥९२॥
पिअ-विरह-विओए सगमसोएं, दिवस-रयणि झूरत मणे,
णिरु अगु सुसतह बाह फुसतह, अप्पह णिद्दय किंपि भणे ।
तसु सुयण निवेसिय भाइण पेसिय, मोहवसण बोलंत खणे,
मह साइम वक्खरु हरि गउ तक्खरु, जाउ सरणि कसु पहिय ! भणे" ।
इहु डोमिलउ भणेविणु निसितम-हरवयणी,
हुइय णिमिस णिप्फंद सरोरुहदलनयणी ।

गरुअो परिभव किन सहौं, तोंहिं पौरुष-निलयँहिं ।
जेहि अगेंहिँ तु विलासियौ, सो डाहेंउ विरहेंहिँ ॥७७॥

विरह-परिग्रह देहरिहिँ, प्रहरेउ निरपेक्षि ।
टूटी देह न हनेंउ हृदय- तुव समानहिँ पेखि ॥७८॥

मैं न समर्था विरह-सँग, सो रहऊँ विलपन्ति ।
पालिय रूप प्रमाण पुनि, धनि स्वामीहिँ धुमन्ति ॥७९॥

सदेसडो सविस्तरो, पर मोहिँ कहेंउ न जाइ ।
जो कनगुरिया मूँदडी, सो बाँहडी समाइ ॥८१॥

हसेंउ तेज उद्दसेंउ अग विखरिय अलकें,
हुअ फिक्कफिक वदन स्खलित-विपरीत-गती ।
कुकुम-कनक-सदृश कान्ति कलुषावृतिया,
हुइ मुग्धा तुव विरहें निशाचर निशिचरिया" ॥८७॥

पथिक भनै "तैं भेजु जाउँ शशिधरवदनी,
अथवा किछु कथनीय सों मोंहिँ कहु मृगनयनी" ॥८८॥

"कहौं पथिक ! कि न कहौं, कह्यु की कहँकहिया,
जिन किय एहु अवस्थ नेहरतिरहितैया ॥९१॥

जिन हौं विरहकुहरें इमि करि छडिया,
अर्थलोभि अकृतार्थ इकल्ली मुचडिया ॥

सदेसडो सविस्तर, तुहुँ उत्तावलऊ,
कहेंहु पथिक प्रिय गाथाँ वस्तु तहँ डोमिलऊ-॥९२॥

प्रिय-विरह-वियोगे सगम-शोके, दिवस-रजनि झूरत मने,
अति-अग सुखन्तहँ वाष्पाश्रु वहतहँ आपुहिँ निर्दय किमपि भने ।
तसु सुजन निवेशिय, भावहिँ पेखिय मोहवशेन वोंलत क्षणे,
मम स्वामिय वक्तरु हरि गउ तस्कर, जाउँ शरण काँसु पथिक! भने" ॥९५॥

एहु डोमिलउ भनी पुनि निशितम-हरवदनी,
हुई निमिष निष्पन्द सरोरुहदलनयनी ।

णहु किहु कहइ ण पिक्खइ ज पुणु अवरु जणु,
चित्ति भित्ति णं लिहिय मुध सच्चविय खणु ॥९६॥
पहिउ भणइ थिरु होहि "धीरु, आसासि खणु,
लइवि वरक्किय ससिसउन्नु फसहि वयणु"।
तस्स वयणु आयन्नि, विरहभर-भज्जरिया,
लइ अचलु मुहु पुछिउ, तह व सलज्जरिया ॥९८॥
"जइ अवरु उग्गिलइ राय पुणि रगियइ,
अह निन्नेहउ अगु, होइ आभगियइ।
अह हारिज्जइ दविणु, जिणिवि पुणु भिट्टियइ,
पिय विरत्तु हुइ चित्त, पहिय ! किम वट्टियइ ॥१०१॥
कहि ण सवित्थरु सक्कउँ मयणाउहवहिया,
इय अवत्थ अम्हारिय कतइ सिँव कहिया।
अगभगि णिरु अणरइ, उज्जग्गउ णिसिहि,
विहलघलगय मग्ग, चलतिहि आलसिहि ॥१०५॥
धम्मिल्लइ संवरणु न घणु कुसुमहिँ रइउ,
कज्जलु गलइ कवोलिहि, जं नयणिहि धरिउँ।
ज पिया आसा मगिहि अगिहिँ पलु चडइ,
विरह-हुयासि झलक्किउ त पडिलिउ झडइ ॥१०६॥
सुन्नारह जिम मह हियउ, पिय-उक्कखि करेइ।
विरह-हुयासि दहेवि करि, आसाजलि सिंचेइ" ॥१०८॥
पहिउ भणइ "पहि जत असगलु मह म करि,
रुयवि रुयवि पुणरुत्त वाह सवरिवि धरि"।
"पहिय ! होउ तुह इच्छ अज्ज सिज्झउ गमणु,
मइ न रुन्नु विरहग्गि धूम लोयण सवणु ॥१०९॥
खधउ दुवइ सुणेवि अंगु रोमचियउ,
णेय पिम्म परिवडिउ पहिउ मणि रजियउ।

ना किछु कहै न पेखै जो पुनि अवर जनहीँ,
चित्र-भित्ति जिमि लिखित मुग्धाँ सच्चाइय क्षणहीँ ॥९६॥
पथिक भनै "थिर होंहि धीर आश्वासु क्षणहिँ,
लाउँ लेइ वराकिय शशिसँपूर्ण पोँछहु वदना।"
तासु वचन आकर्णि विरह-भर-भजलिया,
लेँइ अचल मुख पोँछु तहँहि सलज्जिलिया ॥९८॥
"यदि अवर छोडहि रग फिनु रगिअई,
जो निस्नेहउ अग होइ अभ्यगिअई।
जो हारिज्जइ धनहिँ, जितवि पुनि भेँटिअई,
प्रिय विरक्त ह्वै चित्त पथिक ! किमि फरियई ॥१०१॥
कहि न सविस्तर सकौँ मदनायुध-वधितहु,
एँह अवस्थ हम्मारिय कतहिँ सब कहियहु।
अग-भग वहु अरती, उज्जग्गौँ निशिहीँ,
विविलघितगति मगहिँ, चलन्ती आलसहीँ ॥१०५॥
केशनकर सवरण न घन-कुसुमहिँ रचउँ,
काजल वहै कपोलहिँ जोँ नयनहिँ धरऊँ।
जो प्रिय-आशा सगेँहिँ अगे माँस चटै,
विरहहुताशेँ झलक्केँउ सो दुगुनोउ भटै ॥१०६॥
सोनारहि जिमि मम हृदय, प्रिय-उत्कठि करेइ।
विरहहुताशे दहन लगि, आशाजल सिंचेइ" ॥१०८॥
पथिक भनै "पथि जात अमगल मम न करु,
रोइ रोइ पुनि रुदन-अश्रु लेँहु रोकि धरु।"
"पथिक ! होहु तव इष्ट आज सिद्धहु गमनू,
मैँ न रोँयोँ विरहाग्नि-धूम लोचनस्रवणू" ॥१०९॥
खघहु दुओ सुनीड, अग रोमाचितऊ,
नहीँ प्रेम परि-पडेउ पथिक मनेँ रजितऊ।

तह जंपइ मियनयणि सुणिहि धीरयसु खणु,
किहु पुच्छहु ससिवयणि ! पयासहि फुड वयणु ॥१२१॥
णव-घणरिह-वि-णग्गय निम्मल फुरइ करु,
सरयरयणि पच्चक्खु झरतउ अमिय-भरु।
तह चदह जिण णत्थ पियह सजणिय सुहु,
कइयलग्गि विरहग्गिधूमि झपियउ मुहु ॥१२२॥

३—ऋतु-वर्णन

(१) ग्रीष्म-वर्णन

"णव गिम्हागमि पहिय ! णाहु ज पविसयउ,
करवि करजुलि सुहसमूह मह. णिवसियउ।
तसु अणु-अचि पलुट्टि विरह हवि तविय तणु,
वलिवि पत्त णिय-भुयणि विसठलु-विहल-मणु ॥१३०॥
तह अणरड रणरणउ असुहु असहतियहँ,
दुस्सहु मलय-समीरणु मयणा-कतियहँ।
विसमझाल झलकत जलतिय तिव्वयर,
महियलि वण-तिण-दहण तवतिय तरणि-कर ॥१३१॥
जम-जीहइ ण चचलु णहयलु लहलहइ,
तडतडयड धर तिडइ ण तेयह भरु सहइ।
अइउन्हउ वोमयलि पहजणु ज वहइ,
त झखरु विरहिणिहि अगु फरिसिउ दहइ ॥१३२॥
हरियदणु सिसिरत्थु उवरि ज लेवियउ,
त सिहणह परितवइ अहिउ अहिसेवियउ।
ठविय विविह विलवतिय अह तह हारलय,
कुसुम माल तिवि मुयइ, झाल तउ हुइ सभय ॥१३५॥

तव वोलै "मृगनयनि ! सुनहु धीरयहु क्षण,
किछु पूछउँ शशिवदनि ! प्रकाशहिँ स्फुट वचन ॥१२१॥
नव-घन-रेख-विनिर्गत निर्मल फुरै करो,
शरद-रजनि प्रत्यक्ष झरतउ अमृत-भरो।
तेँहि चन्दहिँ जयनार्थ प्रियहिँ सजनित सुखो,
कवहिँ लागि विरहाग्नि-धूम झाँपियउ मुखो" ॥१२२॥

३—ऋतु-वर्णन

(१) ग्रीष्म-वर्णन

"नव-ग्रीष्मागमेँ पथिक ! नाथ जव प्रवसितऊ,
करव कराजलि सुख-समूह मम निवसितऊ।
तसु पाछहीँ लउट्टि विरह-अगि-तपित-तना,
तवहिँ आइ निजभवन विसस्थुल-विकल-मना"।
तिमि अनरति-रणरणक-असुख असहतियहीँ,
दुस्सह मलय-समीरण मदनाक्रान्तियहीँ।
विषमज्वाल झलकत ज्वलतिय तीव्रतरा,
महियल वन-तृण-दहन तपते तरणिकरा ॥१३१॥
यमजिह्वा जिमि चचल नभतल लहलहई,
तडतडतड धराँ करै न तेजोभर सहई।
अतिउण्णउ व्योमतलेँ प्रभजन जो वहई,
सो झखण विरहिहिँ अग परसेँउ दहई ॥१३२॥
हरिचंदन शीतार्थ उपरि जो लेपितऊ,
सो स्तनकहिँ परितपै अहेउ अहि-सेवितऊ।
थपी विविधि विलपतिय जो तहँ हार-लता,
कुसुममाल तेँउ मुँचै ज्वाल तव हुइ सभया" ॥१३५॥

(२) वर्षा-वर्णन

इम तवियउ बहु गिंभु कहवि मइ बोलियउ,
पहिय ! पत्तु पुण पाउसु धिट्ठु, ण पत्तु पिउ।
चउदिसि घोरंधारु पवन्नउ गरुयभरु,
गयणि गुहिरु घुरहुरइ, सरोसउ अबुहरु ॥१३६॥
वगु मिल्हवि सलिलद्दहु, तरु-सिहरहि चडिउ,
तडव करिवि सिहडिहि, वरसिहरिहि रडिउ।
सलिलिहि वर सालूरिहि, फरसिउ रसिउ सरि,
कलयलु किउ कलयठिहि, चडि चूयह-सिहरि ॥१४४॥
मच्छरमय सचडिउ रन्नि गोयगणहि,
मणहर रमियइ नाहु रगि गोयगणिहि।
हरियाउलु धरवलउ कयबिण महमहिउ,
कियउ भगु अगगि अणगिण मह अहिउ ॥१४६॥
झपवि तम वद्दलिण दसह दिसि छायउ अबरु,
उन्नवियउ घुरहुरइ घोरु घण-किसणाडबुरु।
णहह मग्गि णहवल्लिय तरल तडयडिवि तडक्कइ,
दद्दुररडणु रउद्दु सद्दु कुवि सहवि ण सक्कइ।
निवड-निरतर नीरहर दुद्धर धर धारोहभरु,
कि सहउं पहिय-सिहरट्ठियइ दुसहउ कोइल रसइ सरु ॥१४८॥
जामिणि जं वयणिज्ज तुअ, त तिहुयणि णहु माइ।
दुक्खिहि होइ चउग्गुणी, झिज्जइ सुहसगाइ ॥१५६॥

(३) शरद्-वर्णन

इम विलवंती कहव दिण पाइउ,
गेउ गिरत पढतह पाइउ।
पिय-अणुराइ रयणिअ रमणीयव,
गिज्जइ पहिय ! मुणिय अरमणीयव ॥१५७॥

(२) वर्षा-वर्णन

"इमि तपिअउ बहु ग्रीष्म सकौं कर्स बोलियऊ,
पथिक ! आव पुनि पावस ढीठ न आँव पियऊ।
चौदिसि घोरधार छाय गउ गरुअ-भरो,
गगन-कुहर घुरघुरै सरोषउ अवुधरो ॥१३६॥
वक छाडिय सलिलह्रद तरु-शिखरहिँ चढेँऊ,
ताडव करिय शिखडिहि वरशिखरे रटेँऊ।
सलिलेहिँ वर गालूरेँहि परसेँउ रसेँउ स्वरेँहि,
कलकल किउ कलकठहिँ चढि आमहि शिखरे ॥१४४॥
मच्छरभय आ-पडेँउ ठाँव गाई-गणहीँ,
मनहर रमिअइ नाथ रगें गोपागनहीँ।
हरियावल धराँवलय कदम्बन महमहिऊ,
कियउ भग अगाग अनगेहिँ मम अतिहू ॥१४६॥
झाँपी तम-बद्दली दसहु दिशि छाई अवर,
उट्ठविउ घुरघुरा घोर घन कृष्णाडवर।
नभहि मार्ग नभवल्ली तरल तडतडै तडक्कै,
दर्दुर रटन कठोर शब्द कोँइ सहउ न सक्कै।
निपट निरतर नीरधर दुर्धर धर धारौघभर,
किमि सहौँ पथिक ! शिखरस्थितहुँ कोइल रसै स्वर ॥१४८॥
यामिनि ! जो वचनीय तुव, सो त्रिभुवन न अमाइ।
दुक्खिहिँ होई चौगुनी, छीजै सुख-सगाहिँ ॥१५६॥

(३) शरद-वर्णन

इमि विलपति पच्छिम दिन पायउ,
गीति गयत पढतहु प्राकृत।
प्रिय-अनुरागि रजनि रमणीया,
गीयइ पथिक ! जानि अरमणीया ॥१५७॥

दक्खिण-मग्गु णियतइ भत्तिहिँ,
दिट्ठु अइत्थिरि मिउ मइ फत्तिहि।
मुणियउ पाउसु परिगमिअउ,
पिउ परएसि रहिउ णहु रमिअउ ॥१५६॥

गय विहरवि वलाहय गयणिहि,
मणहर रिक्ख पलोइय रयणिहि।
हुयउ वासु छम्मयलि फणिदह,
फुरिय जुन्ह निमि निम्मल चदह ॥१६०॥

सोहइ सलिलु मरिहिँ सयवत्तिहि,
विविह तरग तरगिणि जतिहि।
ज हय हीय गिभि णवसरयह,
त पुण मोह चडी णव-सरयह ॥१६१॥

धवपिलय धवल मख-मकासिहि,
मोहइ मरह तीर नकासिहि।
णिम्मलणीर मरिहिँ पवट्टतिहिँ,
तड रेहति विहगम-पतिहिँ ॥१६२॥

पडिविवउ दरमिज्जइ विमलहिँ,
कद्दमभारु पमुक्किउ सलिलहिँ।
सहमि ण कुज सद्दु सरयागमि,
मग्गि मगाल्लगामि णहु तग्गमि ॥१६४॥

अच्छइ जिह नागिहिँ नर रमिरउ,
सोहइ तरह तीर तिह भमिरउ।
वालय वर जुवाण गिरलतय,
दीसउ घरिघरि पडह वजतय ॥१६५॥

दाग्य कडवाल तडय करि,
भगहि नन्हि वागत्त [illegible]।

दक्षिण-मार्ग देखन्ती भक्तिहिँ,
देखें अगस्त्य ऋषी मैं झट्टिहिँ।
जानेंउ सो पावसहिँ गमायउ,
प्रिय परदेश रहेंउ ना रमियउ ॥१५९॥
गउ फाटियइ वलाहक गगनेहिँ,
मनहर तारक लोकिय रजनिहिँ।
हुयो वास भूमितलें फणीन्द्रा,
फुरिय जुन्ह निशि निर्मल चन्द्रा ॥१६०॥
सोहैं सलिल सरन शतपत्रेंहिँ,
विविध तरग तरगिहिँ जातेंहिँ।
जो हत हती ग्रीष्में नवसरसहि,
सा पुनि शोभाँ चढी नवसरसहि ॥१६१॥
धवलित धवल-शख-सकाशेहिँ,
सोहै सरहि तीर सकाशेहिँ।
निर्मलनीर सरित प्रवहन्तेहिँ,
तट शोभन्त विहगम-पाँतिहिँ ॥१६३॥
प्रतिबिंबउ दरसीयत विमले,
कर्दमभार - प्रमुचित सलिले।
सहीँ न क्रौंच-शब्द शरदागमें,
मरौं मरालागम नहिँ ताकौं ॥१६४॥
आछै जहँ नारिहिँ नर रमिया,
सोहै सरहिँ तीर तेहि भ्रमिया।
वालक-वर-युवान खेंल्लन्ते,
दीसै घर - घर पटह वजन्ते ॥१७४॥
शरक कुडवाल ताडव करि,
भ्रमहिँ रथ्यें वादना मुदर।

सोहइ सिज्ज तरुणि जण सत्थिहि,
घरि-घरि समियइ रेह परित्थिहि ॥१७५॥
दितिय णिसि दीवालिय दीवय,
णवससिरेह-सरिस करि लीअय।
मडिय भुवण तरुण जोइक्खहिँ,
महिलिय दिति सलाइय अक्खिहिँ ॥

(४) हेमन्त-वर्णन

तह कखिरि अणियत्ति, णियती दिसि पसरु,
लइ ढुक्कउ कोसिल्लि हिमतु तुसारभरु।
हुइय अणायर सीयल, भुवणिहि पहिय जल,
ऊसारिय सत्थरहु सयल कदुट्टदल ॥१८६॥
सेरधिहिँ घणसारु ण चदणु पीसयइ,
अहरक ओला लकिहिँ मयणु समीगियउ।
सीहडिहि वज्जियउ घुसिणु तणि लेवियइ,
चपएलु मियणाहिण सरिसउ सेवियइ ॥१८७॥
धूइज्जइ तह अगरु घुसिणु तणि लाइयइ,
गाढउ निवडालिगणु अगि मुहाइयइ।
अन्नह दिवसह मन्निहि अगुलमत्त हुय,
महु इक्कह परि पहिय ! णिवेहिय वह्म-जुय ॥१८६॥
हेमति कत विलवतियह, जइ पलुट्टि नामासिहसि।
त तइय मुवउ खल पाइ मइ, मुइय विज्ज किं आयिहसि ॥१९१॥

(५) शिशिर-वर्णन

इम कट्टिहिँ मइ गमिउ पहिय ! हेमत-रिउ,
निनिरु पहुत्तउ अनु णाह [illegible]।
उट्टिय झखड गयणि [illegible] पवणिहय,
तिणि [illegible] ॥१९८॥

सोहै शय्य तरुणि-जन साथे,
घर - घर सोहै रेख प्रलिप्ते ॥१७५॥
दीयत निशिहिँ दिवाली दीये,
नव-शिखि-रेख-सदृश कर लीये।
मडित भुवन तरुण ज्योतिष्कहिँ,
महिला देहिँ सलाई आँखिहिँ ॥१७६॥

(४) हेमन्त-वर्णन

तिमि उत्कठि निरन्तर पेखै दिशि पसरी,
ले ढूकेँउ चातुरिहिँ हिमतु तुषारभरो।
हुयउ अनादर-शीतल भुवने पथिक ! जल,
अपसारिय सत्थरेहिँ सकल पद्मनउ दल ॥१८६॥
सैरध्री घनसार न चदन पीसैहीँ,
अधर कपोलालकृत मदन समिश्रैहीँ।
श्रीखडेँहिँ विवर्जित कुकुम लेपियहीँ,
चम्प-तैल मृगनाभि सह सेवियहिँ ॥१८७॥
धूँइज्जै तहँ अगर कुंकुम तन लाइयई,
गाढउ निपटालिगन अगेँ सुहाइयई।
अन्यहिँ दिवसहिँ सन्निधि अगुलिमात्र हुआ,
मैँ एक्कै पर पथिक ! निवेगिय ब्रह्मयुगा ॥१८९॥
हेमतेँ कन्त ! विलपतिय, यदि न लवटि आश्वासिही।
तालेहीँ मूर्ख ! खल ! पापि ! मोही, मरे वैद्य कि आइयही ॥१९१॥

(५) शिशिर-वर्णन

इमि कष्टेँहिँ मम गयउ, पथिक ! हेमन्त-ऋतू,
शिशिर पहूँचेउ धूर्त, नाथ दूरन्तरितू।
उठेँउ झखड गगनेँ, खर-परुष पवन-हतेउ,
तेहिँ छूटेँउ झरि करि अशेष तहँ रूप मिटेँउ ॥१९२॥

छाय-फुल्ल-फल-रहिय असेविय सउणियण,
तिमिरतरिय दिसाय तुहिण धूइण भरिण।
मग्ग भग्ग पंथियह ण पविसिहि हिमडरिण,
उज्जाणहँ ढखर छअ सोसिय कुसुमवण ॥१९३॥

मत्तमुक्क सठविउं वि वहुगवक्करिसु,
पिज्जइ अद्धावट्टउ रसियहि उक्खु-रसु।
कुद चउत्थि वरच्छणि पीणुन्नय-थणिया,
णियसत्थरि पलुटंति केवि सीमंतिणिया ॥१९५॥

केवि दिंति रिउणाहह उप्पत्तिहि दिणहि,
णियवल्लह करि केलि जंति सिज्जासणिहि।
इत्थंतरि पुण पहिय ! सिज्ज इक्कल्लियउ,
पिउ पेसिउ मण दूअउ, पिम्म-गहिल्लियउ ॥१९६॥

मइ घणु दुक्खु सहप्पि मुणवि मणु पेसिउ दूअउ,
णाहु ण आणिउ तेण सु पुणु तत्थव रय हूअउ।
एम भमंतह सुन्नहियय ज रयणि विहाणिय,
अणिरइ कीयइ कम्मि अवसु मणि पच्छुत्ताणिय।

मइ दिन्नु हियउ णहु पत्तुपिउ, हुई उवम इहु कहु कवण।
सिंगत्थि गइय उवाउयणि, पिक्ख हराविय णिअ भवण ॥१९९॥

(६) वसंत-वर्णन

गयउ सिसिर वणतिण दहतु, महुमास मणोहरु इत्थ पत्तु।
गिरि-मलय-समीरणु णिरु सरंतु, मयणग्गि-विओयह विप्फुरंतु ॥२००॥

वहु विविहराइ घण-मणहरेहिँ, सिय सावरत्त-पुप्फंवरेहि।
पंगुरणिहिँ चच्चिउ तणु विचित्त, मिल्लि सहियहि गेउ गिरंति णित्त ॥२०२॥

महमहिउ अगि वहु-गंधमोउ, ण तरणि पमुक्कउ सिसिर-मोउ।
तं पिक्खवि मइ मज्झहि सहीण, लग्गौउ पढिउ नववल्लरीण ॥२०३॥

छाय-फूल-फल-रहित असेवित शकुनि-जनेँहिँ,
तिमिरान्तरित दिशाहिँ तुहिन - धूँआ - भरिया ।
मार्ग भागु पथिकन न प्रवसहिँ हिमडरिया,
उद्यानहु ढखर - सम सूखेँउ कुसुम-वन ॥१६३॥

मात्रमुक्त सथपेँउ वहुत - गधोत्कर्ष,
पीवैँ अर्धोच्छिष्ट रसिक (जन) इक्षु-रस ।
कुन्द - चतुर्थि महोत्सवेँ पीनोन्नत - थनिया,
निज सेजहिँ पलोँटति कोइ सीमन्तनिया ॥१६५॥

कोइ देहिँ ऋतुनाथहँ उत्पत्तिहि दिनहीँ,
निज-वल्लभ करि केलि जाइँ शय्यासनहीँ ।
ऐँहि समये पुनि पथिक ! सेज एकल्लियर्ई,
प्रियँ पठयेँउ मन - दूतउ, प्रेम-गहिल्लयर्ई ॥१६६॥

मैँ घनि दुख-सहाप समुझि मन प्रेषेँउँ दूतहँ,
नाथ न आनेउ तिनि सो पुनि तहँवेँ रत हूओ ।
इमिहिँ भ्रमन्तहिँ शून्यहृदय जो रजनि विहानी,
अनसोचे किय कर्म अवशि मन पच्छत्तानी ।
मैँ दियउ हृदय ना प्राप्त प्रिय, हुइ उपमा ऐँहु कहु कवन ।
शृंगार्थ गई गदही (सो पुनि), पेखु हराई निज श्रवण ॥१६६॥

(६) वसंत-वर्णन

गउ शिशिर वन-तृण-दहत, मधुमास मनोहर इहाँ प्राप्त ।
गिरिमलय-समीरण वहु वहत, मदनाग्नि वियोगिहँ विस्फुरत ॥२००॥
वहु विविध-राग-घन-मनहरेहिँ, सित-सर्वरक्त-पुष्पावरेहिँ ।
पगुरणेहिँ चर्चित तनु विचित्र, मिलि सखियाँ गावैँ गीत नित्य ।२०२॥
महमहेँउ अगेँ वहु गधमोद, जिमि तरणि प्रमुचेँउ शिशिर-शोक ।
सो पेखिय मैँ मध्ये सखीन, लकोडउ पढेँउ नव-वल्लभीन ॥२०३॥

किंसुयइ-कसिण घणरत्तवास, पच्चक्ख पलासइ धुय-पलास[1]।
सवि दुस्सह हूय पहजणेण, सजणिउ असुहुवि मुहूजणेण ॥२०९॥

निवडत रेणु धर पिंजरीहि, अहिययर तविय णवमजरीहि।
मरु सियलु वाड महि सीयलतु, णहु जणइ सीउ ण खिवइ ततु ॥२१०॥

जसु नामु अलिक्कउ कहइ लोउ, णहु हरइ खणद्धु असोउ मोउ।
कदप्पदप्पि सतविय अगि, साँहरइ णाहु ण आसहर अगि ॥२११॥

खणु मुणिउ दुसहु जम-कालपासु, वर-कुसुमिहि सोहिउ दस दिसासु।
गय णिवउ णिरतर गयणि चूय, णवमजरि तत्थ वसत हूय ॥२१५॥

जल-रहिय मेह सतविअ काइ, किम कोइल कलरउ सहण जाइ।
रमणी-यण रत्थिहि परिभमति, तूरा-रवि निहुयण वाहिरति ॥२१८॥

चच्चिरिहि गेउ हुणि करिवि तालु, नच्चीयइ अउव्व वसत-कालु।
घण-निविड-हार परिखिल्लरीहिँ, रणझुण-रउ मेहल-किंकिणीहिँ ॥२१९॥

जइ अणक्खरु कहिउ मइ पहिय।
घणदुक्खाउन्नियह मयण-अग्गि विरहिणि पतित्तिहि,
त फरसउ मिल्हि तुहु विणय-मग्गि पभणिज्ज भत्तिहि।

तिम जपिय जिम कुवइ णहु, त पभणिय ज जुत्तु।
आसीसिवि वर-कामिणिहि, उवट्ठाऊ पउिउत्त" ॥२२२॥

त पइुजिवि चलिय दीहच्छि, अइ-तुरिय,
उत्नतरिय दिसि दक्खिण तिणि जाम दरगमिय,
आसन्न पहाउरिउ दिट्ठु णाह्व तिणि भत्ति दुग्गिग।

जेम अचिंतिउ कज्जु तसु, सिद्धु खणद्धि महतु।
तेम पढत सुणतयह, जयउ अणाइ-अणतु ॥२२३॥

---

[1] "धृतपलाश पलाशवनं पुरः"—माघ कवि

किंशुकहि कृष्ण घनरक्तवर्ण, प्रत्यक्ष परासै[1] धुत परास।
सब दु सह हुआ प्रभजनेहिँ, सजनेउ असुख हि सुहृजनेहिँ ॥२०९॥

भुइँ पडती रेणू पिंजरीहिँ, अधिकतर तपी नवमजरीहिँ।
मरु शितल वहै महि शीतलत, न होइ शीत न नशै ताप ॥२१०॥

जसु नाम अलीकै कहै लोक, ना हरे क्षणार्द्ध अशोक शोक।
कदर्प-दर्प-सतपित अग, साहाँरै नाथान सहकार अग ॥२११॥

क्षण वुझेँउ दुसह यम-कालपाश, वरकुसुमहिँ सोहै दश-दिशासु।
गयेँ निविड-निरतर-गगनेँ चूत, नवमजरि तहाँ वसन्त हूअ ॥२१५॥

जल-रहित मेघ सन्तपैँ काय, किमि कोइल कल-रव सहेँउ जाय।
रमणी-गण रथ्येँहिँ परिभ्रमति, तूरी-रव त्रिभुवन बधिरयति ॥२१८॥

चाचरिहिँ गीत-ध्वनि करिय ताल, नाचीय अपूर्व-वसत-काल।
घन-निविड-हार परिवेष्टितेहि, रुनझुन-रव मेखल-किकिणीहिँ ॥२१९॥

यदि अनक्षर कहेँउँ पथिक ! मैँ।
घनदु खपूर्ण मदनाग्नि विरहेहिँ प्रलिप्ता,
सो परुष छोडि विनयमार्ग-मत भणियहु।
तिमि बोलेहु जिमि कोपु नाहि, सो बोलेहु जो युक्त।"
आशीषिय वरकामनिहिँ, वट्टोही विनियुक्त ॥२२२॥

तेहिँ पठाइ चली दीर्घाक्षि अति तुरतैँ,
एँहि बिच दिश दक्षिण तेहि याम दरसी,
पास रोकि पथ दीठेँउ नाथ, (तिय) झट हर्षिय।
जिमि अचितह कार्य तसु सिझेँउ क्षणार्ध महन्त।
तैस पढत सुनन्तयहँ, जयतु अनादि अनन्त ॥२२३॥

---

[1] राक्षस

§ २७. बब्बर

काल—१०५० ई० (कर्ण कलचूरी १०४०–७० ई०)। देश—त्रिपुरी

१–जनताका जीवन और आशा

(१) गरीबीका जीवन

सिअ विट्ठी किज्जइ, जीआ लिज्जइ, वाला वुड्ढा कपना।
वह पच्छा वाअह, लग्गे काअह, सव्वा दीसा झपता।
जइ जट्टा रूसइ, चित्ता हासइ, पंटे अग्गी थप्पीआ।
कर पाआ सभरि, किज्जे भित्तरि, अप्पा-अप्पी लुक्कीआ ॥१६५॥(५४५)
ताव वुद्धि ताव सुद्धि, ताव दाण ताव माण, ताव गव्व,
जाव जाव हत्थ णच्च, विज्जु-रेह-रंग णाइ, एक दव्व।
एत्थ अंत अप्प-दोस, देव रोस होइ णट्ठ, मोइ सव्व;
कोइ वुद्धि कोइ सुद्धि, कोइ दाण कोइ माण, कोइ गव्व ॥११६॥ (५५६)

(२) सुखी जीवन

पुत्त पवित्त वहुत्त घणा, भत्ति कटुंविणि सुद्ध मणा।
हक्क तरासइ भिच्च-गणा, को कर बब्बर सग्ग मणा ॥९५॥ (४०५)
सुधम्म-चित्ता गुणवन्त-पुत्ता, सुकम्म-रत्ता विणआ कलत्ता।
विसुद्ध-देहा धणवत-गेहा कुणंति के बब्बर सग्ग-णेहा ॥११७॥ (४३०)
सो माणिअ पुणवन्त, जासु भत्त पण्डिअ तणय।
जासु घरिणि गुणवंति, सोवि पुहवि सग्गह णिलअ ॥१०१॥ (२७६)
उच्चउ छाअण विमल घरा, तरुणी घरिणि विणअपरा।
वित्तक पूरल मुद्दहरा, वरिसा समआ सुक्खकरा ॥१०४॥ (२८३)

---

[१] "प्राकृत पैंगल" चन्द्रमोहन घोष द्वारा Biblio theca Indica (1902) में संपादित। जिन कविताओंमें बब्बरका नाम नहीं, वह बब्बरकी है, इसमें

§ २७. बब्बर

(चेदी)। कुल--(कर्णका दर्बारी कवि)। कृतियाँ--स्फुट कवितायें[1]

१--जनताका जीवन और आशा

(१) गरीबीका जीवन

शीँत वृष्टी कीजिय, जीवा लीजिय, बाला-बूढा कपता।
वह पछुवाँ वाता, लागे कायहँ, सर्वा दिशा झाँपता।
यदि जाडा रूषै, चित्ता ह्रासै, पेटे अग्नी थप्पीया।
कर-पादा सहरि, कीजै भीतरि, आपा-अप्पी लुक्कीया ॥१६५॥
तौ लोँ बुद्धी तौलोँ शुद्धी, तौ लोँ दाना तौलोँ माना, तौलोँ गर्वा।
जौलोँ जौलोँ हाथे नाचै, विज्जूरेखारगा न्याई, एका द्रव्या।
एही बीच आत्मदोषेँ, दैव-रोषेँ होइ नष्ट, सोइ सर्व।
कोई बुद्धि कोई शुद्धि, कोई दान कोई मान, कोई गर्व ॥१६६॥

(२) सुखी जीवन

पुत्र पवित्र बहूत धना, भक्ताँ कुटुंविनि[1] शुद्ध-मना।
हाँके त्रसई भृत्य-गणा, को करेँ बब्बर स्वर्गेँ मना ॥६५॥
स्वधर्म-चित्ता गुणवन्त पुत्रा, सुकर्म-रक्ता विनता कलत्रा।
विशुद्ध-देहा धनवत-गेहा, करति के बब्बर स्वर्ग-नेहा ॥११७॥
सो मानिय पुणवत, जासु भक्त-पडित तनय।
जासु घरनि गुणवति, सोउ पुहुमि स्वर्गह निलय ॥१७१॥
ऊँची छाजन वि-मल घरा, तरुणी घरनी विनयपरा।
वित्तकेँ पूरल मुँदघरा, वर्षा समया सुक्खकरा ॥१७४॥

सन्देह है, मगर कर्ण-कालीन जरूर है   [1] भार्या

पिअ-भत्ति पिआ, गुणवत सुआ ।

धण-जुत्त घरा, वहु-मुक्ख-करा ॥४४॥ (३६७)

गुणा जासु सुद्धा, वह रुअमुद्धा ।

घरे वित्त जग्गा, मही तासु सग्गा ॥५३॥ (३६८)

कमल-णअणि, अमिअ-वअणि ।

तरुणि घरणि, मिलइ सुपुणि ॥५७॥ (३७१)

गुरुजण-भत्तउ, वहुगुण-जुत्तउ ।

जमु जिअ पुत्तउ, सउ पुणवंतउ ॥६१॥ (३७४)

ओग्गर-भत्ता रभअ-पत्ता, गाइक घित्ता दुद्ध-सँजुत्ता ।

मोइल-मच्छा नालिय-गच्छा, दिज्जइ कता खा पुणवना॥९३॥(४०३)

२—सामन्ती समाज

(१) कुलक्षणा[1] स्त्री

भौंहा कविला उच्चा निअला, मज्झा पिअला णेत्ता जुअला ।

रुक्खा वअणा दता विरला, केसे जिविला ताका पिअला ॥९७॥ (४०८)

(२) नारी-सौंदर्य

रे धणि ! मत्त-मअगज-गामिणि, खजण-लोअणि चदमुही ।

चचल जोॅव्वण जात ण जाणहि, छइल समप्पहि काइ णही ॥१३२॥ (२२७)

सुंदरि गुज्जरि णारि, लोअण दीह-विसारि ।

पीण-पओहर-भार, लोलिअ मोत्तिअ-हार ॥१७८॥ (२८६)

हरिण-सरिस्सा णअणा, कमल-सरिस्सा वअणा ।

जुवअण-चित्ता-हरिणी, पिय-सहि ! दिट्ठा तरुणी ॥७९॥ (३८९)

चल-कमल-णअणिआ, खलिअ-थण-वसणिआ ।

हसइ पर-णिअनिआ, असइ धुअ वहुनिआ ॥८३॥ (३९३)

[1] कुरूप भी

प्रिय-भक्त प्रिया गुणवत सुता ।
धनवत घरा, वहु सुक्ख-करा ॥४४॥

गुणा जासु शुद्धा, वधू रूप-मुग्धा ।
घरे वित्त जग्गा, मही तासु स्वर्गा ॥५३॥

कमल - नयनि, अमिय - वयनि ।
तरुणि घरनि, मिलै सुपुणि ॥५७॥

गुरुजन - भक्तउ, वहुगुण - युक्तउ ।
जसु जिय पुत्रउ, सोंइ गुणवतउ ॥१६॥

ओगर[1]-भत्ता रभा-पत्रा, गायकें घीवा दुग्ध-सँयुक्ता ।
मॉगुर-मच्छा नालिय-शाका, दीजै काता खाँइ' पुणवता ॥६३॥

२—सामन्ती समाज

(१) कुलत्त्रणा स्त्री

भौंहा कपिला ऊँच लिलारा । माँझे पियरा नेत्रा-युगला ।
रुक्षा वदना दताविरला । कैसे जीविय ताका प्रियला ॥६७॥

(२) नारी-सौदर्य

रे धनि ! मत्त-मतगज-गामिनि, खजन-लोचनि चद्रमुखी ।
चचल-यौवन जात न जानै, छैलें समपैं काहें नहीं ॥१३२॥

सुदरि गुर्जरि नारि, लोचन दीर्घ-विसारि[2] ।
पीन-पयोधर-भार, लोलिय मौक्तिक-हार ॥१७८॥

हरिन-सरीखा नयना, कमल-सरीखा वदना ।
युवजन-चित्ता-हरणी, प्रिय सखि ! दृष्टा तरुणी ॥७९॥

चल-कमल-नयनिया, स्खलित-थन-वसनिया ।
हसै पर-नियरिया, असति ध्रुव वहुरिया ॥८३॥

---

[1] वासमती (?)　　[2] विस्तारी

महामत्त-माअग-पाए ठवीआ, महातिक्ख-बाणा कडक्खे धरीआ।
भुआ पास भोँहा धणूहा समाणा, अहो णाअरी कामराअस्स सेणा ॥२६॥ (४४३)
तुहु जाहि सुंदरि ! अप्पणा, परितेज्जि दुज्जण अप्पणा।
विअसत केअइ-सपुडा, णिहु एहु आविह वप्पुडा ॥६१॥ (४०१)
खजण-जुअल णअण-वर-उपमा, चारु-कणअ-लइ भुअ-जुअ सुसमा।
फुल्ल-कमल-मुहि गअ-वर-गमणी, कासु सुकिअ-फल विहि गढु तरुणी।१५३।(४७७)
तरल-कमल-दल-सरि-जुअ-णअणा, सरअ-समअ-ससि-सुअरिस-वअणा।
मअगल-करि-वर-सअलस-गमणी, कवण सुकिअ-फल विहि गढ रमणी।१६७।(४६६)
पाअ-णेउर[1] झझणक्कइ, हस-सद्द-सुसोहणा,
थोर-थोर-थणग्ग णच्चइ, मोँत्ति-दाम-मणोहरा।
वाम-दाहिण-धारि धावइ, तिक्ख-चक्खु-कडीक्खआ,
काहु णाअर-गेह-मडिणि, एहु सुदरि पेक्खिआ ॥१८५॥ (५२३)

(३) ऋतु-वर्णन

(क) ग्रीष्म
तरुण-तरणि तवइ धरणि, पवण वहइ खरा,
लग्ग णाहि जग वड मरुथल, जण-जिअण-हरा।
दिसइ चलइ हिअअ दुलइ, हम इकलि वहू,
घर णहि पिअ सुणहि पहिअ ! मण इच्छइ कहू ॥१६३॥ (५४१)

(ख) पावस
वरिस जल भमइ घण गअण सिअल पवण मणहरण,
कणअ-पिअरि णचइ विजुरि फुल्लिआ णीवा।
पत्थर वित्थर हिअला पिअला णिअलं ण आवेइ ॥१६६॥ (७८३)
णच्चइ चंचल विज्जुलिआ सहि ! जाणएँ,
मम्मह खग्ग णिसीअइ जलहर-साणएँ।

---

[1] —

महामत्त-मातग-पादे थपीया, तथा तीक्ष्ण-वाणा कटाक्षे धरीया ।
भुजापाश भौंहा धनूहा-समाना, अहो नागरी कामराजाहँ सेना ॥१२६॥
तुहुँ जाहु सुंदरि आपना, परित्यजिय दुर्जन स्थापना[1] ।
विकसत-केतकि-सपुटा, चुप एहु आयहु वापुरा ॥६१॥
खजन-युगल नयनवर-उपमा, चारु-कनक-लत भुज-युग-सुषमा ।
फुल्लकमल-मुखि गजवर-गमनी, कासु सुकृत-फल विधि गढ तरुणी ॥१५३॥
तरल-कमलदल-सर-युगनयना, शरद-समय-शशि-सुसदृश-वदना ।
मदगल-करिवॅर-स-अलस-गमनी, कवन सुकृत-फल विधि गढ रमणी ॥१६७॥
पाद-नूपुर झझनक्कै, हस शब्द-सुसोहना ।
थोर-थोर-थनाग्र नच्चै, मोति-दाम-मनोहरा ।
वाम-दाहिन-धारें धावै, तीक्ष्ण-चक्षु-कटाक्षिया ।
काह नागर-गेह-मडनि, एहु सूदरि पेखिया ॥१८५॥

(३) ऋतु-वर्णन

(क) ग्रीष्म

तरुण-तरणि तपै धरणि, पवन वहै खरा ।
लाग नाहिँ जल वड मरुथल, जन-जीवन-हरा ।
दिश चलै हृदय डुलै, हम ऍकली बधू ।
धरें नहिँ पिय सुनहि पथिक ! मन-इच्छै कहू ॥१६३॥

(ख) पावस

वरिस जल भ्रमै घन गगन, शीॅतल-पवन मन-हरन ।
कनक-पियरि नचै बिजुरि, फूलिया निवा ।
पत्थर-विस्तर-हियरा पियरा, नियर न आवई ॥१६॥
नाचै चचल विज्जुरिया सखि ! जाइ,
मन्मथ - खड्गहँ धरसै जलधर - शानै ।

---

[1] मत

फुल्ल कअंवअ अवर डवर दीसएँ,

पाउस पाउ घणाघण सुमुहि ! वरीसएँ ॥१८८॥ (३००)

फुल्ला णीवा भम भमरा, दिट्ठा मेहा जल समला ।

णच्चे विज्जू पिअ-सहिआ, आवे कता कहु कहिआ ॥८१॥ (३६१)

ज णच्चे विज्जू मेहधारा, पप्फुल्ला णीवा सद्दे मोरा ।

वाअता मदा सीआ वाआ कपता काआ कंता णाआ ॥८६॥ (३६६)

(ग) शरद्-वर्णन

णेत्ताणदा उग्गो चदा, धवल-चमर-सम-सिअ-अरविंदा,

उग्गे तारा तेआ-सारा, विअसु कुमुअ - वण - परिमल - कदा ।

भासे कासा सव्वा आसा, महुर-पवण लह-लहिअ करता,

हसा सद्दे फुल्ला वधू, सरअ-समअ सहि ! हिअ अहरंता ।२०५। (५६६)

(घ) शिशिर-वर्णन

ज फुल्लु कमल-वण वहइ लहु पवण, भमइ भमरकुल दिसिविदिस,

झकार पलइ वण खट्ट कुहिल-गण, विरहिअ हिअ हुअ दर-विरस ।

आणदिअ जुअजण उलसु उठिअ मण, सरस, णलिणि-दल किअ सअणा,

पलट सिसिररिउ दिअस दिहर भउ, कुसुम-समअ अवतरिअ वणा ॥२१३॥ (५८१)

(क) वसंत-वर्णन

भमइ महुअर फुल्ल-अरविद, नवकेम काणण जुलिअ,

सव्वदेस पिक-राव चुरिलअ, सिअल-पवण लहु वहइ,

मलअ-कुहर णव-वल्लि पेल्लिअ ।.

चित्त, मणोभव सर हणइ, दूर-दिगतर कत ।

किम परि अप्पउ धारिहउ, एँम परिपलिअ दुरत ॥१३५॥ (२३३)

फुल्लिअ महु भमर वह रअणि पहु किरण लहु अवअर वसत ।

मलअ गिरि कुसुम धरि पवण वह, सहव कत सुणु सहि ! णिअल णहि कंत ।१६३।(२७०)

चडि चूअ कोइल-साव, महु-मास पचम गाव ।

मण-मज्झ वम्मह ताव, णहु कंत अज्जवि आव ॥८७॥ (३६७)

फुल्ल-कदंबक अंवर-डवर दीसै,
पावस आउ घनाघन सुमुखि ! वरीसै ॥१८८॥
फुल्ला निंवा भ्रम भ्रमरा, दिट्ठा मेघा जल-श्यामला ।
नाचै विज्जू प्रिय-सखिया ! आवे कता कहु कहिया ॥८१॥
जो नाचै विज्जू मेघधारा, प्रप्फुल्ला निंवा शव्दइ मोरा ।
वीजता मदा शीता वाता, कपता काया कत न आया ॥८६॥

(ग) शरद्-वर्णन

नेत्रानदा ऊगो चद्रा, धवल-चमर-सम सित-अरविंदा ।
ऊगे तारा तेजम्सारा, विकसु कुमुद-वन-परिमल-कदा ॥
भासै काशा सर्वा आशा, मधुर पवन लहलहिय करता ।
हसा शव्दै फूला बधू, शरद-समय सखि ! हिय हहरंता ॥२०५॥

(घ) शिशिर-वर्णन

जो फूलु कमल-वन वहै लघु पवन, भ्रमै भ्रमर-कुल दिशिविदिश ।
झंकार परै वन रवै कोंइल-गण, विरहिय-हिय हुओं डर-विरस ॥
आनदिय युवजन उलस उठिय मन, सरस-नलिनि-दल कृत-शयना ।
वीतउ शिशिरउ दिवस दिरघ भउ, कुसुम-समय अवतरिय वना ॥२१३॥

(ङ) वसंत-वर्णन

भ्रमै मधुकर फुल्ल-अरविंद, नव-किंशु-कानन ज्वलिया ।
सर्वदेश पिक-राव चुल्लिय, शींतल-पवन लघु बहै ॥
मलय-कुहर नव-वेलि पेरिय ।
चित्तें मनोभव-शर हनै, दूर-दिगंतर कत ।
किमि परि अपहिँ धारिहउ, इमि परि-पडिय दुरंत ॥१३५॥
फुल्ल मधु, भ्रमर वहु, रजनि-प्रभु-किरण लघु अवतरु वसत ।
मलयगिरि-कुसुम धरि पवन वह, सहब कत सुनु सखि ! नियर नहिँ कत ॥१६३॥
चढि चूतें कोंइल-शाव मधु-मास पचम गाव ।
मन-माँझ मन्मथ-ताप, नहिँ कत आजउ आव ॥८७॥

कग्रा भउ दुव्वरि तेज्जि गरास, खणे खण जाणिग्र दीह णिस्सास ।
कुहू-रव-ताव दुरंत वसत, कि णिद्द्ग्र काम कि णिद्द्ग्र कन्त ॥१३४॥ (४५३)
वहइ दक्खिण-मारुग्र सीग्रला, रवइ पचम-कोमल कोइला ।
महुग्ररा महु-पाण महूसवा, भमइ सुदरि ! माहव समरा ॥१४०॥ (४६०)
णव-मंजरि लिज्जिग्र चूग्रह गाछें, परिफुल्लिग्र केसु णग्रा वण ग्राछे ।
जइ एत्थि दिगंतर जाइहि कंता, किग्र वम्मह णत्थि कि णत्थि वसता ।१४४। (४६५)
जहि फुल्ल-किंसु-ग्रसोग्र-चपग्र-मजुला, सहग्रार-केसर-गध लुद्धउ भम्मरा ।
वहु-दक्ख दक्खिण-वाउ माणह भजणा, महु-मास ग्राविग्र लोग्र-लोग्रण-रजणा ॥१६३(४६१)॥

वहइ मलग्र-वाग्रा हत ! कपंत काग्रा,
हणइ सवण-रवा कोइला-लाव-बचा ।
सुणिग्र दहदिहासु भिंग-झकार-भारा,
हणिग्र हणइ हञ्जे ! चड-चंडाल-मारा ॥१६५॥ (४६३)

वहइ मलग्राणिला विरहि-चेउ-सतावणा,
रग्रइ पिक-पंचमा विग्रसु किंसु-फुल्ला वणा ।
तरुण-तरु-पल्लवा मउलु माहवी वल्लिग्रा,
वितर सहि ! णेत्तग्रा समग्र माहवा[1] पत्त ग्रा ॥१७६॥ (५१३)

ग्रमिग्र-कर-किरण धरु फुल्लु णव-कुसुम-वण,
कुविग्र भइ सर ठवइ काम णिग्र धणु धरइ ।
रवइ पिक समग्र णिग्र कत नुग्र थिर हिग्रलु,
गमिग्र दिण पुणु ण मिलु जाहि सहि ! पिग्र-णिग्रलु ॥१६१॥ (५३७)

जह फुल्ल केग्रइ चारु-चपग्र-चूग्र-मजरि-वजुला,
सव दीसदीसइ केसु-काणण पाण वाउल भम्मरा ।
वह पोम्म गध विवधु बंधुर मद मद समीरणा,
णिग्र केलि-कोतुक-लास-लंगिम लग्गिग्रा तरुणी जणा ॥१६७॥ (५५०)

---

[1] चैत्रमास

काँया-भउ दूबरि त्तेज्जिय ग्रास । क्षणे-क्षण जानिय दीर्घ-निश्वास ।
कुहू-रव ताप दुरंत वसत । कि निर्दय काम कि निर्दय कंत ॥१३४॥
वहइ दक्खिन मारुत शीतला, रवइ पचम कोमल कोइला ।
मधुकरा मधुपान-महोत्सवा, भ्रमइ सुदरि ! माधव सस्मरा ॥१४०॥
नवमजरि लिज्जिय चूतह गाछें, परिफुल्लित किंशु नवा वन ग्राछें[1] ।
यदि ग्राहि दिगतर जाइव कता, किग्र मन्मथ नाहिँ कि नाहि वसता ॥१४४॥
जहँ फुल्ल किंशु-ग्रशोक-चपक-मजुला, सहकार-केसर-गध-लुब्धउ भ्रम्मरा ।
बहुदक्ष दक्षिण-वात मानहँ भजना, मधुमास ग्रायउ लोक-लोचन-रजना ॥१६३॥
वहइ मलय-वाता हृत कपत काया ।
हनइ श्रवण-रध्रा कोकिलालाप-बंधा ।
सुनिय दशदिशासु भृङ्ग-झकार-भारा ।
हनिय हनै ग्रोरे ! चड-चडाल मारा ॥१६५॥
वहै मलियानिला विरहि-चेत-सतापना,
रवै पिक पंचमा विकसु किंशु फुल्ला वना ।
तरुण-तरु-पल्लवा मुकुलु माधवी-वल्लिया,
वितर सखि ! नेत्रवा समय माधवा ग्राइया ॥१७६॥
ग्रमियकर किरण धरु फुल्लु नवकुसुम वन,
कुपित भेइ शर थवइ काम निज धनु धरै ।
रवइ पिक समय निज कत तव थिर हृदय,
गयउ दिन पुनि न मिलु, जाहि सखि ! पिय-नियर ॥१६१॥
जहँ फुल्ल केतकि चारु-चपक-चूत-मजरि-वजुला,
सब दीस दीसै किंशु कानन प्राण व्याकुल भ्रम्मरा ।
वहेँ पद्म गध-विबंध-बधुर मंद-मंद समीरणा,
निज केलि-कौतुक-लास-भगिम लागिया तरुणी जना ॥१६७॥

---

[1] हैं

फुल्लिअ केसु चद तह विअसिय, मजरि तेज्जइ चूआ;
दक्खिण-वाउ सीअ भइ पवहइ, कंप विओइणि हीआ।
केअइ-धूलि सव्व दिस पसरइ, पीअर सव्वउ भासे,
आउ वसंत काह सहि ! करिअइ, कत ण थाकइ पासे ॥२०३॥ (५६३)

(४) वीर-प्रशंसा

सुरअरु सुरही परसमणि, णहि वीरेस समाण।
ओ वक्कल अरु कठिण तणु, ओ पसु ओ पासाण ॥७६॥ (१३६)

(५) कर्ण (कलचूरि) राजाकी प्रशंसा

चल गुज्जर कुजर तेज्जि मही, तुअ बब्बर जीवण अज्जु णही,
जइ कुप्पिअ कण्ण-णरेंदवरा, रण को हरि को हर वज्रहरा ॥१३०॥ (४४८)
कण्ण चलते कुम्म चलइ पुहवि[1] असरणा,
कुम्म चलते महि चलइ भुअण-भअ-करणा।
महिअ चलते महिहरु तह असुरअणा,
चक्कवइ चलते चलइ चक्क तह तिहुअणा ॥६६॥ (१६५)
जे गंजिअ गोलाहिवइ राउ, उद्दड ओड्ड जसु भअ पलाउ।
गुरु विक्कम विक्कम जिणिअ जुज्झ, ता कण्ण परक्कम कोइ बुज्झ ॥१२६॥ (२१६)
जिहि आसावरि देसा दिण्हउ, सुत्थिर डाहर रज्जा लिण्हउ।
कालंजर जिणि कित्ती थप्पिअ, धणु आवज्जिअ धम्मक अप्पिअ ॥१२८॥ (२२२)
हणु उज्जर-गुज्जर-राअ-कुलं, दल-दलिअ चलिअ मरहट्ठ-बल।
बल मोडिअ मालव-राअ-कुला, कुल उज्जल कलचुलि कण्ण फुला ॥१८५॥ (२६६)
खिक्क दलण थोंग-दलण तक्क-दलण रिगए,
णंग-णुकट दिग दुकट रगल तुरंगए।

---

[1] पृथिवी

फुल्लिअ किंशु चद्र तिमि विकसिय मजरि त्याजै चूता।
दक्षिण-वायु शीत-भय प्रवहै, कप वियोगिनि हीया।
केतकि-धूलि सर्व दिशि प्रसरै, पीयर सर्वउ भासै।
आउ वसत काह सखि ! करिये, कत न थाके[1] पासे ॥२०३॥

(४) वीर-प्रशंसा

सुर-तरु सुरभी परस-मणि, नहिँ बीरेश-समान।
वह वल्कल अरु कठिन-तनु, वह पशु वह पाषाण ॥६७॥

(५) कर्ण (कलचूरि) राजाकी प्रशंसा

चलु गुर्जर ! कुजर त्याजि, मही, तव वर्बर जीवन आज नहीँ।
यदि कोपिय कर्ण-नरेन्द्रवरा, रणेँ को हरि को हर-वज्रधरा ॥१३०॥
कर्ण चलते कूर्म चलै पुहुवि अशरणा,
कूर्म चलते महि चलै भुवन-भय-करणा।
मही चलते महिधर तहँ असुरजना,
चक्रवर्त्ति चलते चलै चक्र तिमि तिभुवना ॥६६॥
जे गजिअ गौडाधिपति राउ, उद्दड ओड्र जसु भय पलाउ।
गरु-विक्रम विक्रम जिनिहि जुज्झु, तो कर्ण-पराक्रम कोइ बुज्झ ॥२१६॥
जिनि आसावरि देशा दीनेँउ, सुस्थिर डाहर रज्जा लीनेँउ।
कालजर जिति कीर्त्ति थापिय, धन आवर्जिय धर्महँ अर्पिय ॥१२८॥
हनु उज्वल गुर्जर-राजकुल, दरदारिय चलिय मरहट्ठ-बल।
वल मोडिय मालव, राजकुला, कुल-उज्वल कलचुरि कर्ण-फुला ॥१८५॥
धिक्क दलन थोंग दलन तक्क दलन रेगए,
न-ननु-कट दिग-दुकट रग चल तुरंगए।

---

[1] रहै

धूलि धवल हक्क सबल पक्खिपवल पत्तिए,
कण्ण चलइ कुम्म ललइ भुम्मि भरइ कित्तिए ॥२०१॥ (३२२)

जुज्झ भट भूमि पड, उट्ठि पुणु लग्गिआ,
सग्ग-मण. खग्ग हण कोइ णहि भग्गिआ।

बीस सर तिक्ख कर कण्ण गुण अप्पिआ,
पत्थ तह जोलि दह चाउ सह कप्पिआ ॥१६१॥ (४८८)

सज्जिअ जोह विवट्टिअ कोह चलाउ धणू,
पक्खर वाह चलू रणणाह कुरत तणू।

पत्ति चलत करे धरि कुत सुखग्गकरा,
कण्ण-णरेद सुसज्जिअ विंद चलति धरा ॥१७१॥ (५०२)

कण्ण पत्थ ढुक्कु लुक्कु सूरवाण सहएण,
घाउ जामु तासु लग्गु अधआर सहएण।

एन्थ पत्थ सट्ठि वाण कण्ण पूरि छड्डुएण,
पेक्खि कण्ण कित्ति धण्ण वाण सव्व कट्टिएण ॥१७३॥ (५०४)

३—कविका संदेश

(जगत् तुच्छ—)

अइचल जोव्वण देह धणा, सिविणअ सोअर बधु-अणा।
अवसउ कालपुरी गमणा, परिहर बव्बर पाप-मणा ॥१०३॥ (४१४)

ए अत्थीरा देक्खु सरीरा घरु जाया,
वित्ता, पित्ता, सोअर, मित्ता, सवु माया।

काहे लागी बव्बर वेलावसि[1] मुज्झे,
एक्का कित्ती किज्जहि जुत्ती, जइ सुज्झे ॥१४२॥ (४६३)

---

[1] वेलावसि=बाहर निकालते हो (मैथिली क्रि० वेलाएब)

धूलि धवल हाँक सबल पक्षि-प्रवल पत्तिए[1],
　　कर्ण चलै कूर्म ललै भूमि भरै कीर्त्तिए ॥२०१॥
जूझ भट भूमि पड़ु उट्ठि पुनि लग्गिया,
　　स्वर्ग-मन खङ्ग हन कोइ नाहि भग्गिया।
वीस-शर तक्षिण कर **कर्ण** गुणें अपिया,
　　पार्थ तहँ जोरि दश चाप-सह कप्पिया[2] ॥१६१॥
सज्जित योध विवर्द्धित-क्रोध चलाउ धनू,
　　पक्खर-वाह[3] चलो रणनाथ फुरत तनू।
पत्ति[1] चलंत करे धरि कुंत सु-खङ्गकरा,
　　कर्ण-नरेन्द्रें सु-सज्जित-वृन्दें चलति धरा ॥१७१॥
कर्ण-पार्थ ढुक्कु लुक्कु सूर-वाण-सहतेहिँ,
　　घाव जासु तासु लागु अधक़ार सहतेहिँ।
अत्र पार्थ साठ वाण कर्ण पूरि छाडतेहिँ,
　　पेखि कर्ण-कीर्त्तिधन्य वाण सर्व काटियेहिँ ॥१६३॥

३—कविका संदेश

(जगत् तुच्छ—)

अतिचल-यौवन-देह-धना, स्वप्नए सोदर-वधु-जना।
　　अवसए काल-पुरी-गमना, परिहर **बब्बर** पाप मना ॥१०३॥
ए अस्थीरा देक्खु शरीरा, घरु जाया,
　　वित्ता, पित्ता, सोदर, मित्रा, सब माया।
काहे लागी **बब्बर** वैलावसि मुज्झे,
　　एक्का कीर्त्ती किज्जइ युक्ती, यदि सुज्झे ॥१४२॥

---

[1] प्यादा　[2] काटा　[3] बख़्तरदार घोड़ा

§ २८. कनकामर मुनि

काल—१०६० ई०(?)। देश—बुंदेलखंड(?)। कुल—ब्राह्मण, दिगंबर

१–भौगोलिक वर्णन

(१) अंग-देश-वर्णन

दीवाण पहाणहिँ दीव-दिवे। जवू-दुम लछिएँ जंवूदिवेँ।
वेढिय लवणण्णव वलयमाणेँ। जोयण सय-सहस परिप्पभाणेँ।
वित्थिण्णउ इह सिरि भरह-छेत्तु। गंगाणइ सिंधुहु विप्फुरन्तु।
छक्खड भूमि रयणहँ णिहाणु। रयणायरोव्व सोहायमाणु।
एत्थत्थि रवण्णउ अंगदेसु। महि-महिलइँ णं किउ दिव्ववेसु।
जहिँ सरवरि उग्गय पंकयाइँ। ण धरणि वयणि णयणुल्लयाइँ।
जहिँ हालिणि[1] रूवणि वद्धणेह। सचल्लहिँ जक्खण दिव्वदेह।
जहिँ वालहिँ रक्खिय सालिखेत्त। मोहेविणु गीयएँ हरिणगोत।
जहिँ दक्खइँ भुंजिवि दुहु मुयंति। थल-कमलहिँ पथिय मुहु सुयंति।
जहिँ सारणि सलिल सरोय-पंति। अइरेहइ मेइणि ण हँमंति।

(२) चंपानगरी

घत्ता। तहँ देसि रवण्णइँ धण-कण-पुण्णइँ अत्थि णयरि सुमणोहरिया।
जण-णयण-पियारी महियलि सारी, चंपा णामइँ गुणभरिया॥

जा वेढिय परिहा-जलभरेण। ण मेइणि रेहइ सायरेण।
उत्तुंग-धवल कउ सीसएहिँ। ण सग्गु छिवइ बाहू-सएहिँ।
जिण-मंदिर रेहहिँ जाहिँ तुंग। ण पुण्णपुंज णिम्मल अहग।
कोसेय पटायउ घरि लुलंति। णं सेय-सप्प णहि सलवलंति।

---

[1] देखो स्वयंभू (पृ० ३२), और पुष्पदंत (पृ० १६२ और १६४)

§ २८. कनकामर मुनि

साधु। कृति—करकंड-चरिउ[1]

१—भौगोलिक वर्णन

(१) अंग-देश-वर्णन

द्वीपन कों प्रधानो द्वीप-दीप। जबुद्रुम-लांछित जबुद्वीप।
वेठिय लवणार्णव वलयमान। योजन-शत-सहस-परिप्रमाण।
विस्तीर्णउ इह श्रीभरत-छेत्र। गगानदि-सिंधुउ विस्फुरत।
छै खड भूमि रतनहँ निधान। रतनाकर इवँ शोभायमान।
एहिँ अहै रम्य (एँहु) अंग-देश। महि-महिलैं जनु किउ दिव्यवेष।
जहँ सरवरें उग्गैं पकजाइँ। जनु धरनि-वदनें नयनुल्लयाइँ।
जहँ हालिनि[2] रूप-निबद्ध-नेह। सचल्लैं यक्ष न दिव्यदेह।
जहँ बाला राखिय शालि-खेत। मोहेविय गीतहिँ हरिन खेत।
जहँ द्राक्षइँ भुजिय दुधु मुँचति। स्थलकमलहँ पथिक सुख सोंवति।
जहँ सरवर-सलिलें सरोज-पक्ति। अतिराजै मेदिनि जनु हसति।

(२) चंपानगरी

घत्ता। तहँ देशें रमणयइँ, धन-कण-पूर्णड, आहि नगरि सुमनोहरिया।
जननयन-पियारी, महियल-सारी, चंपा नामइँ गुण-भरिया॥
जा वेठिय परिखा-जल-भरेहिँ। जनु मेदिनि राजै सागरेहिँ।
उत्तुग-धवल कपि-शीशएहिँ। जनु स्वर्ग छुवै बाहूशतेहिँ।
जिनमदिर राजैं जाहँ तुग। जनु पुण्य-पुज निर्मल अभग।
कौषेय-पताकउ घरें लुलति। जनु श्वेत-सर्प नभें सरसरति।

---

[1] कारंजा जैन-ग्रंथमाला (कारंजा, बरार) में प्रो० हीरालाल जैन द्वारा सपादित (१९३४)　[2] हलवाह-वधू

जा पंचवण्ण-मणि-किरण-दित्त । कुसुमजलि णं भयणेण घित्त ।
चित्तलियहिँ जा सोहइ घरेहिँ । णं अमर-विमाणहिँ मणहरेहिँ ।
णव-कुंकुम-छडयहि जा सहेइ । समरंगणु मयणहोँ णं कहेइ ।
रत्तुप्पलाइँ भूमिहि गयाइँ । णं कहइ धरती फलसयाइँ ।
जिण-वास पुण्ण-माहप्पएण । ण वि कामुय जित्ता कामएण ।

घत्ता । तहिँ 'अरिविद्दारणु, मयतरु-वारणु, धाडी वाहणु पहु हुयउ ।
जो कवगुणजुत्तउ, गुरुयणभत्तउ, विज्जासायर पारगउ ।

—करकंड-चरिउ, पृ० ४, ५

(३) सिंहल-द्वीप-वर्णन

ता एक्कहिँ दिणि करकंडएण । पुणु दिण्णु पयाणट तुरियएण ।[1]
गउ सिंहलदीवहोँ णिवसमाणु । करकंडु णराहिउ णरपहाणु ।
जहि पाउल पिल्लइँ मणुहरंति । सुर-खेयर-किंणर जहिँ रमति ।
गयलीलइँ महिलउ जहिँ चलति । णियरुवेँ रइरूउवि खलंति ।
जहि देक्खिवि लोयहँतणउ भोउ । वीसरियउ देवहँ देवलोउ ।
आवासिउ णयरहोँ बहिय एसेँ । अरिसंक पवड्ढिय तहिँ जि देसेँ ।
आवासु मुएँवि सहयरसमेउ । करकंडु गयउ रमणिहिँ अमेउ ।
तहिँ गरुवउ सवणसएँहिँ भरिउ । ण कण्पवन्छ देवेहिँ धरिउ ।
दलवंतहि पत्तहिँ परियरिउ । वडु विट्ठु राएँ समु वित्थरिउ ।

घत्ता । करकंडेँ पेक्खवि तहोँ वडहोँ, दीहइँ गुट्ठु मुक्कोगलइँ ।
ता लेविणु गुलिया धणुहडिया विद्धाइँ अमेमइँ मद्दलइँ ॥

—वहीं पृ० ६४

---

[1] तूर्य=नगाड़ा

जा पचवर्ण-मणि-किरण-दीप्त । कुसुमाजलि जनु भगणेहिँ[1] क्षिप्त ।
चित्तलियहिँ जा सोहै घरेहिँ । जनु अमर-विमानहिँ मनहरेहिँ ।
नवकुकुम-छट्येहिँ जा सहेइ । समरांगण मदनहोँ जनु कहेइ ।
रक्तोत्पलाइँ भूमिहिँ गताइँ । जनु कथै धरित्री-फल-शताइँ ।
ज़िन-वास-पूजा-माहात्म्यएहिँ । नहि कामुक चिंता कामएहिँ ।
घत्ता । तहँ अरिविद्दारन, मदतरु-वारन, धाडीवाहन प्रभु हुअऊ ।
जो कविगुण-युक्तउ, गुरुजन-भक्तउ, विद्यासागर-पारगऊ ॥

—करकंड चरिउ , (पृ० ४, ५

(३) सिंहल-द्वीप-वर्णन

ता एकहिँ दिन करकडएहिँ । पुनि दिन्न प्रयाणहिँ तूर्ययेहिँ ।
गउ सिंहलद्वीपहु निवसमान । करकंड नराधिप नरप्रधान ।
जहँ पावस पिल्ल[2]इ मनहरति । सुर-खेचर-किन्नर जहँ रमति ।
गजलीलहिँ महिलउ जहँ चलति । निजरूपे रतिरूपहँ खलंति ।
जहँ देखिय लोकहँ केर भोग । वीसरियउ देवहँ देवलोक ।
आवासेँउ नगरहँ वहिप्रदेशेँ । अरि-शाका बाढी ताहि देशेँ ।
आवास छाडि सहचर-समेत । करकड गयेँउ रमणिहिँ अमेय ।
तहँ गरुअउ लवण शतेँहिँ भरिउ । जनु कल्पवृक्ष देवेँहिँ धरिउ ।
दलवंतहिँ पत्रहिँ परिचरिऊ । वट देखु राव सम-विस्तरिऊ ।
घत्ता । करकडेहिँ दीसेँउ सो वट, दीरघ सुष्ट सुकोमलइ ।
तो लेइय गोली धनुहडिया, वेँधेँउ अशेषइँ शाद्वलइ ॥५॥

—वहीँ पृ० ६४

---

[1] नक्षत्रमडल   [2] पक्षी कोई

२—सामन्त-समाज

(१) राज-दर्शन

अवरेहिँ 'वि लोयहिँ कलियमाणु । गउ सुन्दरु पुरवरेँ जणसमाणु ।

घत्ता । सो पुरवरणारिहि गुणणिलउ पइसतउ दिट्ठउ णयरे कह ।

ण दसरहणदणु तेयणिहिँ उज्झहिँ सुरणारीहि जहँ ॥

तहुँ पुरवरेँ खुहियउ रमणियाउ । झाणट्ठिय मुणि-मण-दमणियाउ ।

कवि रहसइँ तरलिय चलिय णारि । विहडप्फड़ संठिय कावि वारि ।

कवि धावइ णव-णिव णेहलुद्ध । परिहाणु ण गलयउ गणइ मुद्ध ।

कवि कज्जलु बहलउ अहरेँ देइ । णयणुल्लयेँ[१] लक्खारसु करेइ ।

णिग्गंथ-वित्ति कवि अणुसरेइ । विवरीउ डिंभु कवि कडिहिँ लेइ ।

कवि णेउरु करयलि करइ बाल । सिरु छड्डिवि कडियले धरइ माल ।

णियणंदणु मण्णिवि कवि वराय । मज्जारु ण मेल्लइ साणुराय ।

कवि धावइ णवणिउ मणेँ धरंति । विहलंघल मोहइ घर सरंति ।

घत्ता । कवि माण-महल्ली मयण-भर, करकंडहोँ समुहिय चलिय ।

थिर थोरय ओहरि मयणयण उत्तत्त-कणय-छवि उज्जलिय ॥

णवरज्जलभ रजिय हिएण । करकडइ पुरेँ पइसंतएण ।

गयखधेँ चडणिय जतएण । णिउ-राउलु लीलए पत्तएण ।

तं दिट्ठउ राय-णिकेउ तुगु । अइमणहरु ण हिमवंत-सिंगु ।

मुक्ता-हल-माला-तोरणेहि । ण विहसइ मियदंतहिँ घणेहि ।

किंकिणि रणंतु धयवडउ मालु । णं णच्चइ पणयणि विहिय-तालु ।

चामीय-रमणि-रयणेहिँ घडिउ । ण सग्गहोँ अमर-विमाणु पडिउ ।

तहिँ पइसइ णवणिउ विमलबुद्धि । पारंभिय गुरुयणु मण-विसुद्धि ।

कर हेमकुंभ मगलु करति । कवि माणिणि णिग्गयता तुरंति ।

---

[१] नयन=नयनुल्ला

२—सामन्त समाज

(१) राज-दर्शन

अवरेहिँ हु लोकहिँ कलितमान[१]। गयोँ सुन्दर पुरवरे जनसमान[२]।

घत्ता। सो पुरवरनारिहिँ गुणनिलय पइसता दीठेँउ नगरेँ किमि।
जनु दशरथनदन तेजनिधिं 'योध्या सुरनारीहि जिमि॥

तहँ पुरवरेँ क्षुभ्यउ रमणियाउ। ध्यान स्थित-मुनि-मन-दमनियाउ।
कोँइ रहसेँ तरलिय चलिय नारि। हडफड स-ठिय कोई दुवारि।
कोँइ धावै नव-नृप-नेह-लुब्ध। परिधान न गलियउ गनै मुग्धाँ।
कोँइ कज्जल बहुतो अधर देइ। नयनुल्लैँ लाक्षारस करेइ।
निर्ग्रन्थ-वृत्ति[३] कोँइ अनुसरेइ। विपरीत बाल कोँइ कटिहिँ लेइ।
कोँइ नूपुर करतलेँ करै बाल। शिर छाडी कटितलेँ धरै माल।
निजनंदन मानिय कोँइ वराकि। मार्जार न फेँकै सानुराग।
कोइ धावै नवनृप मनेँ धरति। विह्वलधर मोहै धराँ स्मरंति।

घत्ता। कोँइ मान-महल्ली मदन-भरा, करकडह सम्मुख चलिया।
स्थिर थोडा अपहरि मदनयना, उत्तप्त-कनक-छवि-उज्ज्वलिया॥

नव-राज्य-लाभ-रजित-हियेहिँ। करकडहिँ पुरेँ पइसतएहिँ।
गज-कधे चढिया जतएहिँ। नृप-राजुल-लीला-प्राप्तएहिँ।
सो देखउ राज-निकेत तुग। अतिमनहर जनु हिमवत-शृग।
मुक्ताफल-माला-तोरणेहिँ। जनु विहसै सित-दतहिँ घनेहिँ।
किंकिणि रणत ध्वजपटि'व माल[४]। जनु नाचै प्रणयिनि विहित-ताल।
चामीकर-मणि-रतनेहिँ गढेँउ। जनु सर्गहँ अमर-विमान पडेँउ।
तहँ पइसै नव-नृप विमल-बुद्धि। प्रारभिय गुरु-जन मन-विशुद्धि।
केँ हेम-कुभ मगल करति। कोइ मानिनि नीसरि गइ तुरंति।

---

[१] सम्मान कृत [२] जनो सहित [३] नंगापन [४] महल

परिमगलु किउ वर-दीवएहि। जयकारिउ पुणु णारी-सएहि।
सोवण्ण-कलस-कय उच्छवम्मि। पइसारिउ सो णिव-मंदिरम्मि।
घत्ता। सो सयल-गुणायरु सीलणिहि, विणयभाव-सजुत्तउ।
सामंत-मंति-जण-परियरिउ, पुरि अच्छइ[1] रज्जु करंतउ।

—वहीं पृ० २३, २४

(२) राजकुमार-शिक्षा

करकण्डहो उप्परि खेयरासु। अइपउरु पवड्ढिउ णेहु तासु।
पाढाविउ सो णीतिएँ जुयाइँ। वायरण-तक्क-णाडय-मयाइँ॥
कविविरइय कव्वइँ बहुरसाइँ। वच्छायण-गणियइँ णवरसाइँ।
मंताइँ असेसइँ ततयाइँ। वसियरण सुसोहइँ जंतयाइँ॥
असिचक्क-कुंत-छुरियउ वराउ। धणुवेय—सत्ति-दिढ-तोमराउ।
मल्लाण जुज्झ तणुघट्टणाइँ। उल्ललणइँ वलणइँ लोट्टणाइँ।
फल-फुल्ल-पत्त-छेयतराइँ। जाणाविउ सयलइँ सुहयराइँ।
पडु-पडह-मुरय-वीणाइ वंसु। विज्जाइँ असेसइँ कलिउएसु।
घत्ता। जं किंपि पसिद्धउ भुवणयले, खेयरइँ जणाविउ सो मुरइ।
लोहेण विटविउ सयलु जणु, भणु कि कर चोज्जइँ णउ करइ॥

—वहीं पृ० १६, १७

(३) पति-विरह

घत्ता। हल्लोहलि हुयउ सयलुजणि अपरुप्परि जाणइ सचलहि।
हा-हा-रउ उट्ठिउ करुण-सरु, नहों मोण णरवर-मलवलहि॥
जा णर-पंचाणणु वियसिय-आणणु जलि पडिउ।
ता सयलहिँ लोयहिँ पमण्यि सोयहिँ अइडरिउ॥
रइवेय सुभामिणि ण फणि-कामिणि विमणभया।
सव्वंगे कंपिय भिन्नें नमणिमय मुच्छगया॥

---

[1] रहता है, है

परि-मंगल किउ वर-दीपकेहिँ । जयकारेँउ पुनि नारी-शतेहिँ ।
सौवर्ण-कलश-कृत उत्सवहीँ । पइसारेँउ सो निजमंदिरहीँ ।
घत्ता । सो सकल-गुणाकर शील-निधि, विनय-भाव-सयुक्तऊ ।
सामत-मन्त्रि-जन-परिवरिय, पुरि आछै राज्यकरतऊ ।।

—वहीँ पृ० २३, २४

(२) राजकुमार-शिक्षा

करकडह्-ऊपर खेचराहु । अतिप्रवर प्रवाढेँउ नेह तासु ।
पढयउ सो नीतिय जुताइँ । व्याकरण-तर्क-नाटक-शताइँ ।
कवि-विरचित-काव्यइँ वहु-रसाइँ । वात्स्यायन-गनितइँ नवरसाइँ ।
मत्राइँ अशेषइँ तत्रयाइँ । वशिकरण सु-सोहेँ मंत्रयाइँ ।
असि-चक्र-कुत-छुरियउ वराउ । धनु-वेद-शक्ति दृढ तौमराउ ।
मल्लाहँ युद्ध तनु घट्टनाइँ । उल्ललनैँ वलनैँ लोट्टनाइँ ।
फल-फूल-पत्र-छेक'न्तराइँ । जानावेँउ सकलैँ शुभकराइँ ।
पटु-पटह-मुरज वीणाइँ वशि । विद्याइँ अशेषइँ ऋपिटएसु' ।
घत्ता । जो किछुउ प्रसिद्धउ' भुवनतले, खेचरइँ जनायेउ सो सुरति ।
लोभेहिँ विडविउ सकल जन, भन की कर प्रेँरणे न करइ ।।

—वहीँ पृ० १६, १७

(३) पति-विरह

घत्ता । हल्लाहल हूयो सकल जन, अपरापर जानै सचलही ।
"हा हा" रव उठेँउ करुण-स्वर, पुनि-शोके नरवर कलबलहीँ ।।
। नर-पचानन विकसित-आनन जलेँ पडेँऊ ।
तो सकलहिँ लोकहिँ प्रसरित-शोकहिँ अति डरेँऊ ।।
.ति-वेग सुभामिनि जनु फणि-कामिनि विमन-भया ।
सर्वांगे कपिय चित्तेँ चमक्किय मूर्छंगता ।।

कियचमर-सुवाएँ सलिल-सहाएँ गुणभरिया ।
उट्ठाविय रमणिहि मुणि-मण-दमणिहि मणहरिया[1] ॥
सा करयल-कमलहिँ सुललिय-सरलहिँ उरु हणइ ।
उव्वा-लउणयणी गग्गिर-वयणी पुणु भणइ ॥
"हा वडरिय वडवस पावमलीमस किं कियउ ।
मइँ आसिव गयउ रमणु परायउ किं हियउ ॥
हा दइव परम्मुह दुण्णय-दुम्मुह तुहुँ हुयउ ।
हा सामि ! स-लक्खण सुट्ठु वियक्खण कहिँ गयउ ।
महो उपरि भडारा णरवर सारा करुण करि ।
दुह-जलहिँ पडती पलयहो जती णाह धरि ॥
हउँ णारि वराइय आवइँ आइय को सरउँ ।
परछडिय तुम्हहिँ जीवमि एवहिँ किं मरउँ" ॥
इय सोय-विमुद्धइँ लवियउ सद्धइँ ज हियइ ।
हउ वोल्लिसु तइयहु । मिलिहइ जइयहु मज्झु पइ ।
वहीं पृ० ६७

(४) पत्नि-विरह

आवसहो आवइ जाव राउ । मयणावलि णउ पेच्छइ 'वि नाउ ॥
जोडयइ चउद्दिसु हिययहीणु । उव्वेविरु हिडइ महिहे दीणु ॥
ता संकिउ णरवइ गलिय-गव्वु । "कहिँ गउ कलत्तु सव्वग-भव्वु ॥
मयणावलि जा आणद-भूअ । सा एवहिँ किं विपरीय हूअ" ॥
ता पेसिय किंकर वग्ग-णिवेण । अवलोयहु सामिणि दिसिवहेण ॥
जोएवि दिसिहिँ आगयवलेवि । पुक्कारहिँ उब्भा-कर करेवि ॥
ता राए देक्खिवि ते सुपत । परिमुक्क अंसु णयणहिँ तुरत ॥
"हे पयवइ तुहुँ सवणाणुबधु । मह अक्खहि सुदर-णेह-बंधु ॥

[1] मण हरिया (=मनहरिया)

कृत-चमर-सुवाते॑ सलिल-सहाये॑ गुण-भरिया ।
उट्ठाइय रमणिहिँ मुनिमन-दमनिहि मणहरिया ॥
सा करतल-कमलहिँ सुललित-सरलहिँ उर हनई ।
उद्-व्याकुल-नयनी गद्गद-वदनी पुनि भनई ॥
"हा वैरी बीबस पाप-मलीमस की कियऊ ।
मम अहे॑उ वराकिउ रमण परायउ की हियऊ ॥
हा दैव ! पराङ्मुख दुर्नय दुर्मुख तुहुँ भयऊ ।
हा स्वामि ! सलक्षण सुष्ट विचक्षण कईँ गयऊ ॥
मम उपर भटारा[1] नरवर सारा करुण करो ।
दुख-जलधि-पडती प्रलयहुँ जाती नाथ धरो ॥
हौ नारि वराकी आपति आये को सुमिरऊँ ।
पर छाडिय तुम्हहिँ जीवौँ एव की मरऊँ ॥"
इमि शोक-विमुग्धइँ लपियउ क्षुब्धहिँ जो हियई॑ ।
हौँ बोलेसु तडयहुँ मिलिहै जइहउँ मोर पती ॥
वहीँ पृ० ६७

(४) पत्नि-विरह

आवासहो॑ आवई जाव राव । मदनावलि ना पेखैउ ताव ॥
जोइयै चतुर्दिश हृदयहीन । उद्वेगिर हिंडै महिहे॑ दीन ॥
तो शके॑उ नरवरे॑ गलित-गर्व । कहँ गउ कलत्र सर्वांग-भव्य ॥
मदनावलि जा आनदभूअ । सा एव की विपरीत हूअ ॥
तब प्रेषेउ किंकर वर-नृपेहिँ । "अवलोकहु स्वामिनि दिशि-पथेहिँ ॥"
जोयउ दिसीहिँ आगत-वलेइ । पुक्कारहिँ ऊँचा कर करेइ ।
तब राय देखियउ ते सो॑वत । परि-मुच अश्रु नयनहिँ तुरत ।
"हे प्रजापति तुहुँ श्रवणानुबध । मोहि आखहु सुदर-नेह-बंधु ।

[1] ——=राजा

हा मुद्धि मुद्धि तुहुँ केण णीय । किं एवहिँ लिहविकवि कहिमि ठीय ॥
हा कुंजर किं तुहुँ जमहो दूउ । किं दोसइँ महो पडिकूलु हूउ ॥
घत्ता । चिरु मोहु वहंतउ कोवि हियइँ, लडह-रुउ अग्गइँ हुयउ ।
विज्जाहरु आयउ सोवि तहिँ, विज्जासायर पारु गउ ॥
—वहीं पृ० ५१

(५) दिग्विजय-वर्णन

ध्रुवकं । करकंडइ साहिवि महि-सयल, परिपुच्छिउ मइवरु विमलमइ ।
भणु सम्मइ मइवर को 'वि णिरु, जो अज्जु'वि दुट्ठउ णवि णवइ ॥
सो मइवरु पभणइ "देव देव । तुह महियलु सयलु'वि करइ सेव ।
परि दिविडं-देसें णिव अत्थि विट्ट । ते णमहि ण कासुवि हियइँ दुट्ठ ।
सिरि चोडि पंडि णामेण चेर । णउ करहिँ तुहारी देवकेर" ॥
आयण्णि'वि तं चंपाहिवेण । सपेसउ दूयउ तहो खणेण ।
"तें जाइवि ते चोडाइ राय । इउ भणिय णवहु करकंड-पाय ।"
[1]णिब्भत्थिउ दूयउ तेहिँ सोवि । "जिणु मेल्लिवि अण्णुण णवहु कोवि ।"
करकंडहो आइवि कहिउ तेण । "णउ करहि सेव तुह किं परेण ।"
त सुणिवि वयणु करकंडु राउ । "जइ देमि ण तहो सिर णियय पाउ ।
तो महियल पुत्त इदिय मुहासु । महो अत्थि णिवित्ति परिग्गहासु ।"
एँह पइज करेवि करकंडएण । लहु दिण्णु पयाणउ कुद्धएण ।
घत्ता । चंपाहिउ चल्लिउ तहो उवरि, गय चडिवि विणिग्गउ पुरवरहो ।
चउरंगइँ सेण्णइँ संजुयउ, सो लीला धरइ सुरेसरहो ॥
तहो जंतहो महि हय-खुरहिँ भिण्ण । गयणंगणि गय-रय-धूम-छण्ण ।
पसरंतहि तेहिँ दिग्गाणणाहँ । ण मुहवडु किउ दिसिवारणाहँ ।
महि हल्लिय चल्लिय गिरिवरिंद । कंपंत पणट्ठा खे मुणिंद ।
दक्खिण-यहे गउ तेरापुरम्मि । तहो दक्खिण-दिसिहि महावणम्मि ।

---

[1] डांटा, फटकारा

हा मुग्धे मुग्धे तुहुँ केहिँ नीउ। की एव लुक्किय कतहुँ ठीय।
हा कुंजर! की तुहुँ यमहँ दूत। की दोषहिँ मोहि प्रतिकूल हूअ।
घत्ता। चिर मोह वहतउ कीउ हियहिँ, सुँदर रूप अग्गे हुयउ।
विद्याधर आयउ सोउ तहिँ, विद्यासागर पार गउ॥

—वहीं पृ० ५१

(५) दिग्विजय-वर्णन

ध्रुवक। करकंडेहिँ साधिउ महि-सकल, परिपूछेँउ मति वर विमलमति।
"भणु सम्यक् मतिवर कोँउ निश्चय, जो आजउ दुष्टउ नहि नवइ।"
सो मतिवर प्र-भणै "देवदेव। तुहँ महियल सकलेहु करै सेव।
पर द्रविड-देशेँ नृप अहै धृष्ट। सो नमै न काहुहिँ हृदय-दुष्ट।
श्री **चोल पांड्य** नामेन **चेर**। ना करै तुहारी देवकेर।"
सुनि केहू सो चपाधिपेहिँ। सप्रेषेँउ दूतहिँ तहँ क्षणेहिँ।
"तैँ जाइबि तेहि **चोलाधिराज**। इमि भनिबि 'नमहु करकंडपाद'।"
निर्भर्त्स्येँउ दूतउ तेहिँ सोउ। "जिन छाडि अन्य ना नमहुँ काहु।"
करकंडहिँ आई कहेँउ तेन। "ना करै सेव तव की परेन।"
सो सुनिय वचन करकंडु राव। "यदि देउँ न तेहि शिर निजहि पाव॥
तो महितल-पुत्र-इन्द्रिय-सुहास। मम अहै निवृत्ति-परिग्रहास।"
ऍहु पइज[1] करेँउ करकंडएहिँ। लघु[2] दीन प्रयाणउ क्रुद्धएहिँ।
घत्ता। चपाधिप चल्लेँउ तेहि उपरि, गज चढिय नीसरेँउ पुरवरहँ।
चतुरंगइँ सैन्यइँ संयुतउ, सो लीला धरै सुरेश्वरहँ॥
तहँ जातेँउ महि हय-खुरेहिँ भिन्न। गगनागनेँ गजरज धूमवर्ण।
पसरंता ते दिश-आननाहँ। जनु मुख-बंधु किउ दिश-वारणाहँ।
महि हल्लिय चल्लिय गिरिवरेंद्र। कंपत प्रनष्ट रवे[3] सुरेंद्र।
दक्षिणपथेँ गउ **तेरापुरेइ**। ताँहु दक्षिण-दिशी महावनेइ।

---

[1] प्रतिज्ञा [2] तुरंत [3] आकाश में

आवासिउ तहिँ वलु चाउरंगु । खणें सीह पुलिंदहँ हुयउ भंगु ।
संताडिय दूसय पंचवण्ण । ण अमरगेह-भूमिहि पवण्ण ।
गय करिवर लेविणु जलहों मेट्ठ । रासहियहिँ धाविय खर पहिट्ठ ।
लोलाविय धय णिव-णरवरेहिँ । महि णच्चइ ण उब्भिय करेहिँ ।
घत्ता । आवासिउ अच्छइ जाव तहिँ, करकंड-णराहिउ पउर-बलु ।
पडिहारु पराइउ तहो पुरउ, दूराउ णमतउ हरियमलु ॥

—वहीं पृ० ३५, ३६

(६) युद्ध-वर्णन

तं सुणिवि वयणु चपाहिराउ । सण्णज्झइ ता किर बद्धराउ ।
तावेत्तहि दंतीपुरि-णिवेण । कंपाविय मेइणि मंदरेण ।
णिण्णासिय अरि-यण-जीवएण । उड्डाविय दहदिसि रय रणेण ।
णहु छायउ [1]खलियउ रविवएण । लहु दिण्णु पयाणउ कुद्धएण ।
गंगापएसु संपत्तएणु । गंगाणइ दिट्ठी जतएण ।
सा सोहइ सिय-जल कुडिलयति । ण सेयभुजगहो महिल जति ।
दूराउ वहंती अइविहाइ । हिमवन्त-गिरिन्दहों किति-णाइँ ।
विहिँ कूलहिँ लोयहिँ ण्हतएहि । आउच्चहों जलु परिदितएहि ।
दब्भकिय उड्ढहि करयलेहिँ । णइ भणइ णाइँ एयहिँ छलेहिँ ।
"हउँ सुद्धिय णिय-मग्गेण जामि । मा रूसहि अम्हहों उवरि सामि" ।
णइ पेक्खिवि णिउ करकंड णामु । गउ जणण-णयरु गुण-गणिय-धामु ।
घत्ता । जे सगरि सुरवर-खेयरहँ, भउ जणियउ मणुहर-सुअम-रहीँ ।
त वेढिउ पट्टणु चउदिसिहिँ, गय-तुरय णरिन्दहिँ दुद्धरहीँ ॥
ता हयइँ तूरइँ, भुवणयल पूराइँ ।
वज्जति वज्जाइँ, आणाण, घडियाइँ, पच्चन्तइँ भिडियाइँ ।

---

[1] स्खलित, खटित

आवासेँउ तहँ वल-चातुरग। क्षणेँ सिंह पुलिंदहँ भयेँउ भग।
संताडिय दुस्सह[1] पंचवर्ण। जनु अमरगेह-भूमिहि प्रपन्न।
गय करिवर लेइय जलहोँ मेँठ[2]। रासभियहिँ धाइय खर प्रहृष्ट।
लोलाइय ध्वज नृपनरवरेहिँ। महि नाचै जनु उत्थित-करेहिँ।
घत्ता। आवासेँउ अच्छइ जव्व तहँ, करकंड-नराधिप पौरबल।
प्रतिहार पर्-आयेँउ तेँहि पुरउ, दूराउ नमंतउ हरियमल॥
—वहीँ पृ० ३५, ३६

(६) युद्ध-वर्णन

सो सुनिय वचन चंपाधिराज। सन्नाहेँ तो फुरि वद्ध-राग।
तब्बै तहँ दंतीपुर-नृपेहिँ। कंपाइय मेदिनि मंदरेहिँ।
निर्-नाशिय अरिजन-जीवितेहिँ। उद्धाविय दश-दिशि रज रणेहिँ।
नभ छायउ खलियउ रविपदेहिँ। लघु दीन प्रयाणउ क्रुद्धएहिँ।
गंगा-प्रदेश संप्राप्तएहिँ। गंगानदी देखेँउ जातएहिँ।
सो सोहै सित-जल-कुटिल-पंक्ति। जनु श्वेतभुजंगह महिला जंति।
दूराउ वहंती अति-विभाइ। हिमवन्त-गिरीन्द्रह कीर्त्ति-न्याइँ।
दोँउ कूलहँ लोगहि न्हातएहिँ। आदित्यहँ जल परि-देंतएहिँ।
दर्भांकित उट्ठा-करतलेहिँ। नदि भनै न्याइँ एतहिँ छलेहिँ।
"हउँ केवल निजमार्गेहिँ जाउँ। ना रूसहु हम्महँ उपर स्वामि"।
नदि पेखिय नृप करकंड-नाम। गउ जनन-नगर गुण-गणिय धाम।
घत्ता। जो सगर सुरवर-खेचरहँ, भय जनियउ धनुधर-मुच-शरहीँ।
सो वेठेँउ पाटन चउदिशिहिँ, गज-तुरग नरिंद्रेहिँ दुर्धरहीँ॥
तब हयइँ तूराइँ, भुवन-तल-पूराइँ।
वाजंति वाजाइँ, आनाद-घटिताइँ। पर-वलहिँ भिडियाइँ।

---

[1] दुशाले　[2] महावत

कुंताइँ भज्जंति, कुंजरइ गज्जंति । रहसेण वग्गति, करि-दसेण लग्गंति ।
गत्ताइँ तुट्टंति, मुंडाइँ फुट्टति । सुंडाइँ धावंति, अरिथाणु पावंति ।
अंताइँ गुप्पंति, रुहिरेण थिप्पंति । हड्डाइँ मोडंति, गीवाइँ तोडंति ।
घत्ता । केवि भग्गा कायर जेवि णर, केवि भिडिय केवि पुणु ।
खग्गुग्गामिय केवि भड, मंडेविणु थक्का केवि रणु ॥
—वहीं पृ० २८-३१

३—कविका संदेश

(१) मुनिका दर्शन

घत्ता । करकड मुणेविणु तं वयणु, अत्थाणहों उट्ठिउ तक्खणिण ।
[1]गउ सत्तपयइँ मउलेवि कर, सुमरंतउ मुणिवरपय मणिण ॥
ता आणंदभेरि तुरंतएण । देवाविय तुट्ठइँ राणएण ।
तहें णट्टु सुणेविणु लद्धभोय । परिमिलिय खणद्धें भविय लोय ।
कवि माणिणि चल्लिय ललिय देह । मुणि-चरण-सरोयहँ बद्धणेह ।
कवि णेउर सद्दें रणझणति । सचल्लिय मुणि-गुण ण थुणंति ।
कवि रमणु णं जतउ परिगणेइ । मुणि-दंसणु हियवएँ सइँ मुणइ ।
कवि अक्खयधूव भरेवि थालु । अइरहसइँ चल्लिय लेवि बालु ।
कवि परिमलु बहलु वहंति जाइ । विज्जाहरि ण महियलि विहाइ ।
घत्ता । काइवि छण ससहर-आणणिया, करें कमलकरंती संचलिया ।
आणंदिय भेरिहें सुणिवि मुरु, लहु भवियण सयलवि तहिँ मिलिया ।
जिणिंद-धम्म-रत्तओ, मुणिंद - पाय - भत्तओ ।
सुवण्णकंति - दित्तओ, सरोय - पत्त - णेत्तओ ।
पलंब - पीण - हत्थओ, विबुद्ध - सव्व - सत्थओ ।
विसुद्ध-सन्धि-गत्तओ, खणेण जाव पत्तओ ।

---

[1] गयेउ

कुताइँ भज्जति । कुजरइ गर्जन्ति । रथसेन वल्गति । करि-दशन लग्गंति ।
गात्राइँ टूटंति । मुडाइँ फूटंति । रुडाइँ धावति । अरि-थान पावंति ।
अंत्राइँ गोपंति । रुधिरेहिँ थप्पंति । हड्डाइँ मोडंति । ग्रीवाइँ तोडंति ।
घत्ता । केँऊ भग्ग कायर जेउ नर, केँउ भिड़िया केउ पुनि ।
खड्ग उट्ठाइय कोउ भट, मँडियउ थाकेँउ केउ रणेँ ॥
—वहीँ पृ० २८-३१

३—कविका संदेश

(१) मुनिका दर्शन

घत्ता । करकडू सुनीया सो वचन । आस्था[1]नहँ उट्ठेँउ तत्-क्षणहीँ ।
गउ सप्तपदे मुकुलित-कर, सुमिरंतउ मुनिवर-पद मनहीँ ॥
तव आनँदभेरि तुरतएहिँ । देवायउ तुष्टहिँ राणएहिँ ।
तहँ नष्ट सुनीया लब्ध-भोग । परिमिलेउ क्षणार्धे भाँवुक लोग[2] ।
कोँइ माननि चल्लिय ललित-देह । मुनि-चरण-सरोजहँ बद्ध-नेह ।
कोँइ नुपुर-शव्देँ रुनझुनति । सं-चल्लिय मुनि-गुण जनु स्तुवंति ।
कोँइ रमण न जातउ परि-गनेइ । मुनि-दर्शन-हिय पद स्वयँ जनेइ ।
कोँइ अक्षय-धूप भरीय थाल । अति रभसैँ चल्लिय लेइ वाल ।
कोँइ परिमल-बहुल वहति जाइ । विद्याधरि जनु महितलेँ विहारि ।
घत्ता । काहुउ क्षण शशधर-आननिया, करेँ कमल करती सचलिया ।
आनंदिय भेरिहि सुनिय स्वर, लघु भविजन[3]सकलउ तहँ मिलिया ॥
जिनेंद्र-धर्म-रक्तओ । मुनीद्रपाद-भक्तओ ।
सुवर्ण-कांति-दीप्तओ । सरोजपत्र-नेत्रओ ।
प्रलंव-पीन-हस्तओ । विवुद्ध-सर्व-शास्त्रओ ।
विशुद्धि-सधि-गात्रओ । क्षणेहिँ जाव प्राप्तओ ।

---

[1] दर्वार   [2] जैन भक्त   [3] भक्त

तहिं पि ताव दिट्ठिया, भणंति हा पमूठिया।
पुरंधि[1] कावि दुक्खिया, हणंति दोवि कुक्खिया।
रुवंति अंसु वाहुलं, जणाण दुक्ख-संकुलं।
कुणंति चित्तु आउलं, धरंति वेसु वाउलं।
घुलंति जावि मुच्छए, पडंति भू-पएसए।
सुणेवि तं णरेसरो, सुवारणि-द्धणीसरो।

घत्ता। करकंडइ पुच्छिउ कोवि णरु, एँह णारि वराई किं रुवइ।
विलवंती हियवडँ मुट्ठ करइ, अप्पाणउ विहलंघल मुअइ॥

—वहीं पृ० ८१-८२

(२) संसार तुच्छ

तं सुणिवि वयणु रायाहिराउ। संसारहो उवरि विरत्त-भाउ।
धी धी असुहावउ मच्च-लोउ। दुह कारणु मणुरहँ अंग-भोउ।
रयणायर-तुल्लउ जेत्थु दुक्खु। महुविंदु-समाणउ भोय-सुक्खु।

घत्ता। हा माणउ दुक्खइं तड्ढ-त्तणु, विरसु रसंतउ जहिं मरइ।
भणु णिग्घिणु विसयासत्त-मणु, सो छँडिवि को तहिँ रइ करइ॥

कम्मेण परिट्ठिउ जो उवरे। जम-रायए सोणिउ णिययपुरे।
जो वालउ वालहि लावियउ। सो विहिणा णियपुरि चालियउ।
णव-जोव्वणि चडियउ जो पवरु। जमु जाइ लएविणु सोजि णरु।
जो वूढउ वाहि-सएहि कलिउ। जमदूयहिँ सो पुणु परिमलिउ।
वहलइएं सहु हरि अतुलवलु। सो विहिणा णीयउ करिवि छलु।
छक्खंड वसुन्धर जेहि जिया। चक्केसर[2] ते कालेण णिया।
विज्जाहर किंणर जे खयरा। वलवंता जम-मुहे पडिय सुरा।
फणिणाहह सरिसउ अमर-वइ। जमु लितउ कवणु'वि णउ मुअइ।

---

[1] स्त्री [2] चक्रवर्ती

तहाँउ तब्ब दिट्ठिया। भनति "हा" प्रमुड्ढिया।
पुरंध्रि काउ दु खिया। हनंति दोउ कुक्षिया।
रोंवंति अश्रु-वाहुलं। जनाइ दु ख सकुल।
करेइँ चित्त आकुल। धरंति वेष बाउरं।
घुरंति जा विमूढिया। पडति भू-प्रदेशए।
सुनीय सो नरेश्वरो। सुवारुणी धनीश्वरो।

घत्ता। करकंडइ पूछेंउ कोइ नर, एहु नारी वराकी का रोवैं।
विलपंती हियइँ दुहू करहिँ, अप्पानउ विह्वलता मुचैं॥

—वहीं पृ० ८१-८२

(२) संसार तुच्छ

सो सुनिय वचन राजाधिराव। ससारहँ उपर विरक्त-भाव।
'धिक धिक [1]असोंहावउ मर्त्यलोक। दुख-कारण मनोंरथ-अग-भोग।
रतनाकर-तुल्यउ यत्र दु ख। मधुविंदु-समानो भोग-सुक्ख।

घत्ता। हा मानव दु खडँ स्तब्ध-तन, विरस हँसतउ जहँ मरै।
भन निर्घृण विषयासक्त मन, सो छाडिय को तहँ रति करै॥

कर्मेहिँ परिट्-ठिउ जो उबरे। यमराजेहिँ सो लेउ निजय-पुरे।
जो बाल्येहिँ बालउ लालियऊ। सो विधिना निजपुरें चालियऊ।
नवयौवन चढियउ जो प्रवरू। यम जाइ लिवावन सोउ नरू।
जो बूढउ व्याधिशतेंहिँ कलिऊ। यमदूतहिँ सो पुनि परिमर्दिऊ।
वलभद्रहु सम हरि अतुल-बलू। सो विधिना लीयउ करिय छलू।
छै-खड वसुन्धर जेउ जिया। चक्रेश्वर ते कालेहिँ लिया।
विद्याधर किन्नर जे खचरा। बलवता यम-मुखें पडेंउ सुरा।
फणिनाथैं सरिसउ अमर-पती। यम लेतउ कवन न ना मुवई।

---

[1] अशुभावह या अस्वभाव

घत्ता। णउ सोनिउ बभणु परिहरइ, णउ छंडइ तवसिउ ताव-ठियउ।
धणवंतु ण छुट्टइ णवि णिहणु, जह काणणे जलणु समुट्ठियउ।
दइवेण विणिम्मिउ देहु जंपि। लायण्णउ मणुवहँ थिरु ण तंपि।
णव-जोव्वणु मणहरु ज चडेइ। देवहि वि ण जाणिउ कहिँ पडेइ।
जे अवर सरीरहिँ गुण वसंति। णवि जाणहुँ केण पहेण जंति।
ते कायहों जइगुण अचल होंति। संसारहँ विरइँ ण मुणि करंति।
करि-कण्ण जेम थिर कहिँ ण थाइ। पेक्खंतहँ सिरि णिण्णासु जाइ।
जह सूयउ करयलि थिउ गलेइ। तह णारि विरत्ती खणि चलेइ।
भू-णयण-वयण-गइ कुडिल जाहँ। को सरल करेवइँ सक्कु ताहँ।
मेल्लती ण गणइ सयण इट्ठु। सा दुज्जण-मेत्ति'व चल णिकिट्ठु।

घत्ता। णिज्झायइ जो अणुवेक्ख चल, वइरायभाव सपत्तउ।
सो सुरहरमडणु होइ णरु, सुललिय-मणहर-गत्तउ॥

संसार भमंतहँ कवणु सोक्खु। अमुहावउ पावइ विविह दुक्ख।
णरयालइँ णाणा णारएहिँ। चिरकियहिँ णिहम्मइ वइरएहिँ।
हियएण'वि चिंतहुँ सक्कियाइँ। तहिँ भुत्तइँ पवरइँ दुक्कियाइँ।
अवरुप्परु जाइ विरुद्धएहि। तिरियाण मज्झे उप्पण्णएहि।
मुहबंधण-छेयण-ताडणाइँ। पावीयहिँ तेहिँ तणु-फाडणाइँ।
मणुयत्तणे माणउ परिमलंतु। परिझिज्जइ णियमणे सलवलंतु[1]।
सुरलोएँ पवण्णउ णट्ठवुद्धि। मणि झिज्जइ देक्खिवि परहों रिद्धि।
णउणारि जेम रूवइँ करेइ। तिम जीउ-कलेवर सइँ धरेइ।

घत्ता। संसारहँ उवरि णिहालणउ, किउ जेण णरेण कयायरेण।
भणु काइँ ण लद्धउ तेण जइ, पवर रयण रयणायरेण॥

जीवहों सुसहाउ ण अत्थि कोवि। णरयम्मि पडंतउ धरइ जोवि।
सुहि सज्जण-णंदण इट्ट-भाव। णवि जीवहों जंतहों ए सहाय।

---

[1] हड़बड़ाता

घत्ता। ना श्रोत्रिय ब्राह्मण परिहरई। ना छाडै तपसिउ तपें थितऊ।
धनवंत न छुट्टइ ना. निधनू, जिमि कानने ज्वलन समुत्थितऊ ॥
दैवेन विनिर्मेउ देह जोँउ। लावण्यउ मनुजहँ थिर न सोँउ।
नवयौवन मनहर जो चढेइ। देवहुँउ न जानेँउ कहँ पडेइ।
जो अवर शरीरहिँ गुण वसति। ना जानहु केन पथेन जति।
सो कायह यदि गुण अचल होति। ससारह विरति न मुनि करति।
करि-कर्ण जेम थिर कहुँ न थाइ[1]। पेखंतहँ श्री निर्-नाश जाइ।
जिमि सूतउ[2] करतलें ठिउ गलेइ। तिमि नारि-विरक्ती क्षणें चलेइ।
भ्रू-नयन-वदन-गति-कुटिल जाह। को सरल करावन सक्क ताह।
छोडती न गनै स्वजन-इष्ट। सा दुर्जन मैत्रि'व, चल निकृष्ट।
घत्ता। निज्-झखै जो अनुपेख चल, वैराग्य-भाव-सप्राप्तऊ।
सो सुरघर-मडन होइ नर, सुललिय-मनहर-गात्रऊ।
ससार भ्रमतहँ कवन सुक्ख। असुहावउ पावै विविध-दु.ख।
नरकालय नाना नारकेहिँ। चिरकृतहिँ निहन्यै वैरएहिँ।
हृदयेउ न चितन सक्कियाइँ। तहँ भोगैं प्रवरइँ दु खियाइँ।
अपरापर जाति विरुद्धएहि। तिर्यञ्च - माँझ उत्पन्नएहि।
मुख-बधन-छेदन-ताडनाइँ। पावीयहिँ तहँ तन-फाडनाइँ।
मनुजत्तने मानव परि-मलत। परि-झखै निजमनें खलबलत।
सुरलोकें प्रवर्णउँ नष्ट-बुद्धि। मनें खीझै देखि पराइ ऋद्धि।
नवनारि जेम रूपइँ करेइ। तिमि जीव कलेवर-शत धरेइ।
घत्ता। ससारह उपर निहारनउ, किउ जोँउ नरेउ कृतादरहीँ।
भन काइँ न लब्धउ सोइ यदी, प्रवर-रतन रतनाकरहीँ।
जीवह सुस्वभाव न अहै कोँउ। नरक काहँ पडत धरै जोउ।
सुखि सज्जन नदन इष्ट भाय। ना जीवहँ जाते होँइ सहाय।

---

[1] रहै [2] पारा

णिय जणणि जणगु रोवंतयाइँ। जीवें महुँ ताइँ ण पउ-गयाइँ।
घणु ण चलइ गेहहों एक्कु पाउ। एक्कल्लउ भुजइ धम्मु पाउ।
तणु जलणि जलतइ परिवडेइ। एक्कल्लउ वइवस घरि चडेइ।
जहिँ णयण-णिमेसु ण सुहु हवेइ। एक्कल्लउ तहिँ दुहुँ अणुहवेइ।
अहि-णउल-सीह-वणयरहँ मज्झे। उप्पज्जइ एक्कुवि जिउ असज्झे।
सुर-खेयर-किणर-मुहयगाम। तहिँ भुजइ एक्कुवि जियइ जाम।
—वहीं पृ० ८२-८५

§ २६. जिनदत्त सूरि

काल—११००(१०७५–११५४)ई०। देश—धवलक(धोलका) गुजरात। कुल—

१–जिन-वंदना

पणमह पास-वीर-जिण भाविण। तुम्हि सव्वि जिव मुच्चह पाविण।
घर-ववहारि म लग्गा अच्छह। खणि-खणि आउ गलंतउ पिच्छह॥[1]
—उवएस-रसायण[1]

२–गुरु (जिन-वल्लभ)-महिमा

नमिवि जिणेसर-धम्मह, तिहुयण-सामियह।
पायकमलु ससिनिम्मलु, सिवगयगामियह॥
करिमि जइट्ठिय गुणथुइ, सिरि जिणवल्लहह।
जुग-पवरागम-सूरिहि, गुणगण-दुल्लहह॥१॥

(१) दर्शन-व्याकरण आदि विद्याके निधान

जो अपमाणु पमाणइ, छद्दरिसण-तणइ।
जाणइ जिव नियनामु, न तिण जिव कुवि घणइ॥

---

[1] वहीं

निज जननि-जनक रोवतयाइँ। जीवें सँग ताहु न पद-गयाइँ।
धन न चलै गेहहुँ एक पाव। एकल्लै भोगै धर्म्म-पाप।
तनु ज्वलनें ज्वलतइ परि-पडेइ। एकल्लै बरबस धरि चढेइ।
जहँ नयन-निमेष न सुख हवेइ। एकल्लै तहँ दुख अनुभवेइ।
अहि-नकुल-सिंह-वनचरहँ माँझ। उप्पज्जै एकइ जिव अ-साझ।
सुर-खेचर-किन्नर सुखद-ग्राम। तहँ भोगै एकै जियै जाम[1]।
—वहीं पृ० ८२-८५

§ २६. जिनदत्त सूरि

हुंडव-वणिक्, जैन साधु। कृतियाँ—चाचरि[२], उवएसरसायण[२], कालस्वरूप-कुलक[२]।

१—जिन-वंदना

प्रणमहु पार्श्व-वीर-जिन भावें हिं। तुम्म सर्वजिव मोचहु पापें हिं।
घर-व्यवहार न लागे रहा। क्षण क्षण आयु गलतउ पेखा। ।१।।
—उपदेश-रसायन

२—गुरु (जिन-वल्लभ)-महिमा

नमवि जिनेश्वर - धर्महँ, त्रिभुवन - स्वामियहा।
पाद-कमल शशि-निर्मल, शिवगति-गामियहा ।।
करउँ यथा स्थिति गुण-'थुति, श्री जिनवल्लभहा।
युग-प्रवर-गम-सूरिह, गुण-गण दुर्लभहा ।।१।।

(१) दर्शन-व्याकरण आदि विद्याके निधान

जो अप्रमाण प्रमाणै, छै दर्शन-तनई।[३]
जानै जिव निज नाम, न तेंन जिव कोंइ हनई ।।

---

[1] जब लों [२] Gaikwad's Oriental Series 1927, Vol XXXVII "प्राचीन-गुर्जर-काव्य-संग्रह" [३] तन=केर, का

परु-¹परिवाइ-गइंद-वियारण-पचमुहु ।
तसु गुणवन्नणु करण, कु सक्कइ इक्कमुहु ॥२॥
जो वायरणु वियाणइ, सुहलक्खण-निलउ ।
सद्दु असद्दु वियारइ, सुवियक्खण-तिलउ ॥
सुच्छंदिण वक्खाणइ, छंदु जु सुजइमउ ।
गुरु लहु लहि पइठावइ, नरहिउ विजयमउ ॥३॥
कव्वु अउव्वु जु विरयइ, नव-रस-भर-सहिउ ।
लद्धपसिद्धिहिँ सुकइहिँ, सायरु जो महिउ ॥
सुकइ माहु'ति पससहिँ, जे तसु सुहगुरुहु ।
साहु न मणहि अयाणुय, मइ जियसुरगुरुहु ॥४॥
कालियासु कइ आसि, जु लोइहिँ वन्नियइ ।
ताव जाव जिणवल्लह, कइ ना अन्नियइ ॥
अप्पु चित्तु परियाणहि, तपि विसुद्धनय ।
तेवि चित्तकइराय, भणिज्जहि मुद्धनय ॥५॥
सुकइ विसेसिय वयणु, जु ¹वप्पइराउकइ ।
सुवि जिणवल्लह पुरउ, न पावइ कित्ति कइ ॥
अवरि अणेय विणेयहि, सुकइ-पसंसियहिँ ।
तक्कव्वामयलुद्धिहिँ, निच्चु नमसियहिँ ॥६॥

(२) गुरु-दर्शनका महाफल

जिण कय नाणा चित्तइँ, चित्त हरति लहु ।
तसु दसणु विणु पुन्निहिँ, कउ लब्भइ दुलहु ॥
सारइँ बहु थुइ-थुत्तइ, चित्तइँ जेण कय ।
तसु पयकमलु जि पणमहि, ते जण कय-सुकय ॥७॥

---

¹ "गउडवहो" (प्राकृत महाकाव्य) के रचयिता

पर - परिवाद - गयद - विदारण पच - मुखू ।
तासु गुण 'वर्णन करण, कों सक्कै एक-मुखू ॥२॥
जो व्याकरण वि-जानै, शुभलक्षण-निलयू ।
शब्द-अशब्द विचारै सु-विचक्षण-तिलकू ॥
'सुच्छदेन बखानै, छद जों सुयति-मयू ।
गुरु लघु लें‌इ पइठावै, नर-हिय विजय-मयू ॥३॥
काव्य अपूर्व जों विरचै, नव-रस-भर-सहितो ।
लब्ध-प्रसिद्धिहिँ सुकविहँ, सागर जो मथितो ।।
सुकवि **माघ**'ति प्रशसैं, जे तासु शुभ-गुरुहो ।
साधु न मनहि अजानय, मैं जित-सुरगुर-हो ॥४॥
कालिदास कवि अहेंउ, जों लोकेहि वर्णियऊ ।
सो जितनो **जिनवल्लभ**-,कवि ना अन्ययऊ ॥
आपु चित्त परि-जानै, सोउ विशुद्ध-नय ।
तोउ चित्र कविराय भनिज्जै मूर्धनय ॥५॥
सुकवि-विशेषित-वचन, जों **वाक्पतिराज** कवी ।
सोंउ जिनवल्लभ समुँह, न पावै कीर्त्ति कवी ॥
अवर अनेकानेक. . हि. सुकवि प्रशसियही ।
तत्काव्यामृतलुब्धेंहिँ, नित्य नमसियही ॥६॥

(२) गुरु-दर्शनका महाफल

जो कृत-नाना - चित्रइँ, चित्त-हरति लघू[1] ।
तासु दर्शन विनु पुण्यहिँ, को लब्भै दुलभू ॥
सारइँ वहु-'थुति-'थुत्तै, चित्तैं जेहिँ कृत ॥
तासु पदकमल जें प्रणमै, ते जन कृत-सुकृता ॥७॥

---

[1] तुरंत

(३) गुरुकी शिक्षाका फल

जहि सावय त बोल न भक्खहि, लिंति नय ।
जहि पाण-हिय धरंति, न सावय-सुद्धनय ॥
जहि भोयणु न सयणु, न अणुचिउ वइसणउ ।
सह पहरणि न पवेसु न दुट्ठउ बुल्लणउ ॥२१॥
जहि न हासु नवि हुड्डु, न खिड्डु न रूसणउ ।
कित्ति निमित्तु न दिज्जइ, जहिँ धण अप्पणउ ॥
करहि जि बहु आसायण, जहिँ तिन मेलियहि ।
मिलिय ति-केलि करंति, समाणु महेलियहिँ[1] ॥२२॥
जहिँ सकति न गहणु, न माहि न मडलउ ।
जहँ सावयसिरि दीसइ, कियउ न विंटलउ ॥
ण्हवणयार जण मिल्लिवि, जहि न विभूसणउ ।
सावयजणिहि न कीरइ, जहि गिह-चित्तणउ ॥२३॥
जहिँ न अप्पु वन्निज्जइ, परु वि न दूसियइ ।
जहि सग्गुणु वन्निज्जइ, विगुणु उवेहियइ ॥
जहि किर वत्थु-वियारणि, कसु वि न बीहियइ ।
जहि जिणवयणुत्तिन्नु, न कहवि पयंपियइ ॥२७॥ . . . .
इह अणुसोय पयट्टह, मग्ग न कुवि करइ ।
भवसायरिति पडंति, न इक्कु'वि उत्तरइ ॥
जं पडिसोय पयट्टहि, अप्पवि जिय धरइ ।
अवसय गामिय हुंति ति, निव्वुइ पुरवरइ ॥३१॥
तसु पयपकउ पुन्निहि, पाविउ जण-भमरु ।
सुद्ध नाण-महुपाणु, करतउ हुइ अमरु ॥

---

[1] मेहरी, महिला

(३) गुरुकी शिक्षाका फल

जाँसु श्रावक[1] सो वोल न भाखैं, लिप्तन या ।
जाँसु प्राण हित धरति, न श्रावक शुद्ध-नय। ॥
जाँसु भोजन न शयन, न अनुचित वइसनऊ ।
सँग प्रहरणें न प्रवेश, न दुष्टउ वोलनऊ ॥२१॥
जहँ न हास ना हुड्डु, न खेल न रूसनऊ ।
कीर्त्ति-निमित्त न दीजै, जहँ धन आपनऊ ॥
करैं भि वहु-आस्वादन,.जहँ तृण मेलियई[2] ।
मिलिया केलि करति, सहित्त महेलियही[3] ॥२२॥
जहिँ सक्रान्ति न ग्रहण, न मास न मडलऊ ।
जहँ श्रावक-श्री दीसै, कियउ न विट्टलऊ[4] ॥
स्नानचार जन मेलविं[5], जहँ न विभूषणऊ ।
श्रावकजनेंहिँ न करियै, जहँ गृह-चिन्तनऊ ॥२३॥ . . .
जहँ न आपु वर्णिज्जै, परउ न दूषियई ॥
जहँ सद्गुण वर्णिज्जै, वि-गुण उपेक्षियई ॥
जहँ पुनि वस्तु-विचारणें, काँसुउ न वीँधियई ।
जहँ जिन-वचन-उत्तीर्ण, न कथा प्रजल्पियई ॥२७॥
ऐंहि अनुशोच प्रवृत्तह, शकों न कोंउ करई ।
भवसागरेंति पडत, न एकउ ऊतरई ॥
जे प्रतिशोच प्रवृत्तहिँ, आपुउ जिय धरई ।
अवशिय स्वामी होति तें, निर्वृतिपुर-वर[6]ई ॥३१॥.
ताँसु पदपकज पुण्यहि, पायेंउ जनभ्रमरू ।
शुद्ध-ज्ञान-मधुपान, करतउ होंइ अमरू ॥

---

[1] शिष्य   [2] छोड़ कर   [3] महिला, मेहरी
[4] विटलाहा (मल्लिका)=गदा, पतित   [5] छोडें   [6] निर्वाण-पुर०

सत्थु हतु सो जाणइ, सत्यपसत्थ सहि ।
कहि अणुवमु उवमिज्जइ, केण समाण सहि ॥४३॥
इय जुग-पवरेह सूरिहि, सिरि जिणवल्लहह ।
नाय समय परमत्थह, वहुजण-दुल्लहह ॥
तसु गुण थुइ वहुमाणिण, सिरि जिणदत्त-गुरु ।
करइ सु निरुवम, पावइ, पइ जिणदत्तगुरु ॥४७॥
—नाचरि[1]

३—वेश्या-निंदा

जोव्वणत्थ जा नच्चइ दारी । सा लग्गइ सावयह वियारी ।
तिहि निमित्तु सावयसुय-फट्टहिँ । जतिहिँ दिवसिहिँ धम्महु फिट्टहिँ ॥३॥
वहुय लोय रायंध सपिच्छहि । जिण-गुह-पकड विरला वच्छहि ।
जणु जिणभवणि सुहत्थ जु आयउ । मरइ सु तिक्ख-कडक्खिहिँ घायउ ॥३८॥

४—कविका संदेश

(१) जात-पाँत मजबूत करो

वेट्टा-वेट्टी परिणाविज्जहिँ । तेवि समाण धम्म-घरि दिज्जहिँ ।
विसमधम्म-घरि जइ वीवाहइ । तो सम्मत्तु सु निच्छइ वाहइ ॥६३॥
इय जिणदत्तुवएस-रसायणु । इह-परलोयह सुक्खह भायणु ।
कण्णजलिहिँ पियति जि भव्वइँ । ते हवंति अजरामर सव्वइँ ॥८०॥
—उवएसरसायणु

(२) धर्मोपदेश

विक्कम संवच्छरि सय-वारह । हुयइ पणट्ठउ सुह घरयारह ।
इय संसारि महाविण मग्गिहि । वत्तहि गुम्मइ सुगग वनतिहि ॥३॥

---

[1] विरहा गीत

शास्त्रहूँतें सो जानै, शास्त्र प्रशस्त सही ।
किमि अनुपम उपमिज्जै, केन समान सही ॥४३॥
इति युग-प्रवरह सूरिहिं, सिरि जिनवल्लभहा ।
न्याय[1]-समय-परमार्थह, वहुजन-दुर्लभहा ॥
ताँसु गुण-थुति वहुमानें, सिरि जिणदत्तगुरु ।
करै सों निरुपम पावै, पद जिन-दत्त-गुरू ॥४७॥
—चाचरि

३—वेश्या-निंदा

यौवनार्थ जो नाचै दारी[2]। सा लागै श्रावकहँ पियारी ।
तेंहि निमित्त श्रावक श्रुत-फाडैं । जाते दिवसें धर्महिँ फोडैं ॥३३॥
वहुत लोग रागाध सों पेखहिँ । जिन-मुख-पकज विरला वाछहिँ ।
जन जिनभवनें शुभार्थ जों आयउ । मरै सों तीक्ष्ण-कटाक्षें घायलु ॥३४॥

४—कविका संदेश

(१) जात-पाँत मजबूत करो

वेटा-बेटी परनावीजै[3]। सोउ समानधर्म[4]-घरें दीजै ।
विषम-धर्म-घरें यदि वीवाहै । तो सम्यक्त्व[5] सों निश्चय वाहै[6] ॥६३॥
इति जिनदत्तु-'पदेश-रसायन । इह-परलोकह सुक्खह-भाजन ।
कर्णांजलिहिँ पियति जे भव्यहँ । ते भवति अजरामर सवैं ॥८०॥
—उवएसरसायण

(२) धर्मोपदेश

विक्रम-सवत्सर शत-वारह । होई प्रनष्टउ सुख-घरवारह ।
इति ससारें स्वभावें शातेंहि । वर्त्तै सुम्मति सुक्खु वसतेंहि ॥३॥

---

[1] नात=ज्ञातृ(-पुत्र) महावीर [2] गणिका, दारिका [3] विवाहिज्जै
[4] एकधर्मी [5] जैनीपन [6] बहाना, फेंकना

तह वि वत्त नवि पुच्छहि धम्मह । जिण गुरु मिल्लहि कज्जिण दम्मह ।

फलु नवि पावहि माणुस-जम्मह । दूरे होंति तिज्जि सिव-सम्मह ॥४॥

मोह-निद्द जणु सुत्तु न जग्गइ । तिण उट्ठिवि सिव-मग्गि न लग्गइ ।

जइ सुहत्थु कुवि गुरु जग्गावइ । तुवि तव्वयणु तासु नवि भावइ ॥५॥

परमत्थिण ते सुत्तवि जग्गहिं । सुगुरु-वयणि जे उट्ठें वि लग्गहिं ।

राग-द्दोस-मोंह 'वि जे गजहि । सिद्धि-पुरधि ति निच्छइ भुजहि ॥६॥

वहुय लोय लुचियसिर दीसहिं । पर रागद्दोसिहिं सहुँ विलसहिं ।

पढहिं गुणहिं सत्थइ वक्खाणहि । परि परमत्थु तित्थु सु न जाणहि ॥७॥

दुद्धु होइ गो-थक्किहि धवलउ । पर पेज्जतइ अतरु वहलउ ।

एक्कु सरीरि सुक्खु संपाडइ । अवरु पियउ पुणु मसु 'वि साडइ ॥१०॥

ईसर धम्म-पमत्त जि अच्छिहि । पाउ करेवि ति कुगइहिं गच्छहिं ।

धम्मिय धम्मु करंति जि मरिसहि । ते सुहु सयलु मणिच्छिउ लहिसहि ॥२३॥

कज्जउ करइ बुहारी बुद्धी । सोहइ गेहु करेइ समिद्धी ।

जइ पुण सावि जुयजुय किज्जइ । ता कि कज्जा तीएँ सहिज्जइ ॥२७॥

इय जिणदत्तुवएसु जि निमुणहि । पढहि गुणहि परियाणवि जि कुणहि ।

ते निव्वाण-रमणि सहुँ विलसहि । वलिउ न ससारिण सहुँ मिलिसहि ॥३२॥

काव्यरत्नरूपकल्पक[1]

(३) दुर्लभ मानुष-जन्म

लद्धउ माणुस-जम्मु महारहु । अप्पा भवसमुद्दि गउ तारहु ।

अप्पु म अप्पहु रायह रोसह । करहु निहाणु म गच्छह दोसह ॥२॥

(४) गुरु सब कुछ

दुलहउ मणुय-जम्मु जो पत्तउ । सह लहु करहु तुम्हि सुनिरुत्तउ ।

सुह-गुरु-दंसण विणु सो महलउ । होइ न कीरइ बहुगउ सबलउ ॥३॥

---

[1] अपभ्रंश-काव्य-त्रय, Gaikwad's Oriental Series. Vol. XXXVII, 1927

तँहाँ वात ना पूछैँ धर्महँ । जिन-गुरु मीलहिँ कार्ये दामहँ ।
फल ना पावैँ मानुष-जन्मह् । दूरे होति त्याग शिव-शर्महँ ।।४।।
मोह-निद्र जनु सुत्तु न जागै । सो उट्ठिउ शिव-मार्ग न लागै ।
यदि शुभार्थ कोँइ गुरु जग्गावै । तोँउ तद्वचन तासु ना भावै ।।५।।
परमार्थे ते सूतउ जागैँ । सुगुरु-वचनेँ जे उठिया लागै ।
राग-द्वेष-मोँहउ जे गजैँ । सिद्धि-पुरंध्रि तेँ निश्चय भुजैँ ।।६।।
वहुत लोग लुंचित-शिर दीसैँ । पर राग-द्वेषहिँ सँग विलसैँ ।
पढैँ गुनैँ शास्त्रहिँ वक्खानैँ । पर परमार्थ-तीर्थ सोँ न जानै ।।७।। ....
दुग्ध होइ गो-यक्कतउ धवलउ । पर पीवतै अतर वहलउ ।
एक शरीर सुक्खु स-पातै । अवर प्रियउ पुनि मासउ स्वादै ।।१०।।
ईश्वर-धर्म प्रमत्त जे आछहिँ[१] । पाप करिय ते कुगतिहिँ गच्छहिँ[२] ।
धार्म्मिक धर्म करत जेँ मर्षहिँ । ते सुख सकल मनीच्छित लभिहैँ ।।२३।।
कार्य करै (जोँ) बुहारी[३] बुद्धी । सोहै गेह करेइ समृद्धी ।
यदि पुनि सोउं युगयुग कीजै । ता का कार्य तीय साधीजै ।।२७।।
इति जिनदत्त-उपदेश जे सुनहीँ । पढैँ गुनैँ परि-ज्ञान जेँ करहीँ ।
ते निर्वाण-रमणि-सँग विलसहिँ । बलेँउ न ससारे सँग मिलिसहिँ[४] ।।३२।।
—काव्यस्वरूपकुलक

(३) दुर्लभ मानुष-जन्म

लाभेँउ मानुष-जन्म महारघु । आपेँ भव-समुद्रतेँ तारहु ।
आपु न अर्पहु रागहँ रोषहँ । करहु निधान न सर्वहँ दोषहँ ।।२।।

(४) गुरु सब कुछ

दुर्लभ मानुष-जन्म जोँ पायउ । सह लघु करहु तुम्म सु-निरुक्तउ ।
शुभ-गुरु-दर्शन विनु सो सहलउ । होइ न करतेँ वहलउ[५] बहलउ ।।३।।

---

[१] है [२] जावेंगे [३] बधू (गढवाली) [४] मिलिहै [५] बहुत

सुगुरु सु वुच्चइ सच्चउ भासइ । पर-परिवायि-नियरु जसु नासइ ।
सव्वि जीव जिव अप्पउ रक्खइ । मुक्ख-मग्गु पुच्छियउ जु अक्खइ ॥४॥
इह विसमी गुरुगिरिहिँ समुट्ठिय । लोय-पवाह-सरिय कु पइट्ठिय ।
जसु गुरुपाउ नत्थि सो निज्जइ । तसु पवाहि पडियउ परिखिज्जइ ॥६॥
पर न मुणइ तयत्थु जो अच्छइ । लोय-पवाहि पडिउ सु वि गच्छइ ।
जइ गीयत्थु कोवि तं वारइ । ता त उट्ठिवि लउडइ मारइ ॥१६॥
तिव तिव धम्मु कहिंति सयाणा । जिव ते मरिवि हुंति सुर-राणा ।
चित्तामोय करत ट्ठाहिय । जण तहिँ कय हवंति नट्ठाहिय ॥३१॥
—उवएस-रसायण

५ : बारहवीं सदी

§ ३०. हेमचंद्र सूरि

(कलिकाल-सर्वज्ञ) काल—१०८८-११७९[1], देश—धवधकलपुर (गुजरात) में जन्म, अनहिलवाडा पाटन (गुजरात) में साहित्यिक कार्य। कुल—मोढ

१—सामन्त-समाज

(१) राज-प्रशंसा

खीर-समुद्दिण लवण-जलहि, कुवलय-कुमुयहिँ ।
कालिंदी गुर-सिंधु जलिण, मह-महण हरिण ॥

[1] सोलंकी (चालुक्य) अनहिलवाडा (गुजरात) के राजा कर्ण (१०७४-९१), जयसिंह सिद्ध-राज (१०९३-११४२), कुमारपाल (११४२-७२), अजयपाल (११७२-७४), मूलराज द्वितीय (११७६-७८) और भीमदेव भोला (११७८-१२४२) के समकालीन। कुमारपालके गुरु।

मु-गुरु सो उच्चै सच्चै भाषै। पर-परिवादि-निकर जसु नाशै।
सर्व जीव जिव आपउ राखै। मुख्यमार्ग पूछियउ जों आखै ॥४॥
इहँ विषमी गुरु गिरहिँ सम्-उट्ठिय। लोकप्रवाह-सरित कोँ पइट्ठिय।
जाँसु गुरु-पाद नाहि श्रवणिज्जै। तासु प्रवाहे पडिय परि-खिद्यै ॥६॥
पर न मानै तदर्थ जो अच्छै। लोक-प्रवाह पडिय सोँउ गच्छै।
यदि गेयार्थ कोउ तेहिँ वारै। सो तेहिँ उट्ठिय लगुडहिँ मारै ॥१९॥
तिमि'तिमि धर्म कहति सयाना। जिमि ते मरिय होहि सुर-राना।
चित्ताशोक करता थाइय[1]। जन तहँ कृत भवति नष्टाहित ॥३१॥
—उवदेश-रसायन

५ : बारहवीं सदी

§ ३०. हेमचंद्र सूरि

वणिक्, जैनसाधु-आचार्य। अपभ्रंश-कृतियाँ—प्राकृतव्याकरण[2], छन्दोनुशासन[3], देशीनाममाला (कोश)

१—सामन्त-समाज[4]

(१) राज-प्रशंसा

क्षीरसमुद्रेंहिँ लवण-जलधि, कुवलय-कुमुदहिँ।
कालिदी सुर-सिधु-जलेंहिँ, मधु-मथन हरिन ॥

[1] ठहरा　　[2] डाक्टर पी. एल्. वैद्य द्वारा संपादित, मोतीलाल-लाधाजी (पूना) द्वारा प्रकाशित १९२८। अपभ्रंश के सभी उद्धरण हेमचंद्रके रचे नहीं है

[3] देवकरण मूलचंद्र (बंबई) द्वारा प्रकाशित, १९१२

[4] सभी उद्धरण हेमचन्द्र की रचना नहीं है। ये पद्य हेमचंद्र-संगृहीत है, शायद कोई उनके अपने रचित भी हों

कइलासिण सरिसउ हू किरि, सो अजण-गिरि ।
इह तुहु जस-सिरि धवलिओ, पहु किं पंडरु नहुरि ॥१२॥
जे तुह पिच्छहि वयण-कमलु, ससहर-मंडल-निम्मलु ।
जे विहु पालहिं भिच्च-कम्मु, थुणहिं जि निरुवमु विक्कमु ॥
जे विहु सासण धरहिं पायकमलु जे पणमहि ।
ता हत लच्छी-विमुह, पहु-जस-धवलिय दिसि-मुह ॥१३॥
उक्करडा-खल-चउ-गज्जउ, चिरु जुज्झमणु ।
उन्नामउ सिर-कमरु म लज्जओं, थक्क महब्भर तुहु कट्ठहिं ।
अन्नुन्न ति-हुअणि कित्ति-धवल विसाओ तुहु वट्टइ ॥१४॥
पहु ! तुह वेरि अरण्णि गय, निच्चु'वि निवसहिं जिव ससय ।
घण-कटय-दुस्सचरणि, तहिं झवडइ करीर-वणि ॥१६॥
जइ जाहि सुर-सरिअ जइ गिरि-निज्झर सेवहि जइ पइसहि काणण-तरु-संडय ।
रिउ-निव तुवि नवि छुट्टहिं पहु ! तुज्झ पयावहु, कालहु अइदीहि-हर-भुअ-दंडय ।५५।
—छन्दोनुशासन[1]

(२) वीर-रस

भल्ला हुआ जों मारिआ, वहिणि ! महारा कन्तु ।
लज्जेज्जतु वयसियहु, जइ भग्गा घरु एन्त ॥३५१॥
जहिं कप्पिज्जइ सरिण सरु, छिज्जइ खग्गिण खग्गु ।
तहिं तेहइ भड-घड-निवहि, कन्तु पयासइ मग्गु ॥३५७॥
कंतु महारउ हलि सहिएँ ! निच्छइँ रूसइ जासु ।
अत्थिहिं सत्थिहिं हत्थिहिं वि, ठाउ'वि फेडइ तासु ॥३५८॥
अम्हे थोवा रिउ बहुअ, कायर एम्व भणंति ।
मुद्धि निहालहि गयण-यलु, कइ जण जोण्ह करंति ॥३७६॥
खग्ग-विसाहिउ जहिं लहहु, पिय ! तहिं देसहिं जाहुँ ।
रण-दुब्भिक्खे भग्गइ, विणु जुज्झें न वलाहुँ ॥३८६॥

---

[1] पृ० ३७ ख, ३८ क, ४१ क, ४५ ग

कैलाशेंहि सदृशउहुफुर, सो अर्जन-गिरि।
इह तव यश-श्री धवलियउ, प्रभु का पाडुरु नभ ॥१२॥
जो तव पेखै वदन-कमल, शशधर-मडल-निर्मल।
जो विधि पालैं भृत्यकर्म, थुवैं[1] जें निरुपम विक्रम ॥
जं विध शासन धरैं पाद-कमल जे प्रणमैं।
तो हत ! लक्ष्मी-विमुख, प्रभु-यश-धवलिय दिशिमुख ॥१३॥
उत्करटा[2]-आखल चउ गर्जेउ, चिर-युद्धमना।
उन्नामित-शिर-कायर ना लज्जउ, थाक मतिभर तव निकटे।
अन्योन्य त्रिभुवनें कीर्ति-धवल, विषादो तव वाटै ॥१४॥
प्रभु तव वैरि अरण्य-गज, नित्यउ निवसे जिमि सशँक।
घन-कटक-दु सचरणें, तहँ झबडै करीर-वनें !॥१६॥
यदि जावें सुर-सरित यदि गिरि-निर्झर सेवैंहिँ, यदि पइसैं[3] कानन-तरु-खडैं।
रिपु-नृप तउ नहि छूटैं प्रभु ! तुम्ह प्रतापहँ, कालह अति-दीर्घ-हर-भुज-दडें ॥५५॥
—छन्दोनुशासन (पृ० ३७, ३८, ४१, ४५)

(२) वीर-रस

भल्ला हुआ जों मारिया, वहिनि ! हमारा कत।
लज्जिज्जेहु वयस्ययहिँ, यदि भागा घर ऍन्त[4] ॥५३१॥
जहँ काटिज्जै शरहिँ शर, छिद्यै खड्गहिँ खड्ग।
तहँ तेही भट-घट-निवहें, कंत प्रकाशै मग्ग ॥३५७॥
कन्त हमारो रे सखिय, निश्चै रूसै जासु।
अस्त्रहिँ शस्त्रहिँ हाथियहिँ, ठावहिँ फोडै तासु ॥३५८॥
हम हैं थोडे रिपु वहुत, कायर एम भनति।
मूढ निहारैं गगन-तल, कवि जन जोन्ह[5] करति ॥३७६॥
खड्ग बेसाहिब जहँ लहउ, प्रिय ! तहँ देशहिँ जाहु।
रण-दुर्भिक्षें भागई, विनु युद्धेहिँ बलाहु[6] ॥३८६॥

---

[1] स्तवैं [2] हाथी [3] पइठैं [4] आता [5] ज्योत्स्ना [6] सेना

अब्भड-वंचिउ बे पयइँ, पेम्मु निअत्तइ जाँव।
सव्वासण-रिउ-सभवहों, कर परिअत्ता ताँव॥
हिअइ खुडुक्कइ गोरडी, गयणि घुडुक्कइ मेहु।
वासा-रत्ति पवासुअहँ, विसमा संकडु एहु॥
अम्मि! पओहर वज्ज मा, निच्चु जे समुह थंति।
महु कंतहों समरंगणइँ, गय-घड भज्जिउ जंति॥
पुत्तें जाएँ कवण गुणु, अवगुणु कवणु मुएण।
जा वप्पी की भूँहडी,[१] चंपिज्जइ अवरेण॥
तं तेत्तिउ जलु सायरहों, सो तेवडु वित्थारु।
तिसहें निवारण पलुवि नवि, पर घुट्ठुअइ असारु॥३९५॥
महु कन्तहों गुट्ठ-ट्ठिअहों, कउ झुपडा वलंति।
अह रिउ-रुहिरें उल्हवइ, अह अप्पणें न भंति॥४१६॥
जइ भग्गा पारक्कडा तो सहि! मज्झु पियेण।
अह भग्गा अम्हहँ तणा, तो तें मारिअ देण॥४१७॥
सामि-पसाउ सलज्जु पिउ, सीमा-संधिहिँ वासु।
पेक्खवि बाहु-बलुक्कडा, धण मेल्लइ नीसासु॥४३०॥

—प्राकृतव्याकरण (पृ० १५०-५२, १५६, १५८, १६०, १६५, १७१)

कर-हय-थणहर-गलिअ-लोल-मणोहर-हारय।
गंडत्थल - लुलिअ - मइल-जडिल - कुंतल - भारय।
अणवरय-वाहणि-वड-पसूण मोण-विलोअण।
तुह हुअ नर-वइ-तिअय गयय वेरि वण-यण॥६॥
जेत्थु गज्जहिँ मत्त-करि-णिवह, ररोलहिँ जत्थु हय।
जेत्थु भिउडि-भीसण भमंति भड,
नहिँ तेहइ रणि वरइ विजय-लच्छि, पइँ पर समरंभउ॥२६॥
जसु भुअ-बल हेलुद्धरिअ-धरणि,
निग्गुणिवि वणयर - गण - उवगीउ - गुणारम।

---

[१] पितृभूमि

'लिगन-वचित दो पदैं, प्रेम निवत्तैं जव्व।
सर्वासन रिपु सभवहु, कर परिवत्तैं तव्व ॥
हृदय खुडुक्कै गोरडी, गगन घुडक्कै मेह।
वर्षा-रात्रि प्रवासुकहुँ, विषमा सकट एह ॥
अम्म ! पयोधर वज्र ना, नित्य जे समुख थति[१]।
मम कतह समरागणे, गज-घट भाजेँउ जाति ॥
पुत्रे जाये कवन गुण, अवगुण कवन मुएहिँ।
जो वापेकी भूमिडी, चाँपिज्जै अपरेहिँ ॥
सो तेत्तउ जल सागरहुँ, सो तेवड[२] 'विस्तार।
तृषह निवारण चिलुव ना, पर घूँटनो असार ॥३६५॥
मम कतह गोष्ठ-स्थितह, केँत झोँपडा ज्वलति।
चहेँ रिपु-रुधिरेँ वूझवै, चहेँ आपने न भ्रान्ति ॥४१६॥
यदि भागा परकेरआ, तो सखि ! मोर प्रियेहिँ।
औ भागा हमकेरका, तो तेँ मारिय तेहि ॥४१७॥
स्वामि-प्रसाद सलज्ज प्रिय, सीमा-सधिहिँ वास।
पेखिय बाहु-बलक्कडा, धनि मेलै नि.श्वास ॥४३०॥
—प्राकृतव्याकरण (पृ० १५०-२, १५६, १५८, .१६०, १६५, १७१)
करहत-स्तन-धर गलिय लोल मनोहर हारय।
गडस्थले लुलित मडल-जटिल-कुतल भारय ॥
अनवरत-वाहनि-वट-प्रसून शोण-विलोचन।
तव हुअ नरपति-तिलक सप्रति वैरि-वधू-जन ॥६॥
यत्र गर्जेँ मत्त-करि-निवह, (औ) कूदैँ यत्र हय।
यत्र भृकुटि-भीषण भ्रमति भट।
तहँ तेही रणेँ वरै विजय-लक्ष्मि तैँ पर-समरोद्भवउ ॥२६॥
जाँसु भुजबले हेला उद्धरेउ धरणि,
सुनिया वनचर-गण-उपगीत-सुविक्रम।

---

[१] रहते [२] उतना (गढवाली)

अज्जवि हरिसिअ नव-दब्भंकुर-दभिण,

पयडहिँ कुल-महिहर पुलउग्गमु ॥४४॥

—छन्दोनुशासन[1]

(३) कु-नारी

जासु अगहिँ घणु नसा-जालु- जमु पिंगल-नयण-जुओ।

जमु दंत परिरत्त-विअडुन्नय,

न धरिज्जइ दुह-करिणी मत्तकरिणि जिँव घरिणि दुन्नय ॥२७॥

गाँवि पट्टणि हट्टि चउहट्टि, राउलि देउलि पुरि ज दीसइ।

लडह-अगिअ विरहिंद-जालएण, न मा एक्कवि कय-बहु-रूव-कलिअ ॥३०॥

—छन्दोनुशासन (पृ० ३६ग)

(४) शृंगार-रस

विप्पिअ-आरउ जइवि पिउ, तोवि तें आणहि अज्जु।

अग्गिण दड्ढा जइवि घरु, तो तें अग्गि कज्जु ॥३४३॥

जिँव जिँव वकिम लोअणहँ, णिरु सामलि सिक्खेइ।

तिँव तिँव वम्महु निअय-सर, खर-पत्थरि तिक्खेइ ॥३४४॥

तुच्छ-मज्झहें तुच्छ-जम्पिरहें,

तुच्छच्छ-रोमावलिहे तुच्छ-राय-तुच्छयर-हासहें।

पिय-वयणु अलहतिअहें, तुच्छकाय-वम्मह-निवासहें।

अन्नु जु तुच्छउँ तहें धणहें, त अक्खणउं न जाइ।

कटरि थणंतरु मुद्धडहें, जें मणु विच्चि ण माइ ॥३५०॥

फोडेंति जे हियडउँ अप्पणउँ, ताहँ पराई कवण घण।

रक्खेज्जहु लोअहों अप्पणा, बालहें जाया विसम-थण ॥३५०॥

---

[1] पृ० ३५ख, ३६ख, ४५क

आजउ हर्षिय नव-दर्भाकुरके मिस,
प्रकटै कुल-महिधर पुलकोद्गम ॥४४॥
—छन्दोनुशासन (पृ० ३५, ३६, ४५)

(३) कु-नारी

जसु अगहिँ घन नसा-जाल, जसु पिंगल-नयन-युग ।
जसु दत प्रविरल-विकटोन्नत,
न धरीजै दुख-करिणि मत्त-करिणि इव घरिणि दुर्नय ॥२७॥

गाँव पाटन हाट चौहट, रावल देवल पुर जो दीसै ।
सुदरागी विरहेंद्रजालकेँ हिँ, तेहिँ सा एकउ कृत-वहुरूप-कलिता ॥३०॥
—वहीँ (पृ० ३६)

(४) शृंगार-रस

विप्रियकारक यदपि पिउ, तउ तेहिँ आनहु आज ।
आगिहिँ डाहा यदपि घर तउ तेहिँ आगी काज ॥३४३॥

जिमि जिमि वकिम लोचनहँ, वहु-साँवारि सीखाय ।
तिमि तिमि मन्मथ विजयशर, खर-पाथर तीखाय ॥३४४॥

तुच्छ मध्ये तुच्छ जल्पने,
तुच्छ[१]-अच्छ रोमावलिहेँ, तुच्छ-राग तुच्छतर हासे,
प्रियवचन अलभतियहँ, तुच्छकाय मन्मथ निवसहेँ ।
अन्य जोँ तुच्छउ तेँहि धनिहि, सो भाषनउ न जाइ ।
कटरि थनतर मुर्धडहिँ, जो मन-वीच न माइ[२] ॥३५०॥

फोडहिँ जे हियडा आपनउँ, ताँह पराई कवन घृण ।
राखीजहु लोगो ! आपना वाला जाया विषम थन ॥३५०॥

---

[१] अल्प [२] समाइ

एक्कहिँ अक्खिहिँ सावणु अन्नहिँ भद्दवउ,
माहउ महिअल-सत्थरि गण्ड-त्थलें सरउ ।
अंगिहिँ गिम्ह सुहच्छी-तिल-वणि मग्गसिरु,
तहें मुद्धहें मुह-पकइ आवासिउ सिसिरु ।
हिअडा फुट्टि तडत्ति करि, काल-क्खेवें काइँ ।
देक्खउँ हय-विहि कहिँ ठवइ, पइँ विण दुक्ख-सयाइँ ।।३५७।।

जइ न सु आवइ दूइ ! घरु, काइँ अहो-मुहु तुज्झ ।
वयणु जु खडइ तउ सहिएँ, सो पिउ होइ न मज्झु ।।
भमरु म रुण-झुणि रण्णडइ, सा दिसि जोइ म रोइ ।
सा मालइ देसतरिअ, जसु तुहुँ मरहि विओइ ।।३६८।।

मुह-कवरि[1]-बन्ध तहें सोह धरहिँ, न मल्ल-जुज्झ ससि-राहु करहिँ ।
तहें सहहिँ कुरल भमर-उल-तुलिअ, नं तिमिर-डिभ खेल्लंति मिलिअ ।।३८२।।

वप्पीहा पिउ-पिउ भणवि कित्तिउ रुअहि हयास ।
तुह जलि महु पुण वल्लहइ, विहुँवि न पूरिअ आस ।।
वप्पीहा कइँ वोल्लिएण, निग्घिण वार-इ-वार ।
सायरि भरिअइ विमल-जलि, लहहि न एक्कइ धार ।।३८३।।

भमरा ! एत्थुवि लिंवडइ. केंवि दियहडा विलवु ।
घण-पत्तलु छाया-बहुलु, फुल्लइ जाम कयबु ।।३८७।।

केम समप्पउ दुट्ठु दिण, किध रयणी छुडु होइ ।
नव-वहु-दंसण-लालसउ, वहइ मणोरह सोइ ।
ओ गोरी-मुह-णिज्जिअउ, वद्दलि लुक्कु मियकु ।
अन्नुवि जो परिहविय-तणु, किह ठिउ सिरि-आणंद ।।
निरुपम-रसु पिएँ पिअवि जणु, सेसहों दिण्णी मुद्द ।
भण सहि निहुअउँ नेंव मइँ, जइ पिउ दिट्ठु सदोसु ।।४०१।।

---

[1] जूड़ा

एकहिँ आँखें सावन, अन्यहिँ भादों,
　　माधव महियल-साथरें गडस्थलें शरदो ।
अगहिँ ग्रीष्म शुभाक्षी तिल-वनें मार्गसिरू,
　　तेहि मुग्धहँ मुख-पकजे आवासिउ शिशिरू ।
हियडा फूट तडक्क करि. कालक्षेपे काइँ ।
　　देखउँ हत-विधि कहँ थपै, तैं विनु दु ख शताइँ ।।३५७।।
यदि न सों आवै दूति ! घर, काइँ अधोमुख तोर ।
　　वचन न खडै तव सखी, सो पिउ होइ न मोर ।।
भ्रमर ! न रुनझुन रणरणै, सो दिशि जोय न रोउ ।
　　सा मालति देशातरिय, जसु तुहु मरै वियोग ।।३६८।।
मुख कवरि-बन्ध तहँ सोह धरहिँ । जनु मल्ल-युद्ध शशि-राहु करहिँ ।
तहि सोभै कुरल[1]-भ्रमर-कुर्ल तुलिय । जनु तिमिर डिंभ खेलति मिलिय ।।३८२।।
पप्पीहा पिउ-पिउ भनवि केतिक रोंवै हताश ।
　　तव जलें मम पुनि वल्लभें, दोहूँ न पूरिय आश ।।
पप्पीह का वोलियेंइ, निर्घृण वारवार ।
　　सागरें भरियइ विमल जल, लहै न एकहु धार ।।३८३।।
भ्रमरा ! ईहै लिपटिया, किछु दीवसें विलवु ।
　　घनपत्ता छाया-बहुल, फूलै जव्व कदब ।।३८७।।
केमि समर्पउ दुष्ट दिन, किमि रजनी यदि होइ ।
　　नव - वधु - दर्शन - लालसउ वहै मनोरथ सोइ ।।
ओ गोरी-मुख-निर्जितउ, बादल लुक्कु मृगाक ।
　　अन्यउ जो परिभविय तनु, किमि ठिउ श्री आनद ।।
निरुपम-रस पिउ पियवि जनु, शेषहों दीनी मुद्र ।
　　भन सखि ! निभृतउ तिमि मइँ, यदि पिउ दीस सदोस ।।४०१।।

---

[1] सशब्द

अन्नें ते दीहर-लोअण, अन्नु तँ भुअ-जुअलु।
अन्नु सु घण-थण-हारु तें, अन्नु जि मुह-कमलु॥
अन्नु' जि केस-कलावु, सुअन्नु जु पाउ विहि।
जेण णिअविणि घडिअ स, गुण-लायण्ण-णिहि॥
एसी पिउ रूसेउ हउँ, रुट्ठी मइँ अणुणेइ।
पग्गिँव एइ मणोरहइँ, दुक्करु दइउ करेइ॥४१८॥

—प्राकृतव्याकरण (पृ० १४६-१५२, १५४, १५७, १५८, १६१-६२)

गयणुप्परि कि न चड़हिँ, कि नरि विक्खरहिँ दिसिहि वसु,
भुवण-त्तय-संतावु हरहि, कि न किरवि सुहारसु।
अधयारु कि न दलहिँ, पयडि उज्जोँउ गहिउल्लओँ,
किं न धरिज्जहिँ देवि सिरहँ, सइँ हरि सोहिल्लओँ।
कि न तणउ होहि रयणारहु, होहि किं न सिरि-भायरँ।
तुवि चद निअवि मुहु गोरिअहि, कुवि न करइ तुह आयरु॥५॥
परहुअ-पचम-सवण-सभय मन्नउँ सो किर,
ति भणि भणइ न किंपि मुद्ध-कलहंस-गिर।
चदु न दिक्खण सक्कइ ज सा ससि-वयणि,
दप्पणि पमुहु न पलोअइ ति भणि मय-नयणि।
वइरिउ भणि मन्नवि कुसुम-सर, खणि खणि सा वहु उत्तसइ।
अच्छरिउ रुव-निहि कुसुम-सरु, तुह दसणु ज अहिलसइ॥६॥
जइ अज्झलक्कहिँ नयण दीह-नयणि अहि-खणु,
केअइ-कुसुम-दलम्मि भमरु विलसइ त जणु।
जइ तीए मुहि हावि मदु हासउ चडइ,
ता जणु हीरय-पउमराय-मनओँ भडइ।
जइ तीएँ महुर-मिउ-भामिणिहि, वयण-गुफ निगुनिज्जइ।
तावह करेणि जणु अमय-रसु, कणण-पणा-गुडि पिज्जइ॥७॥
सवण-निहिअ-हीरय-हमन-कुडल-जुअल,
थूलामल-मुत्तावलि-मंडिअ-थण-रमल।

अन्य सों दीरघ-लोचन, अन्य सों भुज-युगल।
अन्य सों घन-थनहार त, अन्यउ मुख-कमल ॥
अन्यउ केश-कलाप सों, अन्य जों पाव विधि।
जेहिँ नितंबिनि गढिय सों, गुण-लावण्य-निधि ॥
ऐसी पीउ रुषेउ हुउँ, रूठी मोंहिँ अनुनेइ।
प्राय्र् इव एहि मनोरथहिँ, दुष्कर दैव करेइ ॥४१४॥
—प्राकृतव्याकरण (पृ० १४९-५२, १५४, १५७, १५८, १६१, १६२)

गगनोपरि कि न चढै कि नरे बीखरै दिशहिँ वस।
भुवनत्रय सताप हरै, कि न किरबि सुधारस।
अधकार कि न दलै, प्रकटि उज्जोंत ग्रहियुल्लउ।
की न धरिज्जै देवि-सिरहँ स्वयं हरि सोहिल्लउ।
कि न तनय होहि रतनाकरइ, होहि चाहें श्रीभ्रातर।
तउ चंद्र देखि मुख गोरियहि, कोंउ न करै तव आदर ॥५॥
परभृत-पंचम श्रवण सभय मानउ सों फुर।
तो भनि भनै न किछुअ, मुग्ध कलहस-गिरि।
चद्र न देखन सक्कै जो सा शशिवदनि।
दर्पन मुँह न प्रलोकै कि मने मृगनयनि।
वैरिउ मनें मानिय कुसुम-शर, क्षण-क्षण सा वहु उत्त्रसै।
आश्चर्य रूपनिधि कुसुम-शर, तव दर्शन जो अभिलषै ॥६॥
यदि आ-झलकें नयन दीर्घनयनि अभि-क्षण,
केतकि-कुसुमदलेहिँ भ्रमर विलसै तो जनु।
यदि तेंही मुखें भावें मद हासउ चढई,
तो जनु हीरक-पदुमराग-संचय झडई।
यदि तेहि मधुर मृदु भाषिणिहि वचन-गुफ नि-सुनीजै।
तो बध करीय जन् अमृत-रस कर्ण-पर्ण-पुटें पीजै ॥७॥
श्रवण-निहित-हीरक-हसत कुडल-युगल।
स्थूलामल-मुक्तावलि-मडित-थनकमल।

सेअ-'सअ-पगुरण वहल-सिरिहंड-रसु-ज्जल,

वहु-पहुल्ल-विअइल्ल-फुल्ल-फुल्लाविअ-नुतन ।

तो पयइ धाइ दंसण-जणिय-खल-थॅण-उर-भर-भारिअ,

अहिसरइ चद-सुदर निसिहिँ, पइँ पिअयम-अहिसारिआ ॥११॥

जइ तुह मुह करयलु उ मोडवि । चल्लिअ चीरचलु अच्छोडवि ।

माणिणि ! तुवि पमाओँ-करि मुम्मउ । पइँ पिइ उत्तावलिअ म गम्मउ ।

जइ किं वइवि संवह-पय-जुयलु, इह विहि वसिण विहट्टइ ।

ता तुज्झ मज्झु खीणतु खरउ, किं न खामोअरि ! तुट्टइ ॥१३॥

गोवी-अण-दिज्जत-रासय निसुणतहँ,

वासा-रत्ति पहुच्चइ पहिअहँ पवसंतहँ ।

निअ-वल्लह तिँव किँवइ हिअयतरि निवटिअ,

जिँव जनह न वहति चलण नावइ निअडिअ ॥३॥

अहरुट्ठ दलइ जवापसूण दत-कुद,

पाणि-चरण-नयण-वयण विअसि-आरविंद ।

कुसुम परु पच्चवग्गुं वि सुदरि ! तुज्झ देहु.

तुह तनु-मज्झ-देसु वहसि विवरीउ एहु ॥४॥

हंसि तहारओँ गइ-विलासु पडिहासइ रित्तओँ,

कोइल-रमणिउ तुहवि कठु कुठत्तणु पत्तओँ ।

विरहय ककेल्लिह दोहल मपइ पूरतिअ,

ज किर कुवलय-नयण एह हिउउ गायंतिअ ॥८॥

भ्रू-वल्लि-चावय मणोहवस्स ससितुल्लं वयण,

अंगं चामीअरग्गहँ अहिणव-कमल-दल-नयण ।

तीए हीरावलिव दतपति विद्दुम अहर,

पेच्छताणं पुणो पुणो, काण न हयउ मणं विहुरं ॥११॥

निच्छिउ करिवि चदु दोण्णि खंड । तहि निम्मिय मय-नयणाइ गंड ।

वर-कुसुमंडेविणुं गव-संगु । कोमलु तह विरइओँ गहु अगु ॥१४॥

श्वेताशुक-प्रावरण-बहुल, श्रीखड-रसोज्वल ।
बहुप्रफुल्ल विकचिल्ल-फुलन फुल्लाविय कुतल ।
तो प्रकट धाइ दर्शन-जनित खल-जन उर-भर-भारिया ।
अभिसरै चद्र-सुदर निशिहिँ, तैँ प्रियतम अभिसारिया ॥११॥

यदि तुहँ मुख-करतल उ मोडवि । चल्लिय चीराचले आ-छोडवि ।
मानिनि ! तव प्रसाद करि सुनऊ । तैँ प्रिय उत्तावलिय न जावउ ।
यदि कि पतिउ सवह पदयुगल, इहँ विधि-वशेँहि बाटई ।
तो तव मध्य क्षीणतउ खरउ, किं न क्षामोदरि ! टूटई ॥१३॥

गोपी-जन दीजत राशक नि-सुनतहँ ।
वासर-रात्रि पहूँचै पथिकहँ प्रवसंतहँ ।
निज-वल्लभ तिमि किमिवहि हृदयतरेँ निवडिय ।
जिमि जनह न वहति चरण नावै निगडिय ॥३॥

अधरोष्ठ दलै जवाप्रसून दत कुद,
पाणि-चरण-नयन-वदन विकसित-अरविंद ।
कुसुम पर प्रत्यक्षउ सुदरि ! तव देह,
तव तनु-मध्यदेश वहहु विपरीत एह ॥५॥

हसि तुहारउ गति-विलासेँ प्रतिभासै रिक्तउ,
कोकिल-रमणिहि तोर कठेँ कुठत्वहिँ प्राप्तउ ।
विरहइ ककेली दोहल सप्रति पूरतिअ,
जो पुनि कुवलय-नयनेँ ! एह हिंडै गायतिअ ॥८॥

भ्रूवल्लि-चापक मनोभवहँ शशि-तुल्यव्वदन,
अगे चामीकर-प्रभ अभिनव-कमलदल-नयन ।
ताही हीरावली'व दतपक्ति विद्रुम अधरं ।
पेखतेहिँ पुनी पुनि ; काह न होई मन विधुर ॥११॥

निश्चय करवि चद दोँड खड । तहि निर्मित मदनयनइँ गड ।
वरकुसुम लेपियउ गध चग । कोमल तिमि विरचिय एहु अग ॥१४॥

कुमुअ-कमलहँ एक्क उप्पंति मउलेइ तुवि,
कमल-वणु कुमुअ-सडु निच्चुवि विअासइ।
स-च्छंद-विआरिणिअ चंद-जोण्ह कि मत्त-वालिआ ॥१६॥
मणहरु तुह मुह-सररुह, रयणीअर-विब्भमु धरइ ।
कामिणि हास-विलासु'वि, जोण्हा-पसरहु अणुहरइ ॥४४॥
कवणु सु धन्नउ जिण विणु, कामिणि कंकण हत्थओ विअलहिँ ।
अन्नु कि एँवड ससि-मुहि, हिंडइ उन्नमिहहिँ कर-कमलहिँ ॥५१॥
जइ गंगा-जलि ववलि, कालइ जउणा-जलि जइ खित्तअउ ।
राय-हंसि नहु वहु न तुट्टु, सुज्झत्तणु तुवि तेत्तउ ॥१०७॥
वयणु सरोजु नयण कुवलय-द्दल, हासु नव-फुल्लिअ मल्लि ।
कर-पाय असोअ-पल्लव-च्छाय, सहजि कुसुमाउह भल्लि ॥१०८॥
तुहुँ उज्जाणि म वच्चसु जइविहु, विलसइ मयणूसवु पवलु ।
गइ-नयणिहिँ लज्जीहइ तुह हंसीउलु सहि तह हरिण-उलु ॥८॥
पिउ आइउ निवडिउ पइहिँ, सपणय-वयणिहिँ, अणुणिवि माणु सुआविआ ।
इअ सिविणयभरि आलिंगिमि जाँवहिँ तावहिँ सहि ! हय कुक्कुडि रडिआ ॥२७॥
—छन्दोनुशासन (पृ० ३४क ख, ३६क, ४-क ख, ४२क, ४३ ख, ४४ख)

(५) ऋतु-वर्णन

(क) पावस

रेहइ अरुण-कंति धरणी-अलि इदगोवया[1],
पाउस-सिरि नाइ पय जावय-विंदु लग्गया ।
एहवि विज्जु-लेह कलकतिअ वहल-कंतिआ,
लक्खिज्जइ जायरूव-निम्मिअन्व कठिआ ॥७॥
मत्तंवुवाह वरसंतिण पइ समहिओ,
आयण्णमु मपय महिअंति ज विरइओ ।

---

[1] बीरबहूटी

कुमुद-कमलह् एक उत्पत्ति मुकुले तउ,
कमल-वन कुमुद-षड नित्यहिँ विकासै ।
स्वच्छद-विहारिणिय चद्र-ज्योत्स्न कि मत्त-वालिका ॥१६॥
मनहर तव मुख-सररुह, रजनीकर-विभ्रम धरइ ।
कामिनि ! हास-विलासउ, ज्योत्स्ना-प्रसरह् अनुहरइ ॥४४॥
कवन सोँ धन्यउ जिन विनु, कामिनि ककण हस्तहँ विगलै ।
अन्य कि एव शशिमुखि, हिंडै उन्नमितइँ कर-कमलैँ ॥५१॥
यदि गंगा-जलेँ धवली, कालइ यमुना-जलेँ यदि क्षिप्तऊ ।
राजहसि नभ वहु न टूटु, शुद्धत्वेँ तव तेत्तऊ ॥१०७॥
वदन-सरोज नयन कुवलय-दल, हास नव-फुल्लिय मल्ली ।
कर-पाद अशोक-पल्लव-छाय, सहजे कुसुमायुध भल्ली[१] ॥१०८॥
तुहुँ उज्जेनि न व्रजहु जडविहु, विलसै मदनोत्सव प्रबल ।
गति-नयनेँहिँ लज्जीहै, तुहु हसीकुल सखि तिमि हरिण-कुल ॥८॥
पिय आयउ नि-पडेँउ पदहिँ, स-प्रणय-वचनेँहिँ अनुनइ मान सोँआविया ।
इमि स्वपने भरि आलिंगउँ जौ लोँ, तौ लोँ सखि ! हत कुक्कुटि रटिया ॥२७॥
—छन्दो० (पृ० ३४, ३६, ४०, ४२, ४३, ४४)

(५) ऋतु-वर्णन

(क) पावस

राजै अरुण-काति धरणीतलेँ इन्द्रगोपका,
पावस-श्री न्याइँ पद यावक-विन्दु लग्गया ।
ईहउ विज्जु-लेख कल-कतिय वहुल-कतिया,
लक्खीजै जातरूप - निर्मितव्य कठिया ॥७॥
मत्त-'म्बुवाह् वर्षंतेहिँ पति समधिका,
आकर्णहु सप्रति महितलेँ जो विरचिया ।

[१] भाला

हस-हकल-सद्दिण ज आसि णोहरु, दद्दूर-रडिआउलु निम्मिओ तं सरवरु ।। ६ ।।

गहिरु गज्जइ घरइ मय-वारि, विहलं-घुलु नहु कमइ ।
दुन्निवारु दिसि-दिमि पलोट्टइ ! ओ मत्त-वालिय-सरिसु विसम-चेट्ठु पाउमु पयट्टइ।। १८।।

गज्जइ घण-माला घणघणाह । न मयण-निवडणो कुंजर-घड ।।६१।।

कुसुमग्गमु अज्जुण-केअइ-कुडयह । पेच्छिवि कहवि हु न हु रइ-मडहिं ।
नव-पाउसि पइसंतइ ओ जाइ । निअंत भमर दुओ हिंडहिं ।।३७।।

वज्जहिँ गज्जिर-घण-मद्दल, नच्चहिँ नह-यल-अगणि नव-चंचल-विज्जुल ।
गायहिँ सिहि इह सगीअउ, पाउस-लच्छिहिँ करइ जुआणह मण-आउल ।।४३।।

—छन्दोनुशासन[1]

(ख) शरद्-वर्णन

तरुणी किलकिंचिअइँ विसट्टहिँ, ससि-जोण्ह-समुज्जल रत्तडी ।
मल्लिअ पुल्लइँ परिमल-सारइँ, जउ तउ गय मग्गहु वत्तडी ।।११३।।

तुहु मूहुलायन्न-तरगिणिएँ, झलकतउ कति-करविअओ ।
सोहइ निम्मल-वट्टुल-मंडलु, जल-मज्झिनाइ ससि-विविओ ।।११४।।

—छन्दो० (पृ० ३५ख, ३६ख, ४१क, ४५क)

(ग) हेमन्त-वर्णन

महु-रसु घुटिउ जेहिँ जहिच्छइ, ते अलि दीसँत भमंत ।
मालइ-ओहुल्लणउँ करतिण, कि साँहिओं पडँ हेमंत ।।१११।।

—छन्दो०[2]

(घ) वसंत-वर्णन

किं न फुल्लइ पाडल पर-परिमल । महमहेइ किं न माहवि अविरल ।
नवमल्लिअ कि न दलइ पहल्लिय । कि उल्लसइ कुसुम-भरि भल्लिय ।

---

[1] पृ० ३५ख, ३६ख, ४१क, ४५क [2] पृ० ४२ ख

हस-हकल-शब्दें हिँ जो अहेँउ नोहर, दर्दुर-रटनाकुल निर्मित सो सरवर ॥ ६ ॥
गँभिर गर्जै धरै मद-वारि, विहूल नभ झमई,
दुर्निवार दिशि-दिशि प्र-लोटै, ओ मत्त-वालिक-सदृश विषम-चेट पावस प्रवर्त्तै ॥१८॥
गर्जै घनमाला घनघनाइ, जनु मदन-नृपतिकर कुजर-घट ॥ ६१ ॥
कुसुमोद्‌गम अर्जुन-केतकि-कुटजहूँ। पेखिय कइविउ नहि रति-मंडहिँ।
नव-पावसें पइसतइ ओ जाइ, देखत भ्रमर दूत हिंडहिँ ॥३७॥
वाजैं गज्जर-घन-मर्दल, नाचैं नभतल-आगनें नव-चचल-विज्जुल।
गावैं शिखि इहूँ सगीतउ, पावस-लक्ष्मिहि करै युवानह मन-आकुल ॥४३॥
—छन्दो० (पृ० ३५, ३६, ४१, ४५)

(ख) शरद्-वर्णन

तरुणी किलकिंचितैं विसट्टैं, शशि ज्योत्स्न-समुज्ज्वल-रातडी।
मल्ली फुल्लै परिमल सारैं, जो तो गय मागहु वातडी ॥११३॥
तव मुख-लावण्य-तरगिणिएँ, झलकतउ काति करवितओ[1]।
सोहै निर्मल-वर्त्तुल-मडल, जल-माँझ न्याइँ शशि-बिबओ ॥११४॥
—छन्दो० (पृ० ३५, ३६, ४१, ४५)

(ग) हेमन्त-वर्णन

मधु-रस घोँटिउ जेहि यथेच्छहूँ, ते अलि दिसत भ्रमत।
मालति-ओलहनउ करति, की साधिउ तैं हेमत ॥१११॥
—छन्दो० (पृ० ४)

(घ) वसंत-वर्णन

की न फूलै पाटल पर-परिमल। महमहै की न माधवि अविरल ॥
नव-मल्लिक की न दलै पर्हषिया। की उच्छलै कुसुम-भरें मल्लिय।

---

[1] पृष्ट

दीहिय-तलाय-सर-तल्लडिहिँ। कि न पसाहि पउमिणि फुडइ।
तुवि जाइ जाय-गुण-संभरणु झाणु। कि भसलुहु मणि खुडइ ॥१२॥
सुणिवि वसंति पुर-पोढ-पुरंधिहिँ रासु।
सुमरि विलडहि हूओ तक्खणि पहिउ निरासु ॥१५॥
मत्त-कोइल-नाय णदीइ सिंगार-रसोग्गमिण, नच्चमाण-मायंद-पत्तहि।
अहिणिज्जइ मयण-जय-नाडउव्व, संपइ वसंतिण ॥१६॥
लुट्टिद्दु चंदण-वल्लि-पल्लंकि सम्मिलिदु लवंग-वणि खलिदु वत्थु-रमणीय-कयलिहिँ।
उच्छलिदु फणि-लयहिँ घुलिदु सरल-कक्कोल-लवलिहिँ, चुंविदु माहवि-वल्लरहिँ।
पुलइद-काम-सरीरु भमर-सरिच्छउ संचरइ, रहुउ मलय-समीरु ॥३१॥
माणु म मेल्हि [1]गहिल्लिएँ निहुई होहि खणु,
उभयओँ चंदु पयट्टओँ रासावलय खणु।
दिक्खिसु एहिवि नयणिहिँ, पइ हलि मयण-हय,
वल्लह पयह पडंति, भणतिय वयण-सय ॥३॥
आमूलु वि वहु-पकिण सँवलिअ सव्व-वार-पडिवोह सोहर-हिय।
कंटय-सय-ससेविअ-जल-सयण, जिण उववयणु न सोहहिँ कमल-वण ॥७॥
कोइल-कल-रवु चदणु, चंदुज्जोअ-विलासु।
वल्लह-संगमि अमय-रसु, विरहिय जलिउ हुआसु ॥२६॥
जं सहि ! कोइल कलु पुक्कारइ, फुल्लु निलओ।
त पत्तु वसंतु मासु, कामहु लीलालओ ॥६८॥
दीसइ उववणि, फुल्लिओ नाय-केसरो।
न माहविण वण-सिरिहि दिण्ण-सेहरो ॥७२॥
कर असोअ-दलु मुहु-कमलु हसिउ नव-मल्लिअ।
अहिणव-वसंत-सिरि एह, मोहण-इल्लिअ ॥८६॥
पत्तउ एहु वसतउ, कुसुमाउल-महुअरु।
माणिणि ! माणु मलंतउ, कुसुमाउह-सहयरु ॥६४॥

---

[1] छोटेसे घरमें, छोटी उमरकी घरवाली (गृहिणिके !)

दीघी-तलाव-सर-तालडिहिँ। की न प्रसाधि पद्मिनि फूटई।
तहु जाति ! जात-गुण-सभरण ध्यान। की भ्रमरहु मणि खूटई ॥१२॥

सुनिय वसंतें पुर-प्रौढ-पुरंध्रिय रास।
सुमिरि विलटहि हुयउ तत्क्षण पथिक निराश ॥१५॥

मत्त-कोकिल-नाद-नंदी शृंगार-रसोद्गम्यें हि नृत्यमान माकंद-पंक्तिहिँ।
अभिनीजै मदन-जयनाटकहँ, संप्रति वसंतें हीं ॥१६॥

लोटिय चंदन-वल्लि-पर्यंकें सम्मिलिय लवंग-वनें स्खलिय वस्तु-रमणीय-कदलिहिँ।
उच्छलिय फणि-लतहिँ घुरिय सरल-कंकोल-लवलिहिँ, चुंबिय माधवि-वल्लरिहिँ।
पुलकित काम-शरीर भ्रमर-सरीसउ संचरै, रोयउ[1] मलय-समीर ॥३१॥

मान न मेलि गृहिल्लिएँ, निभृता होहि क्षण,
उभयउ चंद्र प्रकटेउ, रासा-वलय[2] क्षण।
देखिहु एहिहि नयनहिँ, तैं री मदन-हत,
वल्लभ-पदहँ पडति, भनतिय वचन-शत ॥३॥

आमूलउ बहु-पकेंहिँ सँवरिय, सर्व-द्वार-प्रतिबोध सोहर-हिय।
कटक-शत-ससेविय जल-शयन, जिन उपवचन न सोहैं कमल-वन ॥७॥

कोकिल-कलरव चंदन, चंद-उदोत-विलास।
वल्लभ-संगमें अमृत-रस, विरहे जलेंउ हुताश ॥२६॥

जो सखि ! कोकिल कल-पुक्कारै, फुलेंउ निलओ।
सो आउ वसंत मास, कामहँ लीला-लयो ॥६८॥

दीसै उपवनें, फुल्लिय नागकेसरो।
जनु माधवें वन-श्रीहिँ दियेंउ शेखरो ॥७२॥

कर अशोक-दल मुख कमल हसित नव-मल्लिय।
अभिनव-वसंत-श्री एह, मोहनइल्लिय[3] ॥८६॥

आयउ एहु वसंतउ, कुसुमाकुल-मधुकर।
माननि ! मान मलतउ, कुसुमायुध-सहचर ॥६४॥

---

[1] चिल्लाया [2] रश्मिवलय [3] मोहिनी

घोलिर-नवपल्लवु, परिफुल्लिओं रेहइ असोअ-तरु।
विरइओं रम्मु नाइ, महु-मासिण कुसुमा-उहु-मेहरु ॥९८॥
—छन्दो०[1]

(४) विरह-वर्णन

जे महु दिण्णा दिअहडा, दइएँ पवसंतेण।
ताण गणंतिएँ अंगुलिउ, जज्जरिआउ नहेण ॥३३३॥
विरहानल-जाल-करालिअउ, पहिउ कोवि बुड्डिवि ठिअओ।
अनु सिसिर-कालि सअल-जलहु, धूमु कहन्तिहु उट्ठिअओ ॥४१५॥
पिय-संगमि कउ निद्दडी, पिअहों परोक्खहों केव।
मइँ विन्नि'वि विन्नासिआ, निद्द न एँव न तेँव ॥४१८॥
हिअड़ा पइ एँहु बोल्लिअओं, महु अग्गइ सय-वार।
फुट्टिसु पिएँ पवसंतिहउँ, भडय ढक्करि-सार ॥४२२॥
सुमरिज्जइ तं वल्लहउँ, ज वीसरइ मणाउँ।
जहिँ पुणु सुमरणु जाउँ गउ, तहों नेहहों कइँ नाउँ ॥४२६॥
हिअडा जइ वेरिअ घणा, तो किं अब्भि चडाहुँ।
अम्हाहीँ वे हत्थडा, जइ पुणु मारि मराहुँ ॥
रक्खइ सा विस-हारिणी, वे कर चुंविवि जीउ।
पडि बिंबिअ-मुंजालु जलु, जेहिँ अहोडिउ पीउ ॥
बाह-विछोडवि जाहि तुँह, हउँ तेवइँ को दोसु।
हिअय-ट्ठिउ जइ नीसरहि, जाणउँ मुंज स रोसु ॥४३९॥
—प्राकृतव्याकरण (१४७, १६५, १६९, १७०. १७३)

निक्कदल-किय-कच्छ, नलिणि-वज्जिय-किय सरसरि,
निच्चंदण किय मलओं, तुहिण-वज्जिय किय हिमगिरि।

---

[1] ३४ख, ३५ख, ३६क-ख, ३७क, ३९ख, ४१क-ख, ४२क, ४५क

डोलिलय नवपल्लव, परिफुल्लिय राजै अशोक-तरु ।

विरचेँउ रम्य न्याइँ, मधुमासेँहिँ कुसुमायुध-शेखरु ॥६८॥

—छन्दो० (पृ० ३४-३७, ३६, ४१, ४२, ४५)

(४) विरह-वर्णन

जो मोँहिँ दिन्ना दिवसडा, दयितेँ प्रवसतेइँ ।

ताह गनतिउ अगुलिउ, जर्जरियाउ नखेइँ ॥३३३॥

विरहानल-ज्वाल-करालियउ, पथिक कोउ बूडिय ठियउ ।

अनु शिशिर-कालेँ सकल-जलहु, धूम कहतिउ उट्ठियउ ॥४१५॥

प्रिय-संगमेँ कहँ नीँदडी, प्रियह परोक्षहु केमि ।

मैँ दोउहि विन्यासिया, निद्र न एम तेमि ॥४१८॥

हियडा तै ऍहु बोल्लियउ, मम आगे शतबार ।

फूटेँसु प्रिय प्रवसतही, भडक[1] ठिक्करि-सार ॥४२२॥

सुमिरज्जै तेँहिँ बल्लभउँ, जो बीसरै मनाउ ।

जहँ पुनि सुमिरन चलि गउ, तह नेहह की नाउँ ॥४२६॥

हियरा यदि वैरी घना, तो की नभहिँ चढाउँ ।

हमरो ही दो हाथडा, यदि पुनि मारि मराउँ ॥

राखै सा विष-धारिणी, दोउ कर चुंविय जीउ ।

प्रतिविंवित-मुँजाल जल, जेँहिँ ले लीयउ पीउ ॥

बाँह विछोडिय जाहि तुहुँ, हउँ तेवइँ को दोष ।

हृदय-स्थित यदि नीसरै, जानउँ मुँज सरोष ॥४३६॥

—प्राकृत-व्या० (पृ० १४७, १६५, १६६, १७०, १७३)

निर्-कदल किय कच्छ, नलिनि-वर्जित किय सुरसरि ।

निश्चदन किय मलय, तुहिन-वर्जित किय हिमगिरि ॥

निप्पल्लव किय करि पयत्तु-ककेल्लि-विडवि-सय,

पत्त-चत्त किय वाल-कयलि, अकुसुम किय तरु-लय।

सिसिरोवयार किहिँ परियणिहिँ, णिम्मुत्तावलि किय भुवण।

तो विहु न तीइ विरह-तुह भरि, खसइ दाह-दारुण-विग्रण ॥४॥

तरुणि - हूण - गड-प्पहु - पुच्छिअ - तिमिर - मसि,

उक्क - झलुक्का[१]- वडणु दुसहु मा करउ ससि।

मलयानिलु मय-नयणि घुणिअ-कप्पूर-कयलि-वणु,

संधुक्किय-मयण-'ग्गि सहि ! इमा तुज्झ तवउ तणु।

तणु-अगि ! म खडहडि पडहि तुह, मयण-वाण-वेयण-कलह।

चयमाणु माणि वलहिण सहुँ, चडि म जीव ससय-तुलह ॥१०॥

लायण्ण-विब्भम तरगतिहिँ। निद्दड्ढ-वम्म जिआवतिहिँ।

प्रेमि प्रियाहिँ जो पुलोइज्जइँ। ता मत्तलोइ सग्गु पाविज्जइ ॥१३॥

मत्त-महुअरि-तार-झकार-कलयठि-कलयलिहिँ, मयण-वणु-हुडुकार-ससिहिँ।

कह जीवहुँ विरहिणिउ, दुर - देस - पवसत - रमणिउ ॥२१॥

कुविदो मयणो महाभडो, वण-लच्छी अ वसत-देहिआ।

कह जीवउँ सामि ! विरहिणि, मिउ-मलयानिल-फस-मोहिआ ॥५४॥

जलइ जइवि कुसुम-लया-हरु, तवइ चदु जह गिम्हि दिवायरु।

तुवि ईसा-भर-तरलिअ, पिअ-सहि वयणु न मन्नइ वालिअ ॥५७॥

जलइ सरोवरि नीलुप्पल-वणु ! वणि लय फुल्लिअ नहयलि हिम-किरणु।

विरह-रहक्कइँ तुह तणु-अगिहिँ, मुहय ! विणिम्मिओ जलु थलु नहु जलणु ॥३२॥

सइ विज्जुल-अविउत्तउ तुहुँ जल-हर-करि, गुदलु निठ्ठु न जाणसि विरहिअहँ।

इअ भणि चितवि किपि अमंगलु, दइअहुँ असु-पवाहु पलुट्टउ पँथिअहँ ॥४५॥

विरह रहक्कइँ सुहय न जपइ, न हसइ जीवइ केवलु पिअ-पच्चासइ।

अहवा किति उरत्थावण्णणु, करिसहँ निच्छइँ मरिसहुँ तुहु जसु नाराइ ॥४६॥

---

[१] ऊकको तरह भकसे बलनेवाला, ऊक भरकानेवाला

निष्पल्लव किय करि प्रयत्न ककेलि - विटप - शत ।
पत्र-त्यक्त किय बाल-कदलि, अ-कुसुम किय तरु-लत ॥
शिशिरोपचार किउ परिजनिहिँ, निर्मुक्तावलि किय भुवन ।
तोपिउ न ताहि विरह तुह भरेँ, खसै दाह-दारुण-विजन ॥४॥
तरुणि हूण-गंड-प्रभ पोँछिय तिमिर-मसि,
उल्क-झलुक्का वलन दुसह ना करउ शशि ।
मलयानिल मृग-नयनि घूर्णि कर्पूर-कदलि-वन,
संधुक्षिय मदनाग्नि सखि ! एँह तोर तपउ तनु ।
तनु-अगि ! न खडहडि पहि तुहुँ, मदन-बाण-वेदन-कलह ।
त्यजमान मान वल्लभेँहिँ सँग, चढि न जीउ 'सशय-तुलहँ'[1] ॥१०॥
लावण्य-विभ्रम-तरंगतिहिँ । निदृढ मन्मथ जियावंतिहिँ ।
प्रेमेँ प्रियाहि जो पुलकिज्जै । तो मर्त्यलोकेँ स्वर्ग पाइज्जै ॥१३॥
मत्त-मधुकरि तार-झकार कलकंठि-कलकलहिँ, मदनधनु-टंकार-सरिसहिँ ।
किमि जीवहु विरहिनिउ, दूर-देश प्रवसत रमणेँउ ॥२१॥
कुपितउ मदन-महाभटउ, वन-लक्ष्मीउ वसत-रेखिता ।
किमि जीवउ स्वामि ! विरहिणी, मृदु-मलयानिल-स्पर्श-मोहिता ॥५४॥
ज्वलै यदपि कुसुमलता-घर, तपै चंद्र जिमि ग्रीष्म-दिवाकर ।
तउ ईर्ष्या-भर-तरलिय, प्रिय-सखि-वचन न मानै बालिका ॥५७॥
ज्वलै सरोवरेँ नीलोत्पल-वन । वनेँ लताँ फूलिय नभतलेँ हिमकिरण ।
विरह-धधक्केँ तुह तनु-अगिहिँ, सुभग ! विनिर्मेउ जल थल नभ ज्वलन ॥३२॥
स्वयं विज्जुल अवियुक्तउ तुहँ जलधर करि, गुदल[2] निष्ठाँ न जानसि विरहियहँ ।
इमि भनि चितै किछुअ अमगल दयितहँ, अश्रु-प्रवाह प्रलोटउ पथिकहँ ॥४५॥
विरह धधक्कैँ सुभग न जल्पै, न हसै जीवै केवल प्रिय-प्रत्याशै ।
अथवा काउ अवस्था-वर्णन, करिहउँ निश्चय मरिहहुँ तव यश नाशै ॥४६॥

---

[1] तराजू [2] मस्त

उण्हय अमयमऊह-मऊह विदूसहु, चंदण-पंकुवि जलइ लयाहरु वि ।
इय तुह विरहिण तहि तणु-अगिहि सुहय, सुहाइ न किंपि'वि पसिअहि दय करिवि ।।५०।।
—छन्दो०[1]

३—नीति-वाक्य

सायर उप्परि तणु धरइ, तलि घल्लइ रयणाइँ ।
सामि सुभिच्चु 'वि परिहरइ, सम्माणेइ खलाइँ ।।३३४।।
गुणहिँ न सपइ कित्ति पर, फल लिहिआ भजति ।
केसरि न लहइ बोड्डिअवि, गय लक्खेहिँ घेप्पंति ।।३३५।।
जीविउ कासु न वल्लहउँ, धणु पुणु कासु न इट्ठु ।
दोण्णिवि अवसर-निवडिअइँ, तिण-सम गणइ विसिट्ठु ।।३५८।।
वासु महारिसि एँउ भणइ, जइ सुइ-सत्थु पमाणु ।
मायहँ चलण नवन्तहँ, दिवि-दिवि गगा-ण्हाणु ।।३९९।।
वम्भ तेँ विरला केवि नर, जे सव्वग-छइल्ल ।
जे वंका ते वचयर, जे उज्जुअ तेँ वइल्ल ।।४१२।।
गयउ सु केसरि पिअहु जलु, निच्चिंतइँ हरिणाइँ ।
जसुकेरएँ हुंकारडएँ, मुहहुँ पडंति तृणाइँ ।।४२२।।
सिरि चडिआ खंति प्फलइँ, पुणु डालइँ मोडंति ।
तोवि महद्दुम सउणहँ, अवराहिउ न करंति ।।४४५।।
—प्राकृतव्याकरण[2]

जे निअहिँ न पर-दोस । गुणिहिँ जि पयडिअ तोस ।
ते जगि महाणुभावा । विरला सरल-सहावा ।।१२४।।
पर-गुण-गहणु स-दोस पयासणु । महु महुरक्खरहिँ अभिअ-भासणु ।
उवयारिण पडिकिओ वेरिअणह, इअ पद्धडी मणोहर गुअणहँ ।।१२८।।
—छंदोनुशासन (पृ० ४३क)

---

[1] पृ० ३४क, ३५ख, ३६क, ४०ख, ४४ख, ४५क-ख

[2] पृ० १४७, १५२, १६१, १६६, १६९, १७५

उण्हइ अमृतमयूख मयूखउ दुस्सह, चदन-पकउ ज्वलै लताघर भी ।
एँहु तव विरहें तस तनु-अगिहि सुभग ! सो होइ न किछुउ प्रियसखि दयाँ करवि ।५०।
—छन्दो० (पृ० ३४-३६, ४०, ४४, ४५)

३–नीति-वाक्य

सागर ऊपर तन धरै, तलें घालै[1] रतनाइँ ।
स्वामि सुभृत्यहँ परिहरै, सम्मानेइ खलाइँ ।।३३४।।
गुणहिँ न सपति कीर्त्ति पर, फल लिखिया भजति ।
केसरि न लहै कौडियउ, गज लक्षहँ घेप्पति[2] ।।३३५।।
जीविवु कासु न वल्लभउ, धन पुनि कासु न इष्ट ।
दोउहिँ अवसर आपडे, तृण-सम गनै विशिष्ट ।।३५८।।
व्यास महाऋपि इमि भनै, यदि श्रुति-शास्त्र-प्रमाण ।
मातह चरण नमन्तहँ, दिनें-दिनें गग-नहन ।।३९९।।
ब्रह्म ! सों विरला कोउ नर, जो सर्वाग छइल्ल ।
जो वका सो वचकर, जो ऋजुका सों बइल्ल ।।४१२।।
गयउ सों केसरि पियहु जल, निश्चिते हरिनाइँ ।
जासुकेर दहहाडयें, मुखइँ पडति तृणाइँ ।।४२२।।
शिर चढिया खावइँ फलहिँ, पुनि डालिहिँ मोडति[3] ।
तऊ महाद्रुम शकुनही, अपराधी न करति ।।४४५।।
—प्राकृत० (पृ० १४७, १५२, १६१, १६६, १६९, १७५)
जे देखहिँ न पर-दोष । गुणेंहिँ जें प्रकटैं तोप ।
ते जगें महानुभावा । विरला सरल-स्वभावा ।।१२५।।
पर-गुण-ग्रहण स्वदोप-प्रकाशन । मधु-मधुराक्षरें अमृत-भापण ।
उपकारेंहिँ प्रतिकरिय वैरिजन, एँउ पद्धती मनोहर सुजन ।।१२८।।
—छन्दो० (पृ० ४३)

---

[1] डारै　[2] लेते　[3] तोड़ते

§ ३१. हरिभद्र सूरि

(चंद्रसूरि-शिष्य)। काल—११५६ ई० (जयसिंह-कुमारपाल १०९३-११४२-७३)। देश—गुजरात (अनहिलवाडा पाटणमें निवास) कुल—

१—प्रकृति-वर्णन

(१) प्रातः वर्णन

तपणु वियलिर तिमिर वम्मिलु परिल्हसिर तारय वसण-कलयलत तरुसिहर पक्खिय।
परिसदिर कुसुम-महु-विंदु-मिसिणएँ पइ वट्ठुक्खिय।
जस मइ कुमरिहे॑ दुक्खेण वइरेण रयणि-विलीण,
पडिवक्खिय खयरिंद सुहवुद्धि'व कुमुदणि की।
कुमर-रयणह पहु पयासे॑उ मिव-वियसइँ विसिमुहइँ, उदयगिरिहिँ आरुहिउ दिणयरु।
सपावियउ वडनिरु रायहंस कमलोह-सुहयरु।
पत्तावसर समुल्लसिय सभराय सिंगार।
न कुकुम कोसुंभ वरवत्थ-कयालंकार।
संत चक्कहँ विहिय सतोस पविरायइ पुव्वदिसि अवहरत तम-वल्लि-लज्जेण।
पसरत रायारुणेण नववहु'व्व रवि-दइय-संगेण।
उदयते णयरवि निवेण गजतेण पडिवक्खु।
कमलकोसे॑ विणिहित करवट्ठु गुरुत्तणे॑ लक्खु।
हुग्गिय तारय-रेणु-नियरमिअइ निप्पहे॑ दोसयरे॑, निम्मल मि गयणयले॑ चड्डिउ।
रवि रेहइ कणयमउ-मंगलज्जुनं कलसु मंडिउ।
भमरा धावहिँ कुमुइणिउ उब्भिवि कमलवणेसु,
कस्सव कहि पडिबंधु जगे॑ चिरपरिचिय-गणेसु।

*प्रो० हरमान् याकोबी द्वारा संपादित—देखो पृ० ३८५ पर

§ ३१. हरिभद्रसूरि

जैन साधु, महामंत्री पृथ्वीपालके अनुगृहीत। कृति—नेमिनाथ-चरिउ* (८०३ श्लोक)

१—प्रकृति-वर्णन

(१) प्रातः वर्णन

तपन-विदलिय तिमिर-धम्मिल्ल[१] परि-खसिय तारक-वसन, कलकलत तरुशिखर पक्षिय।
परिस्यंदित कुसुम-मधुबिंदु-मिश्रण[२] तैं बहु-रक्षिय।
जसु मैं कुमरिहि दुःखें वैरें रजनि-विलीन।
प्रति-पक्षिय खचरेंद्र सुख-बुद्धि'व कुमुदिनि की।
कुमर-रतनह प्रभ प्रकाशेंउ मृदु विकसै विसि[२]-मुखैं, उदयगिरिहिं आरुहेंउ दिनकर।
स-पायेंउ अतिशय राजहस कमलोघ-सुखकर।
प्राप्तावसर समुल्लसिय शाब-राज[३]-शृंगार।
जनु कुंकुम - कौसुम्भ - वरवस्त्र - कृतालंकार।
गात-चक्रहँ विहित-सतोष प्रविराजै पूर्व दिनें अपहरत तम-वल्लि-लज्जहिँ।
प्रसरत रागारुणेहिँ नववधु इव रवि-दयित-सगेहिँ।
उदयते नव-रवि नृपेहिँ गर्जन्तेहिँ प्रतिपक्ष।
कमलकोशें विनिहित कर-वर्त्त[४] गुरुत्वे लक्खु[५]।
हरित तारक-रेणु निकुरविय निष्प्रभें दोषाँकरें, निर्मले गगनतलें चढेंउ।
रवि राजै कनकमय-मगलार्जुन-कलश-मंडेंउ।
भ्रमरा धावैं कुमुदिनिउ खिलेंउ कमलवनहँ।
केहि इव कहँ प्रतिवध जगें चिरपरिचित-गणहँ।

---

[१] कमल [२] कामदेव [४] किरण समूह [५] लख्यो

विरह-विहुरिय चक्कमिहुणाइँ मिलिऊण साणद, हुय तुट्ठ भमहिँ पहियण महियले ।
कोसिय[1]-कुलु ऍक्कु परिदुहिउ रविहिँ आरुद्धें नहयलें ।
——णेमिणाह-चरिउ ७

(२) वसंत-वर्णन

पाणि सठिय मंजु सिजत भमरावलि सामलियदलि कुसुम-सहयार-मंजरि ।
पसरत हरिसुल्ल सिय पुलय भरेंण रेहंत सिरुवरि ।
विरइवि करसंपुटु भणहिँ, उज्जाणिय आगतु ।
जह पहु हरिसिय भुवण-जणु, संपइ पत्तु वसतु ।
जमिह पसरिउ दइय-संगु'व्व मलयानिलु अगमुहु पत्तविहवु पुणु कुसुम-परिमलु ।
चारिज्जय तूर-रव-रम्मु फुरिउ कलयंवि-कलयलु ।
पउमारुण ककेल्लि-तरु-कुसुमइँ नयणसुहाइँ ।
तवणिज्जज्जल कुसुम-भरु हूय कोरिंट-वणाइँ ।
जत्थ माहवि लइय तो मरिय सेहालिय कुतलिय जालईय लहु सुरहि लद्धयवि ।
भूयद्दुम मजरिय वहुगुलुव पायव असोयवि ।
आलिंगिज्जहिँ पूगफलें, तरु कामुय सव्वंगु ।
नागवल्लि तरुणिहिँ जणहुँ, उज्जीविरिहि अणंगु ॥
जहिँ पवालंकुरेंहिँ कयसोह डिंभाइँ'व तिलयकय गरुयमहिम कामिणि मुहाइँ'व ।
वहुलक्खण चित्त-सय मणहराइँ नर-वइ-गिहाइँ'व ।
उत्तिम जाइ प्पमवकय-महिमडणाइँ वणाइँ ।
विलसहिँ भुवणाणदयर, न नरनाहकुलाइँ ॥
जहिय विज्ज सियकुसुम कणियार-वणराइ कचणमयव कुणइ पहिय हिययाण विब्भमु ।
अहिकखहिँ भुवणयले सयल-मिहुण निय-दइय-सगमु ।
गिज्जहिँ रासहिँ चच्चरिउ, पेज्जहिँ वरमहुराउ ।
माणिज्जहिँ तुंगत्थणिउ, किज्जहिँ जल-कीलाउ ॥
—णेमिणाह-चरिउ[2]

---

[1] कौशिक=उल्लू [2] संधि ४

विरहविधुरित चक्रमिथुनाइँ मिलियउ सानद, हुयेँ तुष्ट भ्रमैँ पँथिजन महितलेँ।
कौशिक-कुल एक परि-दुखित रविहिँ आरूढे नभतलेँ।
—नेमिनाथ-चरित ७

(२) वसंत-वर्णन

पाणि-सं-ठिय मंजु सिंजत भ्रमरावलि श्यामलिय,दलेँ कूसुम सहकार-मजरि।
पसरत हर्षिल सित-पुलक-भरेँ राजत शिरवरेँ।
विरचिय कर-सपुट भनैँ उद्-जानिय आगत।
जिमि प्रभु हर्षिय भुवन-जन, संप्रति आउ वसंत।
जो एँहि पसरेँउ दयित-सग इव मलयानिल अंग-सुख प्राप्तविभव पुनि कुसुम-परिमल।
सचारिय तूर्य-रव रम्य फुरेँउ कलकपि-कलकल।
पद्मारुण ककेलि[1]-तरु-कुसुमा नयन-सुखाइँ।
तपनीय ज्वल कुसुँभ-भर हुअ कोरिंट-वनाइँ।
यत्र माधवि लतिक तोमरिय[2]-शेफालिक कुतलिय जालकित लघु सुरभि लइयउ।
भुर्जद्रुम मजरिय बहु-गुल्म-पादप अशोकउ।
आलिंगिज्जैँ पूग-फलेँ, तरु कामुक सर्वांग।
नागवल्लि-तरुणिहिँ जनहँ, उज्जीवियहि अनंग॥
जिमि प्रवालांकुरेँहिँ कृतशोभ डिंभा इव,तिलककृत गरुव-महिम कामिनि-मुखाइव।
वहुलक्षण-चित्रशत-मनहरा नरपति-गृहा इव।
उत्तम-जाति-प्रसवकृत, महिमडना वनाइँ।
विलसैँ भुवनानदकर, जनु नरनाथ-कुलाइँ॥
जाहि फुटिय सित-कुसुम कर्णिकार-वन-राजि कंचनमृदउ,करैँ पथिक-हृदयाहँ विभ्रम।
अभिकाक्षैँ भुवनतलेँ सकल-मिथुन निज-दयित-संगम।
गाइज्जै रासहिँ चर्चरिउ, पीइज्जै वर-मदिराव।
मानिज्जै तुग-स्तनिउ, किज्जै जल-क्रीडाव॥
—नेमिनाथ-चरित संधि ४

---

[1] अशोक [2] फैला हुआ

२—सामन्त-समाज

(१) नारी-सौंदर्य-वर्णन

जीएँ रयणिहिँ नियय.तणु किरणमालन्चिय दीव सिव सोह मेतु मगल-पईवग ।
सवणाण विहुसणइँ नयणकमल विड मेत्त मेवय ।
गंडयलन्चिय तिमिर-हर, जगें पहु ससि-रवि-सख ।
सवण जेंअदोलय ललिय, विहल महुहु आकन्न ॥
जणु सुहावहिँ मुहह निसास कि मलयानिल भरेण,दंतकिरण धवलहिँ कि चंदेण ।
अहरो विहुर जवइ जगु विकडण किं अगरागेण ।
रसण पउन्चिय मिउफरि, मनपा-मयण मयणेज्ज ।
नह-मणि-किरणन्चिय कुणहिँ, कुसुम वयारह कज्जु ॥
तरल-नयणेहिँ कुडिल-केसेहिँ थण-जुयलेण, पुणु कठिण तुज्झ रूव मज्झपासेण ।
अच्चंत वाउलिय देवपूय गुरु विणय हरिसेण ।
इय सा मयलुवि जगु जिणउ, निय-गुण-दोस-गएण ॥
—णेमिणाह-चरिउ[1]

(२) पुरुष (कृष्ण)-सौंदर्य

नील-कुतल कमल-नयणिल्लु विवाहग सियदसणु, कवुग्गीवु पुर-अग्गरि उरयलु ।
जुय दीहर-भुय-जुयल वयण ससि जिय कमल-उप्पल ।
पउमदलारुण करचलणु, तविय - कणय - गोरगु ।
अट्ठ वरिस वउ पहु हुयउ, नमहिय निजिय अणगु ॥
—वही

(३) विवाह-महोत्सव

ता पहुत्तइ लग्ग समये मिलिएहिँ गुहि-सज्जणेहिँतेमि, कुमरकुमरीण दोण्हवि ।
पारद्ध विवाह-विहि नयगु-नयर पह तुट्ठिय सव्वहि ।

---

[1] संधि ७

२—सामन्त-समाज

(१) नारी-सौंदर्य-वर्णन

जेहि रजनिहिँ निजय तनुकिरण-मालार्चित दीप शिव सोह मात्र मगलप्रदीपय।
श्रवणाइँ विभूषणैं नयन-कमल द्वे मित्र एवय ॥
गडतल-अर्ची तिमिरहर, जग प्रभ शशि-रवि-शख।
श्रवण जें आदोलै ललित, विफल न होहु आकक्ष ॥
जनु स्वभावें मुखनि श्वास की मलयानिल भरेहिँ, दतकिरण धवलहिँ की चदेहिँ।
अधराहु-हु रजवै जग विकचें की अगरागेहिँ ॥
रसन प्र-उन्चिय मृदुफलें, सून मदन शयनिज्ज।
नख-मणि-किरणार्चिय करै, कुसुम-विारहँ काज ॥
तरलनयनेहिँ कुटिल-केशेंहिँ स्तन-युगलेहिँ, पुनि कठिन तोर रूप मध्यप्रदेशेहिँ।
अत्यत व्याकुलित देंव-,पूजाँ गुरु-विनय हर्षेहिँ।
इमि सा सकलउ जग जितै, निज गुण-दोष-शतेहिँ ॥ ॥

—नेमिनाथ-चरित सधि ७

(२) पुरुष (कृष्ण)-सौंदर्य

नीलकुतल कमल-नयनिल्ल विंवाधर सित-दशन, कबुग्रीव पुर-अरर[1] उरतल।
युग-दीरघ-भुज-युगल वदन सीस जिमि कमल-उत्पल।
पद्मदलारुण कर - चरण, तप्तकनक - गोरग।
आठ वर्ष वय प्रभु हुयेंउ, समधिक-विजित-अनग ॥

—वहीं

(३) विवाह-महोत्सव

तव प्रभूतइ लग्न समये मिलितेहिँ सुहृद्-साजनहितैषि, कुमर कुमरीहु दोनउ।
प्रारब्ध विवाह-विधि तपन -खचर-[2]प्रभ दुहित अन्यउ।

---

[1] अरर=कपाट   [2] विद्याधर

नियनिय जणयाणुग्गहिणु, कयसायर सिंगार।
लग्ग कुमारह पाणितलें, फुरिय मलय-पब्भार॥

ता कुमारह वित्ति विवाहें पसरंत महूसवेण नयरलोउ सयलोवि सहरिसु।
आसीसहँ सय-सहस देइ कुणइ मंगलिय पगरेसें।

अह नरनाहेंण वित्थरेंण, नियनयरंमि असेसें।
पारद्धउ वद्धावणउँ, तमि विवाह विसेसें॥

वज्जत गज्जंत वहुभेय-तूर। लभिज्जंत दिज्जंत कप्पूर-पूर।
पणच्चत णच्चंत वेसा-समूहं। दसिज्जत हिंडत वावणयतूह।

एंत गच्छत चिट्ठत वहुसज्जणं। लेत वियरत सुयसत जण-रजणं।
खंत पिज्जंत दिज्जंत वहुभक्खयं। लोय उल्लसिय वहुभेय मणमुक्खयं।

धावंत कीलंत वग्गंत खुज्जयगणं। वत उट्ठंत निवटंत वालयजणं।
—णेमिणाह-चरिउ[1]

(४) नारी-विलाप

हरिण-णयणिय चपयच्छाय ससि-सोमवयणवुरुह, कुंद-कलिय-सम-दत-पतिया।
परिदेविय रव-भरिय धरणि गयण अंतरमय विय॥

कुट्टहिँ सिरु कर-मुग्गरिहिँ, पीडहिँ उरु वादाहिँ।
ताडहिँ वच्छोरुहवियउ, निय-करसाहाहिँ॥

रुयहिँ गायहिँ ललहिँ मुच्छहिँ निक्कारहिँ पुक्कारिहिँ, सहिहि गहियउ उरें हारतोडहिँ।
उल्लूरहिँ चिहुर-भर कणय-रयण-वजयालि मोडहिँ॥

सरिवि सरिवि निच-पियय महु, गुणगणु तहिँ विलवति।
जह स विहट्ठिय तरु विहय, नियरु वि रोयावति॥
—णेमिणाह-चरिउ[2]

---

[1] संधि ७ [2] संधि ६

§ ३१. हरिभद्र सूरि

निज निज जनकानुग्रहेँउ, कृत - सादर - शृंगार ।
लाग कुमारह पाणितलेँ, फुरिय मलय पह्हार ॥

तो कुमार-कृत-विवाहेँ पसरंत महोत्सवेँ, नगर लोग सकलऊ सँहर्षेउ ।
आशीषहँ गत-सहस देँइ करैं मगलिय प्रकर्षेउ ।

अथ नरनाथेँ विस्तरेँ, निज नगर ही अशेषेँ ।
प्रारभेउ वधावनउ, तेहिँ विवाह - विशेषेँ ॥

वाजंत गाजत वहुभेद-तूर । लभिजत दीयत कर्पूर-पूर ।
प्र-नाचंत नाचत वैश्या-समूहं । द्रशिज्जत हिंडत वामन-समूहं ।

जात आवत तिट्ठत वहुसज्जन । लेत वितरत सुप्रशात जनरजन ।
खात पीयत दीयत बहु-भक्षण । लोक उल्लसिय बहुभेद मनसुक्खयं ।
धावंत क्रीडत वल्गत कुब्जक-गण । वात उट्ठत निपतत वालकजन ॥
—वहीँ

(४) नारी-विलाप

हरिन-नयनिय चम्पक-छाय शशि-सौम्य वदनावुरुह, कुदकलिय-सित-दत-पंक्तिया ।
परिदेवेँउ रव-भरिय धरणि-गगन-अंतरमय इव ॥

कूटैँ शिर कर - मुद्गरिहिँ, पीडैँ उरु - पादाहँ ।
ताडैँ वक्षोरुह विकट, निज (निज) कर-शाखाहिँ ॥

रोवैँ गावैँ ललैँ मूछैँ सीत्कारैँ पुक्कारैँ, सखिहि गहिउ उर-हार तोडहीँ ।
उल्लूरैँ[1] चिकुर-भर कनक-रतन-वलयालि मोडहीँ ।

सुमिर सुमिर निज-प्रियह महाँ,-गुण-गण तहँ विलपति ।
जिमि स-तिरस्कृत-तरु विहग, नितरुउ रोआपंति ।
—वहीँ सधि

---

[1] नोचै

३—कविका संदेश

(सब तुच्छ)

तरलु तारुण्णु जल'व चवल सपयवि।
इच्छ आयास मदुलह पुणु वंचियवि॥
तप्पु विणस्सरु सयण नियय कज्जट्ठिया।
विसम-परिणामु'वि हि कामिणि 'वि दुट्ठिया॥
पिसुणवल पिच्छिणो महि दुराराहया।
मणुवि मक्कड, मयच्छीउ तव्वाहया॥

—वहीं

§३.२. अज्ञात कवि

(वीसल-देव काल ११५३–६४)

(१) जगडू साहुके दानकी प्रशंसा

नउ करवाली मणियडा, ते अग्गीला च्यारि।
दानसाल जगडू-तणी, दीसइ पुहवि मँझारि॥११८॥
वीसलदे विरुअ्र करइ-जगडु कहावइ जी।
तु(उ) परीसइ फालिसिउँ, एउ परीसइ घी॥११६॥

—उपदेशतरंगिणी, पृ० ४१-४८

(२) अकालमें दुर्दशा

कल्लिहिँ वोर जि वीणती, अज्ज न जाणइ सारख।
पुणरवि अडविहिँ करि सुघर, न सहुँ एह अणक्त॥१३७॥
भूमी गुणेण जइ कहवि तुगिमा तुज्झ होइ ता होउ।
तह तुह फलाण रिद्धी होही वीआणुसारेण॥१३८॥

—उ० त०, पृ० ४६

३–कविका संदेश

(सब तुच्छ)

तरल तारुण्य जल इव चपल सपदउ।

इच्छि आकाश मृदुलह पुनि वंचियउ॥

ताप विनश्वर शयन निजय कार्य-ट्ठिया।

विषम-परिणामउ हि कामिनिउ दुट्-ठिया॥

पिशुन-बल प्रेक्षका महि दुराराधआ।

मनउ मर्कट, मृगाक्षीउ तद्-बाधआ॥

—वहीं

§ ३२. अज्ञात कवि

कृति—स्फुट

(१) जगड्डू साहुके दानकी प्रशंसा

ना करवाली मनियरा ते आगिल्ला चारि।

दानशाल जगड्डूकेंरी, दीसै पुहवि-मँझारि॥११८॥

वीसलदे विरुद करै, जगडु कहावै जीव।

तू(तो) परसै फालमैं, एह परीसै घीव॥११९॥

—उपदेशतरगिणी, पृ० ४१-४२

(२) अकालमें दुर्दशा

कालहिँ वोर जो वीनती, आज न जानै कक्ख।

पुनरपि अटविहिँ करिसु घर, ना सँग एह अनक्ख॥१३७॥

भूमि गुणेहीँ यदि कहवि तुगिमा तुज्झ होउ ता होउ।

तिमि तव फलाहँ ऋद्धी होही वीजानुसारेहीँ॥१३८॥

—उपदेगतरगिणी, पृ० ४१, ४२, ४६

§ ३३. आम भट्ट

काल, (जयसिंह—कुमारपाल १०९३-११४२-७३)। देश—अनहिलवाड़ा-

सामन्त-प्रशंसा

(१) जयसिंह (सिद्धराज)-प्रशंसा

डरि गइंद डगमगिअ चन्द करमिलिय दिवायर,
डुल्लिय महि हल्लियहि मेरु जलझंपइ सायर।
मुहडकोडि थरहरिय कूरकूरभ कडक्किअ,
अतल वितल धसमसिअ पुहवि सहु प्रलय पलट्टिय॥
गज्जंति गयण कवि आम भणि, सुरमणि फणिमणि इक्कहूअ।
मागहि हिमगहि मम गहि मगहि मुच मुंछ जयसिंह तुह॥२०२॥

(२) कुमारपाल-प्रशंसा

रे रक्खइ लहुजीव वडवि रणि मयगल मारइ,
न पिइ अणगलनीर हेलि रायह संहारइ।
अवर न वंवइ कोइ सघर रयणायर वन्धइ,
परनारी परिहरउ लच्छि पररायह संधइ।
कुमरपाल कोपि चडिउ फोडउ सत्तकडाहि जिमि,
जे जिणधम्म न मन्निमइँ तीहवि नागिगु नेम-तिम॥२०४॥
—वहीं उ० न०, पृ० ६५

§ ३३. आम भट्ट

पाटन (गुजरात) । कुल—ब्राह्मण, राज-कवि । कृतियाँ—स्फुट

सामन्त-प्रशंसा

(१) जयसिंह (सिद्धराज)-प्रशंसा

डरि गयंद डगमगिय चन्द करमिलिय दिवाकर,
डोलिय महि हल्लियह मेरु जल जपै सागर।
सुभट-कोटि थरथरिय क्रूर-क्रूरम्भ कडक्किय,
अतल वितल धसमसिय पुहवि सँग प्रलय पलट्टिय।
गजँति गगन कवि आम भन, सुर-मणि फणि-मणि एक हुअ।
मागहि हिम गहि मम गहि मगहि मुच मुछ जयसिंह तुव ॥२०२॥

(२) कुमारपाल-प्रशंसा

रे राखै लघुजीव वडउ रणें मदकगल मारै,
न पिउ अनर्गल नीर हेरि राजहँ संहारै।
अवर न बाँधै कोइ स-घर रतनाकर बाँधै,
परनारी परिहरै लक्ष्मि पर-राजहँ रुंधै।
कुमरपाल कोपी चढेउ फोडै सप्तकडाहि जिमि।
जो जिनधर्म न मानिहै, तेहहिँ चाढिसु ताम तिमि ॥२०४॥
—उपदेशतरगिणी (पृ० ६४, ६५)

§ ३४: विद्याधर

काल—११८० (जयचंद ११७०-९४)। देश—कन्नौज। कुल—ब्राह्मण,

(सामन्तोंकी प्रशंसा)

जयचंद-महिमा[1]

(वीर-रस)

चंदा कुंदा कासा, हारा हीरा तिलोअणा केलासा।
जेत्ता जेत्ता सेत्ता, तेत्ता कासीस जिण्णिआ ने कित्ती ॥७७॥ (१३७)

विसुह चलिअ रण अचलु, परिहरिअ हअ-गअ-वलु।
हलहलिअ मलअ णिवड, जसु जस तिहुअण पिअड।
वरणलि-णरवड लुलिअ, सअल उवरि जस फरिअ ॥८७॥ (१४८)

भअ भजिअ वङ्ग भग्गु कलिंगा, तेलंगा रण मुक्कि चले।
मरहट्ठा ढिट्ठा लग्गिअ कट्ठा[2], सोरट्ठा भअ पाअ पले।
चंपारण कंपा पव्वअ झंपा, ओत्था ओत्थी जीवहरे।
कासीसर राआ किअउ पआणा, विज्जाहर भण मतिवरे ॥१४५॥ (२४४)

राअह भग्गता दिगलग्गता, परिहर हअ-गअ-घर-घरिणी।
लोरहिं भर सरवरु पअ अरु परिकरु, लोट्टइ पिट्टइ तणु धरणी।
पुणु उट्ठइ सभलि कर दनगुन्नि, वाल तनअ कर जमल करे।
कासीसरु राआ णहलु काआ, कर माआ पुणु थपि भरे ॥१८०॥ (२८९)

जे किज्जिअ धाला जिण्णु णिआला, भोट्टता पिट्ठत चले।
भजाविअ चीणा दप्पहि हीणा, लोहावल हाकंद पले।

---

[1] "The King's (Jaichandra's) minister Vidyadhara" the Hist. of Rashtrakuta, p. 128 दिशा

[2] लोर (सलिल्का) आंसू

§ ३४. विद्याधर

राज महामंत्री।[1] कृतियाँ—स्फुट कवितायें[2]।

(सामन्तोंकी प्रशंसा)

जयचंद-महिमा

(वीर-रस)

चदा कुदा कासा हारा हीरा त्रिलोचना कैलासा।
जेत्ता जेत्ता श्वेता, तेत्ता काशीश जीतिया तव कीर्त्ति ॥७७॥
विमुख चलिय रणें अचल, परिहरिय हय-गज-बल।
हलहलिय मलय नृपति, याँसु यश त्रिभुवन पिवई।
वनरसि-नरपति लुलिय सकल-उपरि यश फुरिया ॥८७॥
भय भाजिय वंगा भागु कलिंगा, तेलगा रण मुंचि चले।
मरहट्टा दिट्ठा लागिय काष्ठा, सौराष्ट्रा भय पाद पडे।
चंपारन कपा पर्वत झपा, उट्ठी उट्ठी जीवहरे।
काशीश्वर राना कियेउ पयाना, विद्याधर, भन् मन्त्रिवरे ॥१४५॥
राजा भागता दिश-लागता, परिहरि हय-गज-घर-घरनी।
लोरहिँ भरु सरवर पद पर-परिकर, लोटै-पीटै तनु धरणी।
पुनि उट्ठै सभलि कै दतागुलि, बाल-तनय कर यमल करै।
काशीश्वर-राजा स्नेहल-काया, करु माया, पुनि थापि धरै ॥१८०॥
जेहिँ कीजिय धारा जित्तु नेपाला, भोट्टता पिट्टत चले।
भजावेंउ चीना दर्पहिँ हीना, लोहाबलें 'हा'क्रदि पडे ॥

---

[1] "सर्वाधिकार-भार-धुरंधरः। .चतुर्दशविद्याधरो विद्याधरः. ..।" प्रबंध-चिन्तामणि (मेरुतुंगाचार्य १३०४ ई०) पृष्ठ ११३-१४ (सिंघी जैन-ग्रंथ माला १, शांतिनिकेतन १९३२ ई०) The king's (Jaichanda's) minister Vidyādhara. Hist. of the Rashtrakutas (Altekar) p. 128

[2] "प्राकृत-पैंगल" (Biblio thica Indica) में संगृहीत। जिनमें कविका नाम नहीं, उनका कर्तृत्व संदिग्ध है।

ओड्डा उड्डाविअ कित्ती पाविअ, मोलिअ मालव-राअ-वले ।
तैलंगा भग्गिअ पुणवि ण लग्गिअ, कासीराआ जखण चले ॥१८६॥ (३१८)
भत्ति पत्ति पाअ भूमि कंपिआ, टप्पु खुदि खेह सूर झंपिआ ।
गोलराअ-जिण्णि माण मोलिआ, कामरूअ-राअ वदि छोलिआ ॥१११॥ (४२३)
भंजिआ मालवा गजिआ [1]कण्णला, जिण्णिआ गुज्जरा लुठिआ कुंजरा ।
वंगला-[2]भंगला-ओड्डिआ मोड्डिआ, मेच्छआ कपिआ कित्तिआ थप्पिआ ॥१२८॥(४४६)
रे गोड ! थक्कंति ते हत्थि-जूहाइ, पल्लट्टि जुज्झंतु पाइक्क-वूहाइ ।
कासीसु राआ सरासार अग्गे ण, की हत्थि की पत्ति की वीर-वग्गेण ॥१३२॥ (४५०)

§ ३५ः शालिभद्र सूरि

काल—११८४ ई० । देश—गुजरात । कुल—...जैन साधु ।

सामन्त-समाज

(१) सिंहासनासीन राजा

पेखवि पुरह प्रवेसु दूत पहूतउ रायहरें ।
सिउँ प्रतिहार प्रवेसु, पामिय नरवर-पय नमइ ॥६८॥
चउकिय माणिक-थंभ-, माहि वईठउ वाहूवलें ।
रूपिहिं जीसिय रंभ चमरहारि चालइँ चमर ॥६९॥
मंडिय मणिमइ दंड मेघाडवर सिर धरिय ।
जस पयडे भुयदंडि, जयवती जयसिरि वसइँ ॥७०॥
जिम उदयाचल सूर, तिम सिरि सोहइ मणिमुकुटों ।
कस्तुरि कुंकुम कपूर, कूचुवरि महमह(मह)ए ॥७१॥

---

[1] कर्नाटक [2] भंगल—अंगदेश (भागलपुर प्रदेश)

ओड्डा उड्डापें उ कीर्त्ती पायें उ, मोडिय मालव-राज वले ।
तेलंगा भागें उ पुनहुं न लागें उ, काशी-राजा जखन चले ॥१६८॥
भट्ट पत्ति[1]-पाद भूमि कंपिया, टाप खूँदि खेह सूर झपिया ।
गौड-राज जित्तु मान मोड़िया, कामरूप-राज वंदि छोड़िया ॥१११॥
भजिया मालवा गजिया कन्नडा, जित्तिया गुर्जरा लूटिया कुजरा ।
वंगला भंगला ओडिया मोडिया, म्लेच्छया कंपिया कीर्तिया थापिया ।१२८।
रे गौड ! थाकति ते हस्ति-यूथाइँ, पल्लट्टि जूझति पाइक्क इयूहाइँ ।
काशीश राजा सरासार आगेहिँ, की हस्ति की पत्ति की वीर-वग्गेहिँ ॥१३२॥

§ ३५: शालिभद्र सूरि

कृति—वाहुवलिरास[2]

सामन्त-समाज

(१) सिंहासनासीन राजा

पेखें उपुरहँ प्रवेश. दूत वहूतउ राजघरें ।
स्वयँ प्रतिहार प्रवेशु, पाइय नरवर-पद नमैं ॥६८॥
चउकी माणिक-थभ-, माँझ वईठउ वाहुवलि ।
रूपे जैसी रभ, चमरवारि चालैं चमर ॥६६॥
मडित मणिमय दड, मेघाडवर पशर धरिय ।
जसु प्रकटे भुजदडें, जयवती जयश्री वसिय ॥७०॥
जिमि उदयाचलें सूर, तिमि शिर सोहै मणि-मुकुट ।
कस्तुरि-कुसुम कपूर-, कच्चूमर महमह-महइ ॥७१॥

---

[1] प्यादा, पदाति   [2] "भारतीय-विद्या" (वर्ष २, अंक १) में मुनि जिनविजय जी द्वारा पंद्रहवीं-सोलहवीं सदीके हस्तलेखके आधार पर सम्पादित

झलकइ कुडल कानि, रवि शशि मडिय किर अवर।
गंगाजल गजदानि, गाढिय गुण गज गुडउडउँ ॥७२॥
उरवरि मोतियहार, वीरवलय करि झलहलइ।
नवल अग सिणगार, खलकए टोडर वामए ॥७३॥
पहिरणि जादर चीर, कलइ करि माल करे।
गुरुऊ गुण गभीर, दीठउ अवर कि चक्कधर ॥७४॥

(२) सेना-यात्रा

ठवणि ॥ अहि उग्गमि पूरवदिसिहिँ, पहिलउँ चालिय चक्क।
धूजिय धरयल थरहरएँ, चलिय कुलाचल-चक्क ॥१८॥
पूठि पियाणु तउ दियएँ, भूयवलि भरह-नरिदु तु[1]।
पिडि पचायण परदलहँ, हलियलि अवर सुरिंदु ॥१९॥
वज्जिय समहरि सचरिय, सेनापति सामत।
मिलिय महाधर मडलिय, गाढिम गुण गज्जत ॥२०॥
गडयडतू गयवर गुडिय, जगम जिमि गिरि-शृग।
सुड-दड चिर चालवइँ, वेलइँ अगिहिँ अग ॥२१॥
गजइ फिरि फिरि गिरि-सिहरि, भजइँ तरुअर डालि।
अकस वसि आवइँ नहीँ, करइँ अपार अणालि ॥२२॥
हीसइँ हसमिसि हणहणइँ, तरवर तार तोषार।
खदइँ खुरलइँ खेडविय, मन मानइँ असुवार ॥२३॥
पाखर पखि कि पखरय, ऊडाऊडिहिँ जाइ।
हणइँ तलपइँ ससइँ धमइँ, जडइँ जकारिय घाउ ॥२४॥
फिरइँ फेकारइँ फोरणइँ, फुड फणाउलि फार।
तरणि-तुरगम समतुलइँ, तेजिय तरल ततार ॥२५॥

---

[1] तु हर जगह अलापनेके लिये जोड़ा हुआ है, जिसे हमने आगे छोड़ दिया।

झलकै कुंडल कान, रवि-शशि-मंडित जनु अवर।
गगा-जल गजदान, ग्रथित गुण-गज गुडगुडै ॥७२॥
उरवरें मोतीहार, वीर वलय करें झलझलै।
नवल अग श्रृगार खलकतो टोडर[1] वामए ॥७३॥
पहिरनि चादर चीर, ककोलह करि माल करें।
गुरुओ गुण-गभीर, दीसेंउ अपर कि चक्रधर ॥७४॥

(२) सेना-यात्रा

ठवनि ॥ रवि-उद्गमें पूरवदिशहिँ, पहिलेंइ चालिय चक्र।
धूनिय धरतल थरथरै, चलिय कुलाचल-चक्र ॥१८॥
पीछें प्रयाणा तव दियो, भुजबलि भरत नरेंद्र।
पिडि पचानन परदलहँ, धर-तल अपर सुरेंद्र ॥१९॥
वाजिय समभेंरि सचरिय, सेनापति सामत।
मिलिय महाधर-मडलिय, ग्रथित गुण गर्जंत ॥२०॥
गडगडतो गजवर गुडिय, जगम जिमि गिरिश्रृग।
शुड-दड चिर चालवैं, मोडैं अगें अग ॥२१॥
गजैं फिरि फिर गिरि-शिखर, भजैं तरुवर-डालि।
अकुश-वश आवैं नहीं, करैं अपार अनाडि ॥२२॥
हींसैं घसमस हिनहिनैं, तरवर तार तुखार।
स्कदैं खुरलैं खेलइय, मनमाना असवार ॥२३॥
पाखर[2] पख इव पाखेंरू, ऊडाऊड़ी जाइ।
हाँफैं तडफैं श्वस-धसैं, जडैं जकारियं धाइ ॥२४॥
फिरैं फेंकारैं स्फोरणैं, फुर फेनावलि फार।
तरल-तुरगम समतुलैं, ताजिक तरल ततार ॥२५॥

---

[1] आभूषण [2] जीन

घडहडंत धर द्रम-द्रमिय, रह रुंधइँ रहवाट।
रव-भरि गणइँ न गिरि-गहण, थिर थोभइँ रहथाट ॥२६॥

चमर-चिन्ध-धज लहलहइँ, मिल्हइँ, मयगल माग।
वेगि वहता तिहँतणइ, पायल न लहइँ लाग ॥२७॥

दडयडंत दह-दिसि दुसह, (प)सरिय पायक-चक्क।
अगोअंगिहिँ अगमइँ, अरियणि असणि अणंत ॥२८॥

ताकइँ तलपइँ तलिमिलिडँ, हणि हणि हणि पभणत।
आगलि कोइ न अछइ भलु, जे साहसु जूझंत ॥२६॥

दिसि दिसि दारक सचरिय, वेसर वहइँ अपार।
संष न लाभइँ सेनतणि, कोँइ न लहइँ सुधि सार ॥३०॥

वंधव वंधवि नवि मिलइँ, वेटा मिलइँ न वाप।
सामि न सेवक सारवइँ, आपिहिँ आप विथाप ॥३१॥

गयवडि चडिऊ चक्कधरोँ, पिडि पयड भुयदंड।
चालिय चहुँदिसि चलचलिय, दिइँ देसाहिव दंड ॥३२॥

वज्जिय समहरि द्रमद्रमिय, घण नीनाद निसाण।
सकिय सुरवरि सग्ग सवे, अवरहँ कवण पमाण ॥३३॥

ढाक ढूक् त्रवकतणइँ, गाजिय गयण निहाण।
षट् षडह षंडाहिवहँ, चालतु चमकिय भाण ॥३४॥

भेरिय-रव-भर तिहुँ-भुयणि, साहित किमइँ न माइ।
कंपिय पय-भरि शेष रह, विण साहीउ न जाइ ॥३५॥

सिर डोलावइ धरणिहिँ, टकु टोल गिरिश्रृंग।
सायर सयलवि झलझलिय, गहलिय गंग-तरंग ॥३६॥

खर-रवि पूदिय[1] मेहरवि, महियलि मेहंधार।
उजु-आलइ आउघ तणइँ, चलइँ राय संचार ॥३७॥

---

[1] उच्चारण ख

धडधडंत धर द्रमद्रमिय, रथ रुधैं रथवाट।
रव-भरें गनैं न गिरि-गहन, थिर स्तोभैं रथ ठाट ॥२६॥
चमर-चिन्ह-ध्वज लहलहैं, छोडैं मदगल मार्ग।
वेग वहता तेहिकर, पायल न लहैं लाग ॥२७॥
दडदडंत दर्गदिशि दुसह, पसरिय पायक[1]-चक्र।
अगा-अगी अगमैं, अरिजनें अशनि अनत ॥२८॥
ताकैं तडपैं तिलमिलैं, "हन हन हन" प्र-भनत।
आगे कोइ न अहै भल, जे साहस जूझत ॥२९॥
दिशिदिशि दारक संचरिय, वेसर[2] बहैं अपार।
शक न लावै सेनते, कोंइ न लहैं सुधि सार ॥३०॥
माधव बांधवें ना मिलैं, बेटा मिलैं न बाप।
स्वामि न सेवक सारखैं, आपुहिं आपउ थाप ॥३१॥
गजपति चढेऊ चक्रधर, पीडि प्रचँड भुजदड।
चालिय चहुँदिशि चलचलिय, देंइ देशाधिप दड ॥३२॥
बाजिय भेरी द्रमद्रमिय, घनो निनाद निसान।
शकित सुरवर स्वर्ग सब, अपरहुँ कवन प्रमाण ॥३३॥
ढाक-ढूक[3] त्र्यंवकतनइँ[4], गाजिय गगन निधान।
षट् खडहँ खंडाधिपहँ, चालत चमकिय भान ॥३४॥
भेरी-रव-भर तिहु भुवन, समुहा कतहुँ न माइ[5]।
कंपित पदभरें शेष रहु, विन साधेंऊ न जाइ ॥३५॥
शिरें डोलावैं धरणिहीं, टुक डोल गिरिशृंग।
सागर सकलउ झलझलिय उछलिय गग-तरंग ॥३६॥
खर रवें खुदिय मेघ रवि, महितल मेघ'न्धार।
ऋतुकालै आयुधन कर, चलै राज-खंधार[6] ॥३७॥

---

[1] प्यादा [2] खच्चर [3] आवाज [4] त्र्यंवककेरा [5] समाइ [6] स्कंधावार-सेना-कैम्प

मंडिय मडलवइ न मुहें, ससि न कवइँ सामंत ।
राउत राउल-थट रहिय, मनि मुझइँ मतिवंत ॥३८॥
कटक न कवणिहिँ भरतणूँ, भाजइ भेडि भडंत ।
रेलइँ रयणायर जमलें, राणोराणि नमत ॥३९॥

ठवणि १० । तउ कोपिहिँ कलकलिउ कालके(र)य कालानल,
ककोरड कोरवियऊ करमाल महाबल ।
काहल कलयलि कलगलत मउडाबा मिलिया,
कलह तणइ कारणि कराल कोपिहिँ पर जलिया ॥१२०॥
हउउ कोँलाहल गहगहारि, गुयणगणि गज्जिय,
संचरिया सामंत सुहड सामहणिय सज्जिय ।
गडगडंत गय गडिय गेलिँ गिरिवर सिर ढालइँ,
गूगलीय गुलणई चलत करिय ऊलालइँ ॥१२१॥
जुडइँ भिडइँ भडहडइँ खेदि खडखडइँ खडाखडि,
धणिय धुणिय घोसवइँ दतु दो त (डातडात)डि ।
खुरतलि खोणि खणति खेदि तेजिय तरवरिया,
समडँ घसइँ घसमसइँ सादि[1] पय सइँ पापरिया ॥१२२॥
कधग्गल केकाण कवी करडइँ कडियाला,.
रणणइँ रवि रण बब्बर सब्बर घण घाघरियाला ।
सीचाणा वरि सरइँ फिरडँ सेलइँ फोकारइँ,
ऊडइँ आडइँ अंगि रगि असवार विचारइँ ॥१२३॥
धसि धामइँ धडहडइँ धरणि रवि-सारथि गाढा;
जडिय जोध जडजोड जरद नम्राहि सनाढा ।
पसरिय पायल पूर कि पुण रलिया रयणायर,
लोह लहर वरवीर वयर वहवटिइँ अयायर ॥१२४॥

---

[1] सवार

मंडित मंडलपतिन मुखें, कुशि न आवडें सामत ।
राउत[1] राउतपन-रहिय, मनें मोहैं मतिवत ॥३८॥
कटकन कौनेंहि भरतको, भागै भीडिभडत ।
रेलैं रतनाकर युग, रानारान नमत ॥३९॥

ठवनि १० । तब कोपेहिँ कलकलेंउ कालकेरइ कालानल,
ककोलइ कोरविउ करमाल महावल ।
काहल कलकलें कलकलत मुकुटाधर मिलिया,
कलहकेर कारण कराल कोपेहिँ पर ज्वलिया ॥१२०॥
भयेंउ कोंलाहल गडगडाट, गगनगण गर्जिय,
सचरिया सामत सुभट साधनिय सज्जिय ।
गडगडत गज गुडिय गैल गिरिवर-शिर ढारैं,
गुग्गलीय हस्तिनि चलत करिय उल्लालै ॥१२१॥
जुडैं भिडैं भट-भटहिँ खेदि खडखडैं खडाखड,
धनियधुनिय धूसवैं दत दोऊ(त) तडातड ।
खुरतर क्षोणि खनत खेदि त्याजिय तरवरिया,
शमैं धसइँ धसमसैं सादि पदसँग पाखरिया ॥१२२॥
स्कधाग्रेछल लगाम-करडै कडियाली,
रणणैं रवि रण वखर सखर घन घाघरियाला ।
सिंचाना[2] वरसरइँ फिरैं सेलैं फुक्कारैं,
ऊडैं आडैं अगें रग असवार विचारैं ॥१२३॥
धंसि घामैं धड़धडैं धरणि रवि-सारथि गड्ढा,
जटित जोध जटजूट जरद सन्नाह सनद्धा ।
प्रसरिय पायल पूर कि पुनि रलिया रतनाकर,
लोह लहर वरवीर वैर वधवटैं आया कर ॥१२४॥

---

[1] राजपुत्र		[2] वाज

रणणिय रवि रण-तूर तार त्रवक त्रहत्रहिया,
ढाक-ढूक-ढम-ढमिय ढोल राउत रह रहिया।
नेच निसाण निनादि (निनी) नीझरण निरभिय,
रणभेरी भुकारि भारि भुयवलिहिँ वियंभिय ॥१२५॥
चल चमाल करिमाल कुंत कडतल कोदड(उ),
झलकइँ सावल सवल सेल हल मसल पयंड(उ)।
सिंगिणि गुण टंकार सहित वाणावलि ताणइँ,
परशु उलालइँ करि धरइँ भाला ऊलालइँ ॥१२६॥
तीरिय तोमर भिंडपाल डवतर कसबंधा,
साँगि सकति तरुआरि छुरिय अनु नागतिबंधा।
हय खर रवि ऊछलिय खेह छाइय रविमडल,
धर घूजइ कलकलिय कोल कोपिउ काहल्लुल[1] ॥१२७॥
टलटलिया गिरि टक टोल खेचर खलभलिया,
कडडिय कूरम कध-संधि सायर झलहलिया।
चल्लिय समहरि सेस सीसु सलसलिय न सक्कइ,
कंचणगिरि कधार भारि कमकमिय कसक्कइ ॥१२८॥
कंपिय किन्नर कोडि पडिय हरगण हडहडिया,
सकिय सुरवर सग्गि सयल दाणव दडवडिया।
अतिप्रलव लहकइँ प्रलव वलंचिव चहूँ दिसि,
मचरिया सामंत-सीस सीकिरिहिँ कसाकरि ॥१२९॥
जोइय भरह-नरिंद कटक मूँछह वल घल्लइ,
कुण वाहुवलि जेउ वरव मइँ सिउँ बलबुल्लइ।
जइ गिरि कंदरि विचरि वीर पइसतु न छूटइ,
जइ थलि जगलि जाइ किम्हइ तु मरउ अपूटइ ॥१३०॥

---

[1] सन्दिग्ध

रणणिय रवि रण-तूर्य तार त्र्यंबक त्रहत्रहिया,
ढाक-ढूक ढमढमिय ढोल राउत[1] रथ रहिया।
नेजाँ निशान निनाद (निनी) निर्झरन् अरंभिय,
रणभेरी हुंकार भार भुजवलेँहिँ विजृम्भिय ॥१२५॥
चम-चमाल[2] करवाल कुत कडतल कोदंडउ,
झलकैँ सावर सवल शेल हल मुशल प्रचंडउ।
शारंग गुण टंकार-सहित वाणावलि तानैँ,
परशु उलालै करवरैँ भाला ऊलालैँ ॥१२६॥
तीरिय तोमर भिंदपाल डवतर कसबंधा,
साँगि शक्ति तरुवार छुरी अरु नाग त्रिबंधा।
हय खर रवेँ ऊछलिय, खेह छाइय रविमडल,
धराँ कपै कलकलिय कोल कोपेँउ काहडुल ॥१२७॥
टलटलिया गिरि टक टोल खेचर खलवलिया,
कडडिय कूरम स्कंध-सधि सागर झलझलिया।
चालिय समुरा शेष-सीस सलसलेँउ न सक्कै,
कंचनगिरि कधार भार कपकपिय कसक्कै ॥१२८॥
कपिय किन्नर-कोटि पड़िय हर-गण हडहडिया,
शंकिय सुरवर स्वर्गें सकल दानव दड़वडिया।
अतिप्रलव लहकै प्रलब वल-चिन्ह चहूँ दिशि,
संचरिया सामत-शीर्ष सीकरेँहिँ कसाकसि ॥१२९॥
जोयेँउ भरत नरेन्द्र कटक मूँछहूँ वल डालै,
को बहुबलि जो गरव मोँहिँ सँगे बल वोलै
यदि गिरिकंदर-विवरेँ वीर पडठत न छूटै,
यदि थल जगल जाड कैसहु तो मरै अखूटै ॥१३०॥...

---

[1] राजपुत्र [2] चमकते

गय आगलिया गलगलंत दीजइँ हय लास-ा,

हुइँ हसमस.......[1]भरहराय केरा आवास-ा।

एक निरंतर वहइँ नीर एकि ईंधण आणईं,

एक आलसिइँ पर-तणुँ पँगु आणिउँ तृण ताणइँ ॥१३३॥

एकि उतारा करिय तुरय तलसारे वाँधइँ,

एँक मरडइँ केकाण खाण इकि चारे रांधइँ।

एँक भीलिय नयनीरि तीरि तेतिय वोलावइँ,

एक वारू असवार सार साहुण वेलावइँ ॥१३४॥

एँक आकुलिया तापि तरल तडि चडिय झँपावइँ,

एँक गूडर सावाण सुहड चउरा दिवरावइँ।

—भरतेश्वर वाहुवली-रास

§३६. सोमप्रभ

काल—११९५ । देश—अनहिलवाडा (गुजरात) । कुल—पोरवाल

१–नीति-वाक्य

वसइ कमलि कल-हसी जीवदया जसु चित्ति।

तसु-पक्खालण-जलिण हसिइ असिव-निविति ॥ प्रस्ताव १(२६)

आभरण-किरण दिप्पंत देह। अहरीकय सुरवहु-रूवरेह।

घण-कुंकुम-कद्दम घर-दुवारि। खुप्पंत-चलण नच्चंति नारि ॥ (३२)

तीयह तिन्नि पियारईं, कलि-कज्जलु-सिंदूर।

अन्नइ तिन्नि पियारडें, दुद्दु जँवाइउ तूर ॥ (३२)

वेस विसिट्ठइ वारियइ, जइवि मणोहर-गत्त।

गंगाजल-पक्खालियवि, सुणिहि कि होइ पवित्त ॥

---

[1] खंडित

गज आगड़िया गलगलंत दीजै हय लास-ग,
　　ह्वै धसमस ...भरतराय केरा आवासा।
एक निरंतर लाव नीर ऐंक ईंधन आनै,
　　एक आलसेंहिं पर तनु पग आनेंउ तृण तानै ॥१३३॥
एक उतारा करिय तुरग हयसारे बाँधै,
　　ऐंक रगड घोडा हूँ खान ऐंक चारा राँधै।
ऐंक पकड नदनीर तीर सो स्त्रिय वोलावै,
　　एक वार असवार सार साधन[1] वेलावैं ॥१३४॥
ऐंक आकुलिया तापें तरल तडि-चढिय झँपावैं,
　　ऐंक गूदर[2], साबान[3] सुभट चौरा देवरावैं।
　　　　—बाहुबलीरास

§ ३६. सोमप्रभ

वैश्य—जैन साधु (महन्त)। कृतियाँ—कुमारपाल-प्रतिबोध[4]

१—नीति-वाक्य

वसइ कमल कलहसी, जीव-दया जसु चित्त।
　　तसु प्रक्षालन जलहीं, होइह अशिव-निवृत्ति ॥ (पृ० २६)
आभरण-किरण दीप्यंत देह। अधरीकृत सुरवधु-रूपरेख।
　　घन कुकुम-कर्दम घर-दुवार। लिपटंत चरण नाचति नारि ॥ (३२)
तीयहँ तीन पियारईं, कलि-काजल-सिंदूर।
　　अन्यउ तीन पियारईं, दूध-जमाई-तूर्य ॥ (३२)
वेशविशिष्टहिं वारियत, यदपि मनोहर गात्र।
　　गगाजल प्रक्षालियउ, सुनह कि होइ पवित्र ॥

---

[1] हायन　[2] विदा करें।　[3] तंबू　[4] Gaikwad's Oriental Series; XIV, 1920. १४०२ ई० की हस्तलिखित (उत्तरी भारतकी अन्तिम) ताल-पोथी

नयणिहि रोयइ मणि हसइ, जणु जाणइ सउ तत्तु।
वेस विसिट्ठह तं करइ, जं कट्ठह करवत्तु॥ (८६)
पडिवज्जिवि दय देव गुरु, देवि सुपत्तिहि दाणु।
विरइवि दीण-जणुद्धरणु, करि सकलउँ अप्पाणू॥ (१०७)
पुत्तु जु रंजइ जणय-मणु, थी आराहइ कंतु।
भिच्चु पसन्नु करइ पहु, इहु भल्लिम पज्जंतु॥
मरगय वन्नह पियह उरि, पिय चंपय-पह-देह।
कसवट्टइ दिन्निय सहइ, नाइ सुवन्नह रेह॥ (१०८)
हियडा सकुडि मिरिय जिम, इंदिय-पसरु निवारि।
जित्तिउ पुज्जइ पंगुरणु, तित्तिउ पाउ पसारि॥ (१११)
संसय-तुलहि चडावियउँ, जीविउ जान जणेण।
ताव कि सपड पावियइ, जा चिंतविय मणेण॥ (२४६)
रिद्धि विहूणह माणुसह, न कुणइ कुवि सम्माणु।
सउणिहि मुच्चइ फलरहिउ, तरुवरु इत्थु पमाणु॥
जइविहु सूरु सुरूवु विअक्खणु। तहवि न सेवइ लच्छि पइक्खणु।
पुरिस गुणागुण-मुणण-परम्मुह। महिलह बुद्धि पयंपहिँ जवुह॥ (३३१)
रावणु जायउ जहिँ दियहि, दह-मुह एक्क-सरीरु।
चिंताविय तइयहिँ जणणि, कवणु पियावउँ खीरु॥ (३६०)

२ - सामन्त-समाज

(१) मंत्रि-पुत्र स्थूलभद्र

पुरि चिट्ठइ पाडलियुत्त नामु। धण-कण-सुवन्न-रयणाभिरामु।
तहिँ नवमु नंद पालेइ रज्जु। पडिवक्ख-महीहर-हलण-वज्जु॥१॥
मुणि पत्त-कप्प-जल-सित्तु गत्तु। बालत्तणि जमु रोगेहि चत्तु।
तसु कप्पय मतिहि वंसि हुओ। सगडालु[1] मंति निचवक्खु भूओ॥२॥

[1] शकटारि नन्द राजाका मंत्री

नयनें रोवै मनें हँसै, जनु जानै सब तत्त्व।
वेश विशिष्ट[1]हँ सो करै, जो काठहँ करपत्र ॥ (८६)
प्रतिपादन दयाँ देव गुरु, देब सुपात्रहँ दान।
विरचिब दीन-जनोद्धरन, करि सकलउँ अप्पान ॥ (१०७)
पुत्र जो रंजै जनक-मन, स्त्री आराधै कंत।
भृत्य प्रसन्न करै प्रभू, यही भला परि-अन्त ॥
मर्कत-वर्ण प्रियह उरें, प्रिय चंपक-प्रभ देह।
कसौटियहँ दीनी सोंहै, नारि सुवर्णह रेख ॥ (१०८)
हियरा संकुचि कच्छु जिमि, इन्द्रिय-प्रसर निवारि।
जेतै पूरै प्रावरण, तेतै पाव पसार ॥ (१११)
संशय-तुलहिँ चढावियउ, जीवित जान जनेहिँ।
तब का सपत् पाइहै, जो चिंतविय मनेहिँ ॥ (२४६)
ऋद्धि-विहूनहँ मानुषहँ, न करै कोंइ सम्मान।
शकुना मुचैं फल-रहित, तरुवर इहाँ प्रमाण ॥
यद्यपि शूर सुरूप विचक्षण। तदपि सेवैं लक्ष्मि प्रतिक्षण।
पुरुष गुणागुण-मनन-पराङ्मुख। महिलहँ बुद्धि प्रजल्पैं जो बुध ॥ (३३१)
रावण जायेंउ जसु दिनहिँ, दशमुख एक शरीर।
चिंतविया तहिया जननि, कौन पियाअउँ क्षीर ॥ (३६०)

२—सामन्त-समाज

(१) मंत्रि-पुत्र स्थूलिभद्र

पुरि आहै पाटलिपुत्र नाम। धन-कन-सुवर्ण-रतनाभिराम।
तहँ नवम नंद पालेइ रज्ज। प्रतिपक्ष-महीधर-दलन-वज्र ॥१॥
मुनिपात्र-कल्प जल-सिक्त गात्र। बालत्वें जसु रोगेहिँ त्यक्त।
तसु कल्पक मन्त्रिहि वंग हूअ। शकटारि मन्त्रि नृप-चक्षु-भूत ॥२॥

[1] वेश्या

तसु थूलभद्दु सुत्रों आसु पढमु । मयणुव्व मणोहर रुव परमु ।
जो जम्म दियहि देवयहिँ वुत्तु । इह होही चउदह-पुव्व-जुत्तु ॥३॥
सिरिउत्ति विइज्जउ आसि पुत्तु । नय-विणय-परक्कम-बुद्धि-जुत्तु ।
तह जक्खा-पमुह पसिद्ध पत्त । मेहाइ गुणिहिँ भइणीउ सत्त ॥४॥

(२) नारी-सौंदर्य

कंचण कलसिहि जणि फलिय, सहइ लच्छिलय चित्त ।
कोसा वेसा पुव्वकय, सुकय जलिण जँ एँव सित्त ॥६॥
रयणालंकिय सयल-तणु, उज्जल-वेस-विसिट्ठ ।
न सुर-रमणि विमाण-गय, लोयण-विसइ-पविट्ठ ॥७॥
जसु वयण विणिज्जिउ न ससंकु । अप्पाणु निसिहिँ दसइ स-संकु ।
जसु नयण-कंति-जिय-लज्ज-भरिण । वणवासु पवन्नय नाइ हरिण ॥८॥
जसु सहहिँ केस-घण-कसण-वन्न । न छप्पय मूह-पकय-पवन्न ।
भुवणिक्क-वीर-कदप्प-धणुह । सुदरिम विडंवहि जासु भमुह ॥९॥
जसु अहर हरिय-सोहग्ग-सारु । न विद्दुम[1] सेवइ जलहि खारु ।
जसु दंत-पंति सुदेरु रुदु । नहु सीओसहँ तुवि लहइ कदु ॥१०॥
असणंगुलि पल्लव नह पसूण । जसु सरल-भुयउ लयाउ नूण ।
घण-पीण-तुंग-थण-भार-सत्तु । जसु मज्झु तणुत्तणु नं पवत्तु ॥११॥

(३) वसन्त

अह पत्तु कयाइ वसंत समओं । संजणिय-सयल-जण-चित्त-पमओं ।
उल्लासिय-रुक्ख-पवाल-जालु । पसरत-चारु-चच्चरिव्व मालु ॥१॥
जहिँ वण-लय-पयडिय कुसुम-वरिस । महु-कंत समागय जणिय हरिस ।
पवमाण-चलिर-नवपल्लवेहिँ । नच्चंति नाइ कोमल-करेहिँ ॥२॥

---

[1] मूंगा, प्रवाल

स्थूलिभद्र सुत रहे॑उ प्रथम । मदन इव मनोहर रूप परम ।
जेहि जन्मदिवस देवतहिँ उक्त । ई होइहै चौदह पूर्व[1] युक्त ॥३॥
सिरिय दुतियो अहे॑उ पुत्र । नय-विनय-पराक्रम-बुद्धि-युक्त ।
तिमि यक्षा-प्रमुख प्रसिद्धि प्राप्त । मेधादि गुणे॑हि भगिनीउ सप्त ॥४॥

(२) नारी-सौंदर्य[2]

कंचन कलशेहिँ जनु फटिक, सोँहै लक्ष्मिलय चित्र ।
कोशा वैश्या पूर्वकृत, मुकृत जले॑हीँ सिक्त ॥६॥
रतनालकृत सकल तनु, उज्ज्वल वेश-विशिष्ट ।
जनु सु-रमणि विमान-गत, लोचन-विषय प्रविष्ट ॥७॥
जसु वदन विनिर्जित जनु शशाक । अप्पान निशिहिँ दर्शै स-शक ।
जसु नयनकाति जित लज्ज भरे॑हिँ । वनवास सिधारे॑उ मनहु हरिन ॥८॥
जसु सोँहै केश घन-कृष्ण-वर्ण । जनु षट्पद मुखपकज-प्रपन्न[3] ।
भुवनैकवीर कदर्प धनुह । सुदरिम विडबै जासु भउँह ॥९॥
जसु अधर धरिय सौभाग्य-सार । जनु विद्रुम सेवै जलधि खार ।
जसु दत-पक्ति सुदेर रुद[4] । नख शीतोषध[5]-तोउ लहै कद ॥१०॥
हस्तागुलि-पल्लव नखप्रसून । जसु सरल भुजउ लताउ नून[6] ।
घन-पीन-तुग-थनभार-सक्त । जसु मध्य[7] तनुत्वहँ जनु प्रवृत्त ॥११॥

(३) वसन्त

पुनि आव कदाचि वसत-समय । सजनिय सकल जन चित्त प्रमद ।
उल्लासिय वृक्ष-प्रवाल-जाल । प्रसरत चारु चर्चरि॑व माल ॥१॥
जहँ वनलताँ प्रकटिय कुसुम-वर्ष । मधुकात समागत जनित-हर्ष ।
पवमान चलिय नवपल्लवेहिँ । नाचति न्याइँ कोमलकरेहिँ ॥२॥

---

[1] धर्म-ग्रंथ [2] मंत्रि पुत्र स्थूलिभद्रकी प्रेयसी वेश्या कोशा [3] प्राप्त
[4] विस्तृत [5] चंद्र [6] निश्चय [7] कटि

नव-पल्लव-रत्त-असोअ-विडवि । महुलच्छिहि सउँ परिणयणु घडवि ।
जहिँ रेहहिँ नाइ कुसुभ-रत्त । वत्थेहिँ नियसिय सयल-गत्त ॥३॥
हसइ' व्व फुल्ल-मल्लिय-गणेहिँ । नच्चइ'व पवण वेविर-वणेहिँ ।
गायइ भमरावलि रविण नाइ । जो सयमवि मयणुम्मत्तु भाइ ॥४॥
घण मयण-महूसवि, पिज्जतासवि, तहि वसति जणचित्तहरि ।
कय-विसय-पसंसिहिँ नीओं वयं सिहिँ, थूलभद्दु कोसाहि[1] घरि ॥५॥..

(४) (वेश्या-) प्रेम

अवरुप्परु अणुराय गुणु, दोहिहिँ पयडंतीहिँ ।
थूलभद्द कोसहँ पढमु, किउ दूहत्तणु तीहिँ ॥१२॥
निम्मल-मुत्तिय-हारमिसि, रडय चउक्कि पहिट्ठ ।
पढमु पविट्ठहु हिय तसु पच्छा भवणि पविट्ठु ॥१३॥
चंदणु दंसिउ हसिय मिसि, इय कोसहिँ असमाणु ।
घरि पविसतह तासु किउ, निय अंगिहि सम्माणु ॥१४॥
अक्ख-विणोइण ते गमहिँ, जा दुन्निवि दिण-सेसु ।
ता पच्छिम-दिसि कामिणिहि, अकि निविट्ठु दिणेस ॥२३॥
सव्व-कला-संपन्नु रसिय, -जण-सतोसु कुणतु ।
अमयमयइ कर-फसि-मुहि, तहि कुमुइणि वियसतु ॥२४॥
पारद्धु संगीउ तहिँ, कोस वेस नच्चिय वियक्खणि ।
रंजिय-मणु घणु दविणु, थूलभद्दु तसु देइ तक्खणि ॥
तयणतरु अणुरत्तमण, मयण-पलकि निसन्न ।
माणिय-मयण-विलास-सुह, दुन्नि'वि निद्द-पवन्न ॥२५॥

---

[1] कोशा गणिका

नव-रक्त-अशोक विटप । मधु लक्ष्मिहिँ सँग परिणयहँ करब ।
जहँ राजैँ नारि [1]कुसुभ-रक्त । वस्त्रेहिँ आच्छादिय सकल-गात्र ॥ ३॥
इव फुल्ल-मल्लीगणेहिँ । नाचइ'व पवन-कपिर-वनेहिँ ।
गावै भ्रमरावलि-रवेँहिँ न्याइँ । जो स्वयमपि मदनोन्मत्ता भाइ ॥४॥
घन मदन-महोत्सवेँ पीयत'ासव, तहँ वसतेँ जनचित्तहरे ।
किय विषय प्रशसेँ, निजहिँ वयस्यहिँ, थूलभद्र कोशाकेँ घरे ॥५॥

(४.) (वेश्या-) प्रेम

अपरापर अनुराग गुण, दोउहिँ प्रकटतेहिँ ।
थूलभद्र-कोशाँहँ प्रथम, किउ दूतीत्वहँ तेहिँ ॥१२॥
निर्मल मोतिय हार-मिस, रचित चतुष्क प्रहृष्ट ।
प्रथम वईठेउँ हिय तसु, पाछे भवन प्रविष्ट ॥१३॥
चंदन दर्शेँउ् हसित-मिस, ई कोशहिँ अ-समान ।
घर प्रविशतहँ तासु किउ, निज अगहिँ सम्मान ॥१४॥....
अक्षविनोदेँहि वीतवैँ, जौं दोऊ दिन शेष ।
तो पश्चिम दिश-कामिनिहँ, अर्केँ निविष्ट दिनेश ॥२३॥
सर्वकला-सपन्न रसिक, - जन - सतोष करत ।
अमृतमयइ कर-पर्श सुखेँ, तह कुमुदिनि विकसत ॥२४॥
प्रारभेउ सगीत तहँ, कोश वेश नाचै विचक्षणी ।
रजित मन घन द्रविण, स्थूलभद्र तेँहिं देइ तत्क्षणी ॥
तदनंतर अनुरक्त मन, मदन पलग निषण्ण ।
माणिक मदनविलास-सुख, दोऊ निद्रापन्न ॥२५॥

---

[1] चम्पई या केसरिया (कुसुंभी) रंगमें रँगे

(५) विरह-वर्णन

पिय ! हउँ थक्किय सयलु दिणु, तुह विरहग्गि किलंत ।
थोडइ जलि जिम मच्छलिय, तल्लोविल्लि करंत ॥
मइँ जाणिउँ पिय-विरहियह, कवि धर होइ वियालि ।
न वरि मयकु वि तह तवइ, जह दिणयरु खयकालि[1] ॥ (८६)

३–कविका संदेश

(१) जग तुच्छ

एवति भणिय तो थूलभद्दु । चिंतेइ तत्थ परमत्थ भद्दु ।
मणुयत्तह सारु ति-वग्ग-सिद्धि । तिहि विग्घ-हेउ अहिगार-रिद्धि ॥४७॥
ज तत्थ राय-चित्ताणुकूल । आरभ कणतह पावमूल ।
कउ मतिहि जायइ विमलधम्मु । जिणि लब्भइ सासउ सिद्ध-सम्मु ॥४८॥
पर-पीड-करेविणु ज पभूअ । गिन्हहिँ निउ गिरुहि रूव जलूअ ।
नरनाहिण घिप्पइ नपि दव्वु । निप्पीलिवि सहुँ पाणेहिँ सव्वु ॥४९॥
पर-वसहँ सव्वु भय-भिभलाहँ । अन्नन्न-पओअण वाउलाहँ ।
अहिगार-जणह (पुणि) कामभोअ । संभवहिँ वियंभिय गुरु-पमोय ॥५०॥
कोसा-घर वारस-वच्छरेहि । विसइहि न तित्तु लोउत्तरेहिँ ।
वहु रज्ज-कज्ज-वक्खित्त-चित्तु । कि मपइ होहिसि मूढ-चित्तु ॥५१॥
पइ जम्म-मरणु कल्लोलमत्तु । भवजलहि भमिवि मणुअत्तु पत्तु ।
परिहरिवि विसय-फलु तासु लेहि । कि कोडी कवडिए हारवेहि ॥५२॥
इम विसय-विरत्तउ, पसमपमत्तउ, थूलभद्दु संविग्गमणु ।
सिव-सुक्ख-कयायरु, भवभयकायरु, महइ चित्ति दुच्चर चरणु ॥५७॥

× × ×

---

[1] प्रलयकाल

(५) विरह-वर्णन

पिय ! हउँ रहिया सकल दिन, तव विरहाग्नि किलाँन्त।
　　थोडइ जलें जिमि माछरी, तल्लोबिल्ल करत ॥
मैं जानेउँ पिय विरहियह, कोंइ धरा होइ विकाल[1]।
　　नतरु मयंकउ तिमि तपै, जिमि दिनकर क्षयकाल ॥ (८६)

३—कविका संदेश

(१) जग तुच्छ

ऐसोइ भनिय तब थूलभद्र। चिंतेइ तहाँ परमार्थ भद्र।
　　मनुजत्वह सार त्रिवर्ग-सिद्धि। तेंहि विघ्नहेतु अधिकार-ऋद्धि ॥४७॥
जो तहाँ राज-चित्तानुकूल। आरंभ करंतह पापमूल।
　　को मन्त्रिहिँ उपजै विमलधर्म। जेंहिँ लब्भै शाश्वत सिद्ध-शर्म ॥४८॥
परपीड करेइय जो वहूत। ग्रहणैं निज गिरही रूप जलौक।
　　नरनाहेंहिँ दीजै जोउ द्रव्य। निष्पीडिव सँग प्राणीहिँ सर्व ॥४९॥
परवशा　सर्व-भय-विह्वलाह। अन्यान्य-प्रयोजन-व्याकुलाह।
　　अधिकार जनहूँ (पुनि) काम-भोग। संभवैं विजृंभिय गुरु-प्रमोद ॥५०॥
कोशा-घर वारह वत्सरेहिँ। विषयहिँ न तृप्ति लोकोत्तरेहिँ।
　　वहुराज्य-कार्य-प्रक्षिप्त-चित्त। का सप्रति होइसि मूढ-चित्त ॥५१॥
तैं जनम-मरण-कल्लोल मत्त। भवजलधि भ्रमिय मनुजत्व प्राप्त।
　　परिहरिय विषय-फल तासु लेहि। का कोटी कौडिहिँ हारवेहि ॥५२॥
　　इमि विषय-विरक्तउ-प्रशम-प्रसक्तउ, स्थूलभद्र संविग्नमना।
　　शिव-सुक्ख-कृतादर, भवभय कातर, चहै चित्तें दुश्चर-चरना ॥५७॥
　　×　　×　　×[1]

---

[1] विकारी

(२) चलु जीवउ जुव्वणु धणु सरीरु। जिम कमलदलग्ग-विलग्ग नीरु।
अथवा इहत्थि जं किंपि वत्थु। त सव्वु अणिच्चु हहा धिरत्थ ॥
पिइ माय भाय सुकलत्तु पुत्तु। पहु परियणु मित्तु सिणेह-जुत्तु।
पहवतु न रक्खइ कोवि मरणु। विणु धम्मह अन्नु न अत्थि सरणु ॥
रायावि रंकु सयणो वि सत्तु। जणओ तणऊ जणणि वि कलत्तु।
इह होइ नडव्व कुकम्मवंतु। संसार-रंगि बहुरूव्वु जंतु ॥
एक्कल्लउ पावइ जीवु जम्मु। एक्कल्लउ मरइ विढत्त-कम्मु।
एक्कल्लउ परभवि सहइ दुक्खु। एक्कल्लउ धम्मिण लहइ मुक्खु ॥
जहँ जीवह एडवि अन्नु देहु। तहिँ किं न अन्नु धणु सयणु गेहु।
जं पुण अणन्नु तं एक्कचित्त। अज्जेसु नाणु दसणु चरित्तु ॥
वस-मंस-रुहिर-चम्मट्ठि-बद्ध। नउ-छिड्डु-झरंत-मलावणद्ध।
असुइ-स्सरूव-नर-थी-सरीर। सुइ वुद्धि कहवि मा कुणसु धीर ॥....
जह मंदिरि रेणु तलाइ वारि। पविसइ न किंचि ढक्किय दुवारि।
पिहियासवि जीवि तहा न पावु। इय जिणिहि कहिउ संवरु पहाव ॥...
जहिँ जम्मणु मरणु न जीवि पत्तु। तं नत्थि ठाणु [1]वालग्ग-मत्तु ॥ (३११)....

(२) इन्द्रिय मारना

नहु गम्मु अगम्मु व किंपि गणइ। अव्वभ कलुस अहिलास कुणइ।
सकलत्ति वि हुंतइ महइवेस। पररमणि गमणि पयडइ किलेस ॥१२॥
सिसिरम्मि निवाय घरग्गिसयडि। घण-घुसिण-तेल्ल-बहुवत्थ-सवडि।
चदण-रस-कुसुम-जलावगाह। धारागिहि गिंभि महेइ नाद ॥१३॥
पाउसि पय-पंक-पसग-तद्दु। वंछइ अच्छिद्द भवणयलु लद्धु।
जइ कुणइ विविह-विसयाणुवित्ति। तेँह विहु न एहु पावेइ तित्ति ॥१४॥
एक्कवि फासिंदिउ, बुहयण निंदिउ, करइ किंपि दुच्चरिउ तिहिं।
नानाविहु जम्मिहि, पीडिओ कम्मिहि, सहमि विडंवण सामि जिहु ॥१५॥

---

[1] बालकी नोकके बराबर भी

(२) चल जीवन यौवन धन शरीर। जिमि कमलदलाग्र-विलग्न नीर।
अथवा इहाँह' जो किछुव वस्तु। सो सर्व अनित्य "हहाधिग्"अर्थ ॥
पितु माय भाय सुकलत्र पुत्र। प्रभु परिजन मित्रसिनेह-युक्त।
सक्कै ना रोकिय केहु मरन। विनु धर्मह अहै न अन्य शरण ॥
राजाउ रंक स्वजनऊ शत्रु। जनकउ तनयउ जननी कलत्र।
इह होइ नटव्य कुकर्मवन्त। संसार-रगें बहुरूप जंतु ॥
एकल्लै पावै जीव जन्म। एकल्लै मरै करीय कर्म।
एकल्लै परभवें सहै दुख। एकल्लै धर्में हिँ लहै मूर्ख ॥
जहँ जीवह ईहउ अन्य देह। तहँ का न अन्य धन स्वजन गेह?
जो पुनि अनन्य सो एर्क चित्त। आर्याहिँ ज्ञान-दर्शन-चरित्र ॥
वशाँ-मांस-रुधिर-चर्म-रस्थि-बद्ध। नौ छिद्र झरंत मलावनद्ध।
अशुचि स्वरूप नर-तिय-शरीर। शुचि बुद्धि कहब ना करसु धीर ॥. . .
जिमि मंदिरें रेणु तलायें वारि। प्रविशै न किछू ढाँके दुवारि।
ढँकि आस्रव[१] जीवें तथा न पाप। इमि जिनहिँ कहिउ संवर[२]-प्रभाव ॥
जहँ जन्म न मरण न जीव पाय। सो नाहि थान वालाग्र-मात्र ॥ (पृ० ३११)

(२) इन्द्रिय शत्रु

ना गम्य अगम्यउ किछउ गनै। अब्रह्म[३] कलुष अभिलाष करै।
सकलत्रहु होतेंउ चहै वेश। पररमणि-गमन प्रकटेंउ किलेश[४] ॥१२॥
शिशिरें हिँ नि-वात घरेऽग्नि सिगडि। घन-घुसृण-तेल बहुवस्त्र सँपडि।
चदन-रस-कुसुम-जलावगाह। धारागृहे[५] ग्रीष्मे चहै न्हाय ॥१३॥
पावस पदपंक प्रसंग स्तव्ध। वाछै अच्छिद्र भवनतल लब्ध।
जो करै विविध-विषयानुवृत्ति। तेंहि विनु न एहु पावही तृप्ति ॥१४॥
एकउ फरसेंद्रिय बुधजन निंदिय करै केंतक दुश्चरित तेंही।
नानाविध जन्में हिँ पीडिय कर्में हिँ सहस विडवन स्वामि जेंही ॥

---

[२] संगम [३] व्यभिचार [४] चित्त-मालिन्य [५] फौवारा-घर

तह भक्खाभक्ख-विवेय-मूढु । रस-विसय-गिद्धि-दोलाधिरूढु ।
अविभाविय पेयापेय वत्थु । रसणुवि कुणेइ बहुविहुं अणत्थु ॥१६॥
ज हरिण-ससय-संबर-वराह । वणि संचरंत अकयावराह ।
तण-सलिल-मत्त-संतुट्ठ चित्त । मम्मर-रव-सवणुब्भंत-नेत्त ॥१७॥
हिंसंति केवि मिगया पयट्ट । पसरंत - निरंतर - तुरयघट्ट ।
कर-कलिय-कुंत-कोदंड-बाण । संसय-तुल-रोविय-नियय-पाण ॥१८॥
जं गहिरि सलिल वियरत मीण निक्करुण केवि निहणहिं निहीण । (४२६)
जं लावय-तित्तिरि-दहिय-मोर । मारेंति अदोसवि केवि घोर ॥१९॥
तं रसणह विलसिउ, दुक्कय कलुसिउ, तुम्हहँ कित्तिउ कित्तियइ ।
ज वरिस-सएणवि, अइनिउणेणवि, कहवि न जंपिउ सक्कियइ ॥२१॥[1]

(३) नरक-भय

तह नरयवासि ज परवसेण । मइँ नरयवाल-मुग्गुर-हएण ।
अवगूढ़ वज्ज-कंटय-सणाहु । सिवलितरु-जणिय-सरीर-बाहु ॥६८॥
कंदंतु कलुणु जं हढिण धरवि । खाविय नियमसु भडित्तु करिवि ।
जं वेयण-विहुरिय-सव्व-गत्तु । हउँ पायउँ तडयउँ तवु तत्तु ॥६९॥
ज पूय - रुहिर - वस - वाहिणीइ । मज्जाविउ वेयरणी - नई ।
ज तत्त-पुलिणि चलउव्व भुग्गु । ज सूलवेह दुह पत्तु दुग्गु ॥७०॥ (४३२)
जं वज्ज-जलण-जालोलि-तत्त । मइँ लोहमइय महिलावसत्त ।
जं महि हिमु कुसई खडु करवि । उद्धिओं खणेण पारउव्व मिलिवि ॥७१॥
ज कुंभिपाकि पक्कओं परद्धु । ज चड-तुंड-पक्खीहि खद्धु ।
जं तिलु'व निपीलिउ लोहजंति । ज वसहि'व वाहिउ भरि महंति ॥७२॥
अच्छोडिओं ज सिचउव्व सिलहिं । करवत्ति भित्तु जं कंठ कयत्तहिं ।
ज तल्लेंउ कढल्लिहिं पप्पडु'व्व । मत्थेहि छिन्नु जं चिब्भडुव्व ॥७३॥
—कुमारपाल-प्रतिबोध[2]

---

[1] वहीं पृष्ठ ४२७ [2] पृ० ४३३

तिमि भक्ष्या-भक्ष्य-विवेक-मूढ । रस-विषय-गृद्धि-दोलाधिरूढ ।
विनु सोचे पेयापेय वस्तु । रसनउ करेइ वहुविध अनर्थ ॥१६॥
जो हरिन-शशक-साँभर-वराह । वनें सचरत अकृतापराध ।
तृण-सलिल-मात्र सतुष्ट चित्त । मर्मर रव-श्रवण-ोद्भ्रात-नेत्र ॥१७॥
हिंसंति केउ मृगया-प्रवृत्त । प्रसरत निरतर तुरग घट्ट ।
करकलित कुत कोदड वाण । सशयतुलाँ रोपिय निजय प्राण ॥१८॥
करकलित कुत कोदड वाण । सशयतुलाँ रोपिय निजय प्राण । निहनैं निहीन ॥ (४२६)
जो गहिर-सलिल विचरत मीन । निष्करुण केउ निहनैं निहीन ॥
जो लावक तित्तिर दधिक मोर । मारति अदोषउ केउ घोर ॥१६॥
सो रसनह-विलसिय दुष्कृत-कलुषित तुम्हहँ कीर्त्तिउ कीर्त्तियई ।
जो वर्ष शतेहूँ, अतिनिपुणेहूँ, कतहुँ न जल्पन शक्कियई ॥२१॥ (पृ० ४२७)

(३) नरक-भय

तहँ नरकवासें जो परवशेहिँ । मैं नरकपाल-मुद्गर-हतेहिँ ।
लिपटिया वज्रकटक-सँनाह[1] । सेमलतरु जनित शरीर-वाध ॥६८॥
ऋदत करुण जो हठेंहिँ धरवि । खाइय निजमास भत्ता करवि ।
जो वेदन-विफुरिय सर्व गात्र । हौं पादेउँ तडपेउँ ताम्र तप्त ॥६९॥
जो पूत रुधिरवश वाहिनीइ । मज्जावेंउ बैतरणी-नदीइ ।
जो तप्तपुलिनें चलताहु भोगु । जो शूलवेध दुख पाव दुर्ग ॥७०॥ (४३२)
जो वज्र ज्वलन ज्वालालितप्त । मैं लोहमयी महिलावसक्त ।
जो महि हिम कुशईं खड करबी । उट्ठिय क्षणेंहिँ पारउ मिलबी ॥७१॥
जो कुंभिपाके पाकेंउ परार्ध । जो चड-तुड-पक्षीहिँ खाद्य ।
जो तिल'व निपीडेंउ लोहयंत्रें । जो वृषभ'व वाहेंउ भरें महंत ॥७२॥
आ-छोडेंउ जो पटइव शिलहिँ । करपत्रें भिद्यउ जो कंठ तलहिँ ।
जोतलेंउँ कडाहिहिँ पापडें'व । शस्त्रेहिँ छिदेंउँ जो ककडि ईव ॥७३॥ (४३३)

—कुमारपाल-प्रतिबोध

---

[1] कवच

§ ३७. जिनपद्म सूरि

काल—१२०० ई०। देश—गुजरात। कुल—जैन साधु।

१—ऋतु-वर्णन

पावस—

झिरिमिरि झिरिमिरि झिरिमिरि ए मेहा वरिसंति।
खलहल खलहल खलहल ए वादला वहंति।
झबझब झबझब झबझब ए वीजुलिय झक्कइ।
थरहर थरहर थरहर ए विरहिणि मणु कंपइ ॥६॥
महुर गंभीर सरेण मेह जिमि जिमि गाजंते।
पंचवाण निय-कुसुम-वाण तिम तिम साजंते।
जिम जिम केतकि महमहंत परिमल विहसावइ।
तिम तिम कामिय चरण लग्गि निय रमणि मनावइ ॥७॥
सीयल कोमल सुरहि वाय जिम जिम वायंते।
माण-मडफ्फर माणणिय तिम तिम नाचते।
जिम जिम जलभर भरिय मेह गयणंगणि मलिया।
तिम तिम कामीतणा नयण नीरहि झलहलिया ॥८॥
भास। मेहारव भर रुलटिय, जिमि जिमि नाचइ मोर।
तिम तिम माणिणि खलभलइ, साहीता जिमि चोर ॥९॥

—थूलिभद्द-फागु[1]

---

[1] पृष्ठ ३८-३९

§ ३७. जिनपद्म सूरि

कृति—थूलिभद्द-फाग।

१—ऋतु-वर्णन

पावस—

झिरझिर झिरझिर झिरझिर ए, मेघा वरसति।
खलखल खलखल खलखल ए, वादला वहंति ॥
झबझब झबझब झबझब ए, वीजुली झबक्कै।
थरथर थरथर थरथर ए, विरहिनि मन कंपइ ॥
मधुर गभीर स्वरें मेघ जिमि जिमि गाजते।
पंचवाण निज-कुसुम-बाण तिमि तिमि साजंते ॥
जिमि जिमि केतकि महमहंत परिमल विहसावै।
तिमि तिमि कामिय चरण लागि निज रमणि मनावै ॥७॥
शीतल कोमल सुरभि वायु, जिमि जिमि वायते।
मान-मडफ्फर[1] माननिय, तिमि तिमि नाचंते ॥
जिमि जिमि जलभर भरिय, मेघ गगनागनें मिलिया।
तिमि तिमि कामीकेर नयन, नीरहिँ झलझलिया ॥८॥
भास। मेघारव भर उलसिय, जिमि जिमि नाचैं मोर।
तिमि तिमि माननि खलवलै, साहीता[2] जिमि चोर ॥९॥
—थूलिभद्द-फागु (पृ० ३८-३९)

---

[1] गर्व [2] पकड़ा

२–सामन्त-समाज

(१) शृङ्गार-सजाव

अइ सिंगारु करेइ वेस मोटउ मन ऊलटि।
रइयरंगि बहुरंगि चंगि[1] चंदणरस ऊगटि।
चंपय केतकि जाइ कुसुम सिरि खुप भरेइ।
अति आछउ सुकुमाल चीरु पहिरणि पहिरेइ ॥१०॥
लहलह लहलह लहलह एँ उरि मोतियहारो।
रणरण रणरण रणरणएँ पगि नेउर सारो।
गमग गमग गमग ए कानिहि वरकुंडल।
झलझल झलझल झलझल ए आभरणहँ मंडल ॥११॥
मयण-खग्ग, जिम लहलहंत जसु वेणी दण्डो।
सरलउ तरलउ सामलउ रोमावलि दण्डो।
तुंग पयोहर उल्लसइ सिंगार थपक्का।
कुसुमवाणि निय अमियकुंभ किर थापणि मुक्का ॥१२॥
भास। काजलि अंजिवि नयणजुय, सिरि सथउ फाडेई।
वोँरियावडि कांचुलिय पुण, उरमंडलि ताडेई ॥१३॥
कन्नजुयल जसु लहलहंत किर मयण हिंडोला।
चंचल चपल तरंग चंग जसु नयणकचोला।
सोहइ जासु कपोल पालि जणु गालि मसूरा।
कोमलु विमलु सुकंठ जासु वाजइ सँखतूरा ॥१४॥
लवणिम-रसभर कूवडीय जसु नाहिय रेहइ।
मयणराइ किर विजयखंभ जसु ऊरु सोहइ।

---

[1] अच्छा

२—सामन्त-समाज

(१) शृंगार-सजाव

अति शृंगार करेइ वेष मोटै मन ऊलटि,
रचितरग बहुरग चग चदन रस ऊवटि[1]।
चंपक-केतकि-जाति-कुसुम शिर-खोप भरेई,
अति-आछउ सुकुमार चीर पहिरन पहिरेई ॥१०॥
लहलह लहलह लहलहए उर मोतिय हारो,
रणरण रणरण रणरणइ पग नूपुर सारो।
जगमग जगमग जगमगै कानहिँ वर-कुडल,
झलमल झलमल झलमलै आभरणहँ मडल ॥११॥
मदन खड्ग जिमि लहलहंत जसु वेणी-दडो,
सरलउ तरलउ श्यामलउ रोमावलि-दडो।
तुग पयोधर उल्लसै शृगार स्तवक्का,
कुसुम-वाण निज अमृतकुभ जनु थापन रक्खा ॥१२॥
भास[2]। काजल अजिय नयन युग, सिर सैंथौ[3] फाडेइ।
बोँरिपट्टी[4] कंचुकिय पुनि, उरमडल ताड़ेइ ॥१३॥
कर्ण-युगल जसु लहलहत जनु मदन हिडोला,
चचल चपल तरग चग जसु नयन-कचोला[5]।
सोहै जासु कपोल-पालि जनु गरल मसूरा,[6]
कोमल विमल सुकठु जासु बाजै शँख-तूरा ॥१४॥
लवणिम रसभर कूपडीयं[7] जसु नाभिय राजै,
मदनराय कर विजय खंभ जसु ऊरू सोहै।

---

[1] उबटन [2] छन्द विशेष [3] माँग [4] लिलारी [5] कटोरा [6] फूला [7] कुईं

जसु नह-पल्लव कामदेव-अंकुसु जिम राजइ ।
रिमझिमि रिमझिमि पायकमलि घाघरिय सुवाजइ ॥१५॥
नवजोवन विलसंत देह नवनेह गहिल्ली ।
परिमल लहरिहि मदमयंत रइ-केलि पहिल्ली ।
अहरबिंब परवाल खण्ड वर-चंपावन्नी ।
नयन सलूणिय हावभाव वहुगुण संपुन्नी ॥१६॥
इय सिणगार करेवि वर, जव आवी मुणिपासि ।
जो एवा कउतिगि मिलिय, सुर-किंनर आकासि ॥१७॥
—वही पृ० ३९-४०

(२) हाव-भाव

नयणकडक्खिय आहणएँ वाँकड जोवन्ती ।
हावभाव सिणगार भंगि नवनविय करंती ।
तहवि न भीजइ मुणि-पवरो तउवेस वोँलावइ ।
"तवणु तुल्लु तुह देह नाह ! महतणु सतावइ ॥१०॥
बारह वरिसहँ तणउ नेहु किणि कारणि छाडिउ ।
एवडु निठुरपणउ कइ मूसिउ तुम्ही मंडिउ ।
थूलिभद्द पभणेइ वेस ! अह खेदु न कीजइ ।
लोहिहि घडियउ हियउ मज्झ तुह वयणि न थीजइ ॥१९॥
मह विलवंतिय उवरि नाह अणुराग धरीजइ ।
रिसु पावसु-कालु सयलु मूसिउ माणीजइ ।
मुणि-वइ जपइ वेस ! सिद्धि रमणी परिणेवा ।
मणु लीणउ संजम सिरी सुं भोग रमेवा ॥२०॥
—वही[1]

---

[1] पृष्ठ ४०

जसु नख-पल्लव कामदेव-अंकुश जिमि राजै,
रिमझिम रिमझिम पादकमल घाघरिय सुबाजै ॥१५॥
नवयौवन विलसत देह नवनेह-गहिल्ली,[1]
परिमल लहरेंहि मदमदत रतिकेलि पहिल्ली।
अधरबिंब पर-वाल-खड वर-चपा-वर्णी,
नयन सलोनिय हावभाव बहुगुण-सपुर्णी ॥१६॥
इमि शृंगार करीय वर, जब आई मुनि पास।
जोयेबा कौतुक मिलेँउ, सुर-किन्नर आकास ॥१७॥
—वही पृ० ३९–४०

(२) हाव-भाव

नयन-कटाक्षहँ आहनई वाको जोयती,
हाव-भाव शृंगार-भगि नव-नविय करंती।
तबउ न वींधै मुनि-प्रवरो तब वेश बोंलावै,
"तपन तुल्य तुव देह नाथ! मम तनु संतापै ॥१८॥
बारह वर्षहँ केर नेह केहि कारण छड्डिउ,
एवड[2] निठुरपनइ का मोसे तुम मड्डिउ[3]।"
थूलिभद्र प्र-भनेइ "वेश[4]! इह खेद न कीजै,
लोहेंहि गढियउ हृदय मोर. तुव बचन न बिंधै ॥१९॥"
"मम विलपंतिय उपर नाथ! अनुराग धरीजै,
ऐसो पावस-काल सकल मोसो मानीजै।"
मुनिपति जल्पै "वेश! सिद्धि-रमणी परिणेवा।
मन लीनउ सयम श्री सों भोग रमेवा ॥२०॥"
—थूलिभद्द-फाग पृ० ४०

---

[1] ग्रहण किये [2] इतना [3] शुरू किया [4] वेश्या

§ ३८: विनयचंद्र सूरि

काल—१२०० ई० (?)। देश—गुजरात। कुल—...जैन साधु।

विरह-वर्णन

(बारहमासा)

नेमि कुमरु सुमरवि गिरनारि। सिद्धी राजल कन्न-कुमारि।
श्रावणि सरवणि कडुय मेहु। गज्जइ विरहिनि भिज्जइ देहु।
विज्जु झबक्कइ रक्खसि जेव। नेमिहि विणु सहि सहियइ केम ॥२॥
सखी भणइ सामिणि मन भूरि। दुज्जण-तणा म वछिति पूरि।
गयउ नेमि तउ विणठउ काइ। अछइ अनेरा वरह सयाइ ॥३॥
बोलइ राजल तउ इहु वयणु। नत्थी नेमी सम वर-रयणु।
धरइ तेजु गहगण सविताव। गयणु न उग्गउ दिणयरु जाव ॥४॥
भाद्रवि भरिया सर पिक्खेवि। सकरुण रोअइ राजलदेवि।
हा एकलडी मइ निरधार। किम ऊवेषिसि करुणासार ॥५॥
भणइ सखी राजल मन रोइ। नीठुरु नेमि न अप्पणु होइ।
सिंचिय तरुवर पारि पलवंति। गिरिवर पुणि कड-डेरा हुंति ॥६॥
साँचउ सखि वरि गिरि भिज्जति। किमइ न भिज्जइ सामलकंति।
घण वरिसंतइ सर फुट्टन्ति। सायरु पुण घण ओह डुलिंति ॥१७॥
आसोमासह असु-पवाह। राजल मिल्हइ विणु नमि नाह।
दहइ चद चंदण हिम सीउ। विणु भत्तारह सउ विवरीउ ॥८॥
—चतुष्पादिका[1]

सखि नवि खीना नेमि हिरेसि। मन आपणपउ तउ खय नेसि।
जिणि दिक्खाड़िउ पहिलउ छोहु। न गणिउ अट्ठ भवंतर-नेहु ॥६॥
नेमि दयालू सखि निरदोसु। कीजइ उग्रसिण पर रोसु।
पसुय भराविउ मूकउ वाट्ट। मुझु प्रिय सरिसउ कियउ विहाडु ॥१०॥

---

[1] प्राचीन-गुर्जर-काव्य-संग्रह

§ ३८: विनयचंद्र सूरि

कृति—नेमिनाथ-चतुष्पादिका[1]

विरह-वर्णन

(बारहमासा)

नेमि कुमर सुमिरिय गिरनार। सिद्धी राजल कन्य-कुमारि।
श्रावण श्रवणे कडूआ मेह। गर्जै विरहिन छीजै देह।
विज्जु झमक्कै राक्षसि जेम। नेमि विना सखि! सहियै केम ॥२॥
सखी भनै "स्वामिनि! मन झूर। दुर्जन करे न वाँछित पूर।
गयें उ नेमि तव विवशें उ काइ। आछै अन्यहुँ वरहुँ शताइँ ॥३॥"
बोलै राजल "तव एँहु वयन। नाही नेमि सम वर-रत्न।
धरै तेज ग्रह-गण सव ताउ। गगन न ऊगै दिनकर जाउ ॥४॥"
भादों भरिया सर पेखेइ। सकरुण रोवै राजल-देइ।
"हा एकलडी मै निराधार। का- उद्वेजिस करुणासार ॥५॥
भनै सखी राजल मन रोइ। "नीठुर नेमि न आपन होइ।
सिंचिय तरुवर परि प्लवंति। गिरिवर पुनि करडेरा होंति ॥६॥
साँचउ सखि! वारि गिरि भिद्यति। काहु न भिद्यै श्यामल काति।
घन वर्षन्ते सर फूटति। सागर पुनि घन-ओघ डुलंति ॥७॥"
आश्विन मासहँ आँसु-प्रवाह। राजल मेलै[2] विन नेमि नाह।
दहै चद चदन हिम शीत। विनु भर्त्तारिहँ सँगउ विपरीत ॥८॥
—चतुष्पादिका
"सखि! ना क्षीणा नेमि हृदेश। मन आपनयौ तउ क्षय लेस।
जिन देखाड़े उ पहिलउ छेह[3]। न गणें उ आठ भवांतर[4]-नेह ॥९॥
नेमि दयालू सखि! निर्दोष। कीजै उग्रसेन पर रोप।
पशू भरायें उ मूकें उ वाड। मम प्रिय सरिसउ कियउ विगाड ॥१०॥

---

[1] "प्राचीन-गुर्जर-काव्य-संग्रह', G.O.S. Vol. XIII (वड़ोदा) 1920
[2] छोड़ै [3] आशा-भंग [4] जन्मांतर

कत्तिग क्षित्तिग उग्गइ सझ। रजमति झिज्झिउ हुइ अतिझंझ[1]।
राति दिवसु आछइ विलपंत। वलिवलि दय करि दयकरि कंत ॥११॥
नेमितणी सखि मूकि न आस। कायरु थग्गउ सो घरवास।
इमइ ईसि सनेहल नारि। जाइ कोइ छांडवि गिरिनारि ॥१२॥
कायरु किमि सखि नेमि जिणिदु। जिमि रिणि जित्तउ लक्खु नरिंदु।
फुरइ सासु जा अग्गलि नास। ताव न भिल्लउ नेमिहिं आस ॥१३॥
मगसिरि मग्गु पलोअइ वाल। डणयरि पभणइ नयण विसाल।
जो मइ मेलइ नेमि कुमार। तसुणी वेल वहुउ सवि वार ॥१४॥
एहु कयाग्रहु तउ सखि मिल्हि। करसु काइ तिणि नेमिहि हिल्लि।
मंडि चडाविउ जो किर मालि। हे हे कु करइ रोहणि कालि ॥१५॥
अठभव सेविउ सखि मइ नेमि। तासु समाहुउ किम न करेमि।
अवगन्नेसइ जइ मइ सामि। लग्गी आछिसु तोइ तसु नामि ॥१५॥
पोसि रोस सवि छोडिवि नाह। राखि राखि भइ मयणह पाह।
पडइ सीउ नवि रयणि विहाइ। लहिय छिद्द सवि दुक्ख अमाइ ॥१७॥
नेमि नेमि तू करती मुद्धि। जुंव्वणु जाइ न जाणिसि मुद्धि।
पुरिस-रयण भरियउ संसारु। परणु अनेरउ कुइ भत्तारु ॥१८॥
भोली तउ सखि खरी गमारि। वारि अछतइ नेमि कुमारि।
अन्न पुरिसु कुइ अप्पणु नडइ। गइवरु लहिउ कु रासभि चडइ ॥१९॥
माहमासि माचइ हिम रासि। देवि भणइ मइ प्रिय लइ पासि।
तइ विणु सामिय दहइ तुसारु। नवनव मारिहि मारइ मारु ॥२०॥
इहु सखि रोइसि सहू अरन्नि। हत्थि कि जामइ घरणउ कन्नि।
तउ न पती जिसि माहरि माइ। सिद्धि रमणि रत्तउ नमि जाइ ॥२१॥
कंति वसंतइ हियडामाहि। वाति पहीजउं किमहि लसाइं।
सिद्धि जाइ तउ काइ त बीह। सरसी जाउत उगसेण-धीय ॥२२॥
फागुण वागुणि पन्न पडंति। राजल दुक्खि कि तरु रोयति।
गब्भि गग्गिवि हुउ काइ न मूय[2]। भणइ विहंगल धारणि धूय ॥२३॥

१ — २ —

कातिक क्षित्तिग ऊगै साँझ। रजमति छीजेउ होइ अति झाँझ।
रातिं-दिवस आछै विलपत। "वलि वलि दयाँ करु दयाँ करु कत" ॥११॥
नेमि केर सखि मुचउ आश। कायर भागेँउ सो घर-वास।
एँहु ऐसीह सनेहल नारि। जाइ कोइ छाडिय **गिरिनार**" ॥१२॥
"कायर का सखि ! नेमि जिनेद्र। जिन रणेँ जीतेँउ लाख नरेन्द्र।
फुरै श्वास जौ आगल नास। तौ लोँ न छोडउँ नेमिहि आश ॥१३॥"
मगसिर मार्ग प्रलोकै बाल। ऐसोँ प्रभनै नयन-विशाल।
"जो मोँहि मिलवै नेमिकुमार। तसु उपकार बहुउ सब वार" ॥१४॥
"एहु कुआग्रह तव सखि ! मेलु[1]। करसि काह तिन नेमिहिँ हिल्ल।
मंडेँ चढ़ायेँउ जो पुनि माल। हे हे को करै टोग्रन[2]-काल" ॥१५॥
अठ भव सेवेँउँ सखि ! मै नेमि। तसु ऊमाइ[3] किमि न करेमि।
अवश छिजीहै जो मोँहिँ स्वामि। लागी रहोँ तऊ तसु नाम" ॥१६॥
'**पूस** रोष सब छाड़हु नाह। राखु राखु मोहिँ पद-नह-पाँह।
पडै शीत ना रजनि विहाइ। लहिय छिद्र सव दु:ख अमाइ" ॥१७॥
"नेमि नेमि तू करती मुग्धेँ। यौवन जाइ न जानसि शुद्ध।
पुरुष-रतन भरियउ ससार। परनहु अन्य कोँई भर्तार" ॥१८॥
"भोली तैँ सखि ! खरी गँवारि। वर अच्छते नेमिकुमार।
अन्य पुरुष कोँइ आपन नहई। गज-वर लहे कोँ रासभ चढई" ॥१९।
माघ मास मातै हिम-राशि। देवि भनै "मोहिं प्रिय लेउँ पास।
तव विनु स्वामिय ! दहै तुषार। नवनव मारहिं मारै मार" ॥२०
"एँहु सखि रोवसि जिमि आरण्येँ। हाथ कि जोये धरियौँ कर्णेँ।
तौ न पतीजसि हम्मर माइ। सिद्धि-रमणि-रातो नेँमि जाइ" ॥२
कंत वसतै हियरा-माँहि। बात पहीजी किमिहि लसाइ।
सिद्धि जाइ तोहि काई भीय[4]। ओहि सँग जाऊ उगसेँन-धीय" ॥:
फागुन पवना पर्ण पडति। राजल दु:ख कि तरु रोवंति।
"गर्भ गलिय हौँ काह न मूय।" भनै विहव्वल धारणि-धूय[5]।

अजिउ भणिउ करि सखि विम्भासि । अछइ भला वर नेमिहि पास ।
अनुसखि मोदक जउ नवि हुंति । छुहिय सुहाली किन रुच्चंति ॥२४॥
भणह पासि जइ वहिलउ होइ । नेमिहि पासि ततलउ ना कोइ ।
जइ सखि वरउँ त सामल-धीरु । घण विणु पियइ कि चातक नीरु ॥२५॥
चैत्र मासि वणसइ पंगुरइ । वणि वणि कोयल टहका' करइ ।
पचवाणि करि धनुप धरेवि । वेझइ मांडी राजल देवि ॥२६॥
जुइ सखि ! मातउ मासु वसतु । डणि खिल्लिज्जइ जइ हुइ कंतु ।
रमियइ नवनव करि सिणगारु । लिज्जइ जीविय जुव्वण-सारु ॥२७॥
भुणि सखि मानिउ मुझु परिणयणु । नवि ऊपरि थिउ वधव-वयणु ।
जइ पडवन्नइ चुक्कइ नेमि । जीविय जुव्वणु जलणि जलेमि ॥२८॥
वइसाहह विहसिय वणराइ । मयणमित्तु मलयानिलु वाइ ।
फुट्टिरि हियडा माझि वमतु । विलपइ राजल पिक्खउ कंतु ॥२९॥
सखी दुक्ख वीसरिवा भणइ । "सभलि भमरउ किम रुणझुणइ ।
दीस पचथिरु जोव्वणु होइ । खाउ पियउ विलसउ महु कोइ ॥३०॥
रमणि पससिय राजल-कन्न । जीह कतु वसि ते पर धन्न ।
जसु पउ न करइ किमइ मुहाडि । सा हउँ इक्क ज भुंटनि लाडि ॥३१॥
जिट्ठ विरहु जिमि तप्पइ सूरु । छण वियोगि सुसिय नइ पूरु ।
पिक्खिउ फुल्लिउ चपइ विल्लि । राजल मूछी नेह गहिल्लि ॥३२॥
मूछी राणी हा सखि धाउं । पडियउ खडइ जेवडु घाउ ।
हरि मूछा चदण पवणेहि । सखि आसासइ प्रिय-वयणेहि ॥३३॥
भणइ देवि विरती ससार । पडिखि पटिखि मइ जाउव सार ।
नियपडिवन्नउ प्रभु सभारि । भइ लइ सरिसी गढि गिरिनारि ॥३४॥
आसाढह दिठु हियँउ करेवि । गज्जु विज्जु सवि अवगन्नेवि ।
भणइ वयणु उगसेणह जाय । करिसि धम्मु सेविसु प्रिय पाय ॥३५॥
मिलिउ सखी राजल पभणति । निणय जेम नमिरिय खण्णंति ।
अउगी अच्छि सखि ! झगि मन ग्राल । तगु दोहिल्लउ तर्उ मुगमार ॥३६॥

—नेमिनाथ-चतुष्पदिका[1]

[illegible]

अजउ भनेँउ कर सखी विमर्षि । अछै भलो वर नेमिह-पास ।
"पुनि सखि । मोदक यदि ना होति । छुधितेँ सोँ हारी किन रुच्चंति ॥२४॥
"मनह पास यदि जल्दी होइ । नेमिहिँ पास तेँतनउ ना कोइ ।
यदि सखि ! वरौ त श्यामल-धीर । घन विनु पियै कि चातक नीर" ॥२५॥
चैत्र मास वनसपती अँकुरै । वन-वन कोयल टहका करै ।
पंच-वान केँर धनुष धरेवि । वेधै लक्षिय राजल-देवि ॥२६॥
"जोँउ सखि ! मातेँउ मास वसंत । इमि खेलीजै यदि होँइ कत ।
रमियै नव नव कर शृगार । लीजै जीवित यौवन-सार" ॥२७॥
"सुनु सखि ! मानेँहु मम परिणयन । ना ऊपर ठिय वाधव-वयन ।
यदि प्रतिपन्ना चूकै नेमि ! जीवित यौवन ज्वलनेँ जलेमि ॥२८॥
बैशाखह विहसिय वनराजि । मदनमित्र मलयानिल वाइ ।
फुट्टिय हियरा माँझ वसंत । विलपै राजल पेखिय कत ॥२९॥
सखी दुःख बीसरिबा भनई । "सुनु सुनु भ्रमरउ का रुनझुनई ।
"दिवस पच थिर'यौवन होइ । खाहु पियहु विलसहु सव कोइ" ॥३०॥
रमण प्रशसिय राजल-कन्य । "जाहि कत वशेँ ते पर धन्य ।
जसु पिय न करै किछुउ पुछारी । सो हौँ एकइ फूट-लिलारी" ॥३१॥
जेठ विरह तप्पै जिमि सूर । घन-वियोगेँ सुखियो नदि-पूर ।
पेखेँउ फुल्लिय चपक-वेल्लि । राजल मूर्छी नेह-गहिल्लि ॥३२॥
"मूर्छी रानी हा सखि ! धाव ! पडियउ खंडह जेवड़ घाव ।"
हरि मूर्छा चदन पवनेहिँ । सखि आश्वासै प्रिय-वचनेंहिँ ॥३३॥
भनै "देवि ! विरती-संसार । परिख परिख मैं जानेँउ सार ।
निज प्रपन्नउ[1] प्रभु सम्हारि[2] । मोँहि लइ साथे गढ गिरनार ॥३४॥
आषाढ़ह दृढ हियडँ करेवि । गर्ज विज्जु सव अवगण नेवि ।
भनै वचन उगसेनहँ जाय । करिसि धर्म सेविसि प्रिय-पाय ॥३४॥
"मिलिउ सखी !" राजल प्रभनति । चना जेम न मिरिच्च खाद्यति ।
एकली अच्छ[3] सखि ! झँख मन आल[4] । तप-दोहिल्लउ[5] तूँ सुकुमार ॥३५॥
—नेमि-चौपाई (पृ० ९-१०)

---

[1] होनेवाला पति [2] याद करके [3] हूँ [4] मिथ्या [5] दुर्लभ

§ ३९. चन्दबरदाई

चंदबरदाई। काल—१२०० ई०। देश—लाहौर-दिल्ली। कुल—भाट। कृति—पृथिवीराज-रासो[1]

१—हिमालय-वर्णन

सकल भूमि कौ भेद राज जानै ए भग्गै।
अति सु-विकट वन-जूह चढै सग्राम न होई॥
अश्व-पाय गज-पाय चढन किहि ठौर न कोई।
वनविकट जूह परवत गुहा वरवेहर वंकम विषम॥
दारु भयानक अति सरल ब्रर प्रस्तर जल नहिं सुषम।

झरै झरनि झोर-सु आघात सोरं जिने मद्द या सद्द ता श्रंग मोरं
हय तज्जि राज चलै हत्थ डोर इथं इक्क पच्छौ विय जन जोर।
वजै सद्द-सद्दं परच्छंद उट्ठै सुनै कन सोर सुधीरज्ज छुट्टै
इकं होइ राजं पथं सन्त रूधै दिये हत्थ तारी तिन को न बूधै।

२—सामन्त-समाज

(१) राजा वीसलदेवकी प्रशंसा

धर्माधिराज रति जोग भोग पट पुट णित्ति पग्गह सु-भोग
जग दुप्प वीर वीसल नरिंद महापाप न्त द्रव्यान अंध

[1] वर्तमान रूप १६वीं सदीसे पहिलेका नहीं है।

क्त अक्ति काम क्रितहू सु कीन जिन असुर घोर षनि द्रव्य लीन
ससार थागि पुनि द्रव्य काज उपजाई मति अजमेर राज

कोडी सु मोल गज कियौ एक लीयो न किनहू किरि सहर नेक
कामध अघ सुज्झयो न काल हुक अहक जोरि गिरि इक्क भाल

चलल्यौ न राज नीतिहू प्रमान आनीत वधि नृप थान थान
सुज्झयौ न ध्रम्म चलल्यौ प्रमान मुकजो निगम्म करि अगम-मान

अब लोहू छोहू छांडिय सु-किति मुक्कयो ध्रम आध्रम जिति
दरबार अतिथि दीसै न कोइ अप्प-सुहू किति संभरै लोइ

चौसठि बरस वर राज कीन पायौ न पुण वर सुयष हीन

—पृथ्वी०रासो—पृ० ७८-७९

आनन्द अग्ग पर इन्द्र सम ध्रंम्म नंद जस उव्वरै।
अजमेर नयर अरिजेर कारि विमल राज बीसल करै॥

वर पट्टन अट्टन अमित समित वेद फुनि राज।
समय अंत बीसल सिरहू धर्यौ छत्र सम साज॥

—पृ० रा०—पृ० ९१

(२) श्रृंगार-रस

रतिराज रु जोवन राजत जोर, चँप्यो सिसिर उर सैसव-कोर।
उनी मधि मडखि मघू वृनि होड, तिन उपमा बरनी कवि कोइ।

सुनी वर आगम जुव्वन वैन, नव्यो कवहू न गुरहिय मैन।
कवहूँ छुरि कन न पुच्छत नैन, कहो किन अव्व छुरी छुरि वैन।

ससि रोरन सैंसव दुंदुभि वज्जि, उथै रतिराज सजोवन सज्जि।

कही वर श्रोन सुरंगिय रज्जि, भये नर दोउ वनंवन भज्जि।

इय मीन नलीन भये रत रज्जि,

भय विभ्रम भाइ परी नहि नजि।

सुनि प्रथम बालिय रूप, वरवाल लच्छिन रूप।

अहिसधि सैंसव-याल, अजु अरक राका हाल।

सैंसव सुसूर समान, वयचद चढ़न प्रमान।

सैंसव्व जोवन एल, ज्यों पथ पथी मेल।

परि भोंह भवर प्रमान, वै वुद्धि अच्छरि आन।

द्रिग स्याम सेत सुभाग, सावक्क मृग छुटि वाग।

विय दृगन ओपम कोउ, सिसभ्रंग पजन होउ।

वरवरन नासिक राज, मनि जोति दीपक लाज।

गतिसियाँ पतंग नसाव, ओपम दे कवि आव।

नासिक्क दीपन साल, झँप दत पजन-श्राल।

विय वरल जोवन सेव, ज्यों दपती हथलेव।

वैसंधि संधिय चिद, ज्यों मत्त जुरहि गुंविद।

तुछ रोमराज विसाल, मनो अग्गि उग्गिय वाल।

कुच तुच्छ तुच्छ समूर, मनों कामफल-अकूर।

वयरूप ओपम एह, जा जनक नृप कर देह।

वर छिन्न थक्कत नेह, मनों काम झपन देह।

वै संधि कविवर वंध, ज्यों वृद्ध वाल विवंध।

वै संधि संधि प्रामन, ज्यों गृर ग्रहन प्रमान।

वै राहु ससि गिलि सूर, नव ग्रह (प्र)मत्त करूर ।
　　　　वरबाल वै सधि एह, सिक्कार काम करेह ।
लसकरे लसलसि छंडि, चितरक दीन समडि ।
　　　　कर्‍यो सुन्नान कामिनी, दिपत मेघ दामिनी ।
सिंगार षोडसं करे, सुहस्त दर्पन धरे ।
　　　　वसन्न वासि वासन, तिलक्क भाल भासनं ।
दुनैन, अैन अंजए, चलं चलत षजए ।
　　　　सुहृत श्रोन कुडलं, ससी रवी कि मंडलं ।
सुमुत्ति नास सोभई, दसंन दुत्ति लोभई ।
　　　　अनेक जाति जालित, धरंत पुप्फ मालितं ।
झँकार हार नोपुर, घमकि घुघर धुर ।
　　　　विलेपि लेपचदन, कसी सु कंचुकी घन ।
सुछुद्र घटि घटिका, तमोल आय अटिका ।
　　　　कनक्क नग्ग कंकन, जरे जराइ अंकनं ।
बिसाल वानि चातुरी, दिषन रभ आतुरी ।
　　　　अनेक दुत्ति अंगकी, कहंत जीभ भगकी ।
निसि थट्टिय-फट्टिय तिमिर, दिसि रत्ती धवलाइ ।
　　　　सैसव में जुव्वन कछ, तुच्छ तुच्छ दरसाइ ।
दक्षिन वृत्त सुनाभि, तुग नासा गजगमनी ।
　　　　सासनि गध रुपं जु चारु, कुटिल केस रतिरमनी ।
वरजघन मृदुपथु सुरंग, कुरग लज्जे छविहीनं ।

(३) युद्ध

(क) वीर-रस

हत्थ हत्थ सुज्झै न, मेघ डभरि मडि रज्जी।
निसि निसीथ अंतरो, भान उत्तरि सथ सज्जी ॥
विज्ज वीर झलकत, पवन पच्छिम दिसि वज्जै।
मोर सोर पप्पीह, अवनि सक्रित घन गज्जै ॥
बटी जु सिलह निसि सत्तमिलि, सधिय पग दरबार दिसि।
चामडराय दाहर ननै, लरन लोह कड्ढे तिरसि ॥
पच्छै भौं संग्राम, अग्ग अपछर बिच्यारिय।
पुच्छै रभ मेनिका, अज्ज चित्त किमि भारिय ॥
तब उत्तर दिय फेरि, अज्ज पहुनाई आइय।
रथ्थ बैठिग्रौ थान, सोभ तह कज न पाइय ॥
भर सुभर परे भारत्थभिरि, ठाम ठाम चुप जीत सधि।
उयकीय पथ हल्लै चल्यो, सुथिर सभौ देखिय नभ ॥

(ख) रण-यात्रा

ढलकत ढाल तरवर प्रमान, हल्के हलत गज नग-समान।
अपसकुन सकुन चितहि न चित्त, निरिमान वन्त गुन धरत तत्त।
कदवति सलिल जहाँ सलिलपक, चितचित्त टवंक जे करें कंक।
चल्ले नरिंद अरि पुब्द गाव, भुमिया ससंक गय लगत पाव।
गढ घेरि पंग किअ अप्रमान, मानों कि मेरि पारस्स भान।

पंगह सुवीर गढ करि गिरद्द, जनु सर्वरि परस चदा सरद्द ।
गोरी नरिंद हय-गय-सुभर, सजि आयौ उप्पर सुग्रय ।
चैत मास रवि तीज, सेत पष्षह कल चदह ।
भयौ सुदिन मध्यान, चढचो प्रथिराज नरिंदह ।।
कटक सबर हिल्लोर, भार सेसह करि भग्गिय ।
चढि सामत सकज्ज, नद्द सुर अमर जग्गिय ।।
गज रोर सोर बधे घटा, सिलह वीज सिल कार्बलिय ।
पप्पीह चीह सह नाइ सुर, नदि घग्घर मैलान दिय ।।

(ग) युद्ध-वर्णन

पंग जंगं षुलं । कूह मच्ची हूल ।। सार तुट्टे पल । षग्ग मच्चे षलं ।।
हाल हालाहल । सोव्व वित्थौ तल ।। गिद्ध कोलाहलं । अत दती रुलं ।।
उद्ध पीय छल । चर्म अस्ति तल ।। वीर निद्धी चल । सिद्ध ठट्टे रुलं ।।
संभु माल गल । व्रम्ह चिता चल ।। भूत वित्ता तल । पत्थ पारथ्थलं ।।
देव देवानल । फट्टि फारक्कल ।। घाय वज्जे घल । सूर घुम्मै रुलं ।।
तार चौसट्ठिल । वाइ भूतं तल ।। रीति पच्छी षिनं । तार आयासनं ।।
सूर उग्यौ नन । कोट चड्ढे फन ।।
जहाँ उत्तरचो साहि चिन्हाव मीर । तहाँ नेज गडचो ढढुक्के पुँडीरं ।।
करी आन साहाव सावधि गोरी । धकी धीँग धिंग धकावै सजोरी ।।
दोऊ दीन दीन कढी वकि अस्सि । किधौं मेघमे वीजु कोटि निकस्सि ।।
किए सिग्घर कोरता सेल अग्गी । किधौं वद्दर कोर नागि न नग्गी ।।
हवक्के जु मेछ भ्रमत ज छुट्टै । मनो घेरनी घुम्मि पारेव तुट्टै ।।
उर फुट्टि बरछी वरं छव्वि नासी । मनो जालमे मीन अद्धी निकासी ।।

लटक्के जुरं नं उडै हंस हल्लै । रसं भीजि सूरं चवग्गान पिल्लै ॥
लगे सीस नजा भ्रमं भेजि तथ्थें । भषे वाइसं भात दीपत्ति सथ्थें ॥
करै मार मार महावीर धीर । भए मेघधारा वरष्षंत तीरं ॥
परे पच पुडीर सा चद कढचौ । तवै साहि गोरी स चन्हाव चढचौ ॥
घर धरकि धाहर करवि काइर रसमिसू रस कूरय ॥
गजघंट घनकिय, रुद्र भनकिय, षनकि सकर उद्दयो ।
रननंकि भेरिय कन्ह हेरिय, दति दान घनंदयौ ॥
वर वंवरं चोरं माही ति साई । हले छत्र पोतं वले यार घाई ॥
वुले सूर दृक्के दहक्के पचार । घले वथ्थ दोऊ धर जा अपारं ॥
उतंमंग तुट्टै परै श्रोन धारी । मनो दण्ड सुक्की अगीवाड वारी ॥
नचै कववध दकै सीस भारी । तहाँ जोग-माया जकी सो विचारी ॥
सोलंकी माधव नरिंद, पान पिलजी मुख लग्गा ।
सवर वीररस वीर, वीर वीरा रस पग्गा ॥
दुअन वुड्व जुव तेग, दुहुँ हत्थन उब्भारिय ।
तेग तुट्टि चालुक्क, वथ्थ परिकड्ढि कटारिय ॥
लइ वग्ग कैमास वीरं अमान । धमके धरा गोम गण्णे गुमानं ॥
उते उप्परी वाग तत्तार पान । मिले हिंदु मीर दोऊ दीन मान ॥
वजे राज सिंघू सु मारूअ वज्जै । गजे सूर सूर असूर सुभज्जै ॥
चढे व्योम त्रिम्मान देषत देवं । वढे स्वामि-कज्जैं सुमज्जैं उभेव ॥
छूटे नाल गोला हवाई उछ्गं । नछ्अ मनो जानि तुट्टे निहंगं ॥
करष्षै चलै वान वानं कमान । भई अंध-धुधं न सुज्झै सु भान ॥
मिले सेल भेलं समेलं अपार । सनाहं फटै हीय ह्रोवंत पारं ॥
मदं मत्त दंतं उपारै मसदं । मनो मिल्लिया पत्र उप्पानि कंदं ।

मचै हूक हूकं वहै सार-धार। चमक्के चमक्के करार करारं॥
भभक्कै भभक्कै वहै रत्तधारं। सनक्कै सनक्कै वहै वान-भारं॥
हबक्कै हबक्कै वहै सेल भेलं। कुर्के कूक फूटी सुरत्तान ढालं॥
वकी जोगमाया सुर अप्पथान। बहै चट्ट-पट्ट उघट्ट उलट्ट॥
कुलट्ठा धरै अप्प-अप्प उहट्ठं। दडक्कं बजै सेन सेना सुघट्ट॥

(घ) युद्धमें छल

छल तक्यौ श्रीराम, सेत साइर तव बध्यौ।
छल तक्यौ सुग्रीव, बालिजिउ ताउह सध्यौ॥
छल तक्यो लछिमना, सूरमडल अलि बेध्यौ।
छल तक्यो नरसिंध, अग्गकस नष उर छेद्यौ॥
छलबल करंत दूषन न कोइ, किस्न कलह कसह करिय।
सोमेस राज तकि अप्प बिधि, रत्तिवाह छलमन धरिय॥

३—कविका संदेश

(भाग्यवाद)

नर करनी कछु और, करै करता कछू औरै।
अनचिंतन करै ईस, जीय सुनर औरै दौरै॥
रचे रचन नर कोरि, जोरि जम पाइ बस्त सह।
छिनक मध्य हरि हरै, केलि किरतव्य क्रम्मइह॥
प्रथिराज गमन देवास दिसि, ब्याह विनोद सुमडिजिय।
अनचिंति जग्गि गज्जन बलिय, आनि उतग सु कंक किय॥
जु कछू लिष्यो लिलाट, सुष अरु दु.प समतह।
धन विद्या सुन्दरी, अंग आधार अनतह॥
कलप कोटि टरि जाहिँ, मिटै न न घटै प्रमानह।
जतन जोर जो करै, रच न न मिटै बिनानह॥

तेरहवीं सदी

§४०: लक्खण

काल—१२५७ ई०। देश—रायवद्दिय (रायभा, आगरा) कुल—वैश्य,

१–आत्म-परिचय

(१) काव्य-महिमा

त सुणेंवि भणिउ साहुल-सुएण। जिण-चरणच्चण-पसरिय-भुएण ॥
भो [1]लंव-कचु कुल-कमल-सूर। कुलमाणव चित्तासा पऊर ॥
घत्ता। तुहुँ कइ-यण-मण-रजणु पाव-विहंजणु गुणु-गण-मणि-रयणायरऊ।
उच्छट्टि अवट्टिउ सुणयो मट्टिउ(?)णिहिल-कला-मलणायरऊ ॥
तुहुँ धण्णु जासु एरिसिउ चित्तु, तिपयत्थ रसुज्जलु मइ पवित्तु।
सयणासण तवेरम तुरग, धयछत्त चमर वालावरग ॥
धण-कण-कचण घण-दविण-कोस, जपाण जाण भूसण सँतोस।
घरपुर णयरायर देस-गाम, पट्टोलवर पट्टण समाण ॥
संसार-सारु पयवत्थु भावु, जंज दीसइ णाणा सहाउ।
तत मुहेण पावियइ सव्वु, लहियइ ण कव्वु माणिक्कु भव्वु ॥

(२) आत्म-परिचय

एक्कहि दिणें सुकइ पसण्ण चित्तु, णिसि रोज्जायत्तें झायइ सइत्तु।
महुबोह-रयणु धडगरुय सरिसु, बुहयण-भव्वयणह जणिय हरिसु ॥
करकठकण्ण पहिरण असक्कु, णरहरमई तेण सजोरु थक्कु।
भड सुकइत्तणु विज्जा विलासु, बुहयण-मुह-मंडणु णाहिलासु ॥
आणंद लयाहरु अमिय रोइ, णवि याणइ गूण-इण उरय कोवि।

---

[1] बड़े बालवाला

तेरहवीं सदी

§ ४०: लक्खरा

जैन-गृहस्थ । कृति—अणुवयरयण पईब (अनुव्रत-रत्नप्रदीप)[1]

१—आत्मपरिचय

(१) काव्य-महिमा

सो सुनिय भनेंउ साहुल-सुतेहिँ । जिन-चारणार्चन-प्रसरिय-भुजेहिँ ।।
"हे लवकंचु-कुल-कमल-सूर । कुल मानव चित्ताशा-प्रपूर ।।
घत्ता । तुहुँ कवि-मन-रजन, पाप-विभजन, गुण-गण-मणि-रतनाकरऊ ।
उच्छेदि कुवर्त्तन-सुनयउ मार्जउ, निखिल-कलामल-नागरऊ ।।
तुहुँ धन्य जासु ऐसहू चित्त । त्रिपदार्थ रसोज्ज्वल मति-पवित्र ।।
शयनासना स्तवेरम तुरग । ध्वज छत्र चमर वालावरग ।।
धन-कण-कचन-धन द्रविण-कोश । झपान-यान-भूषण सँतोष ।।
घर पुर नगरागर देश ग्राम । पट्टोल[2]-अबर-पट्टन समान ।।
संसारसार पद-वस्तु[3] भाव । जो जो दीसै नाना स्वभाव ।।
सो सो सुखेहिँ पाइयै सर्व । लभियै न काव्य-माणिक्य भव्य"।।

(२) आत्म-परिचय

एकै दिन सुकवि प्रसन्न चित्त । निशि शय्यातले ध्यावै स्वपित्त ।
"मम बोधरतन घड[4] गरुव सरिस । वुधजन भाविकजन[5] जगिय हरष ।।
करकटकर्ण पहिरन असक्क । नरहरमति तेन सँजोर थक्क[6] ।
मै सुकवित्वहँ विद्याविलास । वुधजन मुखमडन साभिलाष ।।
आनंद लताघर अमृत रोपि । ना जानै सुनै न इहाँ कोइ ।

---

[1] १५१८ (१५७५ संवत्) की हस्तलिखित प्रति—अप्रकाशित
[2] रेशमी [3] पदार्थ [4] तन [5] जैन-भक्त [6] रहना

(३) कविका दीनता-प्रकाश

मइं अमुणते अक्खर विसेसु, न मुणमि गवधु न छद-लेमु ।
पद्धडिया वधे सुप्पसणउ, अवगमउ अत्थु भव्वयणु तण्णु ।
हीणक्खउ मुणेंवि इयरु तत्थु, सभवउ अण्णु वज्जेंवि अणत्थु ।

२–सामन्त-समाज

(१) राजधानी-वर्णन

इह-जउणा-णइ-उत्तर-तडित्थ । मह-णयरि रायवड्डिय[1] पसत्थ ।
धण-कण-कचण-वण-सरि-समिद्ध । वाणुण्णयकर-जण-रिद्धि-रिद्ध ॥
किम्मीर-कम्म णिम्मिय रवण्ण । सट्टल सत्तोरण विविह-वण्ण ।
पडुर पायारुण्णइ समेय । जहि सहहि णिरतर मिरिनिकेय ॥
चउहट्ट चच्चरू दाम जत्थ । मग्गण-गण-कोलाहल समत्थ ।
जहिँ विवणे विपणे घण कुप्पभड । जहि कसिअहिँ णिच्च पिसंडि रंड ॥
णिच्चिच्च-थाण-समान-सोह । जहिँ वसहि महायण सुद्धवोह ।
ववहार चार सिरि सुद्ध लोय । विहरहिँ पसण्ण चउवण्ण लोय ॥
जहिँ कणयचूड मडण विसेस । सिंगार-सार-कय निरवसेस ।
सोहग्ग लग्ग जिणधम्म सील । माणिणि-णिय-पइ-वय-वहण-लीन ॥
जहि पण्ण पऊरिय पण्ण साल । णायर-णरेहि भूसिय विसाल ।
थिय जिण विवुज्जल जणियसम्म । कूडग्ग धयावलि-रुद्ध-धम्म ॥
चउ सालुण्णय-तोरण-सहार । जहिँ सहहिँ सेय सोहण-विहार ।
जहिँ दविणगण वहि पेम छित्त । लावण्ण-पुण्ण-धण लोलचित्त ॥
जहि चरउ चाउ कुसुमाल भेउ । दुज्जण सखुद्द खल पिसुण एउ ।
ण वियभहिँ कहिमि न धणविहीण । दविणड्ढ णिहिल णर धम्मलीण ॥
पेम्माणुरत्त परिगलिय गव्व । जहिँ वसहिँ वियक्खण मणुवसव्व ।
वावार सव्व जहिँ राहहिँ णिच्च । कणयंवर भूसिय राय-भिच्च ॥
तवोल-रंग-रंगिय 'वरग्ग । जहि रेहहिँ मारुण सयल मग्ग ।

---

[1] रायभा गाँव

(३) कविका दीनता-प्रकाश

मैं अबुझता अक्षर-विशेष । न बुझौं प्रबध न छन्दलेश ।
पद्धतिका[1] बधैं सुप्रसन्न । अवगमैं भव्यजन अर्थ तूर्ण ।।
हीनाक्षउ जानी इतर तत्र । सभवउ अन्य वद्येउ अनर्थ ।

२—सामन्त-समाज

(१) राजधानी-वर्णन

इहँ यमुना नदि उत्तर तटस्थ । महनगरि रायभा(है) प्रशस्त ।
धन-कण-कचन-वन-सरि-समृद्ध । दानोन्नत कर-जन-ऋद्धि-ऋद्ध ।।
किर्मरि[2] कर्म निर्मिय रमण्य । स'ट्टल स-त्तोरण विविधवर्ण ।
पाडुर प्राकार-उन्नति समेत । जहँ रहैं निरतर श्रीनिकेत ।।
चौहट्ट चर्चर-ोद्दाम यत्र । माँगन-गण-कोलाहल-समर्थ ।
जहँ विपणि विपणि घन कूप्यभाड । जहँ कसियैं नित्य पिषंग-खड ।।
निश्चित यान सम्मान सोह । जहँ वसैं महाजन शुद्ध-बोध ।
व्यवहार चारु श्री शुद्धलोक । विहरैं प्रसन्न चौवर्ण लोक ।।
जहँ कनकचूड-मडन विशेष । शृगार-सार कृत-निरवशेष ।
सौभाग्य लग्न जिन-धर्मशील । मानिनि निजपति वच-वहन-शील ।।
जहँ पण्य प्रपूरिय पण्यशाल । नागर-नरेहिँ भूषित विशाल ।
ठिय जिन बिंबोज्ज्वल जनित शर्म । कूटाग्र ध्वजावलि रुद्ध धर्म ।।
चतुशालोन्नत तोरण स-हार । जहँ अहैं श्वेत शोभन विहार ।
जहँ द्रविणागन बहि[3] प्रेमक्षेत्र । लावण्यपूर्ण धन लोलचित्त ।।
जहँ चरउ चारु कुसुमाल भेव । दुर्जन स-क्षुद्र खलपिशुन एव ।
न विजू भै कतहुँ न धनविहीन । द्रविणाढच निखिल नर धर्मलीन ।।
प्रेमानुरक्त परिगलित-गर्व । जहँ वसैं विचक्षण मनुज सर्व ।
व्यापार सर्व जहँ सधैं नित्य । कनकावर-भूषित राजभृत्य ।।
तावूल रग-रगिय'धराग्र । जहँ राजैं सारुण सकल मग्ग ।

---

[1] चौपाई [2] चित्रविचित्र [3] बाहर

(२) राजा (आहवमल्ल)की प्रशंसा

तहिँ णरवइ आहवमल्ल[1] एउ । दारिद्द समुद्दत्तरण-सेउ ॥
घत्ता । उव्वासिय-पर-मडलु दसिय-मंडलु, कास-कुसुम-सकास-जसु ।
छल-वल-सामत्थेँ णीइ णयत्थेँ, कवण राउ उवमियइ तसु ॥

णिय-कुल-कैरव-सिय-पयगु । गुण-रयणाहरण-विहूसियंगु ।
अवराह-वलाहय-पलय-पयणु । मह-माग-गगण-पडिदिण्ण-तवणु ॥
दुव्वसण-सोस-णासण-पवीणु । किउ अखलिय-सजस मयंक सीणु ।
पचग-मत-वियरण-पवीणु । ....
माणिणि-मण-मोहणु-मयर-केउ । णिरुवम-अविरल-गुण-मणि-णिकेउ ।
रिउ-राय-उरत्थल दिण्ण हीरु । विसमुण्णय-समरेँ भिडंत वीर ॥
खग्गग्गि-डहिय-पर-चक्कवसु । विपरीय-बोह-माया-विहंसु ।
अतुलिय-वल खल-कुल-पलयकालु । पहु-पट्टालकिय विउल भालु ॥
सत्तग-वज्ज-धुर दिण्णु खधु । संमाण-दाण-पोसिय सवधु ।
णिय-परियण-मण-मीमसण-दच्छु । परिवसिय-पयासिय-केर कच्छु ।
करवाल-पट्टि-विप्फुरिय जीहु । रिउ दंड चंड सुंडाल सीहु ।
अइ-विसम-साह-सुद्दामधामु । चउ-सायरंत-पायडिय-णामु ॥
णाणा-लक्खण-लक्खिय सरीरु । सोमुज्ज्व(ल) सामुद्दय गहीरु ।
दुप्पिच्छ-मिच्छ-रण-रंग-मल्ल । हम्मीर[1]-वीर-मण-नट्ठ-सल्ल ॥
चउहाण-वम-तामरस-भाणु । मुणियइँ न जासु भुय-वल-पमाणु ।
चुलसीदि-खड-विण्णाण-कोसु । छत्तीसाउह(प)यउण समोसु ॥
साहण-समुद्दु वहुरिद्धि रिद्धु । अरि-राय-विसह संफरु-पसिद्धु ।
घत्ता । खत्तिय सासणु परवल तासणु, ताण-मडल उव्वासणु ।
जस पसर पयासणु णव जल-हरसणु, दुण्णय चित्ति पयासणु ॥

---

[1] रणथम्भोरवाले

(२) राजा (आह्वमल्ल)की प्रशंसा

तहँ नरपति आह्वमल्ल एव। दारिद्रय-समुद्रोत्तरण-सेसुतु।

घत्ता। उद्वाँसित परमडल देशित मडल, काशकुसुम-संकाश-यशू।
छलबल-सामर्थ्ये नीतिनयार्थे, कवन राव उपमियै तसू॥

निज-कल-कैरव-सित-पतंग। गुण-रतनाभरण-विभूषितांग।
अपराध वलाहक प्रलय-पवन। मथ[1]-मार्गगण प्रतिदत्त तपन॥

दुर्व्यसन शोष-नाशन-प्रवीण। किउ अ-खलित स्वयश-मयंक सैन्य।
पंचांग मत्र-विचरन प्रवीण। ....

मानिनि मन-मोहन मकरकेतु। निरुपम अविरल गुण-मणि-निकेत।
रिपु-राज-उरस्थले दीन हीर। विषिमोन्नत समरें भिडंत वीर॥

खड्गाग्नि-दग्ध-पर-चक्रवश। विपरीत वोध-माया विध्वंस।
अतुलित-वल खलकुल-प्रलयकाल। प्रभु पट्टालकृत विपुल भाल॥

सप्तांग-राज्य-धुर दीनु कंध। सम्मान-दान-पोषित स्वबंधु।
निज-परिजन-मन-मीमास-दक्ष। परिवसिय-प्रकाशिय-केर कक्ष॥

करवाल पट्ट विस्फुरति जीह। रिपुदड-चड-शुडाल-सीँह।
अतिविषम साहसोद्दाम-धाम। चतुसागरांत प्राकटित नाम॥

नाना लक्षण-लक्षित शरीर। सोमोज्ज्वल सामुद्र'व गभीर।
दुष्पेक्ष्य म्लेच्छ रणरग-मल्ल। हम्मीर-वीर मन-नष्ट-शल्य॥

चौहान-वश-तामरस-भानु। बुझियै न जासु भुजबल-प्रमाण।
चौसट्ठि खंड विज्ञानकोश। छत्तीसायुध प्रकटन समोष[2]॥

साधन-समुद्र वहु-ऋद्धि-ऋद्ध। अरिराज-विषह सफर[3] प्रसिद्ध।

घत्ता। क्षत्रिय-शासन परवल-त्राशन त्राण मँडल-उद्वासनऊ।
यश-प्रसर-प्रकाशन नव जलधर सन, दुर्नयवृत्ति प्रवासन॥

---

[1] मन्मथ [2] समूह [3] जहरमोहरा

(३) रानी (ईसरदे)की प्रशंसा

तहों पट्ट महाएवी पसिद्ध। ईसरदे पणयणि पणय-विद्ध।
णिहिलंतेउर मज्झएँ पहाण। णिय पइ मण-पेसण सावहाण।
सज्जण-मण-कप्प महीय साह। कंकण केऊरंकिय सुवाहु।
छण-ससि-परिसर संपुण्ण-वयण। मुक्कमल कमलदल सरल गयण॥
आसा सिंधुर गइ गमण लील। बंदियण-मणासा दाण-सील।
परिवार भार धुरधरण सत्त। मोयइ अंतर-दल ललिय गत्त॥
छद्दंसण चित्तासा विसाम। चउ सायरंत विक्खायणाम।
अहमल्ल-राय-पय भत्तिजुत्त। अवगमिय णिहिल विण्णाणसुत्त॥
णियणंदणाहँ चिंतामणीव। णिय धवलग्गिह सरहसिणीव।
परियाणिय-करण-विलासकज्ज। रूवेण जित्त-सुत्ताम-भज्ज॥
गंगा-तरग कल्लोल माल। समकित्ति भरिय ककुहंतराल।
कलयठि-कंठ कलमहुर-वाणि। गुणगरुअ रयण उप्पत्ति खाणि।
अरिराय विसह संकरहो सिट्ठ। सोहग्ग-लग्ग गोरिव्व दिट्ठ॥

(४) मंत्री (कान्हड)की प्रशंसा

अहमल्ल[1]-राय-महमंति सुद्धु। जिण-सासण-परिणइ गुणपवद्धु।
कण्हडु-कुल कइरव सेयभाणु। पहुणा समज्ज सव्वहँ पहाणु॥
गंजोल्लिय मणु लक्खणु वहूउ। सीयरिउ कव्व करणाण रूउ।
णियघरें पत्तउ वणगन्ध हत्थि। मयमत्तु फुरिय मुहरुह गभत्थि॥
वसि हुयउ स-सर दसदिसि भरंतु। मणि कोण पडिच्छइ तहों तुरंत।
मुयस्सण राउ घरइँ तवेइ। भणु कवणु दुवार कवाड देइ॥
अवमिय वयणलिणा चातुरंग। धण-कण-कंचण-संपुण्ण चंग।
घर समुह एंत पेच्छिवि सवारु। भणु कवणु वप्प झंपइ दुवारु॥

---

[1] आहवमल्ल राजा

(३) रानी (ईश्वरदेवी)की प्रशंसा

तह पट्ट महादेवी प्रसिद्ध । ईश्वरदे प्रणयिनि प्रणय-बिद्ध ।
निखिल'न्तःपुर-मध्ये प्रधान । निज पति-मन-प्रेषण सावधान ॥
सज्जन-मन कल्प-महीपशाख । कंकण-केयूरं'कित सुबाहु ।
छण-शशि-परिसर-सपूर्ण-वदन । मुक्त'मल कमलदल सरल-नयन ॥
आशासिंधुर गज-गमनलील । वदिजन-मनाशा-दानशील ।
परिवार-भार-धुर-धरन शक्त । मोचै अतरदल ललित-गात्र ॥
छै-दर्शन चित्ताशा-विश्राम । चतुसागरात-विख्यात-नाम ।
अहमल्ल-राय-पद-भक्तियुक्त । अवगमित[१]-निखिल-विज्ञान-सूत्र ॥
निजनदनो(इ) चिंतामणी'व । निज-धवलगेह-सरहसिनी'व ।
परि-जानिय करन विलासकाज । रूपेहिँ जीत सूत्राम[२]-भार्य ॥
गगा-तरग-कल्लोलमाल । समकीर्त्ति भरिय ककुभान्तराल ।
कलकठि-कठ कलमधुर-वाणि । गुणगरुव रतन-उत्पत्ति-खानि ॥
अरिराज विषह शकरहोँ शिष्ट । सौभाग्यलग्न गौरी'व दृष्ट ॥

(४) मंत्री (कान्हड)की प्रशंसा

अहमल्लराय महाँमंत्रि शुद्ध । जिन-शासन-परिणय-गुण-प्रबद्ध ।
कान्हड-कुल-कैरव-श्वेतभानु । प्रभुहुँ समाज सर्व्वहुँ प्रधान ॥
गंजोल्लिय मन लक्षण बहूव । स्वीकारिउ काव्य-करणानुरूप ।
निज-घरेँ आयउ वन गध-हस्ति । मदमत्त फुरिय मुखरुह-गभस्ति ॥
वश हुयउ स्व स्वर दशदिशि-भरत । मन कोन प्रतीच्छै तह तुरत ।
सुप्रसन्न राव घरई तबेड । भनु कौन दुवार-किवाड़ देइ ।
जानीय वचन लिन चातुरग । धन-कन-कचन-संपूर्ण चग ॥
घर समुँह आइ पेखेवि सवार । भनु कौन वप्प झपइ दुवार ।

---

[१] ज्ञात [२] इन्द्र

चिंतामणि-ह्लाडय-निवड-जडिउ । पज्जहइ कवणु सइँ हत्य चडिउ ।
घर रंगुप्पण्णउ कप्प-रुक्खु । जलें कवणु न सिंचइ जणिय सुक्खु ॥
सयमेव पत्त घरु कामधेणु । पज्जहइ कवणु कय-सोक्खसेणु ।
चारण-मुणि-तेएँ जित्त भवइ । गयणाउ पत्त किर कोण णवइ ॥
पेऊस पिंड केँर पत्तु भव्वु । को मुयइ निवे (इय) जीवियव्वु ।
अहमल्ल-राय-कर-विहिय-तिलउ । महयणहँ महिउ गुणगरुअ-णिलउ ।
सो साहु पइट्ठवु जणिय-सेउ । सिवदेउ साहुकुल-वस-केउ ॥
घत्ता । जो कण्हडु पुव्वुत्तउ, पुण्णपउत्त, महिमंडलि विक्खायउ ।
आहवमल्ल-णरिंदहु, मण-साणंदहु मंतत्तण पइभायउ ॥

(५) मंत्रि-पत्नीकी प्रशंसा

पिया तस्स सल्लक्खणा लक्खणड्ढा । गुरूणं पए भक्ति काउं वियड्ढा ।
स भत्तार-पायारविंदाणुगामी । घरारंभ-वावार-संपुण्ण-कामी ॥
सुहायार चारित्त-चीरक-जुत्ता । सुचेयाण गधोदएणं पवित्ता ।
स पासाय-कासार-सारा-मराली । किवा-दाण संतोसिया वंदिणाली ॥
पसण्णा सुवाया अचचेल-चित्ता । रमाराम-रम्मा मए वालणित्ता (?) ।
खलाणं मुहंभोय-संपुण्ण जुण्हा । पुरग्गो महासाहु सोढस्स सुण्हा ॥
दया-वल्लरी मेह-मुक्कंवुधारा । सइत्तत्तणे सुद्ध-सीयप्पयारा ।
जहा चंदचूडा[1]णुगामी भवाणी । जहा सव्व वेइहिँ सव्वग वाणी ॥
जहा गोत्त णिद्दारिणो रभ रामा । रमा दाणवारिस्स संपुण्ण-कामा ।
जहा रोहिणी ओसहीसस्स सण्णा । महड्ढी रापुण्णस्स तारस्स रण्णा ॥
जहा सूरिणो मुत्तिवेई मणीसा । किसाणस्स साहा जहा रूवमीना ।

---

[1] शंकर

चिंतामणि हाटक निवह जडिउ । प्रज्जहै[1] कौन सँग हस्त चढ़िउ ॥
घर रंग् उत्पन्नउ कल्पवृक्ष । जल कौन न सीँचै जनित सुक्ख ।
स्वयमेव प्राप्त घर कामधेनु । प्रज्जहै कौन कृत-सौख्य-सेन ॥
चारण मुनि-तेजे जेँत्त हवै । गगनाहु आउ फुर को न नवै ।
पीयूष-पिंड करेँ पाइ भव्य । को मुचै निवेदिय जीवितव्य ॥
अहमल्ल राय-कर-विहित-तिलक । महाँ जनरु महित गुण-गरुव-निलय ।
सो साहु पईठउ जनित-सेतु । शिवदेव साहु कुल-वश-केतु ॥ (१४ ख)
घत्ता । जो कान्हड पूर्वो-'क्तउ'पुण्य-प्रयुक्तउ महिमडल विख्यात यऊ ।
अहमल्ल-नरेन्द्रह, मन-सानंदह, मन्त्रित्वन प्रति-भातयऊ ॥ (१५ ख)

(५) मंत्रि-पत्नीकी प्रशंसा

प्रिया तासु सुल्लक्षणा लक्षणाढ्या । गुरूणां पदे भक्ति-करणे विदग्धा ।
स्वभर्त्तार पादारबिन्दानुगामी । घरारभ व्यापार संपूर्ण कामी ॥
शुभाचार चारित्र चीराकयुक्ता । सुचेतन्न गधोदकेही पवित्रा ।
स्वप्रासाद-कासार-सारा मराली । कृपादान-सतोषिया वंदिताली ॥
प्रसन्ना सुवाचा अचचल्ल-चित्ता । रमा राम रम्या मदेवाल-नेत्रा ।
खलों-को मुखाम्भोज सपूर्णज्योत्स्ना । पुराग्रोमहासाहु सोढ़ाकोँ सुन्हा[2] ।
दया-वल्लरी-मेघ-मुक्ताबुधारा । सतीत्वत्तने शुद्ध-सील-प्रकारा ।
यथा चद्रचूड़ानुगामी भवानी । यथा सर्व वेदेहिँ सर्वांग वाणी ।
यथा गोत्र निर्दारिण[3]हेँ रंभा रामा । रमा दानवारी कि सपूर्ण कामा ।
यथा रोहिणी ओषधीशाह संगी । महाढ्या सँपूर्णाहु साराहु रानी ॥
यथा सूरिकी मुक्तिवेदी मनीषा । कृशानार्क स्वाहा यथा रूप मीसा । (१६ ख)

---

[1] छोड़ै [2] स्नुषा=पुत्रवधू [3] इन्द्र

§ ४१: जज्जल[1]

काल—१२९० ई० (हम्मीर[2] १२८२-९९)। देश—उत्तरी राजपूताना।

वीर-रस

(राना हम्मीरकी प्रशंसा[3])

मुचहि सुंदरि पाअ अप्पहि हसिऊण सुम्मुहि खग्ग मे।
कप्पिअ मेच्छ-सरीर पेच्छइ वअणाइ तुम्ह धुअ हम्मीरो ॥७१॥ (१२७)

पअभरु दरमरु धरणि तरणि रह धुल्लिअ झंपिअ,
कमठ-पिट्ठ टरपरिअ मेरु-मदर-सिरकंपिअ।
कोह चलिअ हम्मीर-वीर गअजूह-सँजुत्ते।
किअउ कट्ठ हा कद ! मुच्छि मेच्छहके पुत्ते ॥९२॥ १(५७)

पिंधउ दिढ-सण्णाह वाह-उप्पर पक्खर दइ,
बधु समदि रण धसउ सामि हम्मीर वअण लइ।
उज्जल णह-पह भमउ खग्ग रिउ-सीसहि डारउ,
पक्खर-पक्खर ठेल्लि-पेल्लि पव्वअ अप्फालउ।
हम्मीरकज्ज जज्जल भणइ, कोहाणल मुह मह जलउ।
सुलताण-सीस करवाल दइ, तेज्जि कलेवर दिअ चलउ ॥१०६। (१८०)

ढोल्ला मारिअ ढिल्लिमह, मुच्छिअ मेच्छ सरीर।
पुर जज्जला मंतिवर, चलिअ वीर हम्मीर ॥
चलिअ वीर हम्मीर, पाअभर मेइणि कपइ।
दिगमगणह अधार धूरि सूरिय रह झपइ ॥
दिगमग णह अधार आणु खुरसाणक ओल्ला।
दरमरि दमसि विपक्ख भार अ ढिल्लिमह ढोल्ला ॥१४७॥ (२४९)

---

[1] "प्राकृत पैंगल" से। [2] रणथम्भोरके राजा वीर हम्मीर जिन पर अलाउद्दीन ने १२९९में चढ़ाई की। [3] जिन कविताओंमें जज्जलका नाम नहीं है, उनके बारेमें सन्देह है, कि वह इसी कविकी कृतियां है।

§ ४१: जज्जल

कुल—हम्मीरका मंत्री और सेनापति।

वीर-रस

(राना हम्मीरकी प्रशंसा)

मुचहि सुंदरि! पाव अर्पहि हँसियाउ सुमुखि खड्गहँ मे।
काटिय म्लेच्छ शरीरहँ पेंखिहँ वदनहँ तुम्ह ध्रुव हम्मीरो ॥१२७॥
पगभर दरमरु धरणि तरणि रह धूलिय झपिय,
कमठ-पीठ टरपरिय मेरु-मंदर-शिर कपिय।
क्रोधि चलिय हम्मीर वीर गज-यूथ-सँयुत्ते,
कियउ कष्ट "हाक्रद" मूर्छि म्लेच्छनके पुत्ते ॥९२॥
पेन्हेंउ दृढ सन्नाह बाँह ऊपर पक्खर दइ,
बधु समझि[1] रण धँसेंउ स्वामि हम्मीर वचन लइ।
उज्वल नभ-पथ भ्रमेंउ खड्ग, रिपु शीर्शहि डारेउ,
पक्कड-पक्कड ठेलि-पेलि पर्वत उच्छालेउ।
हम्मीर-कार्य उज्जल भनइ, क्रोधानल-मुख महँ ज्वलउ,
सुल्तानशीश करवाल दइ, त्यागि कलेवर दिवु चलउ ॥१०६॥
ढोला मारिय दिल्लि महँ मूर्छिय म्लेच्छ शरीर,
पुर[2] जज्जल्ला मन्त्रिवर चलिय वीर हम्मीर।
चलिय वीर हम्मीर पाद-भर मेदनि कपै,
दिग-मग-नभ अंधार धूलि सूरज-रथ झंपै।
दिग-मग-नभ अंधार आनि खुरसान कें ओल्ला[3],
दर मरि दमसि विपक्ष मार दिल्ली महँ ढोल्ला ॥१४७॥

---

[1] मीर मुहम्मदशाह और उनके साथियोंको हम्मीरने शरण दिया था, जिस पर अलाउद्दीनसे विरोध हो गया। [2] आगे [3] स्वामी

सहस मअमत्त गअ लाख लख पक्खरिअ,
साहि दुइ साजि खेलंत गिंदू।
कोप्पि पिअ ! जाहि तहि थप्पि जसु विमल महि।
जिणइ णहि कोइ तुअ तुलक[1]हिंदू ॥१५७॥ (२६२)

घर लग्गइ आगि जलइ धह धह,
कइ दिगमग णह-पह अणल भरे।
सब दीस पसरि पाइक लुलइ धणि,
थणहर जहण दिआव करे।
भअ लुक्किअ थक्किअ वइरि तरुणि,
जण भइरव भेरिअ सद्द पले।
महि लोट्टइ पिट्टइ रिउ-सिर टुट्टइ,
जक्खण वीर हमीर चले ॥१६०॥ (३०४)

खुर खुर खुदि खुदि महि घघर रव कलइ,
ण ण ण णगिदि करि तुरअ चले।
ट ट टगिदि पलइ टपु धसइ धरणि वपु,
चकमक करि वहु दिसि चमले।
चलु दमकि दमकि दलु चलइ पइक वलु,
धुलकि धुलकि करि करि चलिआ।
वर मणु सअल कमल विपख हिअअ सल,
हमिर वीर जब रण चलिआ ॥२०४॥ (३२७)

जहा भूत वेताल णच्चंत गावंत खाए कबधा,
सिआकार फेक्कार हक्का रवन्ता फुले कण्णरंधा।
कआ टुट्ट फुट्टेइ मत्था कबंधा णचता हसंता,
तहा वीर हम्मीर संगाम-मज्झे तुलंता जुझंता ॥१८३॥ (५२०)

---

[1] तुरुक

सहस मदमत्त गज, लाख-लख पक्कडी ,
शाह ह्य साजि खेलंत गेंदू ।
कोपि प्रिय ! जाहि तहँ थापि यश-विमल महि,
जितै नहिं को तोंहिं तुरुक-हिंदू ॥१५७॥

घर लागै आग जलै धह्-धह ,
करि दिग-मग नभ-पथ अनल-भरे ।
सब दीस पसरि पाइक्क[1] चलै ,
धनि थन-भर-जघन दियेउ करे ।

भय लुक्किय थाकिय बैरि तरुणि-
जन भैरव-भेरिय शब्द पडै ।
महि लोटै-पोटै रिपु-शिर टुट्टै ,
जखन वीर हम्मीर चले ॥१९०॥

खुर-खुर खुंदि-खुदि महि घघर रव करे ,
न न न नगिदि करि तुरग चले ।
ट ट ट गिदि परै टॉप धँसै धरणि वपु
चकमक करि बहु दिगि चमरे ।

चलु दमकि दमकि वल चलै पइक[1]-बल ,
घुलुकि घुलुकि करि करि चलिया ।
वर मनुष दल कमल विपख[2] हृदय सल ,
हमिर वीर जब रण चलिया ॥२०४॥

यथा भूत-वेताल नाचत गावत खाएँ कवंधा ,
शिवाकार फेक्कार हक्का रवंता फोंडै कर्ण-रध्रा ।
कॉया टुट फोडेइ मत्था कबंधा नचता हसंता,
तथा वीर हम्मीर सग्राम-मध्ये तुरता जुझता ॥१८३॥

---

[1] प्यादा [2] विपक्ष

§४२: अज्ञात कवि या कवि-वृन्द

काल—तेरहवीं सदीका पूर्वार्ध। देश—युक्त-प्रान्त या विहार।

१—सामन्त-समाज

युद्ध-वर्णन

अहि ललइ महि चलइ, गिरि खसइ हर खलइ,
सिसि घुमइ अमिअ वमइ, मुअल जिवि उट्ठए।
पुणु धसइ पुणु खसइ, पुणु ललइ पुणु घुमइ,
पुणु वमइ जिविअ विविह, परि समर दिट्ठए ॥१६०॥ (२६६)
गअ-गअहि ढुक्किअ तरणि लुक्किअ, तुरअ तुरअहि जुज्झिआ।
रह-रहहि मीलिअ धरणि पीलिअ, अप्प-पर णहि बुज्झिआ ॥
वल मिलिअ आइअ पत्ति जाइउ, कप गिरिवर-सीहरा।
उच्छलइ साअर दीण काअर, वइर वड्ढिअ दीहरा ।१९३। (३०९)
कुंजरा चलतआ पव्वआ पलतआ।
कुम्म-पिट्ठि कंपए, धूलि सूर झंपए ॥५९॥ (३७८)
उम्मत्ता जोहा [1]ढुक्कता, विप्पक्खा मज्झे लुक्कन्ता।
णिक्कता जता धावता, णिम्भंती कित्ती पावंता ॥६७॥ (३७८)
ठामा-ठामा हत्थी-जूहा देक्खीआ,
णीला-मेहा मेरु-सिंगा पेक्खीआ।
वीरा हत्था अग्गे खग्गा राजंता,
णीला-मेहा-मज्झे विज्जू णच्चंता ॥११३॥ (४२५)
मत्ता जोहा वट्टे कोहा अप्पा-अप्पी गव्वीआ,
रोसा रत्ता सव्वा गत्ता सल्ला भल्ला उट्ठीआ।

---

[1] घुस रहे हैं

§ ४२: अज्ञात कवि या कवि-वृन्द

कुल—दर्बारी, भक्त। कृतियाँ—स्फुट कवितायें[1]।

१—सामन्त-समाज

(१) युद्ध-वर्णन

अहि ललै महि चलै गिरि खसै हर स्खलै,
शशि घुमै अमिय बमै मुअल जीइ उट्ठए।
पुनि धँसै पुनि खसै पुनि ललै पुनि घुमै,
पुनि वमै जीविता विविध परि समर दृष्टए ॥१६०॥

गज-गर्जहि ढुक्किय तरणि लुक्किय तुरग-तुरगहि जूझिया,
रथ-रथहिं मेलिय धरणि पेलिय, आप पर नहिं बूझिया।
बल मिलै आइय पत्ति[2] जाइय, कप गिरिवर शीखरा,
ऊछलै सागर दीन कातर बैरि बाढिय दीघरा ॥१६३॥

कुजरा चलंतआ पर्वता पडतआ।
कूर्म पृष्ठ कपए, धूलि सूर झपए ॥५६॥

उन्मत्ता योधा ढुक्कता, विप्पच्छा मध्ये लुक्कता।
निष्क्रांता जाता धावता निर्भ्रांती कीर्त्ती पावंता ॥५७॥

ठावें ठावे हस्ति यूथा देखीया,
नीला मेघा मेरु-शृंगा पेखीया।
वीरा-हस्ता-अग्रे खड्गा राजता,
नीला-मेघा-मध्ये विज्जू नाचंता ॥११३॥

मत्ता योधा बाढ़े क्रोधा आपे-आपा गर्वीया,
रोषा रक्ता सर्वा गात्रा शल्या भल्ला उट्ठीया।

---

[1] "प्राकृत-पैंगल" में संगृहीत, पृष्ठ कविताओंके अन्तमें—कोष्ठकमें। [2] प्यादा

हत्थी-जूहा सज्जा हूआ पाए भूमी कंपंता,
लेही देही छड्डो ओड्डो सव्वा सूरा जप्पंता।१५७। (४८३)
झत्ति जोह सज्ज होह गज्ज वज्ज तखणा,
रोस-रत्त सव्व-गत्त हक्क[1] दिज्ज भीसणा।
धाइ आइ खग्ग पाइ दाणवा चलंतआ,
वीर-पाअ णाअराअ कंप भूतलतगा ॥१५९॥ (४८५)
चलंत जोह मत्त-कोह रण-कम्म-अग्गरा,
किवाण-वाण-सल्ल-भल्ल-चाव-चक्क-मुग्गरा।
पहार वार धीर वीर वग्ग मज्झ पडिआ,
पअट्ठ ओट्ठ कत दंत तेण सेण मडिआ ॥१६९॥ (४९९)
उम्मत्ता जोहा उट्ठे कोहा ओत्था-ओत्थी जुज्झता,
मेणक्का रंभा णाहं दंभा अप्पा-अप्पी वुज्झंता।
धावंता सल्ला छिण्णे कंठा मत्था पिट्ठी पेरंता,
ण सग्गा मग्गा जाए अग्गा लुद्धा उद्धा हेरंता ॥१७५॥ (५०७)

२—देव-स्तुति

(१) दशावतार

जिण वेअ धरिज्जे महिअल लिज्जे, पिट्ठिहि दतहि ठाउ धरा।
रिउ-वच्छ विआरे छल तणु धारे, वंधिअ सत्तु सुरज्जहरा।
कुल खत्तिअ कप्पे तप्पे दहमुह कप्पे, कसअ केसि विणासकरा।
करुणा पअले मेछह विअले सो, देउ णराअण तुम्ह वरा ॥२०७॥ (५७०)

(२) राम-स्तुति

वप्प अ-उक्कि सिरे जिणि लिज्जिउ, तेज्जिअ रज्ज वणंत चलेविणु।
सोअर सुंदरि संगहि लग्गिअ, मारु विराध कवंध तहा हणु।

---

[1] आह्वान, ललकार

हस्ती-यूथा सज्जा हुआ पाये भूमी कपंता,
"लेही देही छाडो ओडो" सर्वा शूरा जल्पंता ॥१५७॥
भट्ट योधा सज्ज होइ, गर्ज वज्ज तत्क्षणा।
रोष-रक्त सर्वगात्र हाँक दीजें भीषणा।
धाइ आइ खड्ग पाइ दानवा चलंतआ।
वीरपाद नागराज कंप भूतल'न्तगा ॥१५९॥
चलंत योध मत्त क्रोध रन्न-कर्म आगरा।
कृपाण-वाण-शल्य-भल्ल-चाप-चक्र-मुग्दरा ॥
प्रहार-वार-धीर-वीर-वर्ग-माझ-पडिता।
प्रदष्ट-ओष्ट-कांत-दत्त तेन सेनाँ मडिता ॥१६९॥
उन्मत्ता योद्धा उट्ठे क्रोधा उट्ठा-उट्ठी जुज्झंता,
मेनका-रम्भा-नाथ दम्भा अप्पा-अप्पी बुज्झंता।
धावंता शल्या छिन्ना कंठा मत्था पीठी पड्डता,
जनु स्वर्गा-मार्गा जाये अग्गा-लुब्धा उर्ध्वं हेरंता ॥१७५॥

२—देव-स्तुति

(१) दशावतार

जेहिं वेद धरिज्जै महितल लिज्जै, पीठहिं दत्तहिं ठावँ धरा।
रिपु-वक्ष विदारे छल-तनु धारे, वधिय शत्रु स्वराज्य हरा ॥
कुल-क्षत्रिय तापे दशमुख कप्पे[1], कशय केशि विनाश करा।
करुणा प्रकटे म्लेच्छहँ विदले, सो देउ नरायण तुम्ह वरा ॥२०७॥

(२) राम-स्तुति

वापह उक्ति शिरे जिनि लिज्जिउ। त्यागिय राज्य वनत चलेविऊ।
सोदर सुदरि सगहि लग्गिय। मार विराध कवंध तथा हन ॥

---

[1] काटा

मारुइ मिल्लिअ वालि विहडिअ, रज्ज सुगीवह दिज्ज अकंटअ ।
वंधु समुद्द विणासिअ रावण, सो तुअ राहव दिज्जउ णिब्भअ ॥२११॥ (५७६)

(३) कृष्ण

अरे रे वाहहि काण्ह णाव छोडि, डगमग कुगति ण देहि ।
तइ इत्थि णइहि संतार देइ, जो चाहहि सो लेहि ॥६॥
जिणि कंस विणासिअ कित्ति पआसिअ, मुट्ठि-अरिट्ठि विणास करे, गिरि हत्थ धरे ।
जमलज्जुण भंजिअ पअभर गजिअ, कालिअ-कुल संहार करे, जस भुअण भरे ।
चाणूर विहंडिअ णिअ-कुल मंडिअ, राहा-मुह महु-पाण करे, जिमि भमर वरे ।
सो तुम्ह णराअण विप्प-पराअण, चित्तह चिंतिअ देउ वरा भअ-भीअ-हरा ॥२०७॥
भुवण-अणंदो तिहुअण कंदो । भमरसवण्णो स जअइ कण्हो ॥४६॥
परिणअ ससिहर-वअणं, विमल-कमल-दल-णअण ।
विहिअ-असुर-कुल-दलणं, पणमह सिरि-महुमहणं ॥१०६॥[1]

(४) शंकर-स्तुति

जा अद्धंगे पव्वई, सीसे गंगा जासु ।
जो लोआण वल्लहो, वंदे पाअ तासु ॥८२॥ (१४३)
जसु सीसहि गंगा गोरि अधंगा, गिव पहिरिअ फणि-हारा ।
कंठ-ट्ठिअ वीसा पिंधण दीसा, संतारिअ संसारा ।
किरणावलि कंदा वंदिअ चंदा, णअणहि अणल फुरंता ।
सो सपअ दिज्जउ बहु सुह किज्जउ, तुम्ह भवाणी-कंता ॥९८॥ (१६६)
रण दक्ख दक्ख हणु जिण्णु कुसुम-धणु, अवअगध विणास करु ।
सो रक्खउ संकरु असुर-भअंकरु, गिरि-णाअरि अद्धंग-धरु ॥१०१॥ (१७२)
जो वंदिअ सिरगंग हणिअ अणंग, अद्धंगहि परिकर धरणु ।
सो जोइ-जण-मित्त हरउ दुरित्त, संकाहरु संकर चरणु ॥१०४॥ (१७९)

---

[1] पृष्ठ १२, ३३४, ३६५, ४२१

मारुति मेँल्लिय बालि विघट्टिय, राज सुग्रीवहिं दिज्ज अकंटक ।
बध समुद्र विनाशिय रावण, सो तोँहुँ राघव दिज्जिउ निर्भय ॥२११॥

(३) कृष्ण

अरे रे चालहि कान्ह नाव, छोटि डगमग कुगति न देहि ।
तैं एहि नदिहि सतार देइ, जो चाहि सो लेहि ॥६॥

जिन कस विनाशिय कीर्त्ति प्रकाशिय, मुष्टि अरिष्ट विनाश करे, गिरि हाथ धरे ।
यमलार्जुन भंजिय पदभर गजिय, कालिय-कुल-सहार करे, यश भुवन भरे ।
चाणूर विखंडिय निज-कुल मडिय, राधामुख मधु-पान करे, जिमि भ्रमरवरे ।
सो तुम्ह नरायण, विप्र-परायण, चित्ते चिंतित देहु वरे, भय-भीति-हरे ॥२०७॥

भुवन-अनदा त्रिभुवन कदा । भ्रमर-सवर्णा स जयतु कृष्णा ॥४६॥

परिणत-शशिधर-वदन, विमल-कमल-दल-नयन ।
विहित-असुरकुल-दलन, प्रणमहु श्री मधुमथन ॥१०॥

(४) शंकर-स्तुति

जेँहि अधंगे प्रार्वती, शीशे गगा जासु ।
जो लोकन कर वल्लभ, वदे पादहँ तासु ॥८२॥

जसु सीसहिं गगा गौरि अधगा, ग्रिव पहिरिय फणिहारा,
कंठे ठिय वीषा पहिरन दीशा, सतारिय ससारा ।
किरणावलि कदा वदिय चदा, नयनहि अनल फुरता,
सो संपति दिज्जउ बहु-सुख किज्जउ, तुम्ह भवानी कता ॥६८॥

रण-दक्ष दक्ष [१]हनु, जित्तु कुसुमधनु अन्ध क-अध विनाश करो ।
सो रक्षउ शकर असुर-भयकर, गिरि-नागरि-अधंग-धरो ॥१०१॥

जो वदिय गिर गग हनिय अनग, अर्धंगहि परिकर धरणू ।
सो योँगि-जन-मित्र हरहु दुरित्त, शकाहर शकर-चरणू ॥१०४॥

---

[१] मारा

जसु कर फणिवइ-वलअ तरुणिवर तणुमहँ विलसइ,
णअण अणल गल गरल विमल ससहर सिर णिवसइ।
सुरसरि सिर मँह रहइ सअल जण-दुरित-दमण कर,
हसि ससिहर हरउ दुरित, वितरह अतुल अभअवर ॥१११॥ (१६०)

जाआ जा अद्धंग सीस गंगा लोलंती, सव्वासा पूरंति सव्व-दुक्खा तोलंती।
णाआ राआ हार दीस वासा भासंता, वेआला जा सग णट्ठाँ दुट्ठा णासंता।
णाचता कंता उच्छवे ताले भूमी कंपले,
जा दिट्ठे मोक्खा पाविज्जे, सो तुम्हाण सुक्ख दे ॥११६॥ (२०७)

सिर किज्जिअ गंग गोरि अधंग, हणिअ अणंगे पुर-दहणं।
किअ फणवइ हारं तिहुअण सारं, वंदिअ छार रिउ-महणं।
सुर सेविअ चरणं मुणिगण सरण, भव-भअ-हरणं सूलधरं।
साणंदिअ वअणं सुंदर-णअणं गिरिवर-सअणं णमह हरं ॥१६५॥ (३१३)

जसु मित्त धणेसा ससुर गिरीसा, तहविहु पिंधण[1] दीस।
जह अमियह कंदा णिअलहि चंदा, तह विह भोअण वीस।
जइ कणअ-सुरंगा गोरि अधंगा, तहविहु डाकिणि संग।
जो जसुहि दिआवा देव सहावा, कवहु ण हो तसु भंग ॥२०६॥ (३३८)

गवरिअ-कंता अभिणउ संता। जइ परसण्णा दिअ महि धण्णा ॥४८॥ (३६५)

पिंग-जटावलि-ठाविअ गंगा, धारिअ णाअरि जेण अधंगा।
चंदकला जसु सीसहि णोक्खा, सो तुह संकर दिज्जउ मोक्खा ॥१०५॥ (४१७)

वालो कुमारो स छमुंडधारी, उप्पाउ-हीणा हउँ एक्क णारी।
अहंणिस खाहि विसं भिखारी, गई भवित्ती किल का हमारी ॥१२०॥

तुअ देव दुरित्त गणा हरणा चरणा, जइ पावउ चंदकलाभरणा सरणा।
परि पूजउ तेज्जिअ लोभमणा भवणा, सुख दे मह सोक विणास मणा रमणा ॥१५५॥

पहु दिज्जिअ वज्जअ सिज्जिअ टोप्पर, कंकण वाहु किरीट सिर।
पइ कण्णहि कुंडल ण रडमंडल, ठाविअ हार फुरंत उरे।

---

[1] परिधान, पहिरन

जसु कर फणिपति वलय, तरुणि-वर तनुमहँ विलसइ,
नयन अनल गल गरल विमल शशधर शिर निवसइ
सुरसरि शिरमँह रहै सकल-जन-दुरित-दमनकर,
हसि शशिधर' हरहु दुरित, वितरहु अतुल अभय वर ॥१११॥
जाया अर्धांग शीशे गगा लोलती, सर्वाशा पूरति सर्व दुक्खा तोडंती ।
नागा-राजा हार दिशा वासा भासता, वेताला जा सग नष्ट दुष्टा नाशंता ।
नाचंता कता उत्सवे ताले भूमी कपरे ।
जा देखे मोक्षा पाइज्जा, सो तुम्हा कहँ सुक्ख दे ॥११६॥
शिर किज्जिय गंग गोरि अधंगं, हनिय अनगं पुर-दहन ।
किय फणिपति हार त्रिभुवन सार, वंदिय छारं रिपु-मथनं ।
सुर-सेवित-चरणं मुनिगण-सरण भवभय-हरण शूलधरं ।
सानंदित वदनं सुदर-नयनं, गिरिवर-शयनं नमहु हरं ॥१६५॥
जसु मित्र धनेशा ससुर गिरीशा, तेहि विध पेन्हन दीश ।
जिमि अमृतह कदा नियरइ चदा, तेहि विघ भोजन वीष ॥
यदि कनक-सुरंगा गौरि अधंगा, तेहि विध डाकिनि सग ।
जो यशह दियावा देव स्वभावा, कवहु न हो तसु भंग ॥२०६॥
गौरिय कता अभिनव शांता यदि परसन्न देँहुँ मोँहि धन्ना ॥४८॥
पिंग-जटावलि थापिय गंगा, धारिय नागरि जिनि अर्धंगा ।
चंद्रकला जसु शीर्शहि नोखा, सो तेहिँ शकर दिज्जउ मोक्षा ॥१०५॥
वालो कुमारो स छ-मुड-धारी, उत्पाद-हीना हौँ एक नारी ।
अहर्निशा खाइ विषं भिखारी, गती हुवैया फुर का हमारी ॥१२०॥
तव देव ! दुरित्त-गणा-हरणा-चरणा, यदि पावउँ चद्र कला-भरणा-शरणा ।
परिपूजउँ त्यागिय लोभमना भवना, सुख दे मोँहि शोक-विनाश मनः शमना ॥१५५॥
प्रभु ! दीजिय वज्रहिं सृज्जिय टोप्पर[1] ककण वाहु किरीट शिरे,
प्रति कर्णहिं कुडल जनु-रवि मडल, थापिय हार फुरंत उरे ।

पइ अंगुलि मुद्दरि हीरहि सुदरि, कंचण रज्जु सुमझ्झ तणू ।
तसु तूणउ सुदर किज्जिअ मदर, ठावह वाणह सेस घणू ॥२०६॥
जअइ जअइ हर वलहअ विसहर तिलइअ सुंदर चंदं मुणि आणंदं जणकंदं ।
वसह-गमणकर तिसुल-डमरु-घर, णअणहि डाहु अणगं सिर गंगं गोरि अधंगं ।
जअइ जअइ हरि भुअजुअ धरु गिरि, दहमुह कंस विणासा पिअवासा सुदर हासा ।
वलि छलि महि हरु असुर विलयकरु, मुणिजणमाणसहंसा पिअ सुहभासा उत्तमवंसा
॥२१५॥[1]

३—कविका संदेश

सन्तोष-और निराशा-वाद

सेर एक्क जइ पावउ घित्ता । मडा वीस पकावउ णित्ता ।
टकु एक्क जउ सेधव पाआ । जो हउ रको सो हउ राआ ॥१३०॥ (२२४)
राआ लुद्ध समाज खल, वहु कलहारिणि सेवक धुत्तउ ।
जीवण चाहसि सुक्ख जइ, परिहर घर जइ बहुगुण-जुत्तउ ॥१६९॥ (२७७)
पंडव-वंसहि जम्म धरीजे । सपअ अज्जिअ धम्मक दिज्जै ।
सोउ जुहुट्ठिर सकट पावा । देवक लेक्खिल केण मेटावा ॥१०१॥ (४१२)
सो जण जणमउ सो गुण-मतउ । जो कर पर-उवआर हसतउ ।
जे पुण पर-उपआर विरुझ्झउ, ताक जणणि किण थक्कउ वंझउ ॥१४६॥ (४७०)

§ ४३: हरिब्रह्म

काल—तेरहवी सदीका उत्तरार्ध (चंडेश्वर-मंत्रीका काल)[2]। देश—विहार

१—मंत्री (चंडेश्वर)-प्रशंसा

जहा सरअ-ससि-बिंव, जहा हर-हार-हस ठिअ,
जहा फुल्ल सिअ कमल, जहा सिरि-खंड खट किअ ।

---

[1] पृष्ठ ४३५, ४८०, ५७३, ५८६ [2] चंडेश्वर मिथिला-नेपाल के राजा हरिसिंह (१३१४-२५) के मंत्री थे, जिन्होंने "कृत्यरत्नाकर", "कृत्य-चिन्तामणि", "दानरत्नाकर" आदि ग्रंथ लिखे ।

प्रति-अगुलि मुंदरि हीरहिं सुदरि, कचन-रज्ज सुमध्य तनू ।
तसु तूणहु सुदर कीजिय मदर, थापह वाणहं शेष धनू ॥२०६॥
जयति जयति हर वलयित-विषधर, तिलकित सुदर चद्र मुनि-आनद जनकंद ।
वृषभ-गमनकर त्रिशुल-डमरु-धर, नयनहिं डाहु अनंगं शिर गंगं गौरि अधम ।
जयति जयति हरि भुजयुग धरु गिरि, दशमुख-कस-विनासा प्रियवासा सुदर-हासा ।
बलि छलु महि धरु असुर-विलय कर, मुनि-जन-मानस-हसा प्रियभाषाउत्तमवशा
॥२१५॥

३—कविका संदेश

सन्तोष और निराशावाद

सेर एक यदि पावउँ धृत्ता, मंडा बीस पकावउँ नित्ता ।
टक एक यदि सेँधा पाया, जो हौँ रंकउ सो हौँ राजा ॥१३०॥
राजा लुब्ध समाज खल, वधु कलहारिनि सेवक धूर्त्तउ ।
जीवन चाहसि सुक्ख यदि, परिहर घर यदि बहु-गुण-युक्तउ ॥१६६॥
पडव-वंशहिं जन्म धरीजे, सपति अर्जिय धर्म कोँ दीजै ।
सोउ युधिष्ठिर सकट पावा । देवकेँ लिक्खल कौन मिटावा ॥१०१॥
सो जन जनमेउ सो गुणवतउ । जो कर पर-उपकार हसतउ ।
जो पुनि पर-उपकार विरुद्धउ । ताकि जननि किनु थाकेउ[1] बाँझउ ॥१४६॥

§ ४३ः हरिब्रह्म

(?) । कुल—ब्रह्मभट्ट (?), राजदर्बारी । कृतियाँ—स्फुट[2]

१—मंत्री (चंडेश्वर)-प्रशंसा

यथा शरद-शशि-बिब यथा हर-हार-हस ठिय ।
यथा फुल्ल-सित-कमल, यथा श्रीखड-खड किय ।

---

[1] रहेउ [2] "प्राकृत-पैंगल" पृष्ठ १८४

जहा गंग-कल्लोल, जहा रोसाणिअ रुप्पइ,
जहा दुद्धवर सुद्ध फेण फँफाइ तलप्पइ।
पिअपाअ पसाए दिट्ठि पुणि, णिहुअ हसइ जह तरुणि जण।
वरमंति चंडेसर किंत्ति तुअ, तत्थ पेक्ख हरिवंभ भण ॥१०८॥ (१८४)

§ ४४: अंवदेव सूरि

काल—१३१४। देश—अनहिलवाडा (गुजरात[1])। कुल—वैश्य(?),

१-सामन्त-समाज

(१) सेठ (समरसिंह)की प्रशंसा

जिणि दिणि दिनु दक्खाउ, समरसीहि जिण धम्मवणि।
तसु गुण करउँ उदोउ, जिम अधारइ फटिकमणि॥
सारणि अमियतणीय, जिणि वहाँवी मरुमडलिहिँ।
किउ कृतजुग अवतारु, कलिजुगि जीवउ बाहुवले॥
ओसवाल कुलि चद्दु, उदयउ एउ समान नहिँ।
कलिजुगि कालइ पासि, छेदीयउ सचराचरहिँ॥....
रतन कुक्खि कुलि निम्मलीय भोली पुतुजाया।
सहजउ साहणु समरसीहु वहु पुन्निहि आया॥
लहु अलगइ सुविचार चतुर सुविवेक सुजाण।
रत्न परीक्षा रजवइ राय अउ राण॥
तउ देसल नियकुल पईव ए पुत्र सवन्न।
रूपवत अउ सीलवंत परिणाविय कन्न॥
गोसलसुत्ति आवास कियउ अणहिलपुर नयरे।
पुत्र लहइ जिम रयण माहि नर समुद्दह लहरे॥
—समर-रास (पृ० २७-२९)

---

[1] "प्राचीन-गूर्जर-काव्य-संग्रह" G.O.S. vol. XIII.

यथा गग-कल्लोल, यथा रोषाणित[१] रुपै ।
यथा दुग्धवर-शुद्ध-फेन फफाइ तलप्पैं ।
प्रियपाद प्रसादे दृष्टि पुनि, निभृत हसै जिमि तरुणिजन ।
वरमंत्रि चंडेश्वर कीर्त्ति तव, तत्र पेखु हरिब्रह्म भन ॥१०८॥

§ ४४: अंवदेव सूरि

जैन साधु । कृति—समर-रास ।

१–सामन्त-समाज

(१) सेठ (समरसिंह)की प्रशंसा

जिन दिन दिन दक्षाउ, समरसिंह जिनधर्म-वणि ।
तसु गुण करउँ उजोअ, जिमि अधारैं फटिकमणि ॥
सरणी अमियतनीय[२], जिन बहाइ मरु[३]मडलहिँ ।
किउ कृतयुग अवतार, कलियुग जीतेँउ बाहुवल ॥
ओसवाल कुल-चद्र, उदयेँउ एउ समान नहिँ ।
कलियुग कालइ पाश, छेदीयऊ सचराचरहिँ ॥
रतनकुक्षि कुल निर्मलीय भोली पुतु जाया ।
सहजउ साधन समरसीह बहु पुण्यहिँ आया ॥
लहु अलगइ सुविचार चतुर सुविवेक सुजाना ।
रतन-परीक्षा रजवई राजा अरु राना ॥
तौ देसल निज कुलप्रदीप ऐँहु पुत्र सधन्या ।
रूपवत अरु शीलवत परिनाविय कन्या ॥
गोसल-सुत आवास कियउ अनहिलपुर नगरे ।
पुण्य लहै जिमि रतन माँझ नर समुदह लहरे ॥
—समररास (पृ० २६-२६)

---

[१] —चकेर [३] मारवाड़

(२) बादशाह (अलाउद्दीन) और मीर (अलप खाँ) की प्रशंसा

तहि अच्छइ भूपतिहि भुवण-सतखड-पसत्थो ।
विश्वकर्म विज्ञानि करिउ धोइउ निय हत्थो ॥
अमिय सरोवरु सहसलिगु इकु धरणिहिँ कुडलु ।
कित्तिषभु किरि अवरदेसि मागइ आखडलु ॥
अज्जवि दीसइ जत्थ-धम्मु कलिकालि अगजिउ ।
आचारिहिँ इह नयर-तणइ सचराचरु रजिउ ॥
पा[1]तसाहि [2]सुरताण भीवु तहिँ राजु करेई ।
अलपखानु हीदूअह लोय धणु मानु जु देई ॥
साहु राय देसलह पूतु तसु सेवइ पाय ।
कलाकरी रजविउ खानु वहु देइ पसाय ॥
मीरि मलिकि मानियइ समरु समरथु पभणीजइ ।
पर-उवयारिय माहि लीह जसु पहिलिय दीजइ ॥

२–(जैन) तीर्थयात्री-सेना

आगलि मुनिवर-सघु सावय जणा । तिलु न पिरइ तिम मिलिय लोय घणा ॥
मादल वस विणा धुणि वज्जए । गुहिर भेरीय रवि अवरे गज्जए ॥
नवय पाटणि नवउ रगु अवतारिएँ । मुखिहिँ देवालय संखारी-सचारिएँ ॥
घरि वयसवि करि केवि समाहियाँ । समरगुण रंजिउ विरलउ रहियउ ॥
जयतु कान्हु दुइ सघपति चालिया । हरिपालो लढुको महाधर दृढ़ थिया ॥
वाजिय सख असख नादि काहल दुडदुडिया ।
घोडे चडइ सल्लार सार राउत सीगडिया ।
तउ देवालय जोयि वेगि घाघरि रवु भमकइ ।
सम विसम नवि गणइ कोइ नवि वारिउ थक्कइ ॥

---

[1] बादशाह [2] सुलतान

(२) बादशाह (अलाउद्दीन) और मीर (अलप खाँ)की प्रशंसा

तहँ आछे भूपतिहँ भुव सतखड प्रशस्तो।
विश्वकर्म विज्ञान करेँउ धोइय निज हस्ते ॥
अमिय-सरोवर सहस्रलिंग ऐँक धरणिहिँ कुडल।
कीर्त्ति-खभ फुर अवर देश माँगइ आखडल ॥
आजउ दीसै यत्र धर्म कलिकाल अगजेँउ।
आचारेँहि इह नगरकेर सचाचर रजेँउ।
पादशाह सुरतान **भीवु** तहँ राज करेई।
अलपखान हिंदुअहँ लोग धनमान जोँ देई ॥
साहु राय **वेसलह** पुत्र तसु सेवै पाये।
कलाकरी रजविउ खान् वहु देइ प्रसादे ॥
मीर मलिक मानियै समर समरथ प्र-भनीजै।
पर-उपकारी माँझ लेख जसु पहिली दीजै ॥

२—(जैन) तीर्थयात्री-सेना

आगे मुनिवर संघ श्रावक-जना। तिल न खिडै तिमि मिलिय लोग घना ॥
माँदल-वश-वीणा धुनि वाजई। गहिर भेरीरव अवरेँ गाजई ॥
नवक पाँटन नवउ रग अवतारेँऊ। सुखेँहिँ देँवालय शख-री सचारेँऊ।
घरेँ वडसँवि करि कोड समाहिया। **समर**-गुण-रजित विरलउ राहिया ॥
जयतु **कान्ह** दुइ सघपति[1] चालिया। **हरिपालो** **लंढुको** **महाधर** दूढ ठिया ॥
वाजिय शख असंख्य नाद काहल दुडदुडिया।
घोडे चढे **सलार**[2]सार **राउत** सीगडिया ॥
तब देवालय जोइ वेगि घाघर रव झमकै।
सम-विषमा ना गनै कोइ ना वारिउ थाकै[3] ॥

---

[1] जैन गृहस्थोके संघके प्रधान [2] कमांडर [3] ठहरै, रहै।

सिजवाला धर घडहडड वाहिणि वहु वेगे ।
धरणि धडक्कड रजु उडए नवि सूझवि मागे ॥
हय हीसइ आरसइ करह वेगि वहड वइल्ल ।
सादकिया थाहरइ अवरु नवि देई बुल्ल ॥
निसि दीवी झलहलहि जेम ऊगिउ तारायणु ।
पावल पाउ न पामियए वेगि वहइ सुखासण ॥
आगे वाणिहि सचरए सघपती साहु देसलु ।
बुद्धिवतु वहुपुनिवतु परिकमिहिँ सुनिश्चलु ॥
पाछे वाणिहि सोमसीहु साहुसहजा पूतो ।
सागणु साहु दूणिगह पूतु सोमजिनि जुत्तो ॥
जोड करी असवार माँहि आपणि समरागरु ।
चडिय हीड चहुगमे जोइ जो सघ असुहकरु ॥
सेरीसे पूजियउ पासु कलिकालिहिँ सकलो ।
सिरखेजि थाइउ धवलकए सघु आविउ सयलो ॥
धवूकउ अतिक्रमिउ ताम लोलियाणइ पहूतो ।
नेमि भुवणि उछवु करिउ पिपलालीय वत्तो ॥
—वहीं (पृ० ३२-३३)

३—ग्रंथ-रचना-काल

संवच्छरि इक्कहत्तरए थापिउ रिसहजिणिंदो ।
चैत्रवदि सातमि पहुतघरे नदऊ ए नदउ ए नदउ जा रवि चंदो ॥
पासउ सूरिहिँ गणहरह नेउअच्छ निवासो ।
तसु सीसहिँ, अवदेव सूरिहिँ रचियउ ए रचियउ ए रचियउ समरारासो ॥
—समररासो[1]

[1] पृष्ठ ३७

सिजवाला धर धड़धड़ै वाहिनि वहुवेगे।
धरनि धड़क्कै रज ऊडै ना सूझै मार्गे ॥
हय हिनसैं आरसैं करभ वेग वहैं वइल्ला।
सा[1]दकिया थाहरै और ना देई बोल्ला ॥
निशि दीपा झलझलैं जेम ऊगिय तारागण।
पावल पाव न पाइयै वेंगि वहै सुखासन ॥
आगे वाणी सचरै सघपति साहु **देसला**।
बुद्धिवंत वहुपुण्यवत परिक्रमहिँ सुनिश्चला ॥
पाछे वाणिहि **सोमसीह** साँहु सहजा-पूतो।
सांगण साहु **दूनिगह** पूत सोम जिन युक्तो ॥
जोडकरी असवार माँह आपुहिँ समरागर।
चढिय हिंड चहुगमे जोय जो संघ असुखकर ॥
सेरीसे पूजियउ पार्श्व कलिकालहिँ सकलो।
सिरखेजी ठहरेउ **धवलकह** संघ आयेँउ सकलो ॥
धंधूकउ अति क्रमेँउ ताँह लोँलि यानह वहुतो।
नेमिभुवन उत्सव करेँउ **पिपलालिय** प्राप्तो ॥
—वहीँ (पृ० ३२-३३)

३—ग्रंथ-रचना-काल

सवत्सर एकहत्तरे थापेँउ ऋषभ जिनेद्रो।
चैत्रवदी सातमि पहुतघरेँ नदउ जो लोँ रवि चंद्रो ॥
पार्श्वउ सूरिहिँ गणधरह **नेउअच्छ** निवासो।
तसु शिष्येहिँ **अँबदेव** (सूरि) रचियउ समरारासो ॥
—समररास (पृ० ३७)

---

[1] सवार, गाड़ीवान आदि

§ ४५: अज्ञात कवि

काल—१३०० (ई०), देश—गुजरात।

१—कक्का[1]

(१) वैराग्य और वात्सल्य

कत्थ वच्छ कुवलय-नयण, सालिभद्द सुकुमाल।
भद्दा पथणइ देव तुहु, कह थिउ इत्तिय वार॥
खरउं कुड्डु ता पुत्त कहि, का देसण किय वीरि।
कवण अत्थु वरवाणिइउ, कचणगोर सरीरि॥
खार समुद्दहर आगलउ, माहर कढिउ ससारु।
संजमपवहण हीण तसु, कियइ न लब्भइ पारु॥
गमयमत्त वीरिय पवर, जे जगि पुरिस पहाण।
सालिभद्द भद्दा भणइ, सजमु सोहइ ताण॥
घण कुकुम चदण रसिण, तुह तणु वासिउ वच्छ।
वयह परीसह किम सहिसि, मुणि गगाजल सच्छ॥
नविवउ लिज्जइ तरुण पणि, सालिभद्द सुकुमाल।
महु कुलमङ्गल कुलतिलय, कुलपईव कुलबाल॥
चरणु लेसिजइ पुत्त तुहु, नदणनीय पवीण।
रोअती भद्दा भणइँ, मइँ किम मेल्हिसि दीण॥
छण मइलंछण समवयण, तुह भज्जा बत्तीस।
ते विलवती पेमभरि, किम कारिसि कुलईस॥
जणणि भणइ जा बालपणु, ता पुत्तह पडिवधु।
तारुमइ वुल्लाविअउ, वहु उन्नाडइ कधु॥

---

[1] बाराखड़ी

§ ४५: अज्ञात कवि

कृति—शालिभद्र-कक्का ।[१]

१—कका

(१) वैराग्य और वात्सल्य

कहाँ वास कुवलय-नयन, शालिभद्र सुकुमार ।
भद्रा प्र-भनै देव तुहु, कहँ रहु एत्तिय वार ॥
खरउ[२] कुड्डु[३] ता पुत्र कहँ, का देशन किउ वीर ।
कौन अर्थ वर-वाणिइउ, कंचन गौर शरीर ॥
खार समुद्रहँ आगलउ, मा हर कढेँउ ससार ।
सयम-प्रवहण-हीन तसु, किये न लब्भै पार ।
गमय-मत्त वीर्य प्रवर, जे जग पुरुष प्रधान ।
शालिभद्र भद्रा भनै, सयम सोहै तान[४] ॥
घनकुकुम चदन रसेँहिँ, तव तन वासेँउ वत्स ।
व्रतहँ परीसह[५] किमि सहिसि, मुनि गगाजल स्वच्छ ॥
नववय छीजै तरुणपन, शालिभद्र सुकुमार ।
मम कुल-मडन कुल-तिलक, कुलप्रदीप कुलपाल ॥
चरण लेसि यदि पुत्र तुव, नदन नीच प्रवीण ।
रोअती भद्रा भनै, मोँहिँ का छाडेँसि दीन ॥
छण-मृगलाछन सम-वदन, तुव भार्या बत्तीस ।
ते विलपती प्रेमभर, का कारेसि कुलईश ॥
जननि भनै जो वालपन, सो पुत्रह प्रतिवधु ।
तारमती बोलावियउ, वहु उन्नाडै[६] कधु ॥

---

[१] "प्राचीन-गुर्जर-काव्य-संग्रह" G O.S. Vol. XIII

[२] अच्छा [३] आश्चर्य [४] तिनको [५] उपसर्ग, कष्ट [६] हिलावै

झलकंतउ कचणघडिउँ, सत्तभूमि पासाउ।
विहवउ कोडाकोडि धण, कहि कोइँ ऊणउ ठाउ॥
नरवइ सेणिउ तुम्ह पहु, सुरगोभद्दु सुताउ।
नित्तु नवएँ आभारणू, कहि को चित्तिविसाउ॥
टलटलेसि धम्मत्थ पुण, धम्मगहिल्ला बाल।
धम्म करेवा मट्ठ समउ, तुहु धणु रक्खण बाल॥
ठणकइ पुत्तसु चित्तिमहु, पुत्त विहूणिय नारि।
विहविह मुच्चइ दुहु सहइ, दीणी परघर वारि॥
डरपिसि सुणियइ सीहसरि, निसुणिसि सिव-फिक्कार।
भुक्खिउ तिसिइउ वच्छ, तुह किम हिंडिसि नार॥
ढलइँ चमर-वर पुत्त तुहु, सीस धरिज्जइ छत्तु।
मणि सीहासणि वइठणउँ, किणि कारणि वइचित्तु॥
नवउँ अंतेउरु नवउँ घरु, नवजोवणु नवरंगु।
सालिभद्दु नवकणयतणु, ढलकरि चरण पसंगु॥
तरुअरतलि आवासु मुणि, भिक्खह भोयणु पाणु।
भूमंडलि आसणु सयणु, वच्छ चरणु दुहठाणु॥
थल-डूँगर पाहणसघण, कक्कर कट तुसार।
पाणह वज्जिय गुरि सहिउ, हिंडिसि केम कुमार॥
दहविह धम्मु करेसि किम, किम सोसिसि निय अंगु।
वच्छ तह ता दोहिलउँ, होसिइ तुह सीलगु॥
धम्मु किइउ जिम रिसहजिणि[1], तिम किज्जइ सुअ इत्थु।
पहिलउँ साखिहिँ पसरिउ, अंतिय यामिउ तित्थु॥
नवकप्पूरिहि पूरिया, नन्दण कोमल केस।
केतगि वालइँ वासिया, किम उद्धरिसि असेस॥

---

[1] एक तीर्थंकर

झलकंतउ कचन गढिय, [1]सप्तभूमि प्रासाद।
विभवउ कोटाकोटि धन, कहँ कोँउ ऊनउ ठाँव ॥
नरपति श्रेणिक तुम्ह प्रभु, सुरगोभद्र सुताउ।
नित्य नवै आभारणू, कहँ को चित्त-विषाद ॥
टलटलेसि धर्मार्थे पुनि, धर्म-गहिल्ला बाल।
धर्म करेबा मम समय, तुव धन-रक्षण-काल ॥
ठापै पुत्र सोँ चित्त मैँ, पुत्र विहूनी नारि।
विभवहिँ मुचै दुख सहै, दीनी परघर वारि ॥
डरपसि सुनिया सिंहस्वर, नि-सुनिय शिवाँ-फेक्कार।
भुखिय तृषितउ वत्स तुहुँ, किमि हिंडीयसि नार ॥
ढलैँ चमर-वर पुत्र ! तव, सीस धरिज्जै छत्र।
मणिसिंहासनेँ बइठनउ, किन कारण वैचित्र ॥
नव अंतःपुर नवघर, नवयौवन नवरग।
शालिभद्र नवकनकतनु ढलकर चरण-प्रसग ॥
तरुवरतल आवास मुनि, भिक्षहँ भोजन-पान।
भूमडल आसन-शयन, वत्स ! चरण दुख-थान ॥
थल डूँगर पाहन सघन, ककड कट तुषार।
पनही वर्जिय गोड सन, हिंडसि केम कुमार ॥
दशविध धर्म करेसि किमि, किमि शोषसि निज अग।
वत्स ! तहाँतहँ दोहलउ, होँइहै तुव शीलांग ॥
धर्म करेँउ जिमि ऋषभ जिन, तिमि कीजै सुत अत्र।
पहिले सखिहिँ पसारियउ, अते यायेउ तीर्थ ॥
नवकर्पूरहिँ पूरिया, नन्दन ! कोमल केश।
केतकि वालैँ वासिया, किमि उद्धरिसि अशेष ॥

---

[1] सात महलोंवाला

पट्टसुश्र तइँ पहरियां, रसियउ दिव्व ग्रहारु।
सुग्र उव्वासिंहि सोसिया, केम करेसि विहारु॥
फणि-रायह सिरिपुत्त मणि, मुल्लेणय वहुमुल्लु।
सा गिण्हंता पाणहर, संजम-भरु तस तुल्लु॥
वत्तीसहँ पल्लकि तउं, सयण करइ नितु जाय।
[1]डूंगरि कासुगि करिसि किम, वलि किज्जउँ तह काय॥
भमिसि विहारिहि भारिग्रग्रो, नदण त सुकुमाल।
वीर जिणदह चरणु पुणु, मुणि वावन्नउँ फालु॥
मयलंछण जिमि तारयहँ, सयलहँ किल भत्तारु।
त वत्तीसह वहुग्ररहं, एक्कु देव ग्राधारु॥
यइ तउँ सजमु लेसि सुग्र, मेल्हिवि सयलु सिणेहु।
ता गोभद्दु ग्रभागिहउ, हा धिगु छुड्डउ गेहु॥
रहि रहि नंदण वयणु सुणि, मामा मइँ सतावि।
तुह विणु नितु कुण पूरिसइ, मुक्काहरणहँ वावि॥
लडकइँ सउँ सजमु लियल, नदसेणु मुणिराउ।
सो सजमुपव्वडय सुग्र, भोगह कम्मपसाय॥
वच्छ ति नारी दुक्खिनिहि, जाहँ न कतु न पुत्तु।
मुहुतइं नदण जाइयइँ, हिव ग्राविऊँ निरुत्त॥
सहसाकारिहिँ गहियवउ, सुयइ कडरिएण।
नदण तेणय नरइदुह, पामिय भट्टवएण॥
पलह मणोरह पूजिसडँ, सज्जण होसिड मोसु।
नन्दण तु थाइसि समणु, एँउ मह्नु कम्महँ दोसु॥
समल देह कप्पड समल, रत्तिदिवस गुरुग्राण।
होडसइं तुव भद्दा भणइ, पर-ग्राइत्त पवाण॥

---

[1] वृक्ष-वनस्पतिहीन पर्वतको डूंगर कहते हैं।

पट्टांशुक तैं पहिरिया, रसियउ दिव्य-अहार।
सुत उपवासेंहि शोषिया, केम करेसि विहार॥
फणिराजह श्रीपुत्र मणि, मूल्येनउ वहुमूल्य।
सो गृहणते प्राणहर, सयमभर तसु तुल्य॥
बत्तीसेहँ पल्लग तैं, शयन करै नित जाय।
डूँगरि कासुग[1] करिसि किम, बलि किज्जउँ तह काय॥
अमसि विहारें भारिअउ, नदन सो सुकुमार।
वीरजिनेद्रहँ चरण पुनि, मुनि बावनऊ फाल[2]॥
मृगलाछन जिमि तारकहँ, सकलहँ कर भर्त्तार।
तिन बत्तीसहँ बधुअरहँ, एक देव आधार॥
यदि तैं सयम लेसि सुत, मेलिय[3] सकल सनेह।
ता गोभद्र अभागिहउ, हा धिग छूटेंउ गेह॥
रहि रहि नदन वयन सुनि, मा मा मैं सताप।
तुह विन नित को पूरिहैं, मुक्ताभरणहँ वापि॥
लडकैं सँग सयम लियउ, नंदसेन मुनिराव।
सो सयम प्रव्रजिय सुत, भोगहँ कर्म प्रसाद॥
वत्स तें नारी दुखिनी, जाहँ न कत न पुत्त।
मम तैं नदन जाइइहि, क्यों आवेंऊँ निरुत्त[4]॥
सहसा कारेंहिँ गहियऊ, सुनिय कडरीकेहिँ[5]।
नदन ! ताते नरक-दुख, पाइय भ्रष्टव्रतेहिँ॥
खलह मनोरथ पूजिहै, सज्जन होंइहै शोष।
नदन ! तूँ होयेंउ श्रमण, एँहु मम कर्महँ दोष॥
सॉवर देह कल्पउ सँवर, रातदिवस गुरुज्ञान।
होइहै तू भद्रा भनै, पर-आयत्त-पराण॥

---

[1] कायोत्सर्ग=खड़े बैठे ध्यानावस्थ होना [2] छलाँग
[3] — [4] निरर्थक [5] कंडरीककी कथा

हसत रोअंता पाहुणउ, ताम हसता होउ।
सालिभद्द संजमु लियइ, महु वुज्झिअइ पमोहु ॥
—सालिभद्द-कक्का[1]

§ ४६: अज्ञात कवि (१३०० ई०)

१—जीते-जी कीर्त्ति

कित्ती सा सलहिज्जइ जा सुणीइ अप्पणेहिँ कण्णेहिँ।
पच्छा मुअण सुदरि ! सा कित्ती होउ मा होउ ॥
जस-सहित जे नर हुआ, रवि पहिला उगति।
जोगा जाते दीहडे, गिरि पत्थरा ढुलंति ॥
कीरति हदा कोटड़ा, पाडआही न पडति ॥
—उपदेशतरगिणी[2] (पृ० २७५)

§ ४७: राजशेखर[3] सूरि

काल—१३१४ ई० (?)। देश—गुजरात। कुल—जैन साधु।

१—सामन्त-समाज

(१) नारी-सौंदर्य

अह सामल कोमल केशुपास किरि मोरकलाउ।
अद्ध-चद-समु भालु मयणु-पोसइ भउवाउ ॥

---

[1] पृष्ठ ६२-६७ [2] "उपदेश-तरंगिणी" (रत्न-मन्दिर गणि १४६० ई०) धर्माभ्युदय-प्रेस, बनारस (२४१७ वीर संवत्) [3] कविराज राजशेखर नहीं

हसत रोँअता पाहुनउ, तहाँ हसता होउ।
शालिभद्र सयम लियै, मम बूझिहै प्रमोह ॥
—शालिभद्र-कक्का (पृ० ६२-६७)

§ ४६: अज्ञात कवि (१३०० ई०)

१—जीते-जी कीर्त्ति

र्त्ति सा सलहिज्जै जा सुनीय आपनेहि कानेहिँ।
पाछे मुये प'सुदरि। सा कीर्त्ती होहु न होहु ॥१२॥

शा-सहित जो नर हुआ रवि पहिला ऊगत।
युगगाँ जाते दीहडे[1] गिरि-पत्थरा ढुलति ॥१३॥

'कीरति हदा कोटडा पाडचा ही न पडति ॥
—उपदेशतरगिणी (पृ० २७५)

§ ४७: राजशेखर सूरि

कृति—नेमिनाथ-फाग[2]।

१—सामन्त-समाज

(१) नारी-सौंदर्य

श्यामल कोमल केशपाश जनु मोरकलाप।
अर्धचद्रसम भाल मदनपोसै भउवाहँ ॥

---

[1] दिवस

[2] "प्राचीन-गुर्जर-काव्य-संग्रह" G.O.S. vol. III

वंकुडिया लीय भुहंडियहं भरि भुवणु भमाडइ।
लाडी लोयण लह कुडलइ सुरसग्गह पाडइ॥
किरि ससिबिंब कपोल कन्नहिं डोल फुरता।
नासावंसा गरुड-चचु दाडिमफल दंता॥
अहर पवाल तिरेह कंठु राजल सर रूडउ।
जाणुवीणु रणरणइं जाणु कोइलटहकडलउ॥
सरल तरल भुय वल्लरिय सिहण पीण घण तुग।
उदरदेसि लकाउलिय सोहइ तिवल-तरगु॥
कोमल विमल नियव बिंब किरि गगा-पुलिणा।
करि-करऊरि हरिण जघ पल्लव करचरणा।
मलपति चालति वेलहीय हंसला हरावइ।
सझारागु अकालिवालु नहकिरणि करावइ॥
सहजिहि लडहीय रायमएँ सुलखण सुकुमाला।
घणउ घणेरउं गहणगहए नवजुव्वण वाला॥
भंभरभोली नेमि, जिण वीवाह सुणेई।
नेहगहिल्ली गोरडी, हियडाई विहसेई॥
सावण सुकिल छट्ठि दिणि वावीसमउ जिणदो।
चल्लइ राजल परिणयण कामिणि नयणाणदो॥
—नेमिनाथ-फाग (पृ० ८३-८४)

२—शृंगार-सजाव

किम किम राजलदेवितणउ[1] सिणगारु भणेवउ।
चपइगोरी अइधोई अगि चंदनु लेयउ॥
खुंपु भराविउ जाइ कुसुमि कसतूरी सारी।
सीमतउ सिंदूररेह मोतीसरि सारी॥

[1] रानी

वाकडिया लिय भोंहडियहँ भर भुवन भ्रमाडइ ।
लारी लोचन लह कुडले[1] सुस्वर्गहँ पातै ॥
जनु शशिबिब कपोल कर्ण हिंडोल फुरता ।
नासावंशा गरुड-चचु, दाडिमफल दंता ॥
अधर प्रवालहँ रेख, कठ राजल सर रुडऊ[2] ।
जनु-वीणा रणरणै, जान कोंइलटहकलऊ[3] ॥
सरल तरल भुजवल्लरीय, थन-पीन-तुग ।
उदर-देशें लंका सोहै त्रिबली तरंग ॥
कोमल विमल नितब बिब जनु गंगापुलिना ।
करि-कर उरुयुग हरित-जघ पल्लव कर-चरणा ॥
मलपति[4] चालति बेलीइव हसला हरावै ।
सध्याराग अकाल वाल नखकिरण करावै ॥
सहजैं सुदर-राजमति, सुलखन , सुकुमारा ।
घनउँ घनेरउ गहगहे, नवयौवन वाला ॥
भवलभोली[5] नेमि जिन वीवाह सुनेइ ।
नेह गहिल्ली गोरडी हियरेई विहसेइ ॥
श्रावण शुक्ला छट्ठ दिन, बीई सवउँ जिनेन्द्र ।
चल्लै राजल परिणयन, कामिनि नयनानद ॥
—नेमिनाथफाग (पृ० ८३-८४)

२—शृंगार-सजाव

किमि किमि राजलदेवि केर शृगार भनेबउ ।
चपकगोरी अतीधौत अँग चँदन लेंपेबउ ॥
खोंप भरावेउ जाति-कुसुम कस्तूरी सारी ।
सीमतैं सिंदूर-रेख मोतीसर सारी ॥

---

[1] कटाक्ष [2] सुन्दर [3] टहकना [4] मस्त [5] भोली-भाली

नवरंगीकुंकुमि तिलयं किय रयणतिलउ तसु भाले ।
मोती कुण्डल कन्नि थिय बिबालिय कर जाले ॥
नरतिय कज्जलरेह नयणि मुँहकमलि तंबोलो ।
नागोदर कठलउ कंठि अनुहार विरोलो ॥
मरगद [1]जादर कचुयउ फुड फुल्लह माला ।
करें कंकण मणि-वलय चूड खलकावइ वाला ॥
रुणुझुणु रुणुझुणु रुणुझुणएँ कडि घाघरियाली ।
रिमझिमि रिमझिमि रिमझिमएँ पयनेउर जुयली ॥
नहि आलत्तउ वलवलउ सेअसुय किमिसि ।
अंखडियाली रायमइ प्रिउ जोअइ मनरसि ॥
—वहीं (पृ० ८३-८४)

---

[1] 'चादर' शब्दका पूर्व रूप

नवरंग कुकुम तिलक किय रतन तिलक तसु भाले।
मोती कुडल कर्णे ठिय बिंबालिय कर जाले ॥
नरतिय कज्जल-रेख नयनें मुखकमल तँबूलो।
नागोदर कंठलउ कठ अनुहार विरोलो ॥
मरगत--जादर[1] कंचुकहउ फुर फूलहँ माला।
करहीं ककण-मणिवलय चूड खडकावै वाला ॥
रुनझुन-रुनझुन-रनझुनै कटि घाघरियाली।
रिमझिम-रिमझिम-रिमझिमै पद नूपुर युगली ॥
नखें अलक्तक बलवलउ श्वेतांशु-विमिश्रित।
अखडियाली राजमति प्रिय जोवै मन रसि[2] ॥

—वहीं (पृ० ८३-८४)

---

[1] दोनों जरीके कीमती वस्त्र   [2] रस रखकर

हिन्दी काव्य-धारा

परिशिष्ट

– १ –

ग्रंथ, जिनसे सहायता ली गई

– २ –

कवियोंका कालक्रम, उनकी रचनाएँ

– ३ –

देहाती और तद्भव शब्द

– ४ –

सम-सामयिक राजवंश

नागार्जुन

परिशिष्ट १

निम्नलिखित ग्रथो, सग्रहों और साहित्य-पत्रों (Journals)से सामग्री एकत्र की गई—

१. पुरातत्त्व निबधावली—राहुल साकृत्यायन। इडियन प्रेस (प्रयाग)से प्रकाशित।
२. सिद्धोके दोहे—The Journal of Department of Letters, Calcutta University के Vol. XXVIII में।
३ चर्यापद—J. D. L., Cal. के Vol. XXX में।
४. स्वयभू रामायण (हस्तलिखित)—भाडारकर इन्स्टीटचूट, पूनामे सुरक्षित।
५. गोरखवानी—हिंदी-साहित्य-सम्मेलन (प्रयाग)से प्रकाशित, १९९९ वि०स०।
६. सावयधम्म दोहा।
७. महापुराण—पुष्पदत, डाक्टर पी० एल्० वैद्य द्वारा माणिकचद्र दिगम्बर-जैन-ग्रथ-मालामें सम्पादित, तीन जिल्द (१९३७, १९४०, १९४१ ई०)।
८. जसहरचरिउ—पुष्पदत, डाक्टर पी० एल्० वैद्य द्वारा करजा-जैन-ग्रथमाला (करजा, बरार)में सम्पादित (१९३१ ई०)।
९. नायकुमारचरिउ—पुष्पदत, प्रोफेसर हीरालाल जैन द्वारा देवेंद्र-जैन-ग्रथमाला (करजा, बरार)मे सम्पादित। (१९३३)।
१०. परमात्मप्रकाश दोहा और योगसार दोहा—योगीदु, ए० एन्० उपाध्ये द्वारा श्रीरायचद-जैन-शास्त्रमाला (बबई)की १०वीं ग्रथसख्या (१९३० ई०)।
११ पाहुडदोहा—रामसिह, करजा-जैन-ग्रथमालामे प्रकाशित।
१२. भविसयत्तकहा—धनपाल, गायकवाड ओरियटल सिरीज, बड़ोदा द्वारा प्रकाशित (१९२३ ई०)।
१३. प्रबधचिंतामणि—मेरुतुगाचार्य, मुनि जिनविजय द्वारा सम्पादित और विश्वभारती, शातिनिकेतनसे प्रकाशित।
१४. सदेशरासक—अब्दुर्रहमान, 'भारतीय विद्या'मे मुनि जिनविजय द्वारा सम्पादित (मार्च १९४२ ई०)।
१५ प्राकृतपैगल—चद्रमोहन घोष द्वारा Bibliothica Indica मे सम्पादित (१९०२ ई०)।

करकंडचरिउ—कनकामरमुनि; प्रोफेसर हीरालाल जैन द्वारा करंजा-जैन-ग्रंथमालामे सम्पादित (१६३४ ई०)।

१७. प्राचीनगुर्जरकाव्यसग्रह—गायकवाड ओरियटल सिरीज़, वडोदासे प्रकाशित (१६२७)।

१८ अपभ्रंशकाव्यत्रय—गायकवाड़ ओरियटल सिरीज़, वडोदासे प्रकाशित (१६२७ ई०)।

१६. प्राकृतव्याकरण—हेमचद्र सूरि; डाक्टर पी० एल्० वैद्य द्वारा सम्पादित और मोतीलाल लाधाजी (पूना) द्वारा प्रकाशित (१६२८ ई०)।

२०. छदोऽनुशासन—हेमचद्र सूरि; देवकरण-मूलचंद (ववई) द्वारा प्रकाशित (१६१२ ई०)।

२१. नेमिनाथचरित—हरिभद्र सूरि, डाक्टर हर्मन् याकोवी द्वारा सम्पादित।

२२. उपदेशतरगिणी--रत्नमदिरगणि; धर्माभ्युदय प्रेस, वनारससे प्रकाशित।

२३. कुमारपालप्रतिवोध--सोमप्रभ सूरि; गायकवाड ओरियटल सिरीज़, वड़ोदासे प्रकाशित (१६२० ई०)।

२४ पृथ्वीराजरासो

२५ अनुव्रतरत्नप्रदीप—लक्खण, (अप्रकाशित) भारतीय विद्याभवन, ववईमे सुरक्षित।

परिशिष्ट २

कवि और उनकी कृतियाँ; उनके समसामयिक राजा आदि

आठवीँ शताब्दी

कवि	कृतियाँ
सरहपा—७६० ई०	उपदेशगीति दोहाकोष
	तत्वोपदेशशिखर ,,
	भावनाफल दृष्टिचर्या ,,
	वसंत तिलक दोहाकोष
	महामुद्रोपदेश ,,

परिशिष्ट २

कवि	कृतियाँ
सरहपा—८८० ई० धर्मपाल (७७०-८०६)	सरहपादगीतिका चित्तगुह्यगभीरार्थगीति महामुद्रावज्रगीति शून्यतादृष्टि षडगयोग सहजसवरस्वाधिष्ठान सहजोपदेश स्वाधिष्ठान
स्वयभूदेव—७९० ई० ध्रुव धारावर्ष (७८०-९४)	हरिवशपुराण रामायण (पउरचरिउ) स्वयभूछद
भूसुकपा—८०० ई० धर्मपाल-देवपाल (शातिदेव) (७८०-८०६-४९)	सहजगीति

नवीं शताब्दी

लुईपा—८३० ई० धर्मपाल-देवपाल	अभिसमय-विभग तत्त्वस्वभावदोहाकोष बुद्धोदयभगवदभिसमय-गीतिका
विरूपा—८३० ई० देवपाल (८०६-४९)	अमृतसिद्धि-दोहाकोष कर्मचडालिका- „ विरूप-गीतिका विरूप वज्र-गीतिका विरूपपदचतुरशीति मार्गफलान्विताववादक सुनिष्प्रपचतत्त्वोपदेश अक्षरद्विकोपदेश
डोम्बिपा—८४० ई० देवपाल	

	कृतियाँ
	गीतिका
	नाडीविंदुद्वारे योगचर्या
दारिकपा—८४० ई० देवपाल	महागुह्यतत्त्वोपदेश
	तथतादृष्टि
	सप्तम सिद्धान्त
गुडरीपा—८४० ई० देवपाल	गीति
कुक्कुरीपा—८४० ई० देवपाल	योगभावनोपदेश
	स्रवपरिच्छेदन
कमरिपा—८४० ई० देवपाल	असम्बधदृष्टि
	असम्बधसर्गदृष्टि
	गीतिका
कण्हपा—८४० ई० देवपाल	गीतिक
	महाढुंढन
	वसंततिलक
	असम्बधदृष्टि
	वज्रगीति
	दोहाकोष
गोरखनाथ—८४५ ई० देवपाल	गोरखवानी
	वायुतत्त्वोपदेश
टेंडणपा—८४५ ई० देवपाल-विग्रहपाल (८०६-४९-५४)	चतुर्योगभावना
महीपा—८७५ ई० विग्रहपाल-नारायणपाल (८५०-५४-९०८)	वायुतत्त्व
	दोहागीतिका
भादेपा—८७५ ई० विग्रहपाल-नारायणपाल	चर्यापद
	(गीति)
धामपा—८७५ ई० विग्रहपाल-नारायणपाल	कालिभावनामार्ग
	सुगतदृष्टिगीतिका
	हूंकारचित्तबिंदुभावनाक्रम

परिशिष्ट २

दसवीँ शताब्दी

कवि	कृतियाँ
देवसेन—९९३ ई०	सावयधम्मदोहा
तिलोपा—९६० ई० राज्यपाल-गोपाल द्वि० विग्रह-पाल द्वि० (९०८-४०-६०-८०)	निवृत्तिभावनाक्रम करुणाभावनाधिष्ठान दोहाकोष महामुद्रोपदेश
पुष्पदत—९५९-७२ ई० राठौड कृष्ण-खोट्टिग ती०-(९३९-६८-७२)	महापुराण (आदिपुराण उत्तरपुराण) यशोधरचरित नागकुमारचरित
शातिपा—१००० ई० विग्रहपाल-महीपाल (९६०-८८-१०३८)	सुखदु खद्वयपरित्यागदृष्टि
योगीदु—१००० ई०	परमात्मप्रकाशदोहा योगसारदोहा
रामसिंह—१००० ई०	पाहुडदोहा
धनपाल—१००० ई०	भविसयत्तकहा

ग्यारहवीँ शताब्दी

कवि	कृतियाँ
अज्ञातकवि—१००० ई० भोज (१००९-४२)	फुटकर रचनाएँ
अब्दुर्रहमान—१०१० ई०	सनेहरासय (सदेशरासक)
बब्बर—१०५० ई० कर्ण कलचुरी (१०४०-७०)	फुटकर रचनाएँ
कनकामर—१०६० ई०	करकडचरिउ
जिनदत्तसूरि (१०७५-११५४)	चाचरि उपदेशरसायन कालस्वरूपकुलक

बारहवीं शताब्दी

कवि	कृतियाँ
हेमचंद्र सूरि—११७६ ई० कर्ण, जयसिंह, कुमारपाल आदि सोलंकी राजाओंके समकालीन	प्राकृतव्याकरण छंदोऽनुशासन देशीनाममाला
हरिभद्र सूरि—११५६ ई० जयसिंह-कुमारपाल (१०६३-११४२-७३)	णेमिणाहचरिउ
अज्ञात कवि—वीसलदेव (११५३-६४)	फुटकर (उपदेशतरंगिणीसे)
आम भट्ट—जयसिंह-कुमारपाल	,, ,,
विद्याधर—११८० ई० जयचंद (११७०-६४)	स्फुट कविताएँ
शालिभद्र सूरि—११८४ ई० .	बाहुबलिरास
सोमप्रभ—११९५ ई०	कुमारपालप्रतिबोध
जिनपद्म सूरि—१२०० ई० . .	थूलिभद्द फाग
विनयचंद्र सूरि—१२०० ई० .	नेमिनाथ चतुष्पादिका
चंदवरदाई—१२०० ई०	पृथिवीराज रासो

तेरहवीं शताब्दी

कवि	कृतियाँ
लक्खण—१२५७ ई०	अणुवयरयण पईव (अनुव्रतरत्नप्रदीप)
जज्जल—१२९० ई० हम्मीर (१२८२-९९)	फुटकर (प्राकृतपैंगलमें)
कुछ और अज्ञात कवि .तेरहवीं सदीका पूर्वार्ध.	फुटकर रचनाएँ
हरिब्रह्म. तेरहवीं सदीका उत्तरार्ध .. मिथिला-नेपालके राजा हरिसिंहके मंत्री चंडेश्वरके आश्रित	फुटकर कविताएँ
अंबदेव सूरि—१३१४ ई० .	समररास
अज्ञात कवि—१३०० ई० . ..	शालिभद्रकक्का (बारहखड़ी)
,, ...	फुटकर (उपदेशामृततरंगिणीमें)
राजशेखर सूरि—१३१४(?) ई०. ..	नेमिनाथ फाग

परिशिष्ट ३

कुछ खास देहाती और तद्भव शब्द

शब्द	पृष्ठ
रडी	४
चेल्लु (चेला)	,,
दीवे (दीवा)	,,
अच्छहु (अच्छा)	६
धधा	,,
अवर (और)	,,
जइ भिंडि (जब तक—मैथिली, मगही और भोजपुरीमे 'भिडि'का प्रयोग होता है)	,,
अइस (ऐसा)	,
चगे (अच्छे, पजाबीमे यह शब्द अभी भी जीवित है)	८
बणारसि (बनारस)	,,
आल-माल (क्रय-विक्रय, सौदा या सामान सूचक 'माल' शब्दका सगा जैसा ही यहाँका भी 'माल' मालूम पडता है)	,,
घरणी (गृहिणी)	१२
लुक्को (छिपा)	,,
बे (दो, गुजराती)	१४
थक्कु (रहै, थाकू—बंगला)	,,
अणठीय (अर्परिचित, अन्यस्थित—अन्यत्र स्थितिवाला अनठिया—मैथिली)	१६
नियडि (निकट, नियर—भोजपुरी, काशिका, अवधी और व्रजभाषा आदिमे)	१८
खाटि (अच्छा, खाँटि-बगला)	,,
टानऊ (खीचो, ऊपरकी ओर करो, टान—ब०)	,,
थाकिब (रहूँगा, ब०)	,,
अच्छत (रहते, अछैत—मै०)	,,
बलँद (बैल, बडद—मै०)	,,
पागल	२०
मोँउलिल (मुरझाया, मौलायल, मौलल—मै० मग० भो०	,,
खाट / सेज } मै० मग० भो० अव० का०	,,
एकली (अकेली)	,,
जेम (जैसा, गु०)	२६
ढुक्कु (घुसा, व्रज और बुदेलीमे—देखा)	३०
थिउ (रहा)	३२
तलाय (तालाव)	३६
वट्टइ (है, वाटे-बाडे, वाय—भोजपुरी काशिका)	,,
जेहा (जैसा)	,,
छुड (यदि ?)	४२

शब्द	पृष्ठ
णाइ (नाई, न्याई)	४४
लड्डु	४८
सक्कर	
खड (खाड, खाँड)	
सोयवत्ति (सेवई)	
घीअउर (घेवर)	
सालण (सालन)	
पप्पड (पापड)	
तिम्मण (तीमन, तेमन)	
लट्ठी (लाठी)	५४,९८
खाई (खाई, गड्ढा)	
मोक्कल (मुक्त, सिंधी)	६२
पोट्टल (पोटर, पोटरी, पूँटली; मैं० मग० भो० व०)	६४
मेहली (महिला—मेहरी, सम्प्रति दासीके अर्थमे प्रयुक्त, भो० का० अव०)	६६
अच्छहि (है, आछे—अछि; व० मैं०)	
धाह (जलन, ताप; मैं०)	६८
जावहिँ (जभी तक, मैं०)	,,
केम (कैसा, गु०)	,,
बारह, सोलह, वीस, चउवीस, तीम, पचास, सट्ठि, चउहत्तरि	८२
वे (दो, गु०)	८८
वण्णि (दोनों, सिंधी—विन)	,,
थक्कु (रहै, व०—थाक्)	८८ ९०
थाइ (रहै, गु०—थाय)	८८,९०
थक्क (था, रहा)	,,
ढोरु (डोर, पुष्पदत और एक अज्ञात कविने 'दोर' का प्रयोग किया है; पृ० २०२ और २८८ द्रष्टव्य)	१०८
कवण (कौन)	११६
चगउ (चगा—पं०)	१२२
माय-वप्प (माँ-बाप)	१२८
अप्पण (अपना, मैं०—अप्पन, भो०—आपन, व०—आपनि)	१३२
अहेरी (शिकारिन)	
मूसा	
अमिअ	
थाती	
मइलि (मैला, मइल—मैं० मग० भो०)	१३४
उजोली (इजोरी, अँजोरी)	
चद, चदा	
वढ (मूढ, मुग्ध, मैं०—बूड़ि, बुड)	१३४
नावडी (छोटी नाव; तुच्छ, क्षुद्र या लघु सूचक डा और टी प्रत्यय राजस्थानी भाषामे बहु-प्रयुक्त हैं। यथा गामडा, खेतडी आदि)	१३६

शब्द	पृष्ठ
चड़िया (चढकर)	१४०
कोंचा-ताला (कुजी-ताला; कुचा-कुची, कोंचा-कोची ताला-ताली)	१४२,१४८
कामलि, कामरि (कंबल)	१४४
हउँ (मैं, मै० मग० भो०—हम)	१४६,१४७
मँइ, मँयि (मैं)	१४८
व्रापुडी (बापुरी—बेचारी)	१५०
ताँति (ताँत, मै० ताँति, भो० तँतिया, ब० ताँत)	,,
चगेडा (मै० मग० भो० का० अव० आदिमे सुप्रयुक्त चगेरा; बाँसकी खपच्चियोसे वना चौड़ा पात्र विशेष। व०—चाडारि)	
सासु-नणँद (सास-ननद)	
लाँगा (लगा, नगा)	१५२
वेंग (मेढक; ब० मै० मग० भो० बेड)	१६४
हाँडी	,,
साँझ	,,
खभा	,,
हाँउ, मो (मैं)	१६६
मोकु (मुझको)	
माँझ	
विहाणु	१८०
तुहुँ	
छोक्कर (छोकरा)	१९०
खेडा (गाँव, गु० राज०)	१९२
ढेक्कार (डकार; मै० मग० भो० ढेकार, व० ढेकुर)	१९४
केयार (छोटा खेत; स० केदार, प्रा० केयार, हिं० क्यारी, क्याली—प्राची० हि०, व० केयारि)	
चगा (अच्छा, पजावीमे वहुत ही प्रयुक्त होता है, सिं० चडो, व० चागा—रोगमुक्त, स्वस्थ, मै० भो०मे भी इसी अर्थका द्योतक—'मन चगा त कठौती गगा')	१७२,१९४,२६६
खीर (दूध, सप्रति सिंधीमे यह जीवित और सुप्रयुक्त शब्द है)	१९४,२२२
थद्ध (गाढ़, सिं०मे ठढा)	१९६
कणइल्ल (कर्णकील या कर्णफूल; मै० भो० का० कनइल—कनैल, करवीरका फूल। सभव है पहले इस फूलको कानोमे लगाते रहे होगे। वहाँ गाडी या हलमे जुते वैलोके कवेको वाहर न निकलने देनेके लिए	

	पृष्ठ
जुएँके दोनो ओर जो कीले लगाते है उन्हे भी कनइल वा कनैल कहा जाता है, क्योकि वे बैलोके कानोके बिलकुल पास रहती है। गाछीम आमका वह पेड भी, जो कोनेमे पडता हो कोनइला वा कनैला कहलाता है। पूर्वी युक्तप्रात और बिहारमे 'कनैला' नामवाले दो-चार गाँव भी है। काशिका और अवधीमे उसी फूलको कनेल वा कनेर कहते है)	२००
अमृहँ (हमको, हमे)	२०२
वाणिज्जार (व्यापारी; स०—वाणिज्यकार। 'बनजारा' शब्दका मूल यही मालूम पड़ता है)	२१४
टोप्पी (टोपी, यही वड़ी रहने पर टोप। प्राचीन पंडितोने अतःसारशून्य व्यक्तिकी आडम्बरपूर्ण वेष-भूषाकेलिए 'घटाऽटोप'का प्रयोग किया है। ऐसे व्यक्तिका किसीपर रोब गाँठना तिरहुतमे 'टोपटहकार दिखलाना' कहलाता है। 'तोप' मैथिली और भोजपुरीमें एक धातु भी है जिसका अर्थ झाँपना होता है)	

शब्द	पृष्ठ
तुज्झ, तुह (तेरा, तुम्हारा)	२१८
महारी (मेरी, राज० म्हारी)	२२०
रसोइ (रसोई)	२२४
चेल्ला-चेल्ली (चेला-चेली)	२४८
पुत्थी (पोथी)	,,
वहुडि (फिर, लौटकर; अव० व्रज० वहुरि)	२५२
सवत्ति (सौत)	
माइ (माँ)	२६८
ठठ (ठाठ?)	२८०
छेहलउ (अंतिम; गु० छेल्लो)	२८८
धण (धनि! धन्ये!)	२९८
ढखर (गैर-आवाद जमीन जहाँ वबूल-कीकर, ढाक आदिकी छोटी-छोटी झाड-झाडियोंका विस्तृत जगल हो—बीच-बीचमे सूखे मैदान हों। ढख तीन पातवाले ढाक या ढाँक को भी कहते है। युक्तप्रातके पच्छिमी भाग और पजाबमे बहु-प्रयुक्त 'ढोर-डंगर', जो 'माल-मवेशी'का द्योतक है, ध्यान देने योग्य शब्द है। इसमेंका 'डगर' तो अवश्य ही 'ढंखर'का भाई-भतीजा	

परिशिष्ट ३

शब्द	पृष्ठ
होगा)	३१०
भित्तरि (भीतर)	३१४
हक्क (हाक—जोरसे पुकारने-की आवाज)	
वप्पुडा (बेचारा, वापुरो, 'वप्पुडी'केलिए १५०वाँ पृष्ठ द्रष्टव्य)	३१८
इकलि (अकेली)	,,
पियरि, पीयर (पीली, मै० भो० पीयर, पीयरि	३१८,३२६
गरास (कौर, ग्रास)	३२२
दुब्बरि (दुबली, मै० भो०मे सुप्रयुक्त)	
खणे खण (छने छन, खने खन)	
हीआ (हृदय)	३२४
थोरयँ (थोडे)	३३२
वालु (वालू)	३४२
थाल (थाली)	,,
एकल्ला (अकेला)	३४८
हुड्डु (उद्दड आदमी; मै० भो० का० अव० हुड्डु)	३५२
विटल (धूर्त, दुष्ट, भो०मे विट-लाहा-विटलाही आक्रोशा-त्मक गाली है। मै० 'विहारि' शब्द भी वैसा ही है। का० अव०मे भी विटारना मिलता है किंतु गदा करनेके अर्थमे। व० विटेल वा विटले—धूर्त, दुष्ट)	
बुहारी (वधू, गढवालीमे सम्प्रति भी यह शब्द सुप्रयुक्त है)	३५६
भल्ला (भला)	३६०
भुपडा (झोपडा)	३६२
गुट्ठ (गाँव, सिंधीमे 'गोठ'का यही अर्थ होता है)	
गाँव	३६४
हट्टि, चौहट्टि (हट्टी, चौहट्टी; प० गु० रा०मे सुप्रयुक्त)	,,
सामली (साँवली)	,,
राउलि (राजकुल, पच्छिमी हिं० गु० राज०मे रावल)	,,
देउलि (देवकुल, देवल, लगता ऐसा है कि अत्यधिक प्रचलित होनेके कारण देउल सस्कृत होकर 'देवल' वन गया)	,,
वप्पीहा (पपीहा)	३६६
भल्ली, भल्ला (भाला)	३७२
फालिसिँ (फालसा)	३९२
जादर (चादर; मणि-माणिक्य-गुम्फित या ज़रीके बेल-बूटो-वाली, मोतीके झालरवाली ओढनीकेलिए वारहवीँ सदी-मे इसका प्रयोग होने लगा। यो 'चादर' फारसी शब्द है	४००-४८८
षुप (उच्चारण खुप—खोपा,	

शब्द पृष्ठ

जूडा; ब० अस० उड़ि० मै० मग० भो० अव० व्रज० आदि प्राय. सभी उत्तर भारतीय भाषाओंमे खोपा या खोप सुप्रयुक्त है) ४२४,४८०
सथ (सैथ, सीथ, सीमत)
खरी (खरी, खरा) ४३०
गमारि (गँवारिन)
सुहाली (विना चुपड़ा फुलका, पतली-रूखी रोटी, अवधी, भोजपुरी और तिरहुतिया बोलियोमे सुप्रयुक्त 'सोहारी' शब्द इसी सुहालीका उत्तराधिकारी है) ४३२
गिंदू (गेंद, कंदुक) ४५४
काअर (कायर, कातर) ४५६
तुलक (तुरक, तुरुक) ४५४
हिंदू (यहाँ तेरहवीं सदीके अतिम चरणमें मौजूद कवि जज्जलकी और चौदहवीं सदीके प्रथम चरणमे मौजूद जैन मुनि अवदेव सूरिकी कविताओंमे 'हिंदू' आया है। एकने रणथंभोरवाले हम्मीरदेवकी प्रशसामे और दूसरेने अलाउद्दीनकी प्रशसामें कविताएँ लिखी है। पहले-पहल 'हिंदू' शब्दका इस्तेमाल किस कविने और किस शताब्दीमे किया, कह नही सकते। किंतु यह नवीं सदीसे पहलेका नही हो सकता) ४५४-६८

शब्द पृष्ठ

टोप्पर (नुकीली सी बड़ी टोपी; ब० टोपर) ४६२
सेर ४६४
रक ,,
पातसाहि (पातसाह, बादशाह—फा०) ४६८
सालार (मार्गदर्शक, नेता;—जंग सेनापति—फा०) ,,
खान (खान—सरदारो—सामतोकी फारसी उपाधि) ,,
वडल्ल (वैल) ४७०
डूगर (वृक्ष-वनस्पतिहीन टीला छोटा पर्वत; गुजरात और राजस्थानमे अत्यत ही प्रचलित शब्द) ४७४-७६
कक्कर (ककड) ४७४
लडका ४७६

संकेत—प०-पजाबी; सि०-सिंधी; बं०-बंगला; भो०-भोजपुरी; मै०-मैथिली; म०-मगही; मरा०-मराठी; हि०-हिंदी; गु०-गुजराती; राज०-राजस्थानी; स०-संस्कृत, अस०-असमिया; उड़ि०-उड़िया।